१६वीं शती के

हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि

(तुलनात्मक अध्ययन)

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए
स्वीकृत प्रबन्ध

लेखक
रत्नकुमारी, एम० ए०, डी० फिल०

भारती साहित्य मंदिर
फव्वारा, दिल्ली

प्रकाशक
भारती साहित्य मंदिर
फव्वारा, दिल्ली।

एस चंद एण्ड कम्पनी
फव्वारा-दिल्ली
माई हीरा-जालन्धर
लालबाग़-लखनऊ

मूल्य १०)

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली।

परिचय

अपने देश के जितने भी वडे सास्कृतिक आदोलन हुए हैं वे प्राय देशव्यापी रहे हैं। कुछ का प्रभाव तो भारत के वाहर पडोस के देशो पर भी पडा, उदाहरणार्थ वौद्ध सुधार आदोलन का उल्लेख किया जा सकता है। १५वी–१६वी शताव्दी की वैष्णव भक्ति-भावना इस प्रकार के आदोलनो मे से मुख्य है। ११वी–१२वी शताब्दियो के आसपास दक्षिण भारत से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे यह विचारधारा समस्त देश में व्याप्त हो गई।

भारतीय सास्कृतिक आदोलनो की एक अन्य विशेषता यह रही है कि यद्यपि उनके पीछे कुछ मौलिक व्यापक सिद्धात रहते ह किंतु भिन्न-भिन्न प्रदेशो में पहुच कर उन में कुछ प्रादेशिक विशेषताए भी विकसित हो जाती हैं। काल के अनुसार भी उनमें परिवर्तन होते रहते है। जैसे वैष्णव भक्ति के जो रूप वगाल, व्रज, गुजरात अथवा महाराष्ट्र में मिलते हैं, उनमें से प्रत्येक में कुछ प्रादेशिक छापें भी हैं यद्यपि सव में तात्त्विक समानता भी हैं।

वास्तव में देश के इन सास्कृतिक आदोलनो का पूर्ण चित्रण हमारे सामने तव तक नही उपस्थित किया जा सकता है जव तक प्रत्येक आदोलन का ऐतिहासिक और तुलनात्मक विस्तृत अध्ययन न हो जावे। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए प्रयाग विश्वविद्यालय के कुछ अनुसधान-प्रेमी विद्यार्थियो को अनेक विषय दिए गए थे। इस योजना में डा जगदीश गुप्त गुजराती और व्रजभाषा के कृष्णभक्ति साहित्य का सफल अध्ययन कर चुके हैं। डा रत्नकुमारी ने १६ वी शताव्दी के हिंदी और वगाली वैष्णव कवियो का यह तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कुछ अन्य अनुसधानकर्त्ता विद्यार्थी वैष्णव आदोलन के अन्य तुलनात्मक अध्ययनो मे लगे हुए है।

डा रत्नकुमारी ने अपने इस प्रवध में वगाली वैष्णव कवियो और पदकर्त्ताओ, उनकी रचनाओ तथा विचारधाराओ का हिन्दी के पाठको को पहली वार विस्तृत परिचय दिया है तथा हिन्दी के कवियो के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त अनेक रोचक और महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। यह तुलनात्मक अध्ययन आध्यात्मिक सिद्धातो, साहित्यिक विशेषताओ, ऐतिहासिक उपादानो तथा भापागत तत्त्वो से सवध रखता है, अत अत्यन्त व्यापक है।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि डा रत्नकुमारी का यह अनेक वर्षों का परिश्रम अव पुस्तक रूप में हिन्दी प्रेमियो के सन्मुख पहुच रहा है। विश्वास है कि वे इससे पूर्ण लाभ उ ावेंगे तथा इसका स्वागत करेंगे।

हिन्दी विभाग,
विश्वविद्यालय, प्रयाग

धीरेन्द्र वर्मा
१६-४-१९५६

भूमिका

भक्ति की परम्परा इस देश में अति प्राचीन है। श्रीमद्भागवत ने कृष्ण-भक्ति को विशेष प्रोत्साहन दिया और उसी के समानातर राम-भक्ति ने भी स्थान पाया। सोलहवी शती से पूर्व ही यह भक्ति-आदोलन देश-व्यापी वन चुका था। अन्य प्रवृत्तियो और आदोलनो के समान इस भक्ति-आदोलन ने भी भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य को अनुप्राणित किया। यदि किसी भी प्रवृत्ति को हमें ठीक से समझना है, तो उसके लिए नितात आवश्यक है कि न केवल किसी एक भाषा के प्रादेशिक साहित्य मे ही इसका अध्ययन किया जाय, लगभग उन्ही परिस्थितियो में और उसी समय में रचे गए सभी साहित्यो का अनुशीलन किया जाय। इसी दृष्टिकोण से आचार्य डा धीरेन्द्र वर्मा जी के परामर्श से प्रस्तुत प्रवध की यह सामग्री सकलित की गई है। भारतवर्ष की विशेष राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो में वैष्णव-भक्ति-आदोलन व्रज-भूमि मे सोलहवी शती मे चरम सीमा तक पहुचा। यहा यह वल्लभ, विट्ठल और सूरदास के समान व्यक्तियो के द्वारा परिपुष्ट हुआ। लगभग ऐसी ही परिस्थितियो में गौडीय-वैष्णव-समाज में श्रीचैतन्य के समान अद्वितीय विभूति का आविर्भाव हुआ। यह विभूति न केवल भक्ति-मार्ग का प्रवर्तक ही वनी, वरन् स्वय इष्टदेव वन गई। इष्टदेव चाहे कृष्ण हो, या राम, या चैतन्य, भक्ति से परिप्लावित व्यक्तियो ने इनके प्रति एक सी ही प्रशस्तिया, विनय, और लीला-पदावलिया रची। इस दृष्टि से सोलहवी शती के विभिन्न प्रादेशिक भक्ति-साहित्यो के तुलनात्मक अध्ययन का प्रयत्न किया जा रहा है। डा धीरेन्द्र वर्मा के परामर्श से अन्य छात्र लगभग इसी युग के अन्य वैष्णव साहित्यो का तुलनात्मक अध्ययन कर रहे हैं।

प्रस्तुत प्रवध की इस सामग्री को लेखिका ने कलकत्ते की वगीय साहित्य परिषद्, एशियाटिक सोसाइटी आव वगाल, एव कलकत्ता विश्वविद्यालय के पुस्तकालयो और राष्ट्रीय (पुरानी इम्पीरियल) लाइब्रेरी से सकलन किया है। वहा के प्रसिद्ध गौडीय मठ एव कीर्त्तन-साहित्य से सवध रखने वाले प्रमुख व्यक्तियो के परामर्श से भी लाभ उठाया गया है, जिनमें श्रीमती अपर्णा देवी और डा खगेन्द्र नाथ मित्र उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत प्रवध सात अध्यायो में विभक्त किया गया है —

पहले अध्याय में सोलहवी शती की वह पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है जिससे अनुप्राणित होकर वैष्णव-साहित्य की रचना हुई। इस स्थान पर साहित्यिक, र जनीतिक, सामाजिक और धार्मिक तीनो प्रकार की पृष्ठभूमियो का परिचय सोलहवी शती के प्राप्त साहित्य के आधार पर ही देने की चेष्टा की गई है। हिन्दी और वगाली ही नही, सस्कृत के पूर्ववर्त्ती साहित्य का भी उल्लेख कर दिया गया है, और उन ग्रथो की चर्चा कर दी गई है जिन्होने आगे के वैष्णव साहित्य को प्रभावित किया था।

दूसरे अध्याय में सोलहवी शती के कवियो और लेखकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें एक सौ आठ वगाली और छिहत्तर हिन्दी के लेखको एव कवियो को लिया

गया है। इन समस्त कवियो की सम्पूर्ण जीवनी न तो प्राप्त ही है और न इसे देने का प्रयत्न ही किया गया है। प्राप्त परिचय में से आवश्यक अश ही दिया गया है। इस परिचय का आधार मुख्यतया प्राचीन जीवनी साहित्य है जिनमे चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवत, वैष्णव-वदना, भक्तमाल, अष्टछाप, भक्ति-रत्नाकर एव प्रेम-विलास प्रमुख है। इस परिचय में वे व्यक्ति तो ले ही लिए गए है जो कवि या लेखक के रूप में शीर्षस्थानीय है, साथ ही वे भी सम्मिलित कर लिए गए है जिनके नाम से कुछ पद-मात्र ही प्राप्त हैं।

तीसरे अध्याय मे सोलहवी शती में रचित साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसमें समस्त साहित्य, जो मुख्यतया धार्मिक साहित्य है, सम्मिलित किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इस साहित्य को 'दर्शन और सिद्धान्त', 'काव्य', 'नाटक', 'पदावली', जीवनी', 'भाष्य-टीका-अनुवादादि', 'विविध', इन विभागो में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाग की कुछ प्रमुख रचनाओ का सूक्ष्म परिचय देने की भी चेष्टा की गई है।

चौथे अध्याय मे दोनो साहित्यो मे प्राप्त आध्यात्मिक विचारो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सोलहवी शती का प्राय समस्त साहित्य धार्मिक है। दोनो ही साहित्यो को श्रीमद्भागवत से विशेष प्रेरणा मिली। हिन्दी साहित्य के भक्त कवियो ने अपने आध्यात्मिक विचारो का स्रोत वल्लभाचार्य के 'अणुभाष्य', 'तत्त्व-दीप-निबध', 'षोडष ग्रथ', 'सुबोधिनी' आदि में पाया। बगाली भक्त कवियो को अपने आध्यात्मिक विचारो की यह प्रेरणा रूप गोस्वामी के 'उज्ज्वल-नील-मणि', 'भक्ति-रसामृत-सिधु' आदि ग्रथो से, एव जीव गोस्वामी के 'षट् सदर्भ' से मिली। हिन्दी के कवियो के आध्यात्मिक विचार उनके पदो में ओत-प्रोत पाए जाते है। उनकी किसी भी रचना में इन विचारो की शास्त्रीय पद्धति पर विवेचना नही की गई है।

'चैतन्यचरितामृत' में, जो प्रधानतया चैतन्य सबधी महाकाव्य है, कम से कम गौण रूप में इन आध्यात्मिक विचारो की श्रृखला का बहुत कुछ शास्त्रीय विवेचन पाया जाता है। इस ग्रथ के रचयिता ने अपने विचारो की पुष्टि में यत्र-तत्र श्रीमद्भागवत से भी श्लोक उद्धृत किए हैं, जैसा कि साधारणतया अन्य महाकाव्यो में नही पाया जाता। आध्यात्मिक विचारो की मीमासा करने की आवश्यकता कृष्णदास के चैतन्यचरितामृत में हिन्दी कवियो की अपेक्षा अधिक कदाचित् इसलिए पड गई कि गौडीय वैष्णव समाज में चैतन्य को इष्टदेव माना गया है। भागवत के कृष्ण इष्टदेव के रूप में चले ही आ रहे थे। उन्हे अमान्य नही किया जा सकता था। दोनो का समन्वय करना ही एकमात्र रास्ता था। अत चैतन्य की भगवत्ता सिद्ध करने के लिए तर्क आवश्यक थे और श्रृखलापूर्ण विवेचना भी आवश्यक थी। एक नए इष्टदेव की स्थापना की जा रही थी अत इसके लिए श्रुति प्रमाण आवश्यक थे। चैतन्य-चरितामृत में इसीलिए श्रुति प्रमाण अधिक हैं। हिन्दी कवियो के सामने ऐसी कोई समस्या नही थी। राम-कृष्ण इष्टदेव के रूप में प्रतिष्ठित थे ही। उनके परिचय की कोई आवश्यकता नही थी। अत प्रसगानुसार कुछ निर्देश कर देना काफी था। ये आध्यात्मिक विचार इष्टदेव, अवतार, जीव, माया, ससार, एव भक्ति सबधी है।

जीव के स्वरूप के सबध में हिन्दी के कवि जहा शाकरिक अद्वैत अथवा रामानुज के

विशिष्टाद्वैत से अधिक प्रभावित है, वहा बगाली कवि 'अचित्य भेदाभेद' सिद्धान्त मे आस्था रखते प्रतीत होते है ।

पाचवें अध्याय में पद साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । यह पद साहित्य एक प्रकार से आध्यात्मिक विचारो (मुख्यतया भक्ति सवधी) का प्रतिविम्व है । पद साहित्य सोलहवी शती की विशेपता रही है । न केवल हिन्दी भाषा में ही पद लिखे गए, वरन् वगीय भाषा में भी यह युग अपने पदो के लिए विशेष महत्व का रहा है । गोविददास, ज्ञान-दास, रायशेखर, वलरामदास, इत्यादि के पद वगला में, और सूर, तुलसी, परमानददास, इत्यादि कवियो के पद हिन्दी मे अत्यन्त सुन्दर है । गौडीय वैष्णव पदावली केवल 'स्वात सुखाय' की भावना अथवा भक्त्यावेश से ही प्रभावित नही है । वह वैष्णव भक्ति-रस-शास्त्र के सिद्धान्तो के अनुरूप शास्त्रीय पद्धति पर भी लिखी गई है । वहा की आराध्य व्रज-स्थित किशोर-कृष्ण की गोप-मूर्ति है जो मधुर-लीलाकारी है, असुर-सहारक नही । अत गौडीय वैष्णव-पदावली मुख्यतया राधाकृष्ण लीला सवधी ही है, कृष्ण की असुर सहारक लीला प्राय अवर्णित ही है । शृगार अधिक है, वात्सल्य अथवा दास्य भावना अपेक्षाकृत कम है । हिन्दी पदावली साहित्य में वात्सल्य और दास्य भावना अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में दृष्टि-गोचर होती है ।

छठे अध्याय मे तत्कालीन जीवनी साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । प्राप्त जीवनी साहित्य केवल ऐतिहासिकता की दृष्टि से रचा गया नही प्रतीत होता । उसमें अलौकिक घटनाओ का समावेश अच्छी मात्रा में है । परन्तु इतने पर भी ऐतिहासिक मूल्य में कमी नही आती । वगाली साहित्य में जीवनी साहित्य अपेक्षाकृत अधिक है, इसमें कुछ व्यक्तियो (जैसे चैतन्यदेव और अद्वैत) के विशद परिचय, कुछ के अल्प परिचय और कुछ के नामोल्लेख मात्र मिलते है । कुछ प्रमुख घटनाओ और महत्वपूर्ण तिथियो के भी उल्लेख मिल जाते है ।

सातवें अध्याय में इस साहित्य में प्रयुक्त तत्कालीन भाषाओ का अध्ययन अत्यत सक्षेप मे प्रस्तुत किया गया है । हिन्दी वैष्णव साहित्य और गौडीय वैष्णव साहित्य की भाषाओ का पारस्परिक प्रभाव देखने की चेष्टा की गई है । वगाली पदो में कुछ हिन्दी के पद प्राप्त है । कुछ पदो की भाषा मुख्यतया व्रजभाषा मिश्रित है । गौडीय पदो में हिन्दी के शब्द भी मिलते है । इन शब्दो का हिन्दी पदो में प्रयोग भी साथ ही दे दिया गया है । व्रजवुलि के व्याकरण तथा अवधी और व्रजभाषा के व्याकरणो की सक्षिप्त तुलना की गई है । व्रजवुलि के शब्दो और शब्द-रूपो का अवधी के शब्दो और शब्द-रूपो से कुछ अधिक साम्य दृष्टि-गोचर होता है ।

यह प्रवध प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा धीरेन्द्र वर्मा, एम ए, डी लिट (पेरिस), के निरीक्षण में लिखा गया है । प्रत्येक स्थल पर उन्होंने जो परामर्श दिए है, उनके लिए लेखिका अत्यन्त अनुगृहीत है । अन्य छात्रो की भाति इस लेखिका को भी उनसे अन्वेषण कार्यो में वरावर मूल्यवान प्रेरणायें मिलती रही है ।

बेली एवेन्यू, प्रयाग

—रत्नकुमारी

रामनवमी, सं० २०१३ वि०

संक्षेप और संकेत

अ.	अध्याय
अष्ट	अष्टछाप
अष्ट व स	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय
कर्णा	कर्णानन्द
क व	कवितावली
की र	कीर्तन रत्नाकर
की स	कीर्तन सग्रह
कृ प सि	कृष्णपदामृतसिंधु
क्ष गी चि	क्षणदागीतचिन्तामणि
गो तुलसी.	गोस्वामी तुलसीदास (ले० श्यामसुन्दर दास)
गौ. प त.	गौरपदतरगिणी
गौ वै. सा	गौडीय वैष्णव साहित्य
गी. व.	गीतावली
चै. च.	चैतन्यचरितामृत
चै भा	चैतन्यभागवत
चै. म	चैतन्य-मगल
त. स	तत्त्व-सदर्भ
तुलसी.	तुलसीदास (ले० माता प्रसाद गुप्त)
तुलसी. कवि	तुलसीदास और उनकी कविता (ले० राम नरेश त्रिपाठी)
तु. ग्रथ	तुलसी ग्रथावली
दोहा.	दोहावली
न. वि.	नरोत्तमविलास
प क. त.	पदकल्पतरु
परि.	परिच्छेद
प स.	पदामृतसमुद्र
प्रे वि	प्रेमविलास
पृ.	पृष्ठ
वा सा इ	वागला साहित्येर इतिहास
वृ भा.	वृहद्भागवतामृत
भ व.	भक्तमाल वगला
भ हिन्दी	भक्तमाल हिन्दी

भ. र	भक्ति-रत्नाकर
भ र सि	भक्तिरसामृतसिन्धु
मि व वि	मिश्रबन्धु विनोद
मु च	मुक्ताचरित
रा च मा.	रामचरितमानस [वा वालकाड,अ अयोध्याकाड, अर अरण्य काड, उ उत्तर काड, ल लकाकाड, सु सुन्दरकाड, कि किष्किंधाकाड]
रा. क द्रु.	रागकल्पद्रुम
ल मा	ललित माधव
व ध	वसत, धमार (कीर्तन सग्रह)
व सा प	वगीय साहित्य परिपद्
व सा प प	वगीय साहित्य परिपद् पत्रिका
वि.	विलास
वि प	विनय पत्रिका (तुलसी)
वै. तो.	वैष्णव तोपिणी
वै. द.	वैष्णवाचार-दर्पण
वै. व.	वैष्णववदना
शा. नि.	शाखानिर्णय
सू. सा.	सूरसागर
ह. भ. वि.	हरिभक्ति-विलास
हि. सा. आ. इ.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
हि. ब्र वु.	हिस्ट्री आव् ब्रजबुलि लिट्रेचर
B R (बी.आर.)	Bengali Ramayana
Brajbuli	History of Brajbuli Literature
B L L	Bengali Language and Literature
O R C	Obscure Religious Cults as Back-gound of Bengali Literature
V F M	Vaishnava Faith and Movement in Bengal

विषय सूची

प्रथम अध्याय

पृष्ठभूमि

प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य सोलहवी शती के वगाली और हिन्दी वैष्णव साहित्य की तुलनात्मक समीक्षा करना है। यो तो साधारणतया भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागो मे विभिन्न भाषाओ के साहित्यिको ने प्रत्येक शती मे अलग अलग साहित्य की सृष्टि की, पर इस देश की एकता इस प्रकार की रही है कि किसी भी प्रदेश के साहित्य का अध्ययन परिच्छिन्न रूप से नही किया जा सकता। प्रत्येक शती मे एक स्पष्ट वातावरण था जिसका प्रभाव लगभग समानतया इस देश की समस्त भाषाओ के साहित्य पर पडा। इसी राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि मे सोलहवी शती के वैष्णव साहित्य की रचना हुई। उस काल की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो का चित्रण परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनो ही रूपो में प्राप्त-वैष्णव साहित्य में मिलता है। यद्यपि यह विवरण विशद नही है, तथापि जितना भी है वह उस समय की स्थिति का परिचय देने के लिए पर्य्याप्त है।

१ साहित्यिक पृष्ठभूमि

सोलहवी शती का समस्त वैष्णव साहित्य भक्तिप्रधान है। धर्मसस्था- पको ने धर्म के सिद्धान्त इत्यादि का विवेचन करते हुए सिद्धान्त-ग्रन्थ रचे थे जिनमे व्रजप्रात के वल्लभाचार्य और गौडीय वैष्णव समाज के व्रजस्थित रूप सनातन, और जीव गोसाईं प्रमुख हैं। शेष वैष्णव कवियो ने कृष्ण-राधा लीला, रामचरित और गुरु वदना एव भक्त-वदना पर रचनाए की। यह कहना उचित नही है कि सोलहवी शती का यह भक्ति-साहित्य केवल उसी काल की स्वतत्र विशेष रचनाए है। भक्ति सवधी कुछ-न-कुछ रचनाए सोलहवी शती से पहले भी पाई जाती है। इष्टदेव निर्गुण ईश्वर भी रहे और अवतारी ईश्वर भी रहे। इस प्रकार का भक्ति-साहित्य सस्कृत और भाषा दोनो में पाया जाता है।

विषय जिस प्रकार तत्कालीन शती की ही उपज नही है उसी प्रकार काव्यो की रचना-शैलिया भी अपनी उपज नही है। पहले से ही पदो की शैली मे और लम्बे आख्यानक काव्यो की दोहा-चौपाई की शैली मे रचनाए होती चली आई हैं। सहजिया सिद्ध, सत कवि और विद्यापति ने पदो में रचनाए की थी। जायसी ने दोहे-चौपाई मे 'पद्मावत' रचा था। इसमें सन्देह नही कि सोलहवी शती के रचनाकारो ने इन शैलियो को अत्यन्त परिष्कृत साहित्यिक रूप दिया। वैष्णव काव्य की पद्य शैली पीछे से चली आई हुई पद्य शैली से अधिक परिष्कृत, तथा कला-एव सगीतपूर्ण है। तुलसीदास की रचना 'रामचरितमानस' की रचना शैली में जो परिपक्वता और कलात्मकता है, वह सूफी कवियो की दोहा चौपाई शैली से कही अधिक परिमार्जित है। यहा पर सोलहवी शती से पहले के साहित्य और रचनाओ का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(क) हिन्दी का पूर्ववर्ती साहित्य

गोस्वामी तुलसीदास अपनी रचना दोहावली में कहते हैं—

साखी, सबदी, दोहरा, कहि, किहनी, उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निन्दहिं वेद पुरान ॥

अर्थात् कलियुग में भक्त लोग साखी, शब्द, दोहे और कहानी और उपाख्यान कह कर भक्ति का निरूपण करते हैं। इस दोहे में बड़े स्पष्ट रूप से तुलसीदास ने उस साहित्य का निर्देश किया है जो वैष्णव भक्ति प्रधान साहित्य तो नहीं था परन्तु अन्य रूप से भक्ति का निरूपण अवश्य करता था। यद्यपि उस भक्ति का निरूपण करने वाले साहित्य की ओर उपेक्षा भाव इस दोहे मे निहित है तब भी उन साहित्यकारो को 'भगत' का नाम वे दे ही देते हैं।

ऊपर दिए गए दोहे के अनुसार दो प्रकार का भक्ति-साहित्य तत्कालीन कवियों के सम्मुख था। एक तो 'साखी सबदी दोहरा' वाला संत-साहित्य और दूसरा 'किहनी उपखान' सम्बन्धी सूफी-साहित्य ।

१ संत साहित्य—संत साहित्य प्रधानतया मुक्तक साहित्य ही है। इसकी परम्परा गुरु गोरखनाथ से चलकर गुरु नानक तक आती है। इस परम्परा के मुख्य कवि गोरखनाथ और रामानन्द के शिष्य हैं। महाराष्ट्र के दो कवि त्रिलोचन और नामदेव भी इसी परम्परा में आते है। स्वामी रामानन्द के शिष्यो में से प्रमुख पीपा, सेवा, धना, रैदास और कबीर है जो वैष्णवों से पहले के कवि हैं। सन्तो के काव्य में भक्ति और साधना की परम अभिव्यक्ति तो है पर काव्य-कला उच्च कोटि की नहीं है। सन्त काव्य के प्रमुख विषय वैराग्य, ससार की असारता, गुरुभक्ति, नाम महिमा, सदाचार, प्रेम, विरह, मन को चेतावनी इत्यादि हैं।

२ सूफी साहित्य—सोलहवी शती से पहले सूफी साहित्य की परम्परा में रचे गए दो आख्यानक काव्यो का उल्लेख मिलता है। एक तो दामो कवि की रची हुई 'लक्ष्मण-सेन पद्मावती' नामक प्रेम कहानी और दूसरी मुल्ला दाऊद की कृति 'नूरक चन्दा की कहानी'। इन प्रेम गाथाओ की भाषा अवधी है। जायसी का पद्मावत इसके बाद की रचना है ।

३ भक्ति साहित्य—मिश्रबन्धु-विनोद में[1] रायबरेली निवासी एक लालचदास हलवाई का और उसकी दोहा-चौपाई में रची भागवत का उल्लेख है। यह भागवत भाषा में है, संस्कृत में नही। कृष्ण-लीला सम्बन्धी मैथिल कवि विद्यापति की सुन्दर पदावली भी सोलहवी शती से पहले की रचना है। विद्यापति का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में है।[2]

(ख) बगाली का पूर्ववर्ती साहित्य

१ गीत—सोलहवी शती से पहले का बगाली साहित्य जो भक्तिपरक है मुख्यतया महाभारत, रामायण और कुछ लौकिक नये देवता सबंधी है। चैतन्य-चरितामृत

१. मि व वि, भाग १, पृ० २८९

२ चडीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति ।
स्वरूप रामानन्द सने, महाप्रभु रात्रि दिने, गाये शुने परम आनन्दे ।

और चैतन्य-भागवत में जिन स्थलो पर तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का कुछ विवरण दिया है, वही पर कुछ उल्लेख उस समय के प्राप्त साहित्य का मिलता है। वृन्दावनदास चैतन्य देव के जन्म से पहले की धार्मिक दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं —

धर्म कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने। मगल चंडीर गीत करे जागरणे॥

(चै. भा, आदि खड, अ. २, पृ १५)

एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं —

योगीपाल, भोगीपाल, महीपालेर गीत ।
इहा शुनिवारे सर्व्वलोक आनंदित।

वृन्दावनदास ने ठाकुर हरिदास के आख्यान में एक सर्पपूजक (डका) का उल्लेख किया है। वह डका उच्च स्वर में कालीय दमन के गीत गा रहा था, उसे सुन कर वे मूर्छित हो गए। वह उद्धरण निम्न है —

कालि दहे करिलेन जे नाट्य ईश्वरे ।
सेइ गीत गायेन कारुण्य उच्चैः स्वरे ॥

(चै. भा, आदि खंड, अ. १४, पृ. ९१)

जयानन्द ने अपने 'चैतन्य-मगल' काव्य मे जगाई-मधाई के म्लेच्छाचार का वर्णन करते हुए कहा है कि वे 'मसनवी' काव्य पढते थे। इस प्रकार इन कवियो के काव्यो से उस समय के प्राप्त साहित्य का परोक्ष रूप से कुछ आभास मिल जाता है। इनके अनुसार 'मगल-चडी गीत', योगीपाल इत्यादि के गीत, कृष्ण-लीला सम्बन्धी गीत और मसनवी साहित्य की विद्यमानता ज्ञात होती है।

'मगल-चडी गीत' सम्बन्धित मगल-साहित्य तो अच्छी सख्या मे उपलब्ध है। उसका विवरण आगे दिया जा रहा है। 'योगीपाल, भोगीपाल, महीपालेर गीत' क्या थे, इसका पता नही चलता। सुकुमार सेन का विचार है कि कदाचित् यह साहित्यपाल राजाओ की प्रशस्ति में लिखा गया था[1] क्योकि पाल राजाओ में कुछ राजा बडे धर्मात्मा और न्यायनिष्ठ हुए थे।

२. मंगल साहित्य—मगल काव्य वे काव्य हैं जिनमें केवल देवता का माहात्म्य वर्णित रहता है। यह मगल काव्य श्रीकृष्ण सबधी और मनसा और चडी सबधी है। 'मनसा' पौराणिक देवी नही है। इनका नाम महाभारत मे भी नही है। इनकी उपासना कबसे चल पडी, कहा नही जा सकता। सुकुमार सेन ने अपने बगला साहित्य के इतिहास मे पीताम्बर दत्त बडथ्वाल द्वारा सपादित 'गोरखबानी' मे से एक उद्धरण दिया है जिसमे 'मनसा' का नाम आया है।[2] मनसा मगल काव्यो मे यह देवी शिव की पुत्री बताई गई है। पार्वती इससे अत्यन्त ईर्ष्या करती है और घर से निकाल देती है। मनसा लोक में पार्वती के समान ही पूजित होना चाहती है। उसी के लिए प्रयत्न करती है। मनसा मगल काव्यो मे मनसा

---

१. बा सा. इ, पृ० १५६

२. माता हमारी मनसा बोलिये, पिता बोलिये निरंजन निराकार ।

(बा सा इ., पृ. १०९)

का माहात्म्य बताया गया है और जिन लोगो ने उनकी पूजा नही की उनका दुर्दशा दिखाई गई है। अन्त में मनसा की पूजा करके ही वे सुखी हो सके है। मनसा का एक नाम 'विषहरी' भी प्रचलित है। 'मनसा' की शक्ति भी बहुत दिखाई गई है। विषपान करने पर मूर्छित शिव को 'मनसा' ने ही नारद के अनुरोध से स्वस्थ किया था। यह कथा विप्रदास रचित 'मनसा विजय' मे है। यह मनसा मगल काव्य अपौराणिक होते हुए भी पुराणो की भावना पर ही आश्रित है। श्री शशिभूषण दास गुप्त ने अपनी थीसिस की भूमिका में मगल काव्यो पर जो कहा है वह नीचे दिया जाता है —[1]

"The Sanskrit Puranas are sometimes infused with a spirit of propaganda on behalf of some half indigenous and half-traditional religious cult and there is the spirit of glorifying some of the gods and goddesses With the help of a huge net-work of stories which bear testimony to their irresistible divine power and thus make them acceptable to the Brahmanical people The same spirit is found in Mangal Kavyas of Bengal, which launched vigorous and continual propaganda on behalf of some god or goddess in question with reference to various episodes where he or she had the supreme power to save the devotee from all sorts of dangers and difficulties and to bring destruction to all who opposed his or her supremacy These gods and goddesses of the Mangal Kavyas inspite of their Puranic garb are often indigenous in nature"

इन नए देवताओ की पूजा प्राय निम्न स्तर के लोगो ने ही प्रारम्भ की थी। निम्न स्तर का अर्थ ब्राह्मण धर्म को न मानने वाले लोगो से है। अपनी देवी की पूजा प्रचलित करने के लिए उन लोगो ने उनकी शक्ति और श्रेष्ठता दिखाई। इस प्रकार मगल काव्यो की रचनाए प्रारम्भ हुईं। आगे चलकर अर्थात् सत्रहवी-अट्ठारहवी शती में जो मगल काव्य रचे गए वे मनसा के उपासको द्वारा ही रचे गए, यह कहना समीचीन नही। उस काल के कवियो के सामने मगल काव्य की भी साहित्यिक परम्परा थी और उन्होने उस साहित्य विशेष की परम्परा में अपनी रचना की कडिया जोड दी, उपासना में नही। कुछ मगल काव्यो का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१ मनसा मगल—मनसा मगल काव्यो में जो सर्वप्रथम रचना प्राप्त है वह 'विप्रदास' का 'मनसा विजय' काव्य है। इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम परिचय हरिप्रसाद शास्त्री ने दिया। यह परिचय उन्होने उन हस्तलिखित ग्रन्थों को देख कर दिया था जो रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित है। काव्य के आरम्भ मे कवि ने आत्म-परिचय दिया है।[2] इसके अनुसार वे नादुउया वटग्राम निवासी मुकुद पडित के पुत्र थे। आगे चलकर उन्होने ग्रन्थ रचना का शक सवत् यो दिया है —

सिधु इन्दु वेद मही शक परिमाण।
नृपति हुसेन शाहा गौडेर प्रधान॥

१ O R C, Introduction, p XLVI

२ मुकुन्द पडित सुत विप्रदास नाम
चिरकाल वसति नादुउया वटग्राम
वात्सल्य गोत्र पिपिलाई पच प्रवर
सामवेद कौथुम शाखा चारि सहोदर (बां सा इ, पृ ११७)

इसके अनुसार १४१७ शकाब्द अथवा १४९५-९६ ई० 'मनसा विजय' का रचना-काल है। इस कथा के शिव, गगा, निरजन, धर्म, ठाकुर, पार्वती, नारद, मनसा इत्यादि पात्र हैं। लौकिक पात्र चाद सौदागर है जो मनसा का कोपभाजन होकर दु ख उठाता है।

दूसरी प्राप्त प्रति जो खडित है कवि विजयगुप्त रचित 'मनसा मगल' है। इसको रामचरण शिरोरत्न ने सम्पादित करके १८९६ ई मे मुद्रित किया था। इस छपी प्रति मे कवि का परिचय दिया है।[1] इसके अनुसार कवि सनातन और रुक्मिणी के पुत्र थे और फुल्लश्री ग्राम में रहते थे। सेन[2] ने कुछ खडित प्रतियो के आधार पर 'वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका' में उल्लिखित रचना काल दिया है परन्तु वे उसे प्रामाणिक नही मानते।[3]

तीसरी एक खडित प्रति प्राप्त है, वह हरिदास रचित 'मनसा मगल' है। यह प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

२. कृष्ण मगल—मनसा मगल काव्य के साथ-साथ कुछ कृष्ण मगल काव्य भी है। इनका सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस साहित्य की पहली उल्लेखनीय रचना 'श्रीकृष्णविजय' है। इसके 'गोविन्द-विजय', 'गोविन्द मगल' इत्यादि नामातर हैं। इसके लेखक मालाधर वसु या गुणराजखान है। इस ग्रन्थ का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत मे चैतन्य देव द्वारा करवाया गया है। वे पक्तिया निम्न है :—

गुणराज खान कैल श्री कृष्ण विजय।
ताहा एक काव्य तांर आछे प्रेममय।

(चै. च., मध्यलीला, परि. १५, पृ. २१३)

श्रीकृष्णविजय की रचना मुख्यतया भागवत के आधार पर हुई है। इसका उल्लेख कवि ने भी किया है।[4] ग्रन्थ में कवि ने उसका रचना काल भी दिया है।

तेरश पचानह शके ग्रंथ आरम्भन
चतुर्दश दुइ शके हैल समापन

(वां. सा. इ., पृ. १०८)

हुसैनशाह के दरबारी कवि 'यशोराजखान' ने एक कृष्ण मगल काव्य लिखा है, जिसका उल्लेख सत्रहवी शती की रचना रसमजरी में मिलता है। इसके लेखक पीता-

---

१. सनातन तनय रुक्मिणी गर्भजात
पश्चिमे घाघर नदी पूर्वे घटेश्वर
मध्ये फुल्लश्री ग्राम पडित नगर
हेन फुल्लश्री ग्रामे वसति विजय (वां सा. इ., पृ. १५०)

२. ऋतु शशी वेद शशी परिमित शक
सुलतान होसेन शाहा नृपति तिलक (वां. सा. इ, पृ. १५०)

३. वां. सा. इ., पृ. १५०

४. भागवत अर्थ जत पयारे बाधिया
लोक निस्तारिते जाइ पांचाली रचिया (वां. सा. इ., पृ. १०८)

श्वरदास ने इस काव्य में से कुछ अश उद्धृत किए है। परन्तु उस काव्य की एक भी प्रति प्राप्त नही है। सेन का अनुमान है कि गोविन्ददास के मातामह 'दामोदर' ही 'यशोराज-खान'[1] है।

कृष्ण मगल काव्यो की रचना सोलहवी शती में ही अधिक हुई।

३ मसनवी—मसनवी काव्यो की पद्धति पर रची लौकिक प्रेमगाथाए भी पाई जाती हैं। यह सूफी सिद्धान्तो से प्रमाणित हैं। दो कवियो द्वारा रची दो प्रेमगाथाए है जिनके दोनो के ही नाम 'विद्यासुन्दर' हैं। एक के लेखक 'श्रीधर' हिन्दू हैं और दूसरे के लेखक 'शाविरिद खा' मुसलमान है। हिन्दी पद्मावत के आधार पर रचा 'पद्मावती पाचाली' वाद की रचना है। इसके रचयिता 'आला ओल' थे।

४ अन्य भक्ति काव्य—जयानन्द द्वारा उल्लेख किए गए साहित्य के अतिरिक्त अन्य भक्ति सबधी रचनाए भी उपलब्ध हैं। कुछ कवियो ने महाभारत की कथाए लेकर भी रचनाए की थी। राजसभाओ में महाभारत का पाठ हुआ करता था। कुछ राजाओ ने अपने आश्रित कवियो से महाभारत के आधार पर स्वतत्र रचनाए करवाई थी। यह रचनाए जो गेय गाथा काव्य हैं 'भारत-पाचाली' कहलाती हैं। पाचाली पदावली-भिन्न अन्य गेय काव्यो को कहते हैं।

सर्व-प्राचीन-प्राप्त भारत-पाचाली काव्य कवीन्द्र परमेश्वरदास रचित 'पाडव-विजय' है। परमेश्वरदास हुसेनशाह के कर्मचारी 'लश्कर परागल खान' के आश्रित थे। श्री गौरीनाथ शास्त्री द्वारा सपादित मुद्रित प्रति में इस बात का स्पष्ट उल्लेख कवि ने स्वय किया है।[2] इन परागल खान ने कवि को आदेश देकर 'पाडव-विजय' पाचाली की रचना करवाई। इसका भी उल्लेख है।[3] यह काव्य महाभारत के समान ही अठारह पर्वो में विभक्त है परन्तु आकार उतना नही है, जितना महाभारत का।

भारत-पाचाली सम्बन्धी दूसरी रचना 'अश्वमेध पर्व' है। परागल के पुत्र नुसरत खा थे जो 'छुटि खा' के नाम से भी विख्यात थे। ये भी हुसेन शाह के प्रिय कर्मचारी थे और साहित्य में रुचिसम्पन्न थे। ये भी महाभारत की कथा में रुचि रखते थे। इन्होने अपने सभाकवि श्रीधर नदी से महाभारत के अश्वमेध पर्व को भाषान्तरित करवाया। काव्य के आरम्भ में कवि ने इन बातो का उल्लेख किया है।

---

१. वा सा इ, पृ २०४।

२ नृपति होसेन शाहा गौड़ेर ईश्वर
तान एक सेनापति
लस्कर परागल-खान महामति
सुवर्ण वसन पाइल अश्व वायुगति
लस्करि विषय पाइ आइलन्त चलिया
चाटिग्रामे चलि आइल [हरषित हइया] (वा. सा इ, पृ. २२५)

३. ताहार आदेश माला मस्तके धरिल
कवीन्द्र परमेश्वरदास पाचाली रचिल (वां सा इ, प. २२६)

लस्कर परागल-खानेर तनय
समरे निर्भय छुटि-खान महाशय (बा. सा. इ, पृ. २२७)
सस्कृत भारत ना वूझे सर्व्वजन
मोर निवेदन किछु-शुन कविगण
देशि भाषे एहि कथा करिया प्रचार (बां. सा इ., पृ. २२९)
ताहान आदेशमाल्य माथे आरोपिया
श्रीकर-नदी ए कहे पाचाली रचिया (बा. सा इ., पृ. २२९)

अश्वमेध पर्व का मुद्रित सस्करण श्री दीनेशचन्द्र सेन ने सपादित करके वगीय साहित्य परिषद् से प्रकाशित किया है ।

इन भारत-पाचाली काव्यो के अतिरिक्त एक 'राम-पाचाली' भी प्राप्त है । इसके रचयिता कृतिवास ओझा है । यह राम-पाचाली रामायण भी कहलाती है । दीनेशचन्द्र सेन का मत है कि कृतिवास ने इसकी रचना चौदहवी शती मे की थी ।[1] सुकुमार सेन इन्हे पद्रहवी शती के अन्तिम भाग का व्यक्ति मानते हैं ।[2] अनेक हस्तलिखित प्रतियो में कृतिवास की आत्म-जीवन कहानी मिलती है, परन्तु वे सव सर्वांश मे समान नही है । इन सब का सक्षिप्त विवेचन सुकुमार सेन ने किया है ।[3] कृतिवासी रामायण सर्वप्रथम मिशन प्रेस से १९०२-३ ई मे मुद्रित हुई । द्वितीय सस्करण का सशोधन जयगोपाल तर्का-लकार ने किया था । कृतिवास की रामायण के वरावर आदर अन्य किसी भी राम-पाचाली ने अव तक नही पाया ।

पाचाली साहित्य के अतिरिक्त एक रचना 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' है जिसके रचयिता चडीदास है । राधाकृष्ण लीला सवधी इस रचना ने आगे के साहित्य को वहुत प्रभावित किया चडीदास की निश्चित जन्मतिथि के विपय में मतभेद है । श्री हरिदास इन्हे १३०९ शक अर्थात् १३८४ ईसवी में उत्पन्न वताते है ।[4] श्रीकृष्ण-कीर्तन न तो सम्पूर्ण रूप से पाचाली काव्य ही है और न महाकाव्य । यह पाचाली काव्य और यात्रा (नाट्य गीत) का मिश्रण सा है । पदो में रची हुई होते हुए भी इनमें प्रवधात्मकता है । इसमे तीन पात्र कृष्ण, राधा और वडायी है । 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' काव्य का सर्वप्रथम परिचय हमे वसत रजन राय की खोज से प्राप्त हुआ । उन्हे एक खडित हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी जिसको सपादन करके उन्होने प्रकाशित किया । प्रकाशित ग्रथ मे वारह खड और अन्त मे राधा-विरह नाम का अश है । इसके दान खड और नौका खड का उल्लेख सनातन गोस्वामी ने किया है । (वै. तो, पृ २६) ।

(ग) सस्कृत का पूर्ववर्ती साहित्य

सोलहवी शती से पूर्व के प्राप्त साहित्य मे भाषा साहित्य की अपेक्षा सस्कृत साहित्य अधिक है । इस साहित्य की कुछ रचनाओ ने हिन्दी और वगाली दोनो के भापा

---

१. वी. आर, पृ. १३३
२. वां. सा. इ, पृ. ९८
३. वां. सा. इ, पृ ९५
४ गो. वै. सा, पृ. ३०

साहित्यो को समान रूप से प्रभावित किया है। कुछ रचनाए अवश्य ऐसी हैं जिन्होने केवल गौडीय वैष्णव समाज मे ही आदर पाया। यहा उन रचनाओ का उल्लेख किया जा रहा है जो भक्तिधर्म की परम्परा को लेकर चली और हिन्दी वैष्णव साहित्य और बगला वैष्णव साहित्य दोनो की पृष्ठभूमि रही। निम्नाकित पाच पुराण, रामायण और गीतगोविन्द ने दोनो स्थानो के साहित्यो पर प्रभाव डाला। शेष ग्रथ केवल गौड देश में समादृत हुए।

पुराण साहित्य

१ **हरिवश पुराण**—कदाचित् हरिवश पुराण ही श्रीकृष्ण लीला सबधी ऐसी सर्व-प्रथम रचना है जिसमें श्रीकृष्ण की व्रज-लीला क्रम-बद्ध रूप में पाई जाती है। इसमें शकटभग, पूतना वध, दाम वध, यमलार्जुन भग, वक्र दर्शन, वृन्दावन प्रवेश, कालीय दमन, धेनुक वध, प्रलम्ब वध, गोवर्धन धारण, गोविंदाभिषेक, हल्लीश क्रीडा, वृषभासुर वध, और केशी वध इत्यादि प्रकरण कृष्णलीला सबधी हैं।

२ **विष्णु पुराण**—विष्णु पुराण ने कृष्ण लीला वर्णन में प्राय॰ हरिवश पुराण का ही अनुकरण किया है। परन्तु कुछ नये प्रकरण भी पाए जाते हैं। गर्ग मुनि द्वारा कृष्ण का नाम-करण, गोपी प्रेम, गोपी विरह इत्यादि वर्णन विष्णु पुराण में ही पाए जाते हैं। यद्यपि नाम नही दिया है पर इसी पुराण में एक गोपी का कृष्ण की विशेष प्रीतिभाजन बताकर उल्लेख किया है।

३ **पद्म पुराण**—पद्म पुराण में कृष्ण लीला का वैसा वर्णन नही है जैसा ऊपर दिए गए दोनो ग्रन्थो में। इसमें कृष्ण राधा की नित्य लीला वर्णित है। वृदावन की स्थिति, रासमडल की स्थिति, राधा कृष्ण के सखी-सखाओ की उस रास मडल में स्थिति, इत्यादि का विवरण इस ग्रथ में मिलता है।

४ **ब्रह्मवैवर्त्त पुराण**—ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में प्रमुख गोप-गोपियो की वशावली और इतिहास ही अधिक दिया गया है। इसमें वर्णित व्रजलीला में क्रमबद्धता का अभाव-सा है।

५ **भागवत पुराण**—वैष्णव साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाली रचना भागवत पुराण है। चैतन्यदेव, वल्लभाचार्य तथा अन्य वैष्णव आचार्यों ने भागवत पुराण के आधार पर अपने मत विशेष के दार्शनिक सिद्धात, पूजा, उपासना, इष्टदेव इत्यादि लिए। यह ठीक है कि प्रत्येक ने अपने दृष्टिकोण से भागवत को देखा और उसके भाष्य किये। इस ग्रथ की टीकाएँ 'लघु वैष्णव-तोषिणी', और 'वृहद् भागवतामृत' नाम से रूप गोस्वामी ने की। श्रीधर स्वामी की भी एक टीका प्राप्त है। केवल एक स्कध की टीका भी 'दशम स्कध टीका' के नाम से प्राप्त है। यह अत्यन्त विख्यात रचना है। इसमें पीछे की रचनाओ की अपेक्षा कृष्ण की किशोर लीला में कुछ नये प्रसग भी जोड दिए गए है। तृणासुर वध, गोवत्स हरण, दावाग्नि मोचन, दावानल पान, वस्त्र-हरण, ब्राह्मण पत्नियो को उपदेश, सुदर्शन मोक्ष, शख चूड, और व्योमासुर वध लीला के साथ कृष्ण की रासलीला सबधी पाच अध्याय है। इनमें कृष्ण का गोपियो के साथ विहार वर्णित है। इस ग्रथ में कृष्ण के सखाओ के नाम भी दिए हैं। इस पुराण के उद्धरण कृष्णदास ने 'चैतन्यचरितामृत' और वृन्दावनदास ने 'चैतन्य-भागवत' में दिए है।

रामायण—वाल्मीकीय रामायण—सोलहवी शती के पूर्व के भक्ति साहित्य में कृष्ण लीला सबधी रचनाएँ ही अधिक है। राम साहित्य अपेक्षाकृत कम है। वाल्मीकीय रामायण राम-कथा की प्राचीनतम प्रसिद्ध रचना है। रामकथा सबधी भाषा रचनाओ को इस ग्रथ का आभार मानना ही पडता है।

भक्ति दर्शन साहित्य

१ **श्री ब्रह्म-सहिता**—श्री चैतन्य देव ने यात्रा मे दो ग्रथ देखे थे[1], और वे उन दोनो ग्रथो को वहा से बगाल लाए थे। उनमें से एक ग्रथ ब्रह्म सहिता है[2]। उनकी शिक्षायें इन दोनो ग्रथो में से ली गई थी। कहा जाता है कि वे जब राय रामानन्द से तत्त्व-ज्ञान और भक्ति संबधी चर्चा कर रहे थे, तब अपनी भक्ति-भावना बताते हुए उन्होने ये दोनो ग्रथ उन्हें दिखा कर कहा था कि सब कुछ इसमें दिया है[3]। ब्रह्म-सहिता तत्त्व-सिद्धात सबधी सस्कृत-ग्रथ है। श्री जीव गोस्वामी ने इसकी एक टीका की थी। कहा जाता है कि विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भी इसकी एक टीका की। परन्तु अब वह अप्राप्य है। इस ग्रथ में सक्षेप में भक्ति-सिद्धातो की विवेचना की गई है। इसके सब अध्याय अब नही मिलते[4]। इसमें प्रधानत धाम तत्त्व, कामबीज, काम गायत्री तात्पर्य, चतुर्व्यूह, माया, योगमाया, शब्द ब्रह्म, गायत्री, नारायण, माधुर्यमय श्रीकृष्ण आदि तत्त्व, कर्मज्ञान-योग विचार, श्रुति स्मृति विचार, शक्ति तत्त्व, स्वकीय, पारकीय, ध्यानयोग, पचोपासना—सूर्य, गणेश, शक्ति, शिव और विष्णु,—निर्विशेष ब्रह्म, विधि महेन्द्र, नित्य मुक्त और नित्यबद्ध जीव, विष्णु तत्त्व और अवतार, लीला वैचित्र्य, देवलोको का सबध, कर्मफल, भजन, शरणागति, भक्ति इत्यादि की सुन्दर व्याख्या की गई है। "ब्रह्मसहिता" का नाम देकर इसमें से उद्धरण कृष्णदास कविराज ने अपनी रचना "चैतन्यचरितामृत" में दिए है।[5]

२. **कर्णामृत**—यह दूसरा ग्रथ है जिसे चैतन्य देव दक्षिण से लाए थे। उनकी भजन, शिक्षा और कीर्तन इत्यादि का आधारभूत यही ग्रथ है। इसके रचयिता दक्षिण भारत वासी श्री बिल्वमगल है। यह ग्रथ सस्कृत में है और इसके भाव अत्यत सरल और ऊँचे है। भाषा सुललित और मधुर है। कविराज कृष्णदास ने अपने ग्रथ "चैतन्यचरितामृत" में इसका उल्लेख किया है।

---

१. ब्रह्म सहिता, कर्णामृत दुइ पुंथि पाआ। (चैं च, मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)
२. महाभक्तगण सह ताहा गोष्ठी कैल। ब्रह्मसहिताध्याय पूथि तांहा पाइल ॥
   बहुयत्ने सेइ पुंथि लइल लिखिया। (चै. च. मध्यलीला, परि. ९, पृ १६५)
३. तीर्थ यात्रा कथा प्रभु सकल कहिला। कर्णामृत ब्रह्मसहिता दुइ पुंथि दिला ॥
   प्रभु कहे तुमि जे प्रेम सिद्धान्त कहिले। एइ दुइ पुस्तके सेइ सब साक्षी दिले ॥
   (चैं च, मध्यलीला, परि ९, पृ १६८)
४. श्री हरिदास के कथनानुसार। उन्होने इसके पचम और चतुर्दश अध्याय मात्र देख पाए हैं। उनका कथन है कि इसके शताध्यायों में से केवल ये ही दो अध्याय दृष्टिगोचर है (गौ वैं सा, पृ. १६)
५. चैं. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११ और १६।

कर्णामृत सम वस्तु नाहि त्रिभुवने ।
जाते हंते हय शद्ध कृष्ण प्रेम ज्ञाने ॥
सौन्दर्य माधुर्य कृष्ण लीलार अवधि ।
से जाने जे कर्णामृत पडे निरवधि ॥

(चै च, मध्यलीला, परि ९, पृ १६८)

चैतन्यदेव इसका पाठ करते थे, इस बात का भी उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है। कृष्णदास कविराज ने "सारगरगदा" नाम से इसकी टीका की थी। इसके अतिरिक्त दो अन्य टीकाए है। एक तो श्री गोपाल भट्ट की "कृष्णवल्लभा" टीका और दूसरी चैतन्यदास की "सुबोधिनी" टीका। यह दोनो ढाका विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित हुई है। श्री यदुनन्दन राय का पद्यानुवाद भी राधारमण यत्रालय बरहमपुर से प्रकाशित हुआ है।

कृष्णदास कविराज की टीका के अनुसार इस ग्रथ के निम्न विषय है —

१ श्लोक—मगलाचरण
२ श्लोक—वस्तु निर्देश
३ श्लोक—लीला का आत्मप्रवेशानुभव
४— २१ श्लोक—स्फूर्ति प्रार्थना
२२ श्लोक—आत्म निश्चय
२३— ५५ श्लोक—दर्शन, प्रार्थना
५६— ६० श्लोक—साक्षात्कार भ्रम
६१— ६७ श्लोक—पुन दर्शन की उत्कठा
६८— ९५ श्लोक—साक्षात्कार के अनन्तर भगवद्रूप एव मन की स्थिति वर्णन
९६—११२ श्लोक—श्रीकृष्ण से उक्ति-प्रत्युक्ति।

स्तोत्र ग्रथो में कर्णामृत का स्थान सर्वोच्च है। इसके श्रीकृष्ण माधुर्य रस के आश्रय हैं। वे श्रृगार रस के सर्वस्व, शिखि-पुच्छ-विभूषित अशावतार हैं। वे गोपियो से केलि करने वाले हैं। गोपीवस्त्रहरण का भी इसमे वर्णन है।

३ मुक्ताफल—महाराष्ट्र देशवासी वोपदेव ने "मुक्ताफल" की रचना १३वी शती में की। सब मिला कर इसमें प्राय ८०० श्लोक है। परन्तु ये श्लोक कवि की अपनी रचना नही है। इन्होने "विष्णु-भक्ति" का विवेचन और उल्लेख करने वाले भागवत के श्लोक लेकर श्रृखलाबद्ध कर दिए हैं। प्रारम्भ में ५ और अन्त में ६ श्लोक इनकी अपनी रचनाए है। भागवत के समस्त श्लोक मुख्यत तीन भागो में रक्खे गए है —(१) उपास्य, (२) ससाधनोपास्ति, (३) उपासक। इन तीनो मुख्य विभागो को फिर चार चार प्रकरणो में बाटा है।

१ विष्णु प्रकरण—१ से ४ अध्याय तक। इसमें विष्णु के लक्षण, विष्णु का रूप, अवतार, अधिष्ठान इत्यादि का वर्णन है।

२ विष्णुभक्ति प्रकरण—५ से ६ अध्याय तक। इसमें विष्णु-भक्ति के लक्षण, भेद और महिमा का वर्णन है।

३ विष्णु भक्त्यग वर्ण प्रकरण—७ से १० अध्याय तक। इसमें भक्ति के अग सदाचार, श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि का वर्णन है।

४. विष्णु भक्त प्रकरण—११ से १९ अध्याय तक। इसमे विष्णुभक्तो के लक्षण, भेद, और भक्ति रस का विवेचन है।

मुक्ताफल का उल्लेख वगीय गौडीय वैष्णव समाज में वहुत हुआ है। श्री सनातन गोस्वामी ने भागवत की वैष्णव-तोषिणी टीका में मुक्ताफल की वोपदेव कृत टीका का उल्लेख किया है।[1] श्री हरिभक्ति-विलास में भी इसका उल्लेख आया है।[2] श्री जीव गोस्वामी ने भी तत्त्व-सदर्भ में इस ग्रथ का उल्लेख किया है।[3] इस प्रकार मुक्ताफल ने गौडीय वैष्णव धर्म पर प्रभाव डाला था, ऐसा ज्ञात होता है। सनातन और जीव गौडीय वैष्णव धर्म के आचार्य थे।

४ विष्णुभक्ति-रत्नावली—विष्णुभक्ति-रत्नावली सग्रह ग्रथ है। श्री विष्णुपुरी ने भागवत से श्लोको का सग्रह करके विष्णु भक्ति को दर्शाया है। आरम्भ मे और अन्त में कुल मिला कर ८ श्लोक इनकी अपनी रचना हैं। इन्हे छोड कर २ श्लोक (३।३२, ५।४५) हरिभक्ति सुधोदय ग्रथ के हैं और ४ श्लोक (१।८१, १।१०५, ४।२९, ५।५०) अन्य पुराणो के हैं। इसमे सब मिला कर १३ विरचन हैं जिनका विवरण निम्न है —

प्रथम विरचन—मगलाचरण, ग्रथ प्रयोजनादि निर्देश, भक्ति के सामान्य लक्षण।

द्वितीय विरचन—सत्सग।

तृतीय विरचन—नवविध भक्ति।

चतुर्थ से वारह विरचन—श्रवण, आत्मनिवेदन इत्यादि भक्ति के प्रकार।

तेरहवा विरचन—शरणागति एव ग्रथकर्त्ता का निवेदन।

ग्रथकार ने इस सग्रह ग्रथ की टीका स्वय ही "कातिमाना" नाम से की है। इस ग्रथ का उल्लेख कई पीछे के वैष्णव कवियो ने किया है।

१. वैष्णव-वन्दना—देवकीनन्दन कृत।
विष्णुपुरी गोसाई वन्दो करिया जतन
विष्णु भक्ति .... रत्नावली जाहार ग्रंथन।

२ श्री गौर-गणोद्देश-दीपिका—कवि कर्णपुर कृत।
श्रीमद् विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावली कृति ॥२२॥

३ भक्ति-रत्नाकर—श्री नरहरि चक्रवर्ती कृत।
जय धर्म मुनि तांर अद्भुत चरित। इंहार गणेते विष्णुपुरी शिष्य हैल।
भक्तिरत्नावली ग्रंथ प्रकाश करिल। ५।२१४४।

४ तत्त्वसदर्भ—श्री जीव कृत। इसके २३वें अनुच्छेद में इस ग्रथ को निवन्ध ग्रंथों मे रक्खा गया है।

---

१. वै. तो. १०।३१।१
२. ह. भ. वि, ११।२३६।३७९, ३८०
३. त. सं., २३–२६।

५ श्रीमद्भागवत टीका—श्रीधर स्वामी ने समस्त भागवत की टीका की थी। श्री चैतन्य देव का भागवत से परिचय इसी टीका के द्वारा हुआ था। आगे चल कर उन्होने केवल उन्ही टीकाओ को प्रामाणिक माना जो इस टीका के अनुकूल थी। अत सनातन और जीव गोस्वामी ने इसी के अनुरूप ही भागवत की व्याख्यायें की थी। चैतन्य-चरितामृत में उल्लेख है—

श्रीधरस्वामी प्रसादे ते भागवत जानि। जगद्गुरु श्रीधर स्वामी गुरु करि मानि॥
श्रीधरेर अनुगत जे करे लिखन। सब लोक मान्य करि करये ग्रहण॥

(चै च, अन्त्यलीला, परि ७, पृ ३७४)

इस टीका मे विष्णु स्वामी सम्प्रदाय की भावनायें प्रकट होती है। इसमें भक्ति, भगवान और भक्त की अनित्यता, जीव ईश्वर का पार्थक्य, मुक्ति, चेतन अचेतन के प्रसग से परमात्मा का अपादानत्व, निर्भेद मुक्ति की निन्दा और श्रवण कीर्तन इत्यादि की विवेचना की गई है।

६ नामकौमुदी—इसके रचयिता लक्ष्मीधर है। इस ग्रथ में तीन परिच्छेद है। प्रथम परिच्छेद मे मीमासा का अवलम्बन लेकर नाम के माहात्म्य को बताने वाले पुराणो के वचनो पर विचार करके 'नाम' को पापक्षय के लिए सपूर्ण रूप से समर्थ बताया है। केवल नाम-सकीर्तन पापो का नाश करने वाला है अथवा यह भी अन्य कर्मकाड का एक अग होकर पापो से मुक्ति दिलाने वाला है। इसकी विवेचना करके केवल नाम-सकीर्त्तन की स्वतत्रता मुक्ति दिलाने में द्वितीय परिच्छेद में बताई गई है। तीसरे परिच्छेद में मुक्ति की विवेचना की गई है। साधन भक्ति अथवा रागानुगा भक्ति इन दोनो में से कौन वरेण्य है इसका उल्लेख किया गया है। भक्ति के आलबन, उद्दीपन, अनुभाव, सचारी भाव, सब की व्याख्या की गई है और नाम सकीर्त्तन को सर्वश्रेष्ठ बताया है। चैतन्य देव के "नाम सकीर्तन" प्रचार को इस 'नाम कौमुदी' से बहुत प्रेरणा मिली। नाम सकीर्त्तन के माहात्म्य को दर्शाने वाले ग्रथो ने 'नामकौमुदी' के प्रमाण दिए है।

लीला एव गीत साहित्य

१. श्रीकृष्णलीलामृत—इसके रचयिता ईश्वरपुरी हैं। "श्रीकृष्णलीलामृत" के विभिन्न नाम मिलते है। "श्री श्री राधाकृष्ण लीला" कर के मराठी गाथा सप्तशती में और "रुक्मिणी स्वयवर" करके उज्ज्वल-नीलमणि में उल्लेख है। श्री रूप गोस्वामी ने दो श्लोक उज्ज्वल-नीलमणि में दिए हैं और ग्रथ का नाम "रुक्मिणी स्वयवर" दिया है। सात्विक प्रकरण (१२।१२, १७) में मधुर भाव की भक्ति को ही प्रधानता दी गई है। वृन्दावनदास ने चैतन्य-भागवत में ईश्वरपुरी का उल्लेख करके कहा है कि उन्होने अपनी रचना श्रीकृष्णलीलामृत गदाधर पडित को पढाई थी। वह उद्धरण निम्न है—

गदाधर पडितेर आपनार कृत।
पुथि पढायेन नाम कृष्णलीलामृत।

२ गीतगोविंद—इस प्रसिद्ध ग्रथ के रचियता जयदेव हैं। यह गीतकाव्य कृष्ण-राधा की मधुर लीला सबधी रचना है। इसकी कोमलकांत पदावली सुरताल से सयुक्त है। इसके बारह सर्ग है।

प्रथम सर्ग "सामोद दामोदर" में वसत काल की सुषमा का वर्णन है और विरहिणी राधा की वसत मे दशा का वर्णन है।

द्वितीय सर्ग "अक्लेश केशव" में विरह-क्षीणा अपितु मर्यादाशीला राधा का वर्णन है। गोपियो के साथ रास मे लीन कृष्ण का वे गुणगान करती है।

तृतीय सर्ग 'मुग्ध मधुसूदन' में राधा के लिए श्रीकृष्ण की उत्कठा का वर्णन है। वे पश्चात्ताप करते हुए राधा का गुणगान करते हैं।

चतुर्थ सर्ग 'स्निग्ध मधुसूदन' में कुज के अन्दर बैठे श्रीकृष्ण से राधा की सखी राधा की विरह दशा वर्णन करके उन्हे राधा से मिलने की प्रेरणा करती है।

पचम सर्ग 'साकाक्ष पुडरीकाक्ष' में सखी कृष्ण का सदेश राधा के पास ले जाती है।

छठे सर्ग 'घृष्ठवैकुठ' में राधा की वासकसज्जा नायिका की दशा का वर्णन है।

सप्तम सर्ग 'नागर नारायण' में राधा को विप्रलम्भा नायिका के रूप में दिखाया गया है।

अष्टम सर्ग 'विलक्षम लक्ष्मी' में राधा की खडिता नायिका की दशा का वर्णन है।

नवम सर्ग 'मुग्ध मुकुन्द' मे कलहातरिता नायिका के रूप में राधा का वर्णन है।

दशम सर्ग 'मुग्ध माधव' मे मानिनी राधा का और कृष्ण की अनुनय विनय का वर्णन है।

एकादश सर्ग 'सानंद गोविंद' में राधा का चित्रण अभिसारिका के रूप में है।

द्वादश सर्ग 'सुप्रीति पीताम्बर' में राधा-कृष्ण की क्रीडा और मिलन का वर्णन है।

जयदेव कृत गीत-गोविन्द अत्यन्त प्रसिद्ध सस्कृत गीति-काव्य है। इसका इतना विवरण देने का प्रयोजन विशेष है। वगला पदावली मे "द्वादश अग" नाम से प्राप्त जो विभिन्न रस-विभाजन है, वे इन्ही सर्गो के वस्तुविन्यास के अनुकरणरूप है। 'रूपानुराग', 'स्वय दौत्य', 'दुर्जय मान', 'वासक सज्जा', 'कलहातरिता', 'खडिता' इत्यादि समस्त शीर्षको में राधा-कृष्ण सम्बन्धी पदावली मिलती है। इसके अतिरिक्त गीतगोविन्द के अनुकरण पर गीत काव्यो की रचना भी हुई, जिनमें निम्न मुख्य है[1] —

१ पुरी के अधिपति प्रतापरुद्र कृत 'अभिनव-गीतगोविन्द'

२ प्रकाशानन्द सरस्वती कृत 'सगीत-माधव'

३ चतुर्भुज कृत 'गीत-गोपाल'

राम-काव्य में भी 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर रचनाए हुई। कुछ मुख्य कृतियों के नाम निम्न है —

१ श्री हरि आचार्य कृत 'जानकी-गीत'

२ श्री हरि शकर कृत 'गीत-राघव'

३ गयादीन कृत 'रामगीत-गोविन्द'

४ प्रभाकर कृत 'गीत-राघव'

उद्धरण ग्रंथ—यहा पर कुछ ऐसे ग्रथो की नामावली दे देना भी समीचीन जान पड़ता

१. गौ. वैं० सा०, पृ. २१.

है जिनका नाम देकर या तो उनमे प्रमाण-वाक्य उदधृत किए गए है अथवा कुछ अन्य उद्धरण लिए गए है। किसी सिद्धात को रख कर उसे सिद्ध करने के लिए अपने से पहले रचे धर्म-ग्रथो से प्रमाण-वाक्य देना बगाली वैष्णव समाज की प्रथा सी जान पड़ती है। "चैतन्यभागवत", "चैतन्यचरितामृत" और रूप गोस्वामी की रचनाओ मे इस प्रकार के उल्लेख और ग्रथो के नाम भी पाए जाते है।

१. केशव-चरित—रूप गोस्वामी कृत 'नाटक चन्द्रिका' में पृष्ठ १२ पर उसका उद्धरण नाम देकर दिया है।

२ हरि-विलास—रूप गोस्वामी कृत "नाटक चन्द्रिका' में पृष्ठ ११ पर नाम देकर उद्धरण दिया है।

३ गोविन्द विलास—रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वल-नीलमणि' में स्थायिभाव प्रकरण में नाम देकर उद्धरण दिया है।

४ पद्मपुराण—वृदावन दास कृत "चैतन्य-भागवत" में आदिखड, अ० २, पृष्ठ १८ पर उद्धृत।

५ वाराह पुराण—वृदावन दास कृत "चैतन्य-भावगत" मे आदिखड, अ० १४, पृष्ठ ९४ पर उद्धरण है।

६ गीता—वृदावनदास कृत "चैतन्य-भागवत" मे आदिखड, अ० १५, पृष्ठ ९५ पर नाम और उद्धरण।

७ जैमिनी भारत—वृदावन कृत "चैतन्य-भागवत" मे मध्यखड, अ० १, पृष्ठ १०५ पर नाम और उद्धरण।

८ अनत-सहिता—वृदावनदास कृत "चैतन्य-भागवत" में आदिखड, अ० १, पृष्ठ ९ पर नाम और उद्धरण।

९ श्रीधर स्वामी कृत भागवत-व्याख्या—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० २, पृष्ठ १३ पर नाम और उद्धरण।

१० भावार्थ-दीपिका—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ३, पृष्ठ १६ पर नाम और उद्धरण।

११ हरिभक्ति-विलास—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ४, पृष्ठ २० पर नाम और उद्धरण।

१२ गोविंद लीलामृत—कृष्णदास कृत "चैतन्य-चरितामृत" में आदिलीला, परि० ४, पृष्ठ २६ पर नाम और उद्धरण।

इन अत्यन्त प्राचीन प्रख्यात रचनाओ के अतिरिक्त कुछ ऐसी रचनाएं भी प्राप्त हैं जो पद्रहवी शती में रची गयी। श्री सुकुमार सेन ने इस रचनाओ की नामावली दी है,[1] जो नीचे दी जाती है।

१ श्रीधर स्वामी कृत व्रजविहारी

२ वेदात देशिक कृत यादवाभ्युदय, रचनाकाल १२६८–१३६६ ई

३ रामचन्द्र भट्ट कृत गोपाल लीला, पन्द्रहवी शती का उत्तरार्द्ध

1 Brajbuli, P 485

४ हरि-विलास
५. श्रीराम कृत कंस-निधन महाकाव्य
६ चतुर्भुज कृत "हरिचरित काव्य", १४९३ ई.
७ शकराचार्य कृत कृष्णविजय
८ व्रज-लोलिम्ब-राज्य कृत "हरि-विलास काव्य"
९ पद्मनाभ कृत "गोपाल-चरित"
१० कृष्ण भट्ट कृत "मुरारि-विजय" नाटक

गौडीय वैष्णव साहित्य की परपरा में सोलहवी शती से पहले का जो सस्कृत साहित्य प्राप्त है वह सब का सब बगालियो द्वारा ही रचा नही है। जयदेव को बगाली सिद्ध किया जाता है। दो सग्रह ग्रथ है जिनमे बगाली रचयिताओ के स्फुट काव्यो का सग्रह है।[1] इन सग्रह ग्रथो के नाम और उन कवियो के नाम जिन्हे वे बगाली बताते है दिए जा रहे हैं —

१ सदुक्ति कर्णामृत (१२०४ ई)—इसके सगहकार श्रीधर दास है। इसमें जिन सस्कृत के कवियो की रचनाएँ सगृहीत है उनमें से दिवाकर दत्त, उमापति धर, भट्टपालीय पीताम्बर, केशरकोलीय, नायोक और शरण बगाली बताए गए है।

२ पद्यावली—इसके सग्रहकार श्री रूप गोस्वामी है। इसमें जिन सस्कृत कवियो की रचनाएँ दी है उनमें से पुरुषोत्तम आचार्य, माधव, चक्रवर्त्तिन्, जगन्नाथ सेन, गोवर्धनाचार्य, जगदानद राय, सजय कविशेखर, केशव भट्टाचार्य, षष्ठीवरदास, रामचन्द्रदास, मुकुद भट्टाचार्य, केशव छत्रिन्, और गोविन्द भट्ट बगाली है।

1. Brajbuli, P. 486.
2. Brajbcli, P. 486.

२. राजनीतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि

सोलहवी शती की एक रचना "चैतन्य-मगल" है। उसके लेखक जयानद है। इन्होने अपनी रचना में चैतन्य के जन्म के समय की नदिया की दुर्दशा का थोडा-सा परिचय दिया है। उस समय डाके और चोरी बढ गए थे। हिंदुओ पर यवनो के अत्याचार भी बहुत हो रहे थे। राजा हुसेन शाह ब्राह्मणो को पकड कर उनकी जाति और प्राण दोनो ले लेता था। जिसके घर से शख की ध्वनि आती सुनी जाती थी उसके धन और प्राण दोनो का अपहरण कर लिया जाता था और जाति ले ली जाती थी। जिसके माथे पर तिलक और कधे पर जनेऊ देखा जाता था उसका घर-द्वार लूटकर उसे लौह-पाश मे बाध दिया जाता था। मदिर तोडे जाते थे और तुलसी के वृक्ष उखाडे जाते थे। गगा स्नान का भी विरोध किया जाता था। अश्वत्थ और पनस के वृक्ष काट दिए जाते थे[1]। इस प्रकार की अराजकता और राजा की अनीतियो का कुछ दिग्दर्शन तुलसी ने भी कराया है। राज समाज में प्रतिदिन नई नई कुचालो और कलुष की कल्पनायें की जाती थी।[2]

तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में कलियुग का जो विवरण दिया है वह उनके समय की सामाजिक दशा ही है। उत्तरकाड में कागभुशुडि गरुड से कलियुग का विवरण देते हैं। वे कहते हैं कि कलियुग में वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जाता है। सब स्त्री पुरुष श्रुति-विरोधी हैं। ब्राह्मण श्रुति के बेचने वाले हो गए हैं, राजा प्रजा में भेद नही है। कोई भी शास्त्रो की व्यवस्था नही मानता। जिसको जो अच्छा लगता है वह उसे ही श्रेष्ठ मार्ग मानता है। केवल बकवाद करने वाला ज्ञानी माना जाता है। सत नही रह गए। मिथ्यावादी और दभी को सत माना जाता है। जो आकारहीन और श्रुति-पथ का त्याग करने वाला है वह कलियुग में ज्ञानी और वैरागी कहलाता है। ब्रह्म ज्ञान का दुरुपयोग किया जाता है। साधारण जनता ब्रह्म ज्ञान को छोड कर अन्य कोई बात ही नही करती। लोग थोडे से धन के लिए ब्राह्मण और गुरु को धोखा देते हैं। शूद्र ब्राह्मणो की बराबरी करते हैं। वास्तविक

---

१ निरवधि डाका चुरि अरिष्ट देखिआ। नाना देशे सर्व्वलोक गेल पलाइआ।
आचम्बिते नवदीपे हैल राज-भय। ब्राह्मण धरिआ राजा जाति प्राण लय ॥
नवद्वीपे शखध्वनि शुने जार घरे। धन प्राण लय तार जाति-नाश करे ॥
कपाले तिलक देखे यज्ञसूत्र काधे। घर-द्वार लोटे तार लौह-पाशे बाधे ॥
देउल देहरा भागे उपाडे तुलसी। प्राण-भये स्थिर नहे नवद्वीप वासी ॥
गगा स्नान निरोधिल हाट घाट जत। अश्वत्थ पनस वृक्ष काटे शत शत ॥
चै म (व सा प, पृ ११६४)

२ राज समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति पति हेतु बाद हठि हेरि हई है।
(तु ग्रथ, खड २, वि. प., पृ ५३३)

सन्यासी कोई नही है। नीच जाति के लोग, अथवा जिनकी पत्निया मर गई है अथवा धन नष्ट हो गया है, सिर मुडा कर सन्यासी हो जाते है और यह सन्यासी ब्राह्मणो से अपनी पूजा करवाते है। इस प्रकार के सन्यासी का वेश अमगलकारी और वीभत्स होता था[1]। वे भक्ष्य अभक्ष्य सब खाते थे और सब जगह खाते थे[2]।

समाज में भौतिकता और विलासिता बढ गई थी। व्यक्तिगत आचरण दूषित हो गए थे।[3] लोग अपना समय केवल ऊपरी व्यवहारो और देवताओ की पूजा में लगाते थे[4]।

---

१. बरन धर्म नहिं आस्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
मारग सोइ जा कहुं जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारभ दभ रत जोई। ता कहुं संत कहइ सब कोई॥
सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड आचारी॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलियुग सोइ ज्ञानी सो विरागी॥
ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, कर्हहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि मोह बस, करहिं विप्र गुर घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि दिखावहिं डाटि॥
जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूड मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥
ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
असुभ भेस भूषन धरे, भक्ष्याभक्ष्य जे खाहिं।
तेइ योगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं। (रा. च. मा., उ. ४३-४४, पृ. ५४२)

२. माधो या घर बहुत धरी।
बारह बरस कै भयो दिगम्बर ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सब ही के, भसम लगाय उदासी॥ (परमानंद दास का एक पद)

३ (क) कलि काल बिहाल किये मनुजा। नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा।
नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मगता॥
इरिषा परुषोच्छर लोलुपता। भरिपूरि रही समता विगता॥
(रा. च. मा, उ. १०२, पृ. ५४४)

(ख) गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी विभूषन हीना। विधवन्ह के सिंगार नवीना॥
(रा. च. मा., उ. ९९, पृ. ५४३)

४. (क) रमादृष्टि पाते सर्व्वलोक सुखे वसे। व्यर्थ काल जाय मात्र व्यवहार रसे॥
(ख) वाशुली पूजये केह नाना उपहारे। मद्य मांस दिया केह यज्ञ पूजा करे॥
(चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

उनकी प्रतिमा बनाने और पुत्र कन्या के विवाह में धन को व्यर्थ खर्च करते थे।[१] ब्राह्मणों और अध्यापकों में ज्ञान और अध्ययन की नितान्त कमी थी।[२] लोग ऊँचे नीचे सब प्रकार के कर्म केवल पेट भरने के लिए करते थे।[३] देश में डाके-चोरी बहुत हो रहे थे।[४] कुछ उद्धरण यहा दिए जा रहे हैं।

---

१ दंभ करि विषहरी पूजे कोन जन। पुत्तलि करये केह दिया बहुधन।
घन नष्ट करे पुत्र कन्यार विभाय। एइ मत जगतेर व्यर्थ काल जाय।
(चै भा, आदिखंड, अ २, पृ १५)

२ (क) जेवा भट्टाचार्य चक्रवर्ती मिश्र सब। ताहारह ना जानये ग्रंथ अनुभव।
शास्त्र पडाइया सबे एइ कर्म्म करे। (चै भा, आदिखंड, अ २, पृ १५)

(ख) विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी॥
(रा च मा, उ १००, पृ. ५४४)

(ग) माधो या घर बहुत धरी।
पाखंड दंभ बढ्यो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप॥
परमानंद वेद पढ़ि बिगरचो, का पर कीजे क्रोध॥
(परमानन्द दास का एक पद) (अष्ट व. स., पृ. ३६)

३ ऊंचे नीचे करम धरम अधरम करि
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी॥ (तु ग्रंथ, खंड २, क व, उ. ९६, पृ २२५.)

४ निरवधि डाका चुरि अरिष्ट देखिञा।
नाना देशे सर्व्व लोक गेल पराइयञा। (व सा. प, चै म, पृ ११६५)

३. धार्मिक पृष्ठभूमि

सोलहवी शती के पूर्वार्द्ध की रचनाओ जैसे "चैतन्य-मगल" और "चैतन्य-भागवत" में तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण है। वह वास्तव में समस्त वगाल और उत्तर प्रदेश अर्थात् वगाली और हिन्दी वैष्णव समाज के धर्म और उस समय प्रचलित अन्य धर्मों का, जिन्हे वास्तव मे 'मत' कहना चाहिए, चित्रण है। हिन्दीभाषा-भाषी वैष्णव समाज में जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें उतना अधिक विवरण तो नहीं मिलता परतु कुछ झलक मिल जाती है।

सोलहवी शता से पहले उत्तर प्रदेश में भक्ति धर्म का स्वरूप कदाचित् अवैष्णवीय अधिक मात्रा में था। धर्म ने लोक-धर्म का रूप छोड कर व्यक्तिगत साधना का रूप ले लिया था। कदाचित् इसीलिए उसमें दिखावा वहुत आ गया था। जो पथ चल रहा था, उसमें अनेक वाद मिले थे। वल्लभाचार्य ने अपने ग्रथ कृष्णाश्रय में कहा है :—

नानावादविनष्टेषु सर्वकर्मव्रतादिषु।
पाषंडैक-प्रयत्नेषु कृष्ण एव गतिर्मम ॥

अर्थात् नाना प्रकार के वादो के कारण सपूर्ण कर्म और व्रत इत्यादि विनष्ट हो गए हैं। केवल पाखड के लिए तमाम धर्म-कर्म किए जाते हैं। ऐसे समय में कृष्ण ही मेरी गति हैं।

इस श्लोक से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य के समय तक जो धार्मिकता चली आ रही थी वह अधिकाशत वैष्णवो की धार्मिक भावना से भिन्न थी। जभी वे लोग उन मतावलवियो के व्रत-कर्म इत्यादि को पाखड वताते है , इसमें प्रच्छन्न रूप से इस वात का भी उल्लेख मिलता है कि कृष्ण इष्टदेव के रूप में कम लोगों को ही मान्य थे। वैसे यह 'पाखड'-सयुक्त धर्म क्या था इसका विस्तृत विवरण उन्होने नही दिया है।

परमानददास ने अपने एकपद में कुछ अधिक स्पष्ट करके इस 'पाखंड' की रूप-रेखा वताई है। वह पद निम्न है —

माधो या घर वहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन को प्रेम न हो तो, अरु भागवत पुरान।
तो सब औघड़पंयहि हो तो, कथत गमैया ज्ञान ॥
वारह वरस को भयो दिगम्वर, ज्ञानहीन संन्यासी।
खान पान घर घर सव हिन के, भसम लगाय उदासी ॥
पाखंड दम्भ वढयो कलियुग में, श्रद्धा धर्म भयो लोप।
परमानंद वेद पढ़ि विगरचो, का पर कीजै कोप ॥

इस पद में परमानददास स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कलियुग में पाखड दम्भ वढा है और 'श्रद्धा धर्म' लोप हो गया है। श्रद्धा धर्म से उनका तात्पर्य भक्ति-प्रधान धर्म से है। ज्ञान-और कर्म-प्रधान धर्म के फलस्वरूप लोगो में सन्यास लेने की प्रवृत्ति खूव थी, इसका भी

निर्देश मिल जाता है। बारह बरस के बालक भसम लगाकर उदासी और ज्ञानहीन सन्यासी बन जाते थे। परमानद यह कहकर चुप हो जाते है कि सब लोग वेद पढकर बिगडे है, क्रोध किस पर किया जाय —

तुलसीदास की रचनाओ में तत्कालीन अवैष्णवीय मतो का अधिक स्पष्ट रूप में उल्लेख है। विनय पत्रिका मे वे कहते है —

राज-समाज कुसाज कोटि कटु कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-बाद हठि हेरि हई है ॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद-मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखड पाप रत अपने अपने रग रई है ॥
साति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढी कुरीति कपट-कलई है।
सीदत साधु, साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥ इत्यादि ॥

(तु ग्र, खड २, वि प, पद १३९, पृ ५३३)

इसमें तुलसीदास भी यही कहते है कि देश आश्रम-धर्म-विहीन हो गया है और वेद की मर्यादा चली गई है। बारह बरस के बालक का सन्यास लेना आश्रम धर्म की व्यवस्था के प्रतिकूल ही चलना है।

दूसरी बात जो इन दोनो कवियो की ऊपर दी पक्तियो से ज्ञात होती है वह यह है कि उस समय जो वाद या मत चल रहे थे वे इन दोनो की दृष्टि में अवैदिक थे। अवैदिक होने से इनका क्या तात्पर्य था, यह कहना कठिन है।

तुलसीदास ने रामचरितमानस के उत्तर काड में जहा कागभुशुडि से कलि-धर्म कहलाया है उसमें तात्कालीन धार्मिक दशा का चित्रण है। उस समस्त विवरण में दी कलियुग में प्रचलित धर्म की रूप-रेखा कुछ इस प्रकार है—

१ कलियुग में चारो आश्रमो की व्यवस्था नष्ट हो गई है। सब स्त्री-पुरुष श्रुति-विरोधी कार्य करते हैं। वर्णाश्रम धर्म की हानि यहा तक हुई है कि शूद्र जनेऊ पहन कर दान लेते हैं। केवल इतने से ही सतुष्ट न होकर ब्राह्मणो को यह कह कर आख दिखाते हैं कि हम तुमसे कुछ घट कर नही है।[1]

२ जैसा आभास वल्लभाचार्य के श्लोक में था कि धर्म व्यक्तिगत धर्म के रूप में चल पडा था, वैसा ही आभास तुलसीदास की निम्न पक्तियो में मिलता है —

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रथ।
दभिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किये बहुत पथ ॥

(रा च मा, उ ९७, पृ ५४२)

अथवा

---

१. बरन धर्म नहि आस्रम चारी। स्रुति बिरोध रत सब नर नारी ॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ग्याना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना ॥
बादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम से कछु घाटि।
जानहि ब्रह्म सो बिप्रवर, आंखि देखावहि डाटि ॥

(रा च मा, उ ९८, ९९, पृ ५४२-५४३)

मारग सोई जाकहु जेहि भावा। पंडित सोई जो गाल बजावा।

(रा. च. मा., उ. ९७, पृ. ५४२)

इसमे दो वातें स्पष्ट है। एक तो यह कि लोगो ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार "कल्प" करके वहुत से "पथ" प्रगट कर लिए थे। दूसरी यह कि धर्म का कोई ऐ ा एक निश्चित मार्ग नही था जो सर्वमान्य हो, वल्कि 'मारग' वही था जो जिसको अच्छा लगे। अर्थात् उस काल के पथ और मत सार्वजनीन तो कम मात्रा मे थे, व्यक्तिगत अधिकाश रूप में थे।

गौडीय वैष्णव साहित्य में भी तत्कालीन धर्मों की कुछ रूप-रेखा पाई जाती है। परन्तु उससे जो आभास मिलते है वे ऊपर दी गई दोनो वातो को छोड कर अन्य कुछ वातो में हिन्दी-वैष्णव-साहित्य से प्राप्त रूप-रेखा के समान हैं। वृन्दावनदास अथवा जयानद, अथवा कृष्णदास कोई भी यह कहकर दु ख नही प्रगट करते कि कलियुग मे वर्णाश्रम नष्ट हो गया है। शूद्र ब्राह्मणो से ऊंचे वनते हैं, कह कर शूद्रो का ऐसा उल्लेख जो सुरुचि-सम्पन्न न हो उन्होने नही किया है। कारण कदाचित् भावनाओ के अन्तर का है। मर्यादा की ओर तुलसीदास का अधिक ध्यान था। उनके इष्टदेव राम ही मर्यादापुरुषोत्तम थे जो ब्राह्मण का आदर करते थे और शूद्र-तपस्वी के हता थे। परन्तु चैतन्यदेव के जीवनी-कार व्यवस्था इत्यादि की ओर अधिक उन्मुख नही थे, अत उन्होने वर्णाश्रम धर्म की हानि पर कुछ अधिक नही लिखा। उन्हें इस वात का अधिक दु ख था कि ससार भक्ति-शून्य है।

संत मत—तुलसीदास ने प्रच्छन्न रूप से तात्कालीन सन्त मत का उल्लेख किया है, ऐसा रामचरितमानस की कुछ पक्तियो से ज्ञात होता है। वे पक्तिया निम्न है —

१. सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना। बैठि वरासन कहहिं पुराना।

२. जे वरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
   नारि मुई गृह सम्पति नासी। मूंड मुड़ाइ होहिं सन्यासी।

३. नहि मान पुरान न वेदहि जो, हरि सेवक सन्त सही कलि सो।

(रा. च. मा, उ. १००-१०१, पृ. ५४४)

तुलसीदास ने अपने समय के उन शूद्रो का उल्लेख किया है जो श्वपच, तेली, कुम्हार इत्यादि जाति के थे और जप, तप, व्रत इत्यादि करते थे। सतो की परपरा में ही ऐसी वात सम्भव थी। सत प्राय नीची जाति के ही थे और उपदेश किया करते थे तथा वैरागी भी हुआ करते थे। आगे चल कर नीची जाति के कुछ व्यक्ति भी वैष्णवो में गिने गए थे, इसमे सन्देह नही, परन्तु तुलसीदास जिस निरादार और उदासीनता से इन व्रत, जप-तप करने वालो का नाम लेते हैं उससे यह वैष्णव सत महात्मा नही ज्ञात होते। तीसरी पक्ति में तुलसीदास स्पष्ट रूप से कहते है कि जो वेद-पुराण को नही मानता वह कलियुग में हरि-सेवक सत है। वेद-पुराण के विरोध में सतो ही ने वहुत कुछ कहा है। अत तुलसी के काल तक सत मत चला आ रहा था इसमें सदेह नही। इस सत मत की रूप-रेखा क्या थी यह तुलसीदास विस्तार से तो नही वताते। सकेत रूप से जो कुछ ज्ञात होता है वह यही है कि नीची जाति के व्यक्ति जप-तप करते थे और उपदेश देते थे, वेद-पुराण की निन्दा करते थे और अपने को सत कहते थे।

तामस धर्म—तुलसी इसी प्रसग में कहते है —

तामस धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान।[1]

यह तामस धर्म क्या था और इसकी रूप-रेखा क्या थी, इसके विषय में और कुछ वे नही कहते। मनुष्य तामस धर्म करते थे जिसमें जप, तप, यज्ञ, व्रत, दान इत्यादि थे। यह तामस धर्म शक्तिपूजा के समान ही कोई मत ज्ञात होता है, जैसा कि "तामस" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है।

इस धर्म में हिंसा का स्थान रहा होगा। बलिदान और अन्य तामसी वस्तुओं जैसे मदिरा इत्यादि का प्रयोग पूजा मे होता रहा होगा। आज भी जनता में एक प्रकार का तामस धर्म चल रहा है जिसमें अनेक ऐसे देवी-देवता है जो पशु-बलि से और मदिरा से सतुष्ट हुए बताए जाते हैं। बगाल की शक्ति-पूजा जिसकी देवी दुर्गा हैं जितने व्यापक रूप में प्रचलित थी, उतने व्यापक रूप में कदाचित् वह तामस धर्म उत्तर प्रदेश में प्रचलित नही था—तभी तुलसीदास एक बार ही कह कर रह गए जब कि शूद्रो के सत धर्म का उल्लेख उन्होने बार-बार किया है।

वृन्दावनदास ने चैतन्य-भागवत में चैतन्य देव के समय में प्रचलित देवी पूजा का उल्लेख किया है।

धर्म कर्म लोक सबे एइ मात्र जाने।
मगल चडीर गीत करे जागरणे॥
दभ करि विषहरी पूजे कोन जन।
पुत्तलि करये केह दिया बहु धन॥

•

वाशुली पूजये केह नाना उपहारे।
मद्य मास दिया केह यज्ञ पूजा करे॥

(चै भा, आदिखड, अ० २, पृ १५)

अर्थात् सब लोग इतना ही धर्म कर्म जानते थे। मगल चडी के गीतो को गाकर देवी को जगाते थे। कोई-कोई अत्यन्त दभपूर्वक विषहरी का पूजन करते थे। बहुत धन लगाकर प्रतिमा बनाते थे। कोई-कोई अनेक पूजोपहार देकर वाशुली की पूजा करते थे। कोई मद्य-मास देकर यज्ञ करते थे।

इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि चडी, विषहरी और वाशुली नाम की देवियो की पूजा उस समय प्रचलित थी। इन देवियो की प्रतिमाए भी बनती थीं और गीत गाए जाते थे। वाशुली और विषहरी एक ही देवी के दो नाम है। इनके मनसा और बेहुला ये दो नाम भी पाए जाते हैं। ये देवी कौन थी इसका कुछ सक्षिप्त विवरण बगाल के "मनसा मगल" साहित्य के परिचय के साथ पीछे दिया जा चुका है।

इन देवियो की पूजा उपासना की क्या सामग्री थी इसका थोडा-सा उल्लेख कृष्णदास कविराज ने चैतन्य चरितामृत में दिया है। चापाल गोपाल नाम का एक व्यक्ति था, वह वैष्णवो का विरोधी था। चैतन्य देव के अनन्य भक्त श्रीवास पडित अपने घर में नित्य-

---

१ रा च.मा, उ. १०१, पृ ५४५

प्रति सकीर्त्तन करते थे। उन्हें वैष्णवो की दृष्टि में गिराने के लिए चापाल गोपाल ने उनके द्वार पर रात्रि में भवानी पूजा की सामग्री रक्खी। इसी प्रसग मे कृष्णदास ने पूजा की वस्तुओ के नाम वताए है।

भवानी पूजार सव सामग्री लइया।
रात्रे श्रीवासेर द्वारे स्थान लेपिया ॥
कलार पातेर परे थोय उड़फूल।
हरिद्रा सिन्दूर रक्त चन्दन तंडुल ॥
मद्य भांड पाशे धरि निज घरे गेला। इत्यादि

(चै. च., आदिखंड, परि. १७, पृ. ८०, ८१)

अर्थात् भवानी पूजा की सव सामग्री लेकर और रात्रि में श्रीवास का द्वार लीप कर केले के पत्ते पर उड फूल अर्थात् गुडहल का फूल, हल्दी, सिन्दूर, रक्त, चन्दन और चावल रक्खे। पास ही मद्य का पात्र रख कर घर चला गया।

इससे ज्ञात होता है कि "भवानी पूजा" में मद्य-मास इत्यादि सामग्री पूजा की सामग्री थी। मद्य-मास देकर यज्ञ भी किए जाते थे। यह एक प्रकार का शाक्त तान्त्रिक मत था जिसे वाममार्गी साधना का नाम दिया जा सकता है। विपहरी की पूजा नाच-गा कर भी की जाती थी। इस प्रकार की उपासनाओ को दीन कृष्णदास ने तत्र धर्म कह कर सम्वोधित किया है।[1]

कर्मकाडी मायावादी धर्म

तुलसीदास ने तो कम, पर वृन्दावनदास और कृष्णदास ने स्थान-स्थान पर इस वात का उल्लेख किया है कि चैतन्य देव के भक्ति प्रचार में सवसे अधिक वाधा पहुचाने वाले थे वे ब्राह्मण जो कर्मकाण्डी थे और वे सन्यासी जो मायावादी अर्थात् अद्वैतवादी शाकरी सिद्धान्त को मानने वाले थे। शकर के ब्रह्मज्ञान का स्वरूप क्या था इसका स्पष्ट उल्लेख न कर के तुलसी कहते है —

ब्रह्मज्ञान विनु नारि नर कर्हाहि न दूसरि वात।
कौड़ी लागि मोह वस, कर्राह विप्र गुरु घात ॥

(रा. च. मा., उ. ९९, पृ. ५४३)

इससे ज्ञात होता है कि शकर के ब्रह्म-ज्ञान का प्रचार उस समय वहुत था, यद्यपि ज्ञात ऐसा होता है कि उसका अर्थ वहुत कम ही लोग समझते थे। मामूली से मामूली व्यक्ति भी ब्रह्मज्ञान के विना दूसरी वात नही कहते थे। परन्तु इन्ही ब्रह्मज्ञानियो को कौडी अर्थात् नाममात्र के धन के लिए भी ब्राह्मण या गुरु की हत्या करने में सकोच नही था। इन अद्वैतवादियो का चरित्र अच्छा नही था यह वे एक अन्य स्थान पर भी कहते है —

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।
तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा म चरित्र कलिजुग कर ॥

(रा. च. मा, उ १००, पृ. ५४३)

---

१. सुरापान, अत्याचार, भ्रूण हत्या, व्यभिचार, तन्त्र धर्म्म भारत व्यापिल यक्ष रक्ष विषहरि, नाना उपहार करि, वीच सवे पूजते लागिल।" (गौ प. त. १।१।३५, पृ. १४)

कहने का तात्पर्य यह कि तुलसीदास के समय से पहले से चला आया हुआ अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञान उनके समय तक आते आते अत्यन्त विकृत हो गया था। जनता उसकी आड में अनुचित कर्म करती थी। "ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर कहहि न दूसरि बात" से यह अनुमान लगाना सर्वथा अनुचित न होगा कि चाहे इसकी आड में कुछ करें जनता में यह ब्रह्मज्ञान ऊची दृष्टि से देखा अवश्य जाता था। कदाचित् विद्वत्ता का भी चिह्न समझा जाता था। तभी सब के सब ब्रह्मज्ञान पर बात करने की चेष्टा किया करते थे।

हरिदास के आख्यान में चैतन्य-भागवतकार वृन्दावनदास ने बताया है कि यवन हरिदास का वैष्णव होने पर ब्राह्मणो ने अत्यन्त विरोध किया था। उनकी और वैष्णवो की कीर्त्तन पद्धति का वे मजाक उडाते थे। ये ब्राह्मण गीता-भागवत भी पढते थे परन्तु कृष्ण-सकीर्त्तन नही करते थे। नीचे एक उद्धरण दिया जा रहा है —

> गीता भागवत का पडाय जे-जे जन।
> ताहाराओ ना बलये कृष्ण सकीर्त्तन॥
> ताहाते ओ उपहास करये सबारे।
> इहारा कि कार्य डाक छाडे उच्च स्वरे॥
> आमि ब्रह्म, आमातेइ, बसे निरजन।
> दास प्रभु भेद वा करये कि कारण॥ (चै भा, आदिखड, अ १४, पृ ८६)

अर्थात् जो व्यक्ति गीता भागवत पढते थे वे भी कृष्ण सकीर्त्तन नही करते थे। वे भी सब का यह कह कर उपहास करते थे कि यह कौन-सी पूजा है कि ऊचे स्वर से चिल्लाते हैं। हम ब्रह्म है और हममें भी निरजन (आत्मा) है तब दास प्रभु का भेद किस लिए करते हैं?

यह उसी अद्वैतवाद की रूप-रेखा है जिसका उल्लेख "ब्रह्मज्ञान" कह के तुलसी ने किया है। वैष्णव धर्म में तो भक्त और भगवान दोनो ही अलग-अलग सत्ता है। द्वैत की भावना भक्ति धर्म के लिए वे लोग आवश्यक मानते हैं। उपास्य है तो उपासक होना ही चाहिए। परन्तु ब्राह्मण कहते है कि हम ही ब्रह्म है, हम ही आत्मा है, तब दास कौन हुआ और प्रभु कौन हुआ (वैष्णव जीव को दास और ईश्वर को प्रभु मानते है)। इस प्रकार के ब्राह्मणो को जो चैतन्य के विरोधी थे वृन्दावनदास ने राक्षस तक कह डाला है।

ये कर्मकाण्डी ब्राह्मण चैतन्य के धर्म के विरोधी थे। नदिया के काजी ने जो यवन था कीर्त्तन को बन्द करने की आज्ञा दी। परन्तु गौराग देव ने कीर्त्तन बन्द नही किया। कुछ विद्वान् ब्राह्मण जिन्हें वृन्दावनदास "पाखडी हिन्दू" कहते हैं काजी के पास गए और उन्होने चैतन्य के कीर्त्तन को अहिन्दू पद्धति बताई। इसी प्रसग में वे ईश्वर को हिन्दू धर्म का महामन्त्र बताकर कृष्ण को छोटा बताते हैं। वे पक्तिया निम्न हैं —

> आसि कहे हिन्दु धर्म भागिल निमाइ।
> जे कीर्त्तन प्रवर्तील कभु शुनि नाइ॥
> मगल चडी विषहरी करि जागरण।
> ताते नृत्य गीत वाद्य योग्य आचरण॥
> हिन्दुर धर्म नष्ट हैल पाखड सचारि॥
> कृष्णेर कीर्त्तन करे नीच बार बार।

एइ पापे नवद्वीप हइवे उजाड़ ॥
हिन्दु शास्त्रे ईश्वर नाम महामंत्र जानि । इत्यादि
(चैं. च., आदिलीला, परि० १७, पृ. ८६)

अर्थात् वे लोग काज़ी के पास जाकर कहते है कि निमाई ने हिन्दू धर्म नष्ट कर दिया है। जो सकीर्त्तन उन्होने प्रचारित किया है वह कभी सुना नही। मगल चडी और विषहरी का जागरण करते है तव नृत्य, गीत और वाद्य उसके उपयुक्त होते है . . . . हिन्दू धर्म पाखड वढा कर नष्ट कर रहे है। नीच वार-वार कृष्ण का कीर्तन करते है। इस पाप से नवद्वीप उजाड हो जायगा। हिन्दू शास्त्र मे "ईश्वर" का नाम ही महामत्र है।

यद्यपि वृदावनदास इस प्रकार की शिकायत करने वाले व्यक्तियो को अच्छा नहीं मानते है परन्तु उनके लिखने से ज्ञात होता है कि चैतन्य देव के समय तक भी कृष्ण नीचे देवता माने जाते थे, उन्हे "स्वयम् भगवान' का स्थान नही प्राप्त हुआ था। निर्गुण ईश्वर को माननें वाले अपने को अधिक ऊचा मानते थे। कुछ स्थानो पर उन्होने यह और भी कहा है कि लोग कृष्ण का नाम नही लेते थे। जनता में भी कृष्ण भक्ति का अधिक प्रचार नही था। जो लोग गीता-भागवत पढ़ते थे वे भी कृष्ण नाम नही लेते थे। वे पक्तियाँ नीचे दी जा रही है

(१) कृष्ण राम भक्ति शून्य सकल संसार ।
प्रथम कलिते हैल भविष्य आचार ॥
(चैं. भा., आदिखड, अ. २, पृ. १५)

(२) कोथाओ न शुने केह कृष्णेर कीर्त्तन ।
(चैं. भा, आदिखंड, अ ६, पृ. ३५)

(३) गीता भागवत जे-जे जने वा पड़ाय ।
कृष्ण भक्ति व्याख्या कार ना आइसे जिह्वाय ॥
(चैं. भा, आदिखंड, अ. ६, पृ. ३५)

अर्थात् (१) कृष्ण-राम की भक्ति से ससार शून्य था।(२)कही भी कोई कृष्ण का कीर्त्तन नही सुनता था। (३) गीता भागवत जो लोग पढते थे वे भी कृष्ण-भक्ति की व्याख्या नही करते थे।

तीसरे उद्धरण में इस वात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उस भागवती धर्म की रूप-रेखा जिस में कृष्ण स्वय भगवान वताए गए है, उस समय तक नही वनी थी। लोग भागवत पढते थे पर उसमें से कृष्ण-भक्ति की व्याख्या नही करते थे। वास्तव में भागवत में सोलहवी शती में अत्यधिक प्रचलित कृष्ण-भक्ति का यह स्वरूप उतना स्पष्ट और प्रमुख नही है जो वल्लभ और चैतन्य मानते थे। इसकी पुष्टि एक अन्य स्थल पर दी हुई पक्तियो से भी होती है। चैतन्य के पार्षदो द्वारा किया सकीर्त्तन सुन कर जनता मे नाना प्रकार की वार्तें होती थी। एक जन कहता है —

केह वले कतरूप पडिल भागवत ।
नाचिव कांदिव हेन ना देखिल पथ ॥
(चैं भा., आदिखंड, अ. ९, पृ. ५८)

अर्थात् कोई कहता है कि कितनी ही भागवत पढी पर नाचना-रोना (भक्ति) पथ है यह तो नही देखा ।

इस प्रकार के दार्शनिकता प्रधान विचारो को मानने वाले सन्यासी भी थे। कृष्णदास और वृंदावनदास उन्हें 'मायावादी' कह कर उनका उल्लेख करते हैं। इन सन्यासियों का प्रमुख गढ काशी था। इनके मुखिया "प्रकाशानद" थे। अपनी प्रथम काशी यात्रा में चैतन्य देव को इन मायावादियो से विरोध मिला था। दूसरी यात्रा में प्रकाशानन्द से तर्क करके चैतन्य ने उन्हें अपने धर्म से प्रभावित अवश्य कर लिया था। सन्यासियो का प्रभाव जनता पर काफी था। चैतन्य के सन्यास लेने का एक कारण वृन्दावनदास ने यह भी बताया है। चैतन्य ने सन्यास इसलिए लिया था कि लोग सन्यासी होने के कारण मेरी बात सुनेंगे।

इन मायावादी सन्यासियो के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के सन्यासी भी थे। तुलसीदास ने इनका उल्लेख किया है। परन्तु वे उन सन्यासियों के भक्त नहीं थे वरन् उनका उल्लेख कुछ निरादर की भावना से ही करते हैं। ये कहते हैं —

> निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी ॥
> जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
> असुभ वेश भूषन धरे, भक्षाभक्ष जो खाहिं।
> तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलियुग माहिं। (रा च मा, उ ९८, पृ ५४३)

कदाचित् ये नाथपथी सिद्ध या योगी हैं। ये लम्बे नख और जटा धारण करते थे। अशुभ वेश बनाए फिरते थे और भक्ष्याभक्ष्य 'मास' इत्यादि खाते थे। जनता में इनका आतक था।

भक्ति धर्म—चैतन्य देव के आविर्भाव से पहले बगाल में एक प्रकार का भक्ति-धर्म प्रचलित था इसका उल्लेख कृष्णदास कविराज के चैतन्यचरितामृत में मिलता है। वृदावनदास ने भी कई बार इसका उल्लेख किया है। परन्तु हिन्दी की वैष्णव रचनाओ में ऐसा स्पष्ट उल्लेख नही है। कृष्णदास और वृदावनदास की रचनाओ के अनुसार एक भक्ति-प्रधान धर्म की विद्यमानता ज्ञात होती है, यद्यपि इसका प्रचार बहुत कम था। जो लोग इसे मानते भी थे वे बहुत डरते-डरते इसका पालन करते थे। ऐसा ज्ञात होता है कि इस धर्म के इष्टदेव कृष्ण न होकर 'विष्णु' थे। अधिकाशतया उल्लेखो से कृष्ण और विष्णु एक ही ज्ञात होते हैं। वृन्दावनदास कहते हैं —

> अधम कुलेते जदि विष्णु भक्त हय।
> तथापि सेह पूज्य हय सर्वशास्त्रे कय ॥
> उत्तम कुलेते जन्म श्रीकृष्ण ना भजे। इत्यादि (चै भा, मध्य खड)

अर्थात् अधम कुल में भी विष्णु भक्त उत्पन्न हो तो वह पूज्य है ऐसा सब शास्त्र कहते हैं। यदि उत्तम कुल में जन्म है और कृष्ण को नही भजते इत्यादि।

धर्म विरोधी यवनो को वे 'विष्णुद्रोही' यवन कहते हैं। चैतन्य देव का 'विष्णु जैन अवतारि' कह कर महत्व बताते हैं।[1] ससार को 'विष्णु भक्ति शून्य' बताते हैं।[2]

---

१ चै भा, आदिखड, अ० ३
२ चै भा, आदिखड, अ० २

कृष्णदास ने भी चैतन्यचरितामृत में विष्णु का उल्लेख कई वार किया है। चैतन्य के पिता पुरन्दर मिश्र इनके भक्त ही थे। उन्होने पुत्र के लिए "आराधिता विष्णु चरण" अर्थात् विष्णु चरण की आराधना की। 'विष्णु प्रीते" द्विजो को दान दिया।[१]

चैतन्य के जन्म से पहले कुछ लोग थे जिन्हें वृदावनदास भागवत और कृष्णदास वैष्णव कहते हैं और जो विष्णु पूजा या कृष्ण पूजा किया करते थे। स्पष्ट कथन से तो नही परन्तु कहने की भावना से प्रतीत होता है कि वैष्णवगण कृष्ण और विष्णु को अभिन्न ही मानते थे। 'कृष्ण पूजा', 'विष्णु पूजा', 'कृष्ण भक्ति', 'विष्णु भक्ति' सव का अर्थ एक ही सा है।[२]

ये भागवत-गण छिपा कर अपनी पूजा-उपासना किया करते थे। पूजा की पद्धति विशेष क्या थी इसका विस्तृत विवरण तो नही है पर वृदावनदास और कृष्णदास दोनो ने जहा अद्वैत आचार्य और पुरन्दर मिश्र की कृष्ण पूजाओ का उल्लेख किया है वहा तुलसी-मजरी सहित गगाजल देना ही लिखा है।[३] गगा स्नान करना भी वैष्णवो का आचार था।[४] यह भागवत गगा स्नान करके "गोविन्द पुडरीक" का नाम लेते थे। एकादशी का व्रत ये लोग भी रखते थे और अन्य लोग भी। पुरन्दर मिश्र कृष्ण भक्त या विष्णु भक्त थे और "शालग्राम" की पूजा करते थे।

चैतन्य के जन्म के दिन चद्रग्रहण लगा था। इस वात का उल्लेख कृष्णदास ने किया है। उस समय लोग "हरि-हरि' कह रहे थे। वालक चैतन्य को रोते से चुप करने के लिए स्त्रिया ताली वजा कर स्वर से हरि-हरि कहती थी। चैतन्य देव के सगठित कीर्त्तन का आदि स्वरूप इस प्रकार के उच्च स्वर से हरि-हरि उच्चारण में निहित है। भागवत-गण उच्च स्वर से कृष्ण नाम लेते थे।

आस्तिकता, हरि-कृष्ण नाम उच्चारण, और श्रद्धा से युक्त एक भक्ति-प्रधान धर्म चैतन्य देव के जन्म के पहले से चला आ रहा था। चैतन्य देव ने उसी धर्म का पुनरुत्थान किया। उन्होने विष्णु को स्वय भगवान वताया, यद्यपि उससे पहले केवल भागवत-गण कृष्ण के उपासक थे। उनके अतिरिक्त और सव लोग कृष्ण-विमुख थे। इस वात का उल्लेख कृष्णदास और वृदावनदास दोनो ने ही वडे परिताप से किया है कि चैतन्य के जन्म से पहले ससार कृष्ण या विष्णु-भक्ति शून्य था।

---

१. चै. च., आदिलीला, परि० १३

२. "कृष्णपूजा विष्णुभक्ति कारो नाहि वासे।" (चै. भा., आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

३ क. तुलसीर मजरी सहित गंगाजले।
निरवधि सेवे कृष्ण महा कुतूहले॥ (चै भा, आदिखंड, अ २, पृ. १५)

ख. कृष्ण पूजा करे तुलसी गंगाजल दिया। (चै. च, आदिलीला, परि. १३, पृ. ८६)

४ स्वकार्य करेन सब भागवतगण। कृष्णपूजा गंगास्नान कृष्णेर कथन॥
(चै. भा, आदिखंड, अ. २, पृ. १५)

द्वितीय अध्याय

कवि और पदकर्त्ता

सोलहवी शती का वगाली और हिन्दी साहित्य प्रधानतया वैष्णव भक्त कवियो की देन है। इन कवियो का जो परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है उसका आधार सोलहवी शती में रचित चरित साहित्य की दी हुई नामावलियो, अल्प अथवा विशद परिचय और इस पर खोज करने वाले आधुनिक विद्वानो द्वारा प्रस्तुत किया गया परिचय है। इन लेखको अथवा कवियो के उल्लेख सत्रहवी और अठारहवी शती की कुछ रचनाओ[1] में भी मिलते है। इसका निर्देश यथास्थान दिया गया है। वगाली कवियो और पद-कर्ताओ के नाम, परिचय इत्यादि सोलहवी शती में रचित चैतन्यचरितामृत, चैतन्य-भागवत और वैष्णव-वंदना में प्राप्त है। हिन्दी कवियो और लेखको के नाम भक्तमाल और वार्त्ताओ में मिलते हैं।

चैतन्य-चरितामृत की नामावली

वगाल में जो जीवनी साहित्य सोलहवी शती मे रचा गया, वह मुख्यतया चैतन्य-देव सवधी है। लम्वे आख्यानक काव्य भी है और छोटे काव्य भी। लम्वे काव्यो में जयानद का "चैतन्य-मगल", वृदावनदास का "चैतन्य-भागवत" और कृष्णदास कविराज का "चैतन्य-चरितामृत" प्रमुख है। इन तीनो में भी "चैतन्य-चरितामृत" का सर्वोच्च स्थान है। इस विशाल ग्रंथ में वहुत अधिक नाम है। इनमें से कुछ का उल्लेख चैतन्य देव के पार्षदो में, और कुछ का भक्तो में है। नित्यानद, अद्वैताचार्य, और गदाधर पडित के शिष्यो का भी नामोल्लेख है। प्रत्येक के विस्तृत परिचय का न तो स्थान है और न लेखक की इच्छा ही ऐसा करने की है। वे तो चैतन्य देव का मानव चरित्र लिखने वैठे थे। उसी में प्रसगा-नुसार उनके सहचरो, शिष्यो, प्रशिष्यो आदि का नाम आया है। उनमें से जो कवि थे उनके नाम नीचे दिए जा रहे है —

अनत आचार्य	कामदेव
अनतदास	कालाकृष्णदास
ईशान	कुमुद
उद्धारणदत्त	कृष्णदास १
उद्धारणदास	कृष्णदास २
कर्णपूर	गदाधर
कविचन्द्र	गदाधरदास २
कानु ठाकुर	गोकुलदास
कानु पडित	गोपाल

१. भक्तिरत्नाकर, प्रेमविलास, नरोत्तमविलास, भक्तमाल (वंगाली), भक्त नामावली, कर्णानन्द, रसिक मंगल, वैष्णवाभिधान, वशी विलास, वंशी शिक्षा, इत्यादि।

गोपालदास
गोपीकांत
गोपीनाथ
गोविन्द घोष
गौरीदास
चन्द्रशेखर आचार्य
चन्द्रशेखर वैद्य
चैतन्यदास १
चैतन्यदास २
चैतन्यदास ३
चैतन्यदास ४
जगदानद
जगन्नाथ
जगन्नाथदास
जानकीनाथ
ज्ञानदास
नरहरि
नृसिंह
परमानद
परमानद गुप्त
परमानद पुरी
परमेश्वरदास
पीताम्बर
पुरुषोत्तम
पुरुषोत्तम पडित
पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी
बलराम दास
भागवताचार्य
मनोहर
माधव आचार्य
माधव घोष
मुकुंददत्त
मुरारि
मुरारि पडित
यदुनदन
यदुनाथ
रघुनाथ १
रघुनाथ २
रघुनाथदास
रामचन्द्र कविराज
रामदास
रामानन्द वसु
वल्लभ १, २
वसत
वासुदेव घोष
वासुदेव दत्त
विष्णुदास
वृदावनदास
शिवानन्द
सत्यराज
स्वरूप दामोदर
हरिचरण
हरिदास १, २, ३, ४

चैतन्य-भागवत की नामावली

चैतन्य-भागवत में अपेक्षाकृत कम नाम है। कुछ नाम यहा दिए जा रहे हैं।

१ कृष्णदास
२ गदाधर
३ गोविंददास
४ गौरीदास
५ चन्द्रशेखर
६ जगदानन्द
७ माधव घोष
८ मुकुद
९ मुरारि
१० वासुदेव
११ हरिदास

वैष्णव-वंदना की नामावली

देवकीनदन ने अपनी रचना वैष्णव-वदना में बहुत से भक्तो की वदना की है। उनमे से जो लेखक अथवा पदकर्त्ता है उनकी सूची यहा दी जा रही है।

१ अनत
२ उद्धारणदत्त
३ कृष्णदास (कालिया)
४ कृष्णदास ब्राह्मण
५ गदाधरदास
६ गोविंद आचार्य
७ गौरीदास पडित
८ जगदानद
९ जगन्नाथदास
१० नरहरि सरकार
११ पुरुषोत्तमदास
१२ बलरामदास
१३ माधव आचार्य
१४ मुकुददास
१५ मुरारि
१६ यदुनाथ
१७. रामानद वसु
१८ वासुदेव दत्त
१९ वीरचन्द्र (वीर भद्र)
२० वृन्दावनदास
२१ शिवानद सेन
२२ हरिदास ठाकुर

सोलहवी, सत्रहवी, और अठारहवी शती में प्राप्त जीवनी साहित्य और अन्य ग्रथो के आधार पर अथवा, लेखको द्वारा दिए आत्म-परिचय को लेकर जिन आधुनिक विद्वानो ने छानबीन की है और सुव्यवस्थित परिचय प्रस्तुत किया है उनमें दीनेशचन्द्र सेन, जगद्‌बन्धु भद्र, सतीशचन्द्र राय और सुकुमार सेन प्रमुख हैं। इनके प्रस्तुत किए कवि परिचय के कवियो की नामावलिया यहा दी जा रही है।

१ दीनेशचन्द्र सेन की नामावली

दीनेशचंद्र सेन ने वैष्णवो और वैष्णव साहित्य पर कई एक पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से 'चैतन्य एड हिज़ कम्पेनियन्स', 'वैष्णव लिट्रेचर आफ मिडिवल बगाल', 'बगाली रामायन्स' यह तीनों अग्रेज़ी में लिखी गई है। इन पुस्तको में कुछ प्रमुख वैष्णव भक्तो का परिचय दिया गया है। इनकी एक अन्य रचना जो प्राचीन साहित्य के अशो का सकलन है 'बग-साहित्य-परिचय' बगला में लिखी गई है। इसमें तो सोलहवी शती से भी पहले की रचनाओ के अश और रचयिताओ का सूक्ष्म परिचय है। दीनेशचन्द्र की पुस्तको में से सोलहवी शती के वैष्णव भक्तो की नामावली नीचे दी जा रही है —

१ ईशान नागर
२ कृष्णदास कविराज
३ गोविंददास
४ गौरीदास
५ जयानद
६ नरहरि चक्रवर्ती
७ नरोत्तम
८ परमानद सेन
९ मुरारि गुप्त
१०. यदुनन्दनदास
११ रघुनाथ
१२ लोचनदास
१३ वशीवदन
१४. वासुदेव घोष
१५ वीरचन्द्र
१६ वृन्दावनदास

१७ शचीनदन
१८ हरिदाग

ये सब लेखक प्राय कृष्ण भक्त कवि हैं और उन्ही की लीला का गान करते हैं। सेन ने कुछ बगाली रामायण कर्ताओ के भी नाम दिए हैं परन्तु उनकी रचनायें अप्राप्य बताते हैं। ये नाम नीचे दिए जा रहे हैं

१ कविचन्द्र
२ गगादास
३ चन्द्रावती
४ द्विजमधुकुठ
५ षष्ठीवर

जगद्‌बधु भद्र की नामावली

जगद्‌बधु भद्र ने 'गौर-पदतरगिणी' के नाम से गौराग देव सम्बन्धी लगभग एक हजार पदो का सग्रह किया है। इसमें उन्होने पदकर्त्ताओ की जीवनी और परिचय पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला है। इस ग्रथ की प्रस्तावना मे उन्होने सब पदकर्त्ताओ का परिचय दिया है। इन सब ने केवल गौराग देव सबधी पद ही नही लिखे हैं, कृष्ण लीला का गान भी किया है। बगाली वैंष्णव धर्म मे चैतन्य देव का स्थान कृष्ण का ही था। अत प्रत्येक कवि कृष्ण लीला के साथ-साथ गौराग लीला पर भी रचना करता था। अत जगद्‌बधु बाबू ने जिन पदकर्ताओ का परिचय दिया है वे सतीशचन्द्र इत्यादि के परिचय दिए पदकर्ताओं से भिन्न नही है। गौर-पदतरगिणी की भूमिका में दी हुई सोलहवी शती के कवियो की नामावली निम्न है —

१ अनतदास
२ अभिरामदास
३ आत्मारामदास
४ ईशान
५ उद्धारण दत्त (उद्धव दास)
६ कवि कर्णपूर, परमानद सेन
७ कानुराम
८ कृष्णदास
९ गतिगोविन्द
१० गोविंद घोष
११ गोविन्द चक्रवर्ती
१२ गोविंददास
१३ गोविंददास कविराज
१४ चडीदास
१५ चैतन्यदास
१६ जगदानददास
१७ जगन्नाथदास
१८ ज्ञानदास
१९ देवकीनदनदास
२० धनजयदास
२१ नयनानददास
२२ नरहरिदास
२३ नरोत्तमदास
२४ परमेश्वरदास
२५ पुरुषोत्तमदास
२६ प्रसाददास
२७ बलरामदास
२८ बल्लभदास
२९ भारतचन्द्र
३० वशीवदन
३१ वासुदेव घोष
३२ वृन्दावनदास
३३ वैष्णवदास
३४ मनोहरदास
३५ माधवदास

३६ माधवीदास
३७ मुकुददास
३८. मुरारि गुप्त
३९. मोह्नदास
४० यदुनाथदास
४१ राधावल्लभदास
४२ रामचन्द्रदास
४३. रामानद वसु
४४ रायअनत
४५ लक्ष्मीकातदास
४६ लोचनदास
४७ शकरदास
४८ शचीनन्दनदास
४९ शिवरामदास
५० शिवानद सेन
५१ श्यामदास
५२ स्वरूपदास
५३ हरिदास (१)
५४ हरिदास (२)

सतीशचन्द्र राय की नामावली

सतीशचन्द्र राय ने वृदावनदास द्वारा सकलित वृहद्-पद-सग्रह 'पदकल्पतरु' का सपादन किया है। इस 'पदकल्पतरु' के चार भागो में तो पद सग्रह है, पाचवा भाग भूमिका के रूप में है। इस भूमिका में उन समस्त कवियो के नाम और परिचय हैं जिनके पद इसमें सगृहीत हैं। सतीशचन्द्र राय ने भी अत्यन्त परिश्रम और खोजपूर्ण अध्ययन के द्वारा ये परिचय प्रस्तुत किए हैं। वे कई स्थानो पर जगद्वधु बाबू से असहमत है। इसके कारण भी उन्होनें दिए है। पदकल्पतरु की भूमिका में से सोलहवी शती के वैष्णव कवियो की नामावली निम्न है —

१ अनत
२ अनत आचार्य
३ अनतदास
४ अनतराय
५. आत्माराम दास
६ उद्धवदास
७ कवि वल्लभ
८ कवि भूपति
९ कविरजन
१०. कवि शेखर
११ कानुदास
१२ कानुराम दास
१३. कृष्णदास
१४ कृष्णदास कविराज
१५ गतिगोविन्द
१६ गुप्तदास
१७ गोकुलदास
१८ गोपालदास (गोपाल भट्ट)
१९ गोपीरमण
२०. गोविन्द घोष
२१ गोविंददास
२२ गोविन्ददास चक्रवर्त्ती
२३ गौरीदास
२४ चडीदास
२५. चन्द्रशेखर
२६ चम्पति
२७ चैतन्यदास
२८ जगदानद
२९ ज्ञानदास
३० देवकीनदन
३१ धरणी
३२ नरहरि
३३ नरोत्तम
३४ नृसिह देव

३५ परमानन्द
३६ परमेश्वरदास
३७ पुरुषोत्तम
३८ प्रसाददास
३९ वलरामदास
४० वल्लभदास
४१ भूपति
४२ वशीवदन
४३ वसतराय
४४ वासुदेव घोष
४५ वीर हाम्वीर
४६ वृदावनदास
४७ मथुरादास
४८ माधव घोष
४९ माधवदास
५० माधवीदास
५१ मुरारि गुप्त
५२ मोहन
५३ यदुनदन
५४ राधावल्लभ
५५ रामानद राय
५६ रामानद वसु
५७ लक्ष्मीकातदास
५८ लोचनदास
५९ शकरदास
६० शचीनदन
६१ शिवराम
६२ शिवानद
६३ शेखर
६४ श्यामदास
६५ श्यामानद
६६ श्रीनिवास
६७ हरिदास
६८ हरिवल्लभ

सुकुमार सेन की नामावली

सर्वाधिक अर्वाचीन लेखक डा० सुकुमार सेन ने इन समस्त और इन से भी अधिक वैष्णव कवियो का परिचय प्रस्तुत किया है अपने ग्रथ 'हिस्ट्री आफ् व्रज वुलि लिट्रेचर' में। उनका प्रस्तुत किया हुआ परिचय सर्वाधिक वैज्ञानिक खोजपूर्ण है। पीछे जितने नाम दिए गए हैं उन सव के अतिरिक्त जो और नाम उनके इस ग्रथ में दिए हैं वे नीचे अकित किए जा रहे हैं—

१ कामदेव
२ किशोरदास
३ किशोरीदास
४ कुमुदानद
५ गगाराम
६ गिरधरदास
७ गोकुलदास
८ गोकुलानन्द
९ गोपीरमण
१० गोस्वामीदास
११ गौरकिशोर
१२ जयकृष्णदास
१३ जयचन्द्र
१४ जानकीवल्लभ
१५ तुलसीदास
१६ दासजानकी
१७ दिव्यसिंह
१८ दुखिनी
१९ द्विजजानकी
२० नृप वैद्यनाथ
२१ विहारीदास
२२ व्रजानद
२३ मथुरादास (१)
२४ मथुरादास (२)

२५ यशोराजखान
२६. रघुनाथदास (१)
२७ रघुनाथदास (२)
२८ रसिकदास
२९ राघवेन्द्र
३०. राधादास
३१ वशीदास
३२. वल्लभीकात
३३ वीरचन्द्र
३४ वैष्णवचरण
३५ सुवलचन्द्र
३६ हरीरामदास

ऊपर जितने नाम दिए गए है वे प्रधानतया पदकर्त्ता है। कुछ न वडी रचनाये भी की है। इन लेखकों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेखको का जो परिचय आगे है वे पदकर्त्ता न होकर अन्य वडी रचनाओ के प्रणेता है। उनके नाम प्रधानतया डा० सुकुमार सेन की 'वागला साहित्येर इतिहास' से लिए गए है। इनमें आनदी, अनिरुद्ध, श्रीकर नदी, चूडामणिदास, गोविन्द आचार्य, कृष्णदास, दु खी श्यामदास, रघुनाथदास, वृदावनदास जयानद, माधवदास, हरिचरणदास, ईशान नागर, विष्णुदास, लोकनाथदास, परमेश्वर दास, रामचन्द्र खान, पीताम्वर इत्यादि है।

भक्तमाल की नामावली

सोलहवी शती मे वनी हिन्दी रचनाओ मे मूल भक्तमाल मे उस शती के वैष्णव-कवियो का नाम परिचय मिलता है। नाभादास ने भक्तमाल में जिनको वहुत महत्व दिया है उनके लिए एक पूरा छप्पय दिया है और वाकी कम महत्वपूर्ण लेखको के तो एक ही छप्पय में कई कई नाम दे दिए हैं। कुछ वगाली वैष्णवो के नाम भी दिए है, पर वे भाषा के कवि नही वरन् सस्कृत के कवि और लेखक है। ये रूप, सनातन, जीव गोस्वामी, लोकनाथ, गोपाल भट्ट, और भूगर्भस्वामी है। हिन्दी वैष्णव भक्तो की भक्तमाल मे दी हुई नामावली निम्न है—

१ अग्रदास
२ आसकरनदास
३ कल्यानदास
४. कान्हरजी १, २
५ कान्हरदास
६. कुभनदास
७ कृष्णदास २, २, ३
८. केवलराम
९ केशवदास
१० खेम १, २, ३,
११. गदाधर १, २, ३
१२. गिरिधर
१३. गोपालदास
१४ गोपीनाथ १, २
१५ गोविंद स्वामी
१६ चतुर्भुजदास
१७ छीत स्वामी
१८ जगन्नाथदास
१९ जमुनास्त्री
२० तुलसीदास
२१ दामोदरदास १, २, ३, ४
२२ नददास
२३ नरसी
२४ नरवाहन
२५ नारायण भट्ट
२६. पद्मनाभ
२७ व्यास स्वामी
२८ माधवदास १, २

२९ मीरा
३० रामदास १, २
३१ विट्ठल विपुल
३२ वीठलदास
३३ विष्णुदास
३४ श्रीभट्ट
३५ सूरदास
३६ सूरदास मदनमोहन
३७ हरिदास
३८ हितहरिवंश

बगला भक्तमाल की नामावली

बगला भक्तमाल में बगाली वैष्णव भक्तो के साथ कुछ हिन्दी वैष्णव भक्तो का भी उल्लेख है। उनके नाम नीचे दिए जा रहे है —[1]

१ अग्रदास
२ कील्हदेव
३ केशव भट्ट
४ गोपाल भट्ट
५ गोविंददास
६ तुलसीदास
७ पयहारी कृष्णदास
८ मीराबाई
९ वल्लभाचार्य
१० विट्ठलदास
११ सूरदास
१२ हरिदास
१३ हरिव्यास

सोलहवी शती के बाद हिन्दी में ध्रुवदास की "भक्त-नामावली" ही उल्लेखनीय है। इसमें कुछ वैष्णव भक्तो का परिचय है।

समय निर्धारण के आधारभूत सिद्धान्त

विद्वानो ने इन समस्त कवियो का समय निर्धारण कई तरह से किया है।

१ कुछ कवियो की निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथिया तो ज्ञात ही है जो विद्वानो की खोज का परिणाम है। अत उनकी विद्यमानता कब से कब तक थी इसमें कोई उलझन नही है।

२ कुछ कवियो की केवल जन्म-तिथि, या केवल मृत्यु-तिथि ही ज्ञात है। इससे उनका सम्पूर्ण काल ज्ञात नही होता, परन्तु उस शती में थे यही ज्ञात होता है।

३ कुछ कवियो की कुछ रचनाओ का रचना-समय ज्ञात है। अत उससे भी उनकी विद्यमानता का आशिक काल ज्ञात हो जाता है।

४ कुछ महापुरुषो की जिनकी जन्म और मृत्यु की निश्चित तिथिया ज्ञात है समसामयिकता भी आशिक रूप से काल का निर्धारण कर देती है। इन महापुरुषो में चैतन्य देव, वल्लभाचार्य, नरोत्तम ठाकुर, नित्यानद, श्रीनिवास आचार्य, विट्ठल नाथ, आते है। इनमें से कोई पद्रहवी शती के उत्तरार्ध में और कोई सोलहवी शती में वर्तमान थे।

५ नरोत्तम दास द्वारा सयोजित खेतुरी उत्सव १५८३-८४ ई में हुआ था। उसमें

---

१ गो० वै० सा, भाग २, पृ० ८८

२. यह भक्तमाल कदाचित् 'भक्ति रत्नाकर' इत्यादि से पहले की ही रचना हो।

उपस्थित जिन व्यक्तियो के नाम भक्ति-रत्नाकर या नरोत्तम-विलास में आए ह उनकी विद्यमानता कम से कम १५८३-८४ में थी यह निश्चित ही है।

जिस कवि का काल इन किसी भी प्रकार से निश्चित होता है उसका उल्लेख यथा-स्थान कर दिया गया है।

बगाली कवि और पदकर्ता

१. अनतदास
२ आचार्य चन्द्र
३. आत्मारामदास
४. ईशान नागर
५ उद्धवदास
६ कविकठहार
७ कविरजन
८ कविशेखर
९ कानुरामदास
१० कामदेवदास
११ किशोरदास, किशोरीदास
१२ कुमुदानंद
१३. कृष्णकात
१४ कृष्णदास
१५ कृष्णदास कविराज
१६ गिरधरदास
१७ गुप्तदास
१८ गोकुलदास
१९ गोपाल भट्ट
२० गोपीकात वसु
२१ गोपीरमण
२२ गोवर्धन
२३ गोविन्द घोष
२४ गोविन्ददास आचार्य
२५. गोविन्ददास कर्मकार
२६ गोविंददास कविराज
२७ गोविन्ददास चक्रवर्त्ती
२८ गोस्वामी दास
२९ गौरागदास
३० गौरीदाम
३१. चण्डीदास
३२. चन्द्रशेखरदास
३३ चम्पति
३४. चूडामणिदास
३५ चैतन्यदास
३६ जगन्नाथदास
३७. जयकृष्णदास
३८ जयचन्द्रदास
३९ जानकीदास
४०. जानकीवल्लभ
४१. ज्ञानदास
४२ तुलसीदास
४३. दिव्यसिंह
४४. देवकीनदनदास
४५. द्विज गगाराम
४६ द्विजहरिदास
४७ धरणी
४८ नयनानद
४९. नरहरिदास
५०. नरोत्तमदास
५१ नित्यानंददास
५२ नृसिंह देव
५३. परमानददास १
५४ परमानददास २
५५. परमेश्वरदास
५६. पुरुषोत्तमदास
५७ प्रसाददास
५८ वलरामदास
५९ विहारीदास
६० व्रजानंद

६१ भागवताचार्य
६२ भूपति
६३ मथुरादास
६४ मनोहरदास
६५ माधव घोष
६६ माधवदास
६७ माधवीदास
६८ मुरारि गुप्त
६९ मोहनदास
७० यदुनदनदास
७१ यशोराजखान
७२ रघुनाथदास
७३ रसिकदास
७४ रसिकानद
७५ राघवेन्द्र राय
७६ राधादास
७७ राधावल्लभदास
७८ रामचन्द्र
७९ रामानद
८० रायवसत
८१ रायशेखर
८२ लक्ष्मीकातदास
८३ लोकनाथदास
८४ लोचनदास
८५ वशीदास
८६ वशीवदन
८७ वल्लभदास
८८ वासुदेव घोष
८९ वासुदेव दत्त
९० विजयनददास
९१ विष्णुदास
९२ वीरचन्द्र
९३ वीर हाम्बीर
९४ वृन्दावनदास
९५ शकरदास
९६ शचीनदनदास
९७ शिवरामदास
९८ शिवानद आचार्य
९९ शिवानद सेन
१०० श्यामदास
१०१ श्यामानद दास
१०२ श्रीनिवास आचार्य
१०३ सुवलचन्द्र ठाकुर
१०४ स्वरूपदामोदर
१०५ स्वरूपदास
१०६ हरिचरणदास
१०७ हरिवल्लभ
१०८ हरिरामदास

कवि परिचय : बंगाली कवि

अनन्तदास

अनतदास नाम के दो व्यक्ति हुए, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है। वैसे तो पदकल्पतरु में 'अनत आचार्य', 'अनतदास' और 'अनतराय' तीन नामो से युक्त पद प्राप्त होते है। साधारणत राय उपाधि के साथ आचार्य उपाधि नही दिखाई देती। इससे ज्ञात होता है कि अनत आचार्य और अनतराय दो भिन्न पदकर्ता थे। 'दास' उपाधि प्राय दीनता-सूचक अर्थ में अधिकाश पदकर्ताओ ने प्रयोग की है। अत इस नाम के दो व्यक्ति ही हुए थे, जैसा कि चैतन्यचरितामृत से भी ज्ञात होता है।

१. **अनन्तदास आचार्य**—यह गदाधर पडित के शिष्य थे।

पडित गोसाञिर शिष्य अनंत आचार्य।
कृष्ण प्रेममय तनु उदार महाआर्य ॥
(चै. च, आदिलीला, परि. ८, पृ. ५३)

पुनश्च एक स्थल पर जहा गदाधर पडित के शिष्यो का उल्लेख है, अनत आचार्य का नाम आया है।

श्री गदाधर पडित उपशाखा महोत्तम।
तार उपशाखा विछु करिये गणन ॥
.. . ..
अनंत आचार्य कवि दत्त मिश्र नयन ॥
(चै च, आदिलीला, परि. २, पृ. १२)

कृष्णदास वावा जी रचित भक्तमाल में अनत को 'सुदेवी' का अवतार और गौराग का किंकर बताया गया है —

सुदेवी अनत आचार्य गौराग किंकर।

इन सव अवतरणो से "अनत आचार्य" गौराग देव और गदाधर पडित के समसामयिक ज्ञात होते है। वैसे तो इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है परन्तु १५५० से १५८२ तक समय ज्ञात है। ये कटवा उत्सव मे उपस्थित थे[1] और नीलाचल जाते समय चैतन्य से मिले थे।

२. **अनंतदास**—इनका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में अद्वैत आचार्य की शिष्य शाखा में किया गया है —

अनत दास, कानु पडित, दास नारायण।
(चै च, आदिलीला, परि. १२, पृ. ६५)

परन्तु यह अनतदास स्वतत्र पदकर्ता है अथवा दोनो एक ही है यह ज्ञात नही। तीनो नामो से युक्त पद इस प्रकार मिश्रित हो गए है कि उनका अलग करना कठिन है।

---

१. भ. र, पृ. ५८९

अनत आचार्य के नाम के ३२ पद प्राप्त है और अनतदास के नाम से केवल एक पद प्राप्त है।

आचार्य चन्द्र

वृन्दावनदास ने अपने चैतन्य-भागवत[1] में, और देवकीनदन ने अपने ग्रथ वैष्णव-वदना में आचार्य चन्द्र का उल्लेख किया है। चैतन्य देव के एक चचिया ससुर चन्द्रशेखर आचार्यरत्न थे। ये चैतन्य के अनन्य भक्त थे। आचार्य चन्द्र के नाम मे एक पद प्राप्त है, जिसे सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है।[2] इसे उन्होंने दो प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियो[3] से पाया है। इसमे नित्यानन्द के प्रति असीम भक्ति दिखाई गई है। प्रारभ में गौर-वदना भी है। अत या तो आचार्य चन्द्र नित्यानन्द के शिष्य है अथवा आचार्य-रत्न ही अभीष्ट पदकर्त्ता है। इनकी निश्चित जन्म-मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

आत्मारामदास

आत्मारामदास का अधिक विवरण ज्ञात नही है। इनके चार पद पदकल्पतरु में प्राप्त है। इनमें से तीन पद नित्यानन्द विषयक है। इससे ज्ञात होता है कि आत्मारामदास नित्यानन्द के शिष्य और समसामयिक थे। सेन महोदय का मत है कि कदाचित् आत्माराम-दास 'प्रेमविलास' ग्रथ के रचयिता नित्यानन्ददास के पिता थे। श्री निवास आचार्य के दो शिष्यो के नाम भी आत्मारामदास थे परन्तु वे इन पदो के रचनाकार नही हो सकते क्योंकि इन आचार्य महाशय का उल्लेख भी नही है।

ईशान नागर

ईशान नागर अद्वैत प्रभु के शिष्य और समसामयिक थे। पाच वर्ष की आयु में वे पितृहीन हो गए। इनकी दु खी माता ने अद्वैत आचार्य का आश्रय ग्रहण किया और दोनो ने उन्ही से वैष्णव धर्म की दीक्षा ली। अच्युतानन्द के साथ रह कर ईशान ने शिक्षा पाई। अद्वैत आचार्य ने गौराग के विरह में व्याकुल होकर ईशान को चैतन्य नाम का प्रचार अपनी जन्मभूमि श्रीहट्ट में करने का आदेश दिया। अद्वैत आचार्य की मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नी सीतादेवी ने इनका विवाह किया और इन्हे अद्वैत प्रभु की जीवनी लिखने को कहा। सुतराम् ईशान ने 'अद्वैतप्रकाश' ग्रथ की रचना की। कहा जाता है कि १५६८ ई में यह ग्रथ समाप्त हुआ। ईशान की निश्चित जन्म और-मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये अद्वैत के समसामयिक थे।

उद्धवदास

इस नाम के दो पदकर्त्ता हुए है। जो अधिक प्रसिद्ध कवि थे और जिनके पद अधिक सख्या में प्राप्त है, वे अठारहवी शती में थे। इन्होंने अपने एक पद में एक अन्य उद्धवदास का उल्लेख किया है।

---

१. चै भा , शेषखड, अ ५

2 Brajbuli, Page 211

३ (१) सजनीकांत दास के पास सुरक्षित प्रति, (२) कलकत्ता विश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति सख्या २४९१ जो १६८४ में लिखी गई।

रूप राधुराय नाम गोकुल श्री भगवान
भक्तिमान श्री उद्धवदास । (प क. त., पद ३०९२)

य उद्धवदास गदाधर पडित के शिष्य थे और खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इनके दो पद पदकल्पतरु में प्राप्त है । (१४८१,१५५८।)[1]

पदामृतसमुद्र में उद्धवदास के नाम से कोई भी पद नही है। इससे ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध पदकर्त्ता उद्धवदास जिनके पद पदकल्पतरु में है अठारहवी शती तक अप्रसिद्ध ही थे अथवा पदकर्त्ता नही थे। पदामृतसमुद्र के सग्रहकार राधामोहन ठाकुर अठारहवी शती में थे। सेन महोदय को जो पद प्राप्त हुआ है वह सजनीकात दास के पास सुरक्षित हस्तलिखित प्रति में है। वे उस पद के आधार पर ही एक और उद्धवदास वताते है।

कविकठहार

कविकठहार का अधिक विवरण अज्ञात है। क्षणदा-गीत-चितामणि में एक पद कविकठहार के नाम से प्राप्त है। दो पद कीर्तनानन्द मे भी प्राप्त है। नगेन्द्रनाथ ने अपने विद्यापति पदावली के सग्रह मे तीन पद और दिए है।[2] साधारणत कविकठहार विद्यापति की ही उपाधि वताई जाती है परन्तु एक वगाली पद भी कवि कठहार के नाम मे ढाका यूनिवर्सिटी की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति में है।[3] इससे विद्यापति-भिन्न एक वगाली कवि की स्थिति ज्ञात होती है। श्रीखड के रघुनदन के एक शिष्य कवि कठहार नाम के थे।

कवि रजन

ऐसा ज्ञात होता है कि कवि रजन की दूसरी उपाधि विद्यापति थी। विद्यापति नामाकित कुछ वगाली पद पदकल्पतरु में है। ये पद विद्यापति के हो नही सकते क्योंकि वे मैथिल थे। अव तक यह मत प्रचलित था कि किसी वगाली पदकर्त्ता ने यह पद वनाकर विद्यापति के नाम से चला दिए है। परन्तु यह भी ठीक नही ज्ञात होता। अधिक सभावना एक वगाली विद्यापति के होने की ही है। पडित हरेकृष्ण साहित्यरत्न ने कुछ खोज की है, जिसके आधार पर उन्होने इस तथ्य को पुष्ट किया है। उन्होंने दिखाया है कि रामगोपालदास के ग्रथ 'रसकल्पवल्ली' और 'शाखा-निर्णय' में इस वात का उल्लेख है कि श्रीखडवासी रघुनदन के एक शिष्य कवि रजन थे। ये कवि रजन भी श्रीखड निवासी थे।[4] ये अच्छे पदकर्त्ता थे और इनके पद विद्यापति की रचनाओ के अनुकरण में वने है।

---

१. सुकुमार सेन—हिस्ट्री आफ ब्रजवुलि लिटरेचर, पृ ८८। सेन महोदय ने इन उद्धवदास का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत, आदिखड, परिच्छेद १२ में वताया है परन्तु गदाधर पडित की शाखा-गणना में उद्धवदास तो नहीं, पर उद्धरण अयवा उद्धारण नाम दिया है -

"श्रीनाय चक्रवर्ती आर उद्धारणदास"

२. हि. व्र. वु., पृ २०४

३ ,, ,, , पृ. २०४

४. शा. नि., पृ १६

ये कभी-कभी छोटे विद्यापति कहलाते भी थे।[१] 'रसकल्पवल्ली' में इन कवि रंजन विद्यापति के कुछ पद दिए हैं। इन पदों में से एक पद श्रीखंडवासी रघुनंदन की वंदना है।[२] इससे अनुमान होता है कि कवि रंजन रघुनंदन के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। रघुनंदन खेतुरी उत्सव में थे। अतः ये भी उस समय रहे होंगे।

कवि शेखर

कवि शेखर का असली नाम देवकीनंदन सिंह था। राय शेखर से ये भिन्न हैं अथवा एक ही, यह कहना कठिन है। 'कवि शेखर', 'शेखर', 'राय शेखर', 'शेखर राय' इत्यादि नामों से जो पद मिलते हैं, वे इन दोनों के ही हो सकते हैं। कवि शेखर रचित 'गोपाल-विजय' काव्य में इन्होंने आत्म परिचय दिया है —

सिंहवंशे जन्म नाम देवकीनंदन।
श्री कवि शेखर राय वले सर्वजन॥
वाप चतुर्भुज नाम मा हीरावती।
कृष्ण जार प्राण धन कुल शील जाति॥
(बां सा इ, पृ २१४)

कवि शेखर ने संस्कृत में 'गोपालचरित' महाकाव्य और 'गोपीनाथ-विजय' नाटक लिखा था। बंगला भाषा में 'गोपालेर कीर्त्तनामृत' और 'गोपाल-विजय' पांचाली काव्य लिखा था। कवि शेखर ने अपनी रचनाओं की गणना भी इसी ग्रंथ में दी है —

तवे महाकाव्य कैल गोपाल चरित।
तवे कैल गोपालेर कीर्त्तन अमृत॥
गोपीनाथ विजय नाटक कैल आर।
तभु गोपवेशे मन ना पुरे आमार॥
तवे से पांचाली करि गोपाल विजये।
वैष्णव चरण रेणु करिया हृदये॥ (बां सा इ, पृ २१४)

गोपाल विजय पांचाली के प्रारंभ में इन्होंने एक संस्कृत का श्लोक दिया है, जिससे कवि शेखर ही इसके लेखक ज्ञात होते हैं —

लिखति श्री कविशेखर एतां
प्रतिपदसमया पदसमुपेताम्॥
निरवधिमधुरप्रकृतरसिकालीं
श्री गोपाल विजय पांचालीम्॥ (बां सा इ, पृ २१५)

सुकुमार सेन का मत है कि कवि शेखर और राय शेखर एक ही व्यक्ति हैं।

कानुरामदास

कानुरामदास नाम के दो व्यक्ति हुए हैं। इनमें से कौन पदकर्त्ता थे अथवा दोनों ही ने पद रचना की थी यह कह सकना कठिन है।

१. शा नि, पृ १७
२. व सा प प, भाग ३७, पृ ४४

१. कानूरामदास—ये नित्यानन्द प्रभु की पत्नी जाह्नवा देवी के शिष्य, तथा सदाशिव कविराज के पौत्र और पुरुषोत्तम दास के पुत्र थे।

श्री सदाशिव कविराज बड़ महाशय ।
श्री पुरुषोत्तम दास ताहार तनय ॥
. .. .
तार पुत्र महाशय श्री कानु ठाकुर ।
जार देहे रहे कृष्ण प्रेमामृत पूर ॥
(चै च, आदिखंड, परि ११, पृ ६२)

ये कानुरामदास खेतुरी उत्सव मे उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त इनकी निश्चित जन्म-तिथि अथवा रचना काल अज्ञात है।

२ **कानूरामदास**—ये कानुरामदास अद्वैत आचार्य की शिष्य शाखा मे थे।

अनत दास कानुपडित दास नारायण।
(चै. च., आदिखड, परि १२, पृ. ६५)

ये कानुरामदास भी खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और रचना काल अज्ञात है। इन दोनो कवियो के नाम के १३ पद पदकल्पतरु में प्राप्त हैं।

कामदेवदास

इस नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख पाया जाता है

१ **अद्वैत आचार्य के शिष्य**—इनका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है।[१] ये अच्युतानद के सग, जो अद्वैत प्रभु के पुत्र थे, खेतुरी उत्सव मे भी गए थे।[२]

२ **कर्णानन्द में उल्लिखित श्रीनिवास के शिष्य**[३]—पदकल्पलतिका और कृष्ण-पदामृत-सिन्धु में इनका एक पद सगृहीत है।

किशोरदास, किशोरीदास

कदाचित् किशोरदास और किशोरीदास एक ही व्यक्ति है। प्रेमविलास ग्रथ में[४] किशोर-दास और किशोरीदास दोनो ही नाम के व्यक्ति श्यामानद के शिष्य वताए गए हैं। इससे अनुमान होता है कि ये दोनो एक ही व्यक्ति हैं। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है परन्तु ये भी खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके दो पद 'अप्रकाशित पदरत्नावली' मे और एक 'कृष्णपदामृतसिन्धु' मे दिए हुए हे। भक्ति-रत्नाकर ग्रथ में भी इनका उल्लेख है।[५]

---

१. चै च, आदि लीला, परि. १२
२. भ. र., पृ. ६३५
३. कर्णा., निर्यास १
४. प्रे. वि, विलास २०
५ भ र., पृ १०५५

कुमुदानद

कर्णानद[1] में एक कुमुदानद का नाम आया है। ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। इनका भी इसमें उल्लेख है। इससे अधिक विवरण अज्ञात है। इस नाम से एक पद स कीर्त्तनामृत में है। कदाचित् कर्णानन्द मे दिए कुमुदानन्द ही पदकर्त्ता हो।

कृष्णकात

'गौरपदतरगिणी' की भूमिका मे जिन उद्धवदास का परिचय है उन उद्धवदास का वास्तविक नाम कृष्णकात मजूमदार बताया है। अन्य किसी भी कृष्णकात का पता वैष्णव साहित्य में नही मिलता अत इसे ही ठीक मान लेना चाहिए। परन्तु 'कृष्णकात' दूसरे उद्धवदास का नाम था ऐसा भी जगद्बधु बाबू ने कहा है। अत ये सत्रहवी शती के पूर्व भाग के व्यक्ति है।

कृष्णदास

'श्रीकृष्ण-मगल' ग्रथ के रचयिता कृष्णदास माधव आचार्य के सेवक थे। उनके पिता का नाम यादवानन्द और माता का नाम पद्मावती था। ये लोग गगा के पश्चिमी किनारे के प्रदेश में रहते थे। इन्होने अपने गुरु का उल्लेख किया है परन्तु वास्तविक नाम नही दिया है, अत गुरु कौन है यह जानना कठिन है। उद्धरण निम्न प्रकार है —

"आमार प्रभु श्रीमती ईश्वरी
दीक्षा मत्र दिला प्रभु मोर कर्णे धरि।"

(श्री कृष्णमगल, पृ ३८४)
(बा सा इ, पृ ३३५)

यह 'ईश्वरी' कौन है ? प्राय नित्यानन्द की पत्नी जाह्नवा देवी के लिए वैष्णव भक्तो ने इस शब्द का प्रयोग किया है। हो सकता है कि इन 'कृष्णदास' की गुरु भी ये जाह्नवा देवी ही हो।

कृष्णदास कविराज

कृष्णदास कविराज 'चैतन्यचरितामृत' के रचयिता और विद्वान कवि थे। इनके रचे केवल पाच पद प्राप्त है। वे भी स्वतत्र पद नही है, 'चैतन्यचरितामृत' महाकाव्य में दिए हुए हैं। इनकी जन्म-तिथि १४९६ ई और मृत्यु सवत् १५९८ ई के लगभग है। इनका रचना काल १५८१ ई से पहले ही था। सन् १५८१ ई में इन्होने 'चैतन्यचरितामृत' समाप्त किया था। जीवन के मध्याह्न काल में कृष्णदास वृदावनवासी हो गए थे। वही पर उन्होने चैतन्यचरितामृत लिखा और मृत्यु पाई। इन्होने अपने इसी ग्रथ में दस अन्य कृष्णदासो का उल्लेख किया है, जिसमें से श्यामानन्द, उपनाम, दु खी कृष्णदास ही उल्लेखनीय है। उनका परिचय आगे दिया जायगा। ये वृदावनवासी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे।

---

१ कर्णा, निर्यास १

गिरिधर दास

गिरिधर दास श्री निवास आचार्य के शिष्य थे। रसकल्पवल्ली के रचयिता रामगोपालदास ने इनका आभार माना है। इनकी निश्चित जन्म-मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका एक पद 'क्षणदा-गीत-चिंतामणि' में और एक संकीर्त्तनामृत में संगृहीत है। एक संस्कृत ग्रंथ 'परकीया-रसस्थापन-सिद्धान्त-संग्रहम्' है।

गुप्तदास

'पदकल्पतरु'[१] और 'क्षणदा-गीत-चिंतामणि'[२] में एक पद गुप्तदास का संगृहीत है। इससे ये कवि अभिराम ठाकुर के शिष्य जान पड़ते हैं। अभिराम ठाकुर नित्यानन्द प्रभु के अनुयायी थे। 'गुप्तदास' का अधिक विवरण अप्राप्य है।

गोकुल दास

भक्ति रत्नाकर[३] के अनुसार श्री आचार्य के एक शिष्य गोकुलदास थे। इनका कवीन्द्र नाम भी दिया है। उसी ग्रंथ में ये काढी के मूल निवासी बताए गए हैं जो पीछे जाकर पंचकोट के सेरगढ में बस गए थे। गोकुलदास रचित केवल एक पद प्राप्त है जो कृष्ण के बहुत से नाम और उपाधियों की गणना-मात्र करता है। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

गोपाल भट्ट

गोपाल भट्ट दक्षिणात्य ब्राह्मण थे। भट्टमारी के वेंकट भट्ट इनके पिता थे। चैतन्य देव अपने दक्षिण भ्रमण के समय इनसे मिले थे। गोपाल भट्ट फिर वृंदावन में निवास करने लगे और प्रसिद्ध षष्ठ गोस्वामियों में से एक हुए। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। १५०३-१५७८ ई तक इनकी उपस्थिति ज्ञात है। इन्होंने वैष्णव-स्मृति पर 'हरिभक्तिविलास' ग्रंथ की रचना की है। गोपाल भट्ट के रचे तीन पद पदकल्पतरु[४] में प्राप्त है। ये तीनों ब्रज भाषा में लिखे गए हैं।

गोपीकान्त वसु

गोपीकान्त वसु के नाम से केवल एक पद 'कृष्णपदामृत-सिन्धु' में है।[५] यह पद वात्सल्य रस का है।[६] ये कदाचित् रामानन्द वसु के वंश में थे। चैतन्यचरितामृत में इनका उल्लेख चैतन्य देव के अनुयायियों में किया गया है।[७] इनके विषय में अधिक ज्ञान नहीं है।

---

१. प. क त., पद २३१९

२. क्ष. गी. चि. २४

३ पंचकूटे सेरगड़ वासी श्री गोकुल। पूर्व वास कड़ड़ कवीन्द्र भक्त्यातुल ॥

भ. र., पृ. ६१९

४. प. क त, पद १०८८, २८३३, २९६६

५. कृ. प. सि, पृ. १२

6. Brajbuli, p. 401.

७. चै च, आदिलीला, परि १०

गोपीरमण

गोपीरमण नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है। एक तो श्री निवास आचार्य के शिष्य गोपीरमण वैद्य [1] और दूसरे हृदय चैतन्य के शिष्य ।[2] वैष्णवदास और पदकर्त्ता उद्धवदास ने उनका उल्लेख किया है।

जय जय गोपीरमण रसायन उज्ज्वल-मुरति नितात।

(प क त, पद १८)

श्री गोपीरमण नाम भगवान गोकुलाख्यान

(प क त, पद ३०९२)

गोवर्धन ?

गोवर्धन नामाकित १६ पद पदकल्पतरु में सगृहीत हैं। इस नाम के चार व्यक्तियों का परिचय मिलता है।

१ रघुनाथदास के पिता गोवर्धनदास—ये चादपुर ग्राम के निवासी थ। यवन 'हरिदास' कुछ दिन इनके घर रहे थे। इनका उल्लेख राधावल्लभदास ने एक पद मे किया है। ये गोवर्धनदास अत्यन्त धनी व्यक्ति थे। रघुनाथ गोस्वामी जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति के पिता थ। परन्तु कवि या रचयिता के नाम से इनकी ख्याति नही है।

२ जयपुर के गोकुलचन्द्र मदिर के प्रसिद्ध कीर्तनिया और पदकर्त्ता गोवर्धनदास—ये सत्रहवी शती के व्यक्ति है।

३ नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गोवर्धनदास—नरोत्तम-विलास ग्रथ में इनका उल्लेख है —

जय श्री भाडारी गोवर्धन भाग्यवान।
जेह्रु सर्व्वमते कार्य करे समाधान॥

प्रेम-विलास ग्रथ में भी इनका उल्लेख है।

गोवर्धन भाडारी शाखा सर्वत्र विदित।
महाशय करे तारे अतिशय प्रीत।

परन्तु इस बात का कही भी उल्लेख नही है कि ये कवि भी थे।

४ श्यामानद के वशज गोवर्धनदास—ये कवि थे, इस बात का उल्लेख कही नही है।

गोवर्धन के नाम से १६ पद पदकल्पतरु में सगृहीत है। परन्तु यह नही कहा जा सकता कि कौन से गोवर्धनदास इनके रचयिता हैं। नरोत्तम ठाकुर के शिष्य गोवर्धन भाडारी को ही पदकर्त्ता माना जाता है।[3] परन्तु इसका प्रमाण कुछ नही है। पद वगला और व्रजवुलि दोनो में है। विषय कृष्णलीला और चैतन्य लीला है।

---

१ कर्णानद, निर्यास १, प्रेम विलास, विलास २०

२ भ र, पृ १०४

३ गौ प त की भूमिका, पृ २८

गोविंद घोप

गोविंद घोप चैतन्य देव के सहचर और समसामयिक थे। ये श्रेष्ठ गायक भी थे। इनके रचे पद सब गौराग विषयक हैं। पदकल्पतरु मे इनके ६ पद प्राप्त हैं। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि अज्ञात हैं। चैतन्यचरितामृत और चैतन्यभागवत मे इनका उल्लेख है। माधव घोष और वासुदेव घोष इनके भाई थे।

गोविद माधव वासुदेव तिन भाइ।
जां सबार कीर्त्तने नाचे चैतन्य निताइ॥

(चै च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ६०)

गोविंददास आचार्य

गोविंददास आचार्य श्री चैतन्य-देव के शिष्य और समसामयिक थे तथा १५३३ ई. के लगभग उपस्थित थे। इनके पद पिछले दोनो गोविंददास के पदो में मिल गए हैं क्योकि इनके पद प्राप्त नही हैं। 'वैष्णव-वदना' और 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' दोनो में इनका उल्लेख है। वैष्णव-वदनाओ के उल्लेख नीचे दिए जा रहे हैं —

गोविंद आचार्य वदो सर्व्व गुणशाली। जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली॥

(देवकीनंदन कृत, वा. सा. इ, पृ. २०४)

गोविंद-आचार्य पद करिल वंदन। राधाकृष्ण रहस्य जे करिल वर्णन॥

(माधवनद कृत, वां सा इ., पृ. २०४)

रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी मे सुरक्षित हस्तलिखित प्रति में कवि ने कहा है —

चिंतिया चैतन्यदेवेर चरण कमल। द्विज गोविंद बोले श्रीकृष्ण मंगल॥

(वां. सा. इ., पृ. २०५)

इससे ज्ञात होता है कि उन्होने एक श्रीकृष्ण-मगल भी लिखा था।

गोविंददास कर्मकार

गोविंददास कर्मकार चैतन्यदेव के सेवक बताए जाते है। कहा जाता है कि ये उनके जीवन की प्रधान घटनाओ को लिखते रहते थे, मुख्यत नीलाचल वास और दक्षिण भ्रमण के समय की घटनाये। आगे चल कर इसे कडचा का रूप दे दिया गया। परन्तु गोविंददास कर्मकार का उल्लेख चैतन्यदेव के सेवक के रूप में 'चैतन्यचरितामृत' अथवा 'चैतन्य-भागवत' किसी में भी नही है। केवल जयानन्द के 'चैतन्यमगल' में इनका उल्लेख है —

मुकुंद-दत्त वैद्य गोविंद कर्मकार।
मोर सगे आइसह काटोआ गंगापार॥

(बां सा. इ., पृ. २७२)

इसके अनुसार ये चैतन्यदेव के समसामयिक ठहरते हैं।

गोविंददास कविराज

चैतन्यदेव के परवर्ती कवियो में गोविंददास कविराज सर्वश्रेष्ठ कवि हुए। इन्होने केवल ब्रजबुलि में पद रचना की है। इनके पदो की सख्या भी अधिक है। पदकल्पतरु में

४६० पद प्राप्त है। इनका जन्म १५३० ई और मृत्यु १६१३ ई के लगभग है। इनका उल्लेख बहुत से ग्रथो मे मिलता है।[1] भक्तमाल, भक्ति-रत्नाकर और प्रेम-विलास में इनका विस्तृत विवरण है। भक्तमाल के अनुसार गोविंददास के भाई रामचन्द्र कविराज थे। वे विवाह के दिन गृह त्याग कर श्रीनिवास आचार्य के शिष्य हुए और उन्हीं के कहने पर गोविंददास जो पहले शाक्त थे वैष्णव हुए। प्रेमविलास में कविराज के बडे भाई का दिया हुआ आत्म-परिचय है जो उन्होंने श्रीनिवास आचार्य को दिया था। उसके अनुसार ये तेलिया बुधरी ग्राम में जन्मे थे। पिता का नाम चिरजीव सेन था।

तिलिया-बुधरी ग्रामे जन्म मोर हय।
पितार नाम चिरजीव सेन महाशय ॥
कनिष्ठ भ्रातार नाम हय श्री गोविंद।
एकोदरे दुइ भाइ परम स्वच्छन्द ॥

(प क त, भाग ५, परिशिष्ट, पृ ६०)

कहा जाता है कि कवि ने अपने पदो का सग्रह "गीतामृत" नाम से स्वय किया था।

(प स, पृ १७)

भक्ति-रत्नाकर ने गोविंददास की उपस्थिति खेतुरी उत्सव में बताई है। वहा पर उनके पदो का कीर्त्तन सुनकर वीरभद्र गोस्वामी अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

श्री गोविंद कविराजेर दुटि करे धरि।
कहे तुया काव्येर बालाई लैया मरि ॥

(प क त, भाग ५, परिशिष्ट, पृ ६६)

गोविन्ददास चक्रवर्ती

ये बोराकुली ग्राम-निवासी भक्त और पदकर्त्ता थे। गोविंददास श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। गोविंददास कविराज इनके समसामयिक और गुरुभाई थे। चक्रवर्ती महोदय की निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। रचना काल गोविंददास के रचना काल १५८३ ई के आसपास हो सकता है। पदकल्पतरु में इनके ६ पद प्राप्त है। भक्ति-रत्नाकर ग्रथ में इनका उल्लेख निम्न प्रकार से है —

आचार्येर अति प्रिय शिष्य चक्रवर्त्ती।
गीतवाद्य-विद्याय निपुण भक्ति मूर्त्ति ॥

वैष्णवदास के एक पद में गोविंददास चक्रवर्ती का उल्लेख है।

जय जय युगल-पिरितिमय श्रीयुत
चक्रवर्ती गोविंद। (प क त, पद १८)

पदकर्त्ता उद्धवदास ने भी अपने एक पद में गोविंददास का नाम दिया है।

श्रीदास गोकुलानद चक्रवर्ती श्री गोविंद
श्रीराम-चरण श्रील व्यास ॥

(प क. त, पद ३०९२)

---

१ भक्तमाल, प्रेम-विलास, भक्ति-रत्नाकर, सारावली, कर्णानद, मुक्ताचरित, अनुराग-वल्ली, नरोत्तम-विलास, श्रीनिवास-चरित्र।

गोस्वामीदास

प्रमविलास[1] और नरोत्तमविलास[2] में एक गोस्वामीदास का वर्णन है। ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य बताए गए हैं। इनका एक पद सेन[3] ने हस्तलिखित प्रति से उद्धृत किया है। इनका अधिक विवरण अप्राप्य है।

गौरागदास

गौरागदास नाम के चार व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है।

१-२ **नरोत्तम ठाकुर के दो शिष्य**। इनका उल्लेख नरोत्तम-विलास मे निम्न प्रकार से है –

जय—श्रीगौरागदास वायन—ठाकुर, जाहार मृदग वाद्य टाप जाय दूर ॥

दूसरे गौरागदास का उल्लेख भी उसी ग्रथ में है—

जय श्री गौरागदास बैरागी प्रवीण ।

(हि. ब्र. बु., पृ २०२ फुटनोट)

इन दोनो अवतरणो के अनुसार एक गौरागदास वादक थे और दूसरे वैरागी थे।

३ **श्रीनिवास आचार्य के शिष्य गौरागदास**–इनका उल्लेख प्रेमविलास[4] में है।

४ नरोत्तम-विलास[5] में एक चौथे **गौरागदास** का उल्लेख है जो जाह्नवा ठकुरानी के साथ खेतुरी उत्सव मे गए थे।

इन चारो में से कोई भी अभीष्ट पदकर्त्ता हो सकता है।

गौरीदास

गौरीदास नाम के दो व्यक्ति हुए। पदकल्पतरु में इस नाम से दो पद सगृहीत हैं। दोनो गौरीदासो का उल्लेख प्राचीन ग्रथो में मिलता है।

१. **गौरीदास पडित**—गौरीदास पडित चैतन्यदेव के अनन्य भक्त थे। ये उनके समकालीन थे। ये उनके कीर्त्तन की ओर प्रवल रूप से आकृष्ट हुए थे। नित्यानन्द प्रभु और चैतन्यदेव का साथ छोडकर ये घर नही जाते थे। इनके सवधियो ने चैतन्य से प्रार्थना की कि वे गौरीदास को विवाह करके घर रहने की आज्ञा दें। उन्होने चेष्टा की परन्तु गौरीदास अत्यन्त पीडित हुए। तव नित्यानन्द ने उन्हे घर पर चैतन्यदेव की मूर्ति प्रतिष्ठित करके घर रहने को कहा। इस पर वे राजी हो गए। ये गौरीदास अम्विका कलना वासी कसारी मिश्र के पुत्र थे। ऊपर दिए विवरण का उल्लेख ईशान के 'अद्वैत-प्रकाश' ग्रथ में है।

महाप्रभुर अंतरंग-भक्त गौरीदास ।
जवे गौर-सगे कैला कीर्त्तन-विलास ॥

---

१. प्रे. वि, विलास २०
२. न. वि., विलास १२
३. हि ब्र बु., पृ. ४०९
४. प्रे वि, विलास २०
५. न. वि, विलास ८

गौर-निताई-सग विनु घरे नाहि रय ।
तार वधु-गण महाप्रभुरे कहय ॥
एइ वालकेरे आज्ञा कर दार-ग्रहे ।
सभार आनद जदि थाके निज गृहे ॥
. . . इत्यादि (हि श्र वृ, पृ. ३९८)

इन गौरीदास का उल्लेख कृष्णदास कविराज ने भी किया है।[२]

२ गौरीदास कीर्त्तनिया—दूसरे गौरीदास नित्यानन्द के समसामयिक भक्त थे। इनके सवध में 'वैष्णव-वदना' मे निम्न उल्लेख है।

गौरीदास कीर्त्तनियार केशेते धरिया ।
नित्यानद स्तव कराइला निज शक्ति दिया ॥
(प क त, परिशिष्ट, पृ ८४)

नित्यानन्द-वदना सूचक एक पद पदकल्पतरु में है। इसमें गौरीदास का नाम है।

पहुमोर नित्यानद राय[१]
. . . .
गौरीदास हासि हासि, राजार निकटे वसि,
हाटेर महिमा किछु शुनि
(प क त पद, २३१३)

दोनो ही व्यक्ति पदकर्त्ता हो सकते है परन्तु नित्यानन्द विषयक रचना गौरीदास द्वितीय की ही हो सकती है।

चडीदास

चडीदास नाम से युक्त वहुत से पद प्राप्त है। प्राप्त पदो में चडीदास आदि, चडीदास, द्विज चडीदास, दीन चडीदास, वडु चडीदास, आदि कई प्रकार की भणितायें मिलती हैं। चडीदास के नाम से 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' नामक रचना भी प्राप्त है। चडीदास नामधारी एक ही व्यक्ति थे जिनकी यह सव रचनायें हैं अथवा कई व्यक्ति थे इस पर विद्वानों ने वहुत छानवीन की है। प्राय सव ही इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि दो चडीदास तो अवश्य ही थे।

१—चैतन्य देव के पूर्ववर्ती एक चडीदास थे, इस व त का निर्देश चैतन्यचरितामृत म मिलता है। चैतन्यदेव चडीदास के गीत सुनकर प्रसन्न होते थे। ये प्रसिद्ध वडु चन्डीदास माने जाते हैं और १४वी शती के हे। इनकी प्रसिद्ध रचना श्री कृष्ण कीर्तन है।

चडीदास विद्यापति रायेर नाटक गीति कर्णानद श्रीगीतगोविंद ।
स्वरूप रामानद सने महाप्रभु रात्रि दिने गाय शुने परम आनद ॥
(चै च, मध्यलीला, परि. २, पृ. १०६)

---

१ प क त, पद २२४२
२. प क त, पद २३५८, २३५९, २३६०

२—चैतन्य देव के परवर्त्ती एक व्यक्ति दीन चडीदास थे, इस वात का पता चलता है। दीन चडीदास की पदावली का सग्रह श्री मगोन्द्रमोहन वपु ने प्रकाशित किया है। दीन चडीदास के नाम से युक्त एक पद प्रा त है जिसमें नरोत्तमदास की वदना है, इससे वे नरोत्तम के शिष्य ज्ञात होते है।

जय नरोत्तम गुणधाम

दीन दयामय अधम दुर्गत पतिते करुणावान।

•• •• •• ••

दीन चंडीदास कह कत दिले पदयुग हबे लाभ॥

(प क.त., परिशिष्ट, पृ. १०४)

चन्द्रशेखरदास

चन्द्रशेखर नाम के दो कवि हुए हैं। एक तो वैष्णवदास के परवर्ती कवि ज्ञात होते ह क्योकि उनके सग्रह पदकल्पतरु में चन्द्रशेखरदास के कोई भी पद नही है। दूसरे चन्द्रशेखर आचार्य उपाधि से युक्त हैं। ये चैतन्यदेव के सवधी और अनन्य भक्त थे। अत ये उनक समसामयिक थे। चैतन्यदेव के सन्यास ग्रहण करके नीलाचल वास के समय आचार्य अन्य भक्तो के साथ प्रति वर्ष रथ-यात्रा के अवसर पर उनके दर्शन करने पुरी जाते थे। इनका उल्लेख चैतन्य-भागवत और चैतन्य-चरितामृत में है। इनके तीन पद पदकल्पतरु में प्राप्त है।

चैतन्य-चरितामृत के आदिलीला खड के दसवें परिच्छेद में इनका उल्लेख है —

श्री आचार्य रत्न नाम एक बड शाखा।
तार परिकर तार शाखा उपशाखा॥
आचार्य रत्नेर नाम श्री चन्द्रशेखर।
जार घरे देवीभावे नाचेन ईश्वर।

एक तीसरे चन्द्रशेखर का उल्लेख रामगोपालदास ने 'शाखा-निर्णय' ग्रथ में किया है जो नरहरि सरकार के शिष्य थे।[1]

चम्पति

चम्पति गोविंददास कविराज के मित्र और समसामयिक थे। गोविंददास के दो पदो में उनके साथ साथ चम्पति का नाम भी आया है। एक पद में विद्यापति के साथ भी उनका नाम आया है।

---

१. चन्द्रशेखर नाम वैद्य आशिला खडेते।
जार वसत बाटी खड क्षेत्र तलाते॥
रसिकराय विग्रह तार सेवा अतिशय।
स्वर्ण ठाकुर बलि मोगल बेढिला आलय॥
वकसे राखिला ठाकुर तबु न छांडिला।
चन्द्रशेखर मुंड मोगल फाटिला॥

विद्यापति कवि चम्पति भाण।
राह्मना हेरव तोहारि वयान ॥

(प क त, पद ३६८)

गोविंददास के दो पदो मे चम्पति का उल्लेख है। चम्पति कवि के ९ पद 'पदकल्पतरु' में प्राप्त है।

चूडामणिदास

'भुवन-मगल' ग्रथ के रचयिता चूडामणिदास का विशेष परिचय तो अज्ञात है। उन्होने स्वय जितना परिचय दिया है, वह निम्न है —

धनजय–पडित खडित भवबध
चूडामणिदास करे पाचाली–प्रबध।
रामदास–धनजय करिया सहाय
गौरजन्महेतु चूडामणिदास गाय।

(बा सा इ, पृ. २६२)

इससे इतना ज्ञात होता है कि चूडामणिदास नित्यानन्द के अनुचर धनजय पडित के शिष्य थे।

चैतन्यदास

वगीय वैष्णवो में कई व्यक्ति चैतन्यदास नाम के हुए। नीचे दिए दो व्यक्तियो के पदकर्त्ता होने की अधिक सभावना है। प्राप्त १५ पद किसकी रचना है, यह कहना कठिन है। परन्तु समस्त पदो की शैली इत्यादि समान है अत वे एक ही व्यक्ति के हो सकते है।

१ शिवानन्द सेन के ज्येष्ठ पुत्र चैतन्य दास थे, परन्तु इनका अन्य विशेष विवरण अज्ञात है। अत दूसरे चैतन्यदास की जो वशीवदन के पुत्र थे पदकर्त्ता होने की अधिक सभावना है।[1] इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि तो अज्ञात है परन्तु ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके निम्न पद से ज्ञात होता है कि ये चैतन्यदेव के सामने ही उत्पन्न हुए थे —

मोहे विहि विपरीत भेल।
अभिमाने मोहे उपेखि पहु गेल ॥

. .

कि करिब कि ना जानि हेल।
पराण–पुतलि गोरा मोरे छाडि गेल ॥

चैतन्य दासेर सेइ हेल।
पाइया गौरागचाद ना भजि तेजिल ॥

(प क त, पद ४६३)

२ चैतन्यदास का विवरण चैतन्य-चरितामृत में आदिलीला, दशम परिच्छेद में है

१. सुकुमार सेन—हि ब्र वु, पृ ९०

चैतन्य दास राम दास आर कर्णपूर
तिन पुत्र शिवानद प्रभुर भक्त शूर ।।

जगन्नाथदास

जगन्नाथदास नाम के कई व्यक्ति चैतन्य देव के भक्तो में हुए हैं। उनमें से दो का कुछ ब्यौरा ज्ञात है। काष्ठकाटा के जगन्नाथदास का नाम चैतन्य-चरितामृत में गदाधर पडित के शिष्यो में दिया हुआ है —

श्रीनाथ चक्रवर्ती आर उद्धारण दास ।
जितामिश्र काष्ठकाटा जगन्नाथ दास ।।
(चै च, आदिलीला, परि. १२ पृ. ६६)

परन्तु जो पद प्राप्त हैं उनमें चैतन्य देव के गृह जीवन का वर्णन है जिससे ज्ञात होता है कि पदकर्त्ता उनका समसामयिक था। एक दूसरे जगन्नाथदास चैतन्यदेव के अनन्य भक्त उडीसावासी थे। इनका उल्लेख देवकीनदनदास ने वैष्णव-वदना में किया है।

जगन्नाथदास वंदों संगीते पंडित।
जार गीत शुनिया श्री जगन्नाथ मोहित ।।
(गौ. प. त, उपक्रमणिका, पृ. ८५)

इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। चैतन्यदेव के नीलाचल वास के समय ये उपस्थित थे। इन्होने भागवत की व्याख्या की थी और पद वनाए थे। पदकल्पतरु में इनके १० पद प्राप्त है।

जयकृष्णदास

कर्णानन्द[1] में एक जयकृष्ण आचार्य का उल्लेख है जो श्रीदास के पुत्र और काचन गडिया के हरिदास आचार्य के पौत्र थे। उसी ग्रथ में इन्हे रामचन्द्र कविराज का शिष्य वताया है। नरोत्तम-विलास[2] में ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य वताए गए हैं। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। हो सकता है कि ये रामचन्द्र कविराज अथवा नरोत्तमदास के समसामयिक रहे हो। १६५३-१६५६ ई की एक हस्तलिखित प्रति में इनके ग्यारह पद सगृहीत हैं।[3] तीन वगाली पद कृष्णपदामृत सिन्धु में और एक पद कल्पलतिका में और पाए जाते हैं। अधिकाश पद सुवल-सम्वाद पर है।

जयचन्द्रदास

'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में जयचन्द्रदास के नाम से एक पद प्राप्त है। इन कवि का अन्य समस्त विवरण अज्ञात है। सुकुमार सेन महोदय का अनुमान है कि जयचन्द्रदास नाम के कोई अन्य व्यक्ति नही है, वरन् ये और 'जयकृष्णदास' एक ही व्यक्ति है, तथा लिखने की भूल मे जयकृष्ण की जगह जयचन्द्र हो गया है।

---

१. कर्णा., निर्यास ३
२. न. वि, विलास १२
३. हि. ब्र. बु, पृ. १९४

जानकीदास

जानकीदास नरोत्तमदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि अज्ञात हैं। ये नरोत्तमदास के समसामयिक थे। इनके केवल दो पद प्राप्त हैं। एक पद 'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में और एक 'हिस्ट्री आफ व्रजबुलि लिटरेचर' में दिया है। इनका उल्लेख प्रेम-विलास २० और नरोत्तम-विलास २० में है।

जानकीवल्लभ

'अप्रकाशित पद-रत्नावली' में जानकीवल्लभ के नाम का एक पद सगृहीत है। प्रेम-विलास[१] में नरोत्तमदास के शिष्यो मे एक जानकीवल्लभ चौधरी का नाम आया है। नरहरि ने अपने ग्रथ नरोत्तम-विलास[२] में इन्हे जानकीवल्लभ ठाकुर करके सम्बोधित किया है। इससे ये ब्राह्मण ज्ञात होते हैं। अन्य विवरण अज्ञात हैं।

'द्विज जानकी' और 'दास जानकी' नाम से भी तीन पद एक हस्तलिखित प्रति में, जो 'सजनीकात' दास के पास हैं, पाए जाते है।[३] खेतुरी उत्सव में एक द्विज जानकी उपस्थित थे। कर्णानन्द[४] और प्रेम-विलास[५] में एक दास जानकी श्रीनिवास के शिष्यो में बताए गए हैं। सेन महोदय इन दोनो को एक ही व्यक्ति मानते है।

ज्ञानदास

ज्ञानदास श्रेष्ठ पदकर्त्ता थे। इन्होने बगाली भाषा और व्रजबुलि दोनो में ही रचना की है। स्वर्गीय रमणीमोहन मल्लिक ने ज्ञानदास के पदो का सकलन 'ज्ञानदास पदावली' के नाम से किया है। पदकल्पतरु में उनके १८६ पद हैं। 'अप्रकाशित पदरत्नावली' में और ५६ पद सगृहीत हैं। वर्दवान जिले के उत्तर में स्थित 'कादडा' ग्राम में इनका जन्म १५३० ई में हुआ था। उस ग्राम में इनके सस्मरण में प्रतिवर्ष वैष्णव सम्मेलन होता है। भक्ति-रत्नाकर ग्रथ में इसका उल्लेख यो है —

> राढ़देशे कावडा नामेते ग्राम हय।
> तथाय मगल ज्ञानदासेर आलय॥
>
> (गौ प त, उपक्रमणिका, पृ. ९६)

ज्ञानदास जाति के ब्राह्मण थे। इन्होने जाह्नवा देवी से, जो नित्यानन्द प्रभु की पत्नी थी, मत्र दीक्षा ली थी। अत चैतन्य-चरितामृत में इन्हे नित्यानन्द के शिष्यो में परिगणित किया गया है।

> पीताम्बर माधवाचार्य दास दामोदर।
> शकर मुकुद ज्ञानदास मनोहर।
>
> (चै च, आदिलीला, परि ११, पृ ६२)

---

१ प्रे वि, विलास २०
२ न वि, विलास १२
३ हि व्र बु, पृ १९८
४ कर्णा, निर्यास २
५ प्रे वि, विलास २०

ज्ञानदास कटवा उत्सव और खेतुरी उत्सव दोनो में उपस्थित थे, इसका उल्लेख 'नरोत्तम-विलास' मे मिलता है —

श्रील रघुपति उपाध्याय, महीधर ।
मुरारि, मुकुद, ज्ञानदास मनोहर ।

(गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ. ९७)

ज्ञानदास ने राधाकृष्ण लीला वर्णन मे चडीदास का अनुगमन किया है।

तुलसीदास

'क्षणदा-गीत-चितामणि' में केवल एक पद तुलसीदास के नाम से सगृहीत है।[1] इस पद की प्रथम पक्ति निम्न है —

राधा कान निकुज मदिर माझ

इसी प्रथम पक्तिवाला एक पद गोविंददास का भी मिलता है परन्तु शेष पदो के भाव भिन्न भिन्न हैं। तुलसी नाम से युक्त पद की अन्तिम पक्ति से मिलती जुलती कवि शेखर के एक पद की भी अन्तिम पक्तिया है। अत यह पद किसका है, यह कहना कठिन है। 'तुलसीदास' का कुछ विशेप परिचय भी प्राप्त नही है। प्रेम-विलास[2] और कर्णानन्द[3] में एक तुलसीरामदास का नाम आया है जो श्रीनिवास के शिष्य थे।

दिव्यसिह

दिव्यसिह गोविंददास कविराज के पुत्र और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।[4] इनका केवल एक पद 'सकीर्त्तनामृत' में सगृहीत है। ये खेतुरी उत्सव में थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। दिव्यसिह रचित केवल एक पद सकीर्त्तनामृत में प्राप्त है।

देवकीनदनदास

देवकीनदनदास के पाच पद पदकल्पतरु में दिए है। कहा जाता है कि देवकीनदनदास का पूर्व नाम चापाल गोपाल था। उन्होने श्रीवास के उस प्रागण में जहा वैष्णव-गण कीर्त्तन करते थे शक्ति पूजा की सामग्री रख कर उन लोगो को शाक्त सिद्ध करने का पाप किया था जिसके फलस्वरूप उन्हे कुष्ठ हो गया। श्रीवास पडित ने क्षमा करके वैष्णवों की वदना करने की आज्ञा दी अत उन्होने 'वैष्णव-वदना' ग्रथ लिखा।

वैष्णव निन्दने तोमार एतेक दुर्गति। वैष्णव वंदना करि शुद्ध कर मति ॥

(गौ प. त, उपक्रमणिका, पृ. ९८)

देवकीनदनदास पुरुपोत्तमदास के शिष्य और समसामयिक थे। उन्होंने वैष्णव-वदना मे कहा है।

---

१. क्ष. गी. चि, पद ३०५
२. प्रे. वि., विलास २०
३. कर्णा, निर्यास १
४. कर्णा, निर्यास १

पुरुषोत्तम पदाश्रय करि गिया घरे।

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ. ९८)

पुरुषोत्तमदास नित्यानन्द प्रभु के शिष्य थे। पद और वैष्णव-वदना के अतिरिक्त इन्होने वैष्णवाभिधान नामक एक ग्रथ और बनाया था।

द्विज गगाराम

'क्षणदा-गीत-चितामणि' में एक पद द्विज गगाराम नाम से पाया जाता है। यह नित्यानन्द प्रभु की वदना में लिखा गया है। सुकुमार सेन का कथन है कि उन्होने वगीय साहित्य परिषद् की एक हस्तलिखित पोथी में भी इस नाम से अकित एक पद देखा है। अत द्विज गगाराम पदकर्त्ता का होना निश्चित ही है। जाह्नवा देवी के एक भाई 'वडु गगादास' थे। ये गौरीदास पडित के शिष्य थे।[1] इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में है। ये द्विज गगादास खेतुरी उत्सव मे उपस्थित थे। सम्भवत इन्ही का पूरा नाम गगारामदास रहा हो और ये ही अभीष्ट पदकर्त्ता रहे हो।

द्विज हरिदास

चैतन्यदेव के कई भक्त इस नाम के थे। द्विज हरिदास काचनगडिया स्थान के रहने वाले थे। जीवन के उत्तर काल मे वे जाकर वृदावन में रहने लगे थे। श्रीनिवास आचार्य ने उनके दो पुत्रो को दीक्षा दी थी।[2] अपने एक पद में इन्होने श्रीनिवास की उच्चता बताई है।[3] इससे ये श्रीनिवास के भक्त ज्ञात होते है। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। १५३३ ई के आसपास उपस्थित थे। इनकी एक रचना 'नाम-सकीर्त्तन' है।

दूसरे हरिदास चैतन्य देव के साथ नीलाचल पर रहते थे। ये महाप्रभु को कीर्त्तन ज्ञान सुनाया करते थे। एक बार इन्होने चैतन्यदेव के लिए भिक्षा माग कर लाए हुए मोटे चावलो को शिखी माइती की बहन के महीन चावलो से बदल लिया। इस अवसर पर उन्होने उससे बातचीत भी की थी। चैतन्य देव की आज्ञा थी कि उनके भक्त और साथी स्त्रियो से साक्षात्कार न करे और न बात करे। इस अपराध पर उन्होने हरिदास को त्याग दिया। ऐसा कहा जाता है कि दु खी हरिदास ने गगा में डूब कर प्राण दे दिए।

चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के दसवें अध्याय में दो हरिदासो का उल्लेख है —

बड हरिदास आर छोट हरिदास।

दुइ कीर्त्तनीया रहे महाप्रभु आश।

(चै च, आदिलीला, परि १०, पृ० ६१)

परन्तु चैतन्यचरितामृत के आदिखड के आठवें अध्याय में एक तीसरे हरिदास का भी उल्लेख है।

---

१ भ र, पृ ६७३

२ प क त, पद १७, और भक्ति-रत्नाकर

३ प क त, पद १७, ३०१४

अते श्रीनिवास पद सेवायुक्त जे सम्पद

से सम्पदे सम्पदी जे हय

पडित गोंसाञिर[1] शिष्य अनंत आचार्य ।
कृष्ण प्रेममय तनु उदार महा आर्य ॥
ताहार अनत गुण के करु प्रकाश ।
तार प्रिय शिष्य इहो पडित हरिदास ॥

.. ..

तिहों बड कृपा करि आज्ञा दिले मोरे ।
गौरागेर शेष लीला वर्णिवार तरे ॥

(चै. च, आदिलीला, परि. ८, पृ० ५३)

इसके अनुसार ये तीसरे हरिदास गदाधर पडित की शिष्य-परम्परा में थे और कृष्णदास कविराज के समसामयिक थे ।

एक चौथे हरिदास ठाकुर और थे। ये यवन थे परन्तु इन्होने वैष्णव धर्म ग्रहण कर लिया था।

हरिदास का उल्लेख वैष्णवदास के एक पद में है

गौरांगचादेर प्रिय परिकर, द्विज हरिदास नाम।
कीर्त्तन विलासी प्रेम सुखराशि, युगल–रसेर धाम ॥
ताहार नदन प्रभु दुइ जन, श्रीदास गोकुलानंद

. . .

गोरा–गुणमय सदय हृदय, प्रेममय श्रीनिवास ॥
आचार्य ठाकुर खेयाति जाहार, दोहे रहे तार पाश।
पितृ-अनुमति जानिया ऐ दोहे, हइला ताहार शाखा ॥

(प. क. त., पद १७)

धरणी

धरणी के नाम से केवल चार पद पदकल्पतरु में दिए है। एक पद में वे कहते है --

पहु मोर श्री श्रीनिवास
अविरत रामचन्द्र पहु विहरत
सगे नरोत्तमदास

(प. क त, पद २३८१)

इससे ज्ञात होता है कि धरणी श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। न यह ही ज्ञात होता है कि ये आचार्य के समसामयिक थे। श्री निवास आचार्य की जीवनी इत्यादि का विवरण जिन जिन ग्रथो मे दिया है उनमे किसी में भी धरणी का नाम नही है। हो सकता है कि यह श्रीनिवास की शिष्य-परम्परा मे ही रहे हो। धरणी श्रेष्ठ कवि जान पडते है यद्यपि पद सख्या बडी नगण्य है।

नयनानद

नयनानन्द वाणीनाथ मिश्र के जो गदाधर पडित के भाई थे, पुत्र थे। ये चैतन्य देव के

---

१. गदाधर पंडित

प्रमुख भक्त थे। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है परन्तु वे खेतुरी उत्मव में उपस्थित थे। अत १५८३ ई की उपस्थिति ज्ञात है। पदकल्पतरु मे इनके २५ पद प्राप्त हैं। नयनानन्द का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत, आदिलीला के १२ वें परिच्छेद में है।

अनत आचार्य कविदत्त मिश्र नयन।
गगा मत्री मामुठाकुर कठाभरण॥

'प्रेम-विलास' ग्रथ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति में, जो नवद्वीपवासी रसिकलाल वावाजी के पास है, निम्न उल्लेख है [1]

पडित गोसाजीर भ्रातुष्पुत्र श्री नयनानद।
पुष्प गोपाल, गोपालदास आर ध्रुवानद॥
(प क त, खंड ५)

नयनानन्द के समस्त पद गौराग विपयक हैं। कृष्ण लीला सवधी एक भी पद प्राप्त नही है।

नरहरिदास

नरहरिदास नाम के दो व्यक्ति हुए थे। एक नरहरि चक्रवर्ती,दूसरे नरहरि सरकार। नरहरि चक्रवर्ती सत्रहवी शती में हुए थे। अत उनसे हमारा कोई प्रयोजन नही है। ये भक्ति-रत्नाकर ग्रथ के प्रणेता हैं। नरहरि सरकार चैतन्यदेव के समसामयिक और शिष्य थे। इनका जन्म १४७८ ई और मृत्यु १५४१ ई है। इनकी जन्मभूमि वर्दवान जिले का श्रीखड ग्राम है। उनके पिता का नाम नारायण देव था। ये लोग वैद्य परिवार के व्यक्ति थे और इनके वडे भाई मुकुद उस समय के पठान नरेश के वैद्य थे। नरहरिदास ने गौराग-लीला सवधी पद कदाचित् सर्वप्रथम भाषा में लिखे। निम्न पद से ऐसा ही ज्ञात होता है —

गौर लीला दर्शने,　इच्छा वड हय मने,
भाषाय लिखिया सब राखि।
किछु किछु पद लिखि,　जदि इहा केह देखि,
प्रकाश करये प्रभु लीला॥
(गौ प त, पृ ११-१२)

नरहरिदास के पदो में गौराग के मिलने की तीव्र उत्कठा है। उनके पदो में कुछ कुछ वैसी ही मिलन-इच्छा है जैसी गोपियो में कृष्ण के प्रति दिखाई जाती है। चैतन्यदेव ने दक्षिण भ्रमण के समय उनका स्मरण किया था, इसका उल्लेख गोविंददास के कडचा में है।

कखन वलेन कोथा प्राण नरहरि
हरिनाम शुनि तोरे आलिगन करि॥

नरहरि सरकार के दो सस्कृत ग्रथो का उल्लेख जगद्बधु बाबू ने किया है। ये ग्रथ 'भक्ति-चन्द्रिका-पटल' और 'भक्तामृत-अष्टक' हैं।

---

१. प क त, पचम खड, प १२७

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास राजा कृष्णानन्द दत्त के पुत्र थे। इनकी माता का नाम नारायणी था। राजशाही परगने के खेतुरी स्थान में इन लोगो की राजधानी थी। नरोत्तमदास ने पिता की मृत्यु के अनन्तर राज्य अपने भतीजे को दे दिया और स्वय वृंदावन चले गए। 'नरोत्तम-विलास' में उल्लेख है कि वे पिता की जीवित अवस्था मे ही वृंदावन चले गए थे। इनकी निश्चित जन्म तिथि अज्ञात है। जगद्वधु वावू ने गौर-पद-तरगिणी की भूमिका में लिखा है कि वे पचदश शती के मध्य भाग में उत्पन्न हुए थे। दो तिथिया ज्ञात है। १५८२ ई. मे वे श्रीनिवास आचार्य और श्यामानन्द के साथ वृंदावन से बगाल लौट कर आए। १५८३ ई में उन्होने खेतुरी मे महोत्सव किया जिसमें समस्त प्रमुख वैष्णव सम्मिलित हुए थे। इस उत्सव में 'रस-कीर्त्तन' की जो गरानहाटी शैली कहलाती है वह नरोत्तम द्वारा प्रारम्भ हुई थी।

एया सर्व-महांत कहय परस्परे।
प्रभुर अद्भुत सृष्टि नरोत्तम-द्वारे॥

.. ..

नरोत्तम-कंठ-ध्वनि अमृतेर धार।
जे पिये ताहार तृष्णा वाढ़े अनिवार ॥ (न. वि., वि. ७)

पदकल्पतरु में इनके ६४ पद प्राप्त है।

नित्यानंददास

नित्यानन्ददास का असली नाम वलरामदास था। ये जाह्नवा देवी के शिष्य थे। इन्होने 'प्रेम-विलास' ग्रथ की रचना की थी। इस ग्रथ का समाप्ति काल १५२२ शक अथवा १६०० ई. दिया हुआ है। इस रचना के अन्त में इन्होने कुछ विस्तार से आत्म-परिचय दिया है। इनका उल्लेख चैतन्य-भागवत, चैतन्य-चरितामृत, तथा वैष्णव-वदना ग्रथो मे है।[1] 'कृष्णपदामृत-सिन्धु' मे इनके चार पद है।

तीन अन्य नित्यानन्द भी हुए है—

१. वशीवदन के कनिष्ठ पुत्र।
२. चतुर-धुरीण नित्यानन्द, 'रस कल्प वल्ली' के लेखक के पितामह।[2]
३. नित्यानन्द प्रभु के एक शिष्य।[3]

परन्तु इन तीनो की कोई भी रचनाए प्राप्त नही है। अत पहले नित्यानन्ददास ही

---

१. प्रेम रसे महामत्त वलरामदास। नित्यानंद चंद्रे जार अधिक विश्वास॥ चै० भा०।
बलरामदास कृष्णप्रेम रसास्वादी। नित्यानंद नामे हय परम उन्मादी ॥
(चै. च., आदिलीला परि. १२, पृ. ६२)।
संगीतकारक वंदों वलरामदास। नित्यानंद चंद्रे जार अधिक विश्वास॥ वैष्णव-वंदना।

२. बं. सा. प. प., भाग ३७, पृ. १०१

३. प्रेम-विलास

अभीष्ट पदकर्त्ता है । इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है । ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे, इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में है ।[1]

नृसिह देव

नृसिह देव के नाम से केवल चार पद प्राप्त है । इनमे से तीन पद पदकल्पतरु में और एक सकीर्त्तनामृत में है । नृसिह देव के विषय में अधिक विवरण ज्ञात नही है । सेन महोदय के अनुमान से नृसिह देव गोविंददास कविराज के मित्र और समसामयिक थे ।[2]

जगद्वधु बाबू ने 'गौर-पद-तरगिणी' की भूमिका में दो नृसिह देवो का उल्लेख किया है —

१ नित्यानन्द प्रभु के परिकर 'नृसिह देव' जिनकी उपाधि कविराज थी ।

२ उडीसा वासी नृसिह देव ।

'भक्ति-रत्नाकर' की दसवी तरग में एक प्रसग है । श्रीनिवास आचार्य खेतुरी उत्सव में सम्मिलित होने नरोत्तम ठाकुर के घर पधारे है । इस प्रसग में उनके भक्त और उनकी शिष्य-मडली का उल्लेख है । उन सबके नाम दिए गए है । उसी मे एक नृसिह देव का भी नाम दिया है —

श्रीनृसिह कविराज महाकवि जेहों । जार भ्राता नारायण कवि श्रेष्ठ तेंहो ।

(प क त, परिशिष्ट, पृ १४४)

प्रेम-विलास ग्रथ में भी नृसिह देव का उल्लेख है ।

नरोत्तमेर स्वगण नरसिह महाशय
दूर देशे पक्वपल्ली जार राज्य हय ।

गोविंददास कविराज के एक पद में भी नृसिह देव का उल्लेख है

कमलालालित, चरण कमल मधु
पाओये सोई सुजान ।
राजा नरसिह रूप नारायण
गोविंददास अनुमान ।

इस सबसे निम्न चार बातें ज्ञात होती हैं —

१ नृसिह देव पक्वपल्ली के शासक थे ।

२ ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे ।

३ खेतुरी उत्सव अर्थात् १५८३ ई में उपस्थित थे ।

४ नृसिह देव कवि थे ।

अत ये ही नृसिह देव अभीष्ट पदकर्त्ता है । इससे अधिक इनके बारे में कुछ भी ज्ञात नही है ।

परमानन्ददास

१ परमानन्ददास के पिता का नाम शिवानन्द सेन था । शिवानन्द सेन चैतन्य

---

१ मुरारि, चैतन्य, ज्ञान दास, महीधर । परमेश्वरदास, बलराम विज्ञवर ॥

२ हि म बु, पृ १५५

देव के अनन्य भक्त थे। उन्ही की इच्छानुसार शिवानन्द ने पुत्र का नाम परमानन्ददास रक्खा था। पुरीदास नाम से भी वे अभिहित किए जाते थे जैसा कि वैष्णवाचारदर्पण मे है :—

गुणचूड़ा सखी हन कवि कर्णपूर।
काचड़ा पाड़ाय वास, चैतन्य शाखा शूर॥
वृद्ध पदांगुष्ठ प्रभु जांर मुखे दिला।
पुरीदास नामबलि शक्ति सचारिला॥

चैतन्यदेव ने उनको 'कवि कर्णपूर' की उपाधि दी थी। वे सात वर्ष की अवस्था मे ही काव्य रचना करने लगे थे, ऐसा कृष्णदास कविराज ने कहा है।

आर दिन प्रभु कहे पड पुरीदास।
एक श्लोक करि तेहो करिल प्रकाश॥
सात वत्सरेर शिशु नाहि अध्ययन।
ऐछे श्लोक करे लोके चमत्कृत हन॥

परमानन्ददास काचडा पाडा नामक ग्राम मे १५२७ ई मे उत्पन्न हुए थे। दो तिथिया जो इनकी रचनाओ की तिथिया हैं और ज्ञात है। एक तो सस्कृत काव्य 'चैतन्य-चरितामृत' की रचना तिथि जो १५७० ई है और दूसरी 'चैतन्य-चन्द्रोदय' नाटक की रचना तिथि जो १५७२ ई. है। ये खेतुरी उत्सव में भी उपस्थित थे। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत में निम्न प्रकार है —

चैतन्य दास, राम दास आर कर्णपूर।
तिन पुत्र शिवानदेर प्रभुर भक्त शूर॥

पदकल्पतरु में इनके बारह पद प्राप्त है। इन्होने दो पद ब्रज भाषा मे भी लिखे है॥ (प क त, पद २८५८ और २८७१)

२. परमानन्द गुप्त कवि कर्णपूर ने एक परमानन्द का उल्लेख किया है जो कृष्ण सबधी पद लिखते थे।[1] पदकल्पतरु में इनके नाम से बारह पद है। इनमे से तीन[2] पद कृष्णलीला सबधी है। ये पद इन परमानन्द गुप्त के ही हो सकते है। जयानन्द ने चैतन्य-मगल में उल्लेख किया है कि परमानन्द ने चैतन्यदेव पर एक कविता लिखी है। चैतन्य-चरितामृत मे इनका उल्लेख है।[3]

पदकल्पतरु के एक पद (२९०६) की अन्तिम पक्तिया निम्न हैं :—

श्रीरूपमंजरिचरण-हृदये धरि
कहे परमानंददास॥

रूपमजरी, रूप गोस्वामी का भक्त नाम था। अत यह तो निर्विवाद है कि यह पदकर्त्ता रूप गोस्वामी के शिष्य या प्रशसक रहे होंगे। एक परमानन्द भट्टाचार्य और थे

---

१. परमानंद-गुप्तो यत-कृता कृष्णस्तवावली (गौरगणोद्देश-दीपिका, १९९)
२. प. क. त, पद १८३, ६७२, २९०६
३. परमानन्द गुप्त कृष्ण भक्त महामति।
पूर्व्वे जार घरे नित्यानंदेर वसति॥(चं. च., आदिलीला, परि. १२, पृ. ६३)

३ कविपति वलराम जो रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे। ये बुधरी ग्रामवासी थे।

वलरामदास नाम से सयुक्त १३६ पद पदकल्पतरु मे प्राप्त है। इनकी निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

विहारीदास

विहारीदास का एक पद सेन ने अपनी पुस्तक[1] मे उद्धृत किया है। प्रेम-विलास[2] और नरोत्तम-विलास[3] में एक विहारीदास का उल्लेख है जो नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे। कदाचित् ये ही पदकर्त्ता हो। अधिक विवरण अज्ञात है।

व्रजानद

व्रजानन्द का बहुत थोडा-सा ही विवरण ज्ञात है। कर्णानन्द के अनुसार ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे, और वृन्दावन मे रहते थे।[4] इनका केवल एक पद पदकल्पतरु मे सगृहीत है। इनकी निश्चित जन्मतिथि और मृत्युतिथि अज्ञात है।

भागवताचार्य

भागवताचार्य का नाम रघुनाथ था। वे भागवत पुराण का पारायण बडे सुन्दर ढग से करते थे। ये चैतन्यदेव के अनुयायी और गदाधर पडित के शिष्य थे। नीलाचल जाते समय चैतन्यदेव इनके घर एक रात के लिए ठहरे थे। इनकी भागवत सुन कर वे बडे प्रसन्न हुए थे और इन्हे भागवताचार्य की उपाधि दी। इस घटना का उल्लेख चैतन्य-भागवत मे है।[5] रघुनाथ ने 'कृष्ण-प्रेम-तरगिणी' नामक ग्रथ की रचना की थी। इस ग्रथ का उल्लेख कवि कर्णपूर ने अपने ग्रथ 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में किया है। 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' का समाप्तिकाल १५७५ ई है। अत रघुनाथ का ग्रथ उससे पहले ही लिखा गया होगा। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। परतु १५७५ ई से पहले रहे होगे यह निश्चित है। इनका एक पद भी "कृष्ण-प्रेम-तरगिणी" में है।

भूपति

भूपति और भूपतिनाथ नाम के चार और दो पद पदकल्पतरु मे सगृहीत है। डा सुकुमार सेन[6] और सतीशचन्द्र राय[7] का अनुमान है कि भूपति नाम का कोई स्वतत्र पदकर्त्ता नही था। यह चम्पति की ही रचनायें है जो भूपति भणिता से युक्त है। इस प्रकार ये गोविददास के समसामयिक ठहरते हैं।

मथुरादास

मथुरादास नाम के तीन व्यक्तियो का उल्लेख प्राचीन ग्रथो मे मिलता है।

---

१ हि ब्र बु, पृ ४१०
२ प्रे वि, विलास २०
३ न वि, विलास १२
४ कर्णानद, निर्यास १
५ चै भा, शेषखड, अ ५
६ हि ब्र बु, पृ १५१, १५३
७ प क त, पाचवा भाग, पृ १९३

१ और २—श्री निवास आचार्य के शिष्य। इनका उल्लेख प्रम-विलास के २० विलास मे और कर्णानद के प्रथम निर्यास मे है।

३ नरोत्तम के शिष्य। इनका उल्लेख भी प्रेम-विलास के वीसवें विलास और नरोत्तम-विलास के बारहवें विलास में है। अधिक विवरण अज्ञात है। पदकल्पतरु और कीर्त्तनानद मे जो एक पद सगृहीत है, कदाचित् इन्ही मे से किसी की रचना है।

मनोहरदास

मनोहरदास नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है।

१ नित्यानंद प्रभु के शिष्य-शाखा वाले मनोहरदास—इन का उल्लेख चैतन्य-चरितामृत मे है —

शकर, मुकुंद, ज्ञानदास, मनोहर

(चैं. च, आदिलीला, परि १०, पृ. ६३)

ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इसका उल्लेख नरोत्तम-विलास में है।

श्रील रघुपति उपाध्याय, महीधर
मुरारि, मुकुंद, ज्ञानदास मनोहर।[1]

२. बावा आउल मनोहरदास—ये भी नित्यानद की शिष्य-शाखा मे थे। प्रेम-विलास ग्रथ में उल्लेख है कि ये जाह्नवा देवी के मत्र-शिष्य थे और इनका नाम चैतन्यदास भी था।

मोर ठकुराणी शिष्य चैतन्यदास
आउलिया वलि ताके सर्वत्र प्रकाश।[2]

(ग्रथकार नित्यानंददास वाक्य)

इनका पूर्व नाम चैतन्यदास था इस वात का उल्लेख 'सारावली' ग्रथ मे भी है।

आदि नाम मनोहर, चैतन्य नाम शेष।
आउलिया हइया वुले स्वदेश ओ विदेश॥[3]

प्रेम-विलास ग्रथ मे भी मनोहरदास की उक्ति दी है —

विष्णुपुर मोर घर हय वार क्रोश।
राजार देशे वास करि हइया सतोष॥

(चैतन्य मनोहरदास वाक्य)

ये वैष्णव राजा वीर हाम्वीर के पुस्तकाध्यक्ष थे। इन्होने १५७९ ई के पहले ही सन्यास ले लिया था। वीर हाम्वीर की मृत्यु के वाद ये भ्रमण करने लगे और हुगली जिले के वदनगज में कुछ दिन रहे। वहा से १६३८ ई मे वृन्दावन गए परतु रास्ते में ही जयपुर मे इनका देहावसान हो गया। कहा जाता है "पदसमुद्र" नाम मे इन्होने एक वृहद् पद-सग्रह किया था। एक दूसरा सग्रह-ग्रथ "निर्यास-तत्व" भी है। "दिनमणि-चन्द्रोदय" इनकी अपनी रचना है।

कौन से मनोहरदास पदकर्ता है यह कहना कठिन है। कहा जाता है कि "पदसमुद्र" में जो मनोहर नामाकित पद है वे इनके ही है। पदकल्पतरु मे इनके ६ पद सगृहीत हैं।

---

१. २. ३. गौ. प. त., उपक्रमणिका १४०-४१

माधव घोष

माधव घोष गोविंद घोष के भाई थे। ये चैतन्यदेव के अनन्य भक्त और समसामयिक थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका उल्लेख "चैतन्य-चरिता-मृत", "चैतन्य-भागवत" और "वैष्णव-वदना" मे है।

श्री माधव घोष मुख्य कीर्त्तनीया गणे।
नित्यानद प्रभु नृत्य करे जार गाने ॥
(चै च, आदिलीला, परि ११, पृ ६२)

सुकृती माधव घोष कीर्त्तने तत्पर।
हेन कीर्त्तनिया नाहि पृथिवी भितर ॥
जाहारे कहेन वृन्दावनेर गायन।
नित्यानद स्वरूपेर महाप्रियतम। (चै भा)
वदिब माधव घोष प्रभुर प्रीतिस्थान।
प्रभु जारे करिला अभग स्वरदान। (वैष्णव-वदना)
(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १४३)

माधव घोष रचित ५५ पद प्राप्त है।

माधवदास

माधवदास अथवा माधवाचार्य चैतन्यदेव की दूसरी पत्नी विष्णुप्रिया देवी के चचेरे भाई थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। ये चैतन्यदेव के समसामयिक थे और खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इनके पिता का नाम सनातन मिश्र और माता का नाम विधु-मुखी था। प्रेम-विलास ग्रथ में इनका विस्तृत परिचय है। उसी में इनके गीतकार होने का भी उल्लेख है।

श्रीमद्भागवतेर श्रीदशम स्कध। गीत वर्णनाते तिहों करि नाना छद।
राखिला ग्रयेर नाम श्रीकृष्ण मगल। श्रीकृष्ण-चैतन्य पदे समर्पण कैल ॥
(गौ प त, उपक्रमणिका पृ १४५)

पदकल्पतरु में इनके ५ पद प्राप्त है।

माधवीदास

माधवीदास को कुछ लोगो ने शिखि माहती की जो चैतन्यदेव के उडिया भक्त थे, 'बहन' माधवी बताया है।[1] पर डा सुकुमार सेन और सतीशचन्द्र की सम्मति इसके विरुद्ध है। माधवीदास के नाम से कोई भी उडिया पद नही प्राप्त है, और न इनके प्राप्त पदो में उडिया का कोई चिह्न है। पदकल्पतरु के २२४० सख्यक पद से वे चैतन्यदेव के तिरोधान के पीछे के व्यक्ति जान पडते है।

जे देखये गोरा मुख सेइ प्रेमे भासे
माधवि वचित हैल निज कर्म दोषे ॥

---

१ गौ प त, पृ १४७ और प क त, पाचवा खड, पृ १९९ (पदकल्पतरु के सपादक का [illegible] है परन्तु उन्होने इस मत वाले का उल्लेख यहा किया है)

इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है।

मुरारि गुप्त

मुरारि गुप्त का जन्म सिलहट में हुआ था। परतु उनके कुटुम्ब वाले आकर नवद्वीप मे रहने लगे। मुरारि गुप्त चैतन्य के पडोसी और गुरुभाई थे। परतु वे चैतन्य देव से कुछ वयस्क थे। ये उनके अनन्य भक्त और कवि थे। मुरारि गुप्त ने चैतन्यदेव की आदिलीला का सुन्दर विवरण अपने "चैतन्य-चरितामृत" में जो कडचा कहलाता है, दिया है। वैष्णव-वदना में उन्हे हनुमान का अवतार वताया है।

वंदिव मुरारि गुप्त भक्ति शक्तिमंत।
पूर्व अवतारे जांर नाम हनुमंत॥

(गौ प. त, उपक्रमणिका, पृ. १४१)

चैतन्य-चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने उनके सुदर चरित्र का उल्लेख किया है।

श्री मुरारि गुप्त शाखा प्रेमेर भांडार।
प्रभुर हृदय द्रवे शुनि दैन्य जांर॥
प्रतिग्रह ना करे ना लय कार धन।
आत्मवृत्ति करि करे कुटुम्ब भरण॥

(चै च, आदि लीला, परि. १०, पृ० ५८)

मुरारि गुप्त की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। जगद्वधु वावू के अनुसार वे १५१४ शक में उत्पन्न हुए थे। मुरारि गुप्त के कडचा की समाप्ति १५१३ ई० में हुई थी। इसी कडचा में १२ पद मिलते है। यह कडचा अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु है क्योकि इसमे चैतन्य देव का प्रारभिक गृहजीवन दिया हुआ है।

मोहनदास

मोहनदास श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। ये गोविंददास कविराज के मित्र थे क्योकि उनके एक पद मे "मोहन गोविंददास पहु" करके भणिता दी हुई है। इनकी निश्चित जन्म-तिथि अज्ञात है। मोहनदास का उल्लेख कर्णानद ग्रथ मे निम्न प्रकार है —

श्रीमोहनदास नाम जन्म वैद्यकुले।
नैतिक भजन जांर अति निरमले॥

(गौ. प त, उपक्रमणिका, पृ. १५४)

पदकल्पतरु मे इनके ३० पद प्राप्त है।

यदुनदनदास

इस नाम के दो व्यक्ति हुए है।

१ यदुनदनदास चक्रवर्ती चैतन्यदेव के भक्त गदाधरदास के शिष्य थे। आगे चल कर ये नित्यानद प्रभु के साथी हुए। इनकी निश्चित जन्मतिथि तो अज्ञात है। ये कटवा मे रहते थे। सन् १५८३-८४ ई मे इन्होने एक उत्सव किया था जिनमें समस्त वैष्णव महाजन उपस्थित हुए थे। इसका उल्लेख भक्ति-रत्नाकर के ११वे परिच्छेद में है।

भक्ति-रत्नाकर में इनके गीतकार होने का उल्लेख निम्न प्रकार है —

यदुनदनेर चेष्टा परम आश्चर्य।
दीन प्रति चेष्टा जैछे ना कहिले नय॥

. . .

जे रचिल गौरागेर अद्भुत चरित
द्रवे दारु पाषाण शुनिया जार गीत॥

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १५६)

२ ये यदुनदनदास मालिहाटी ग्राम के वैद्य परिवार के वशज थे। वे श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। आगे चल कर उनकी पुत्री हेमलता ठकुरानी की सेवा में नियुक्त होगए थे। इन्होंने स्वरचित "कर्णानद" मे अपना सक्षिप्त परिचय दिया है। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इन्होंने अपने ग्रथ "कर्णानद" का समाप्तिकाल दिया है जो १६०८ ई है। पदो और कर्णानद के अतिरिक्त भी इन्होंने कई ग्रथ लिखे हैं जो निम्न हैं —

(१) राधा-कृष्ण-लीला-रस-कदम्ब—यह रूप गोस्वामी के सस्कृत नाटक 'विदग्ध-माधव' का पद्यानुवाद है।

(२) गोविन्द-लीलामृत—यह कृष्णदास कविराज के इसी नाम के ग्रथ का सस्कृत से अनुवाद है।

(३) यह कृष्ण-कर्णामृत और उस पर की गई सारग-रगदा की टीका का पद्यानुवाद है। ये ग्रथ भी कृष्णदास कविराज की रचनायें हैं।

पदकल्पतरु में यदुनदन, यदु, यदुनाथ तीन नाम से पद मिलते हैं। कौन से पद किसके हैं यह कहना तो कठिन है। द्वितीय यदुनदन दास का नाम यदुनाथ भी कर्णामृत में मिलता है।

यशोराज खान

यशोराज खान कदाचित् ब्रजबुलि के पदकर्ताओ में सर्वप्रथम पदकर्ता है। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। पीताम्बरदास की रचना 'रस-मजरी' में एक पद यशोराज खान के नाम से युक्त दिया हुआ है। इस पद में हुसेन शाह का उल्लेख है। हुसेन शाह १४९३-१५१९ ई में बगाल के अधिपति थे। अत उस समय यशोराज खान की उपस्थिति होना निश्चित है। रामगोपालदास ने अपने ग्रथ 'रस-कल्प-वल्ली' में 'जसराज खा' का उल्लेख किया है।[1]

रघुनाथदास

इस नाम के दो व्यक्ति मिलते हैं।

१ **रघुनाथदास गोस्वामी**—ये प्रसिद्ध षट् गोस्वामियों में से एक थे। ये दास गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। ये सप्तग्राम के अधीश्वर गोवर्द्धन के पुत्र थे। यौवनावस्था में ही सब कुछ त्याग कर ये नीलाचल में चैतन्यदेव के शरणागत हुए थे। जगद्बधु बाबू के मतानुसार इनका जन्म १४२८ शक (१५०७ ई) और तत्वनिधि महाशय के

१ ब सा प प, भाग ३७, पृ १०१, भाग ३८ पृ १४६

अनुसार १४२० शक (१४९९ ई) में हुआ था। परतु निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। १५०४ शक (१५८३ ई) को इनका तिरोधान हो गया। ये सस्कृत के असाधारण विद्वान् थे। पदो के अतिरिक्त इन्होने सस्कृत मे 'स्तवावली', 'विलाप कुसुमाजलि', 'दानचरित' और 'मुक्ताचरित' की रचना की है। पदकल्पतरु मे इनके तीन पद प्राप्त है। दो तो व्रजवुलि मे है और एक व्रजभाषा में है। व्रजवुलि के एक पद मे जयदेव की वदना और दूसरे मे राधा का वर्णन है। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत मे है।

२. रघुनाथदास—ये श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। पीछ दिए रघुनाथदास का वह पद जो जयदेव की वदना से सवधित है इनकी रचना हो सकती है क्योकि यह पद उतना सुन्दर नही है जितने अन्य दोनो। एक और पद है जो वगीय साहित्य परिषद् मे सुरक्षित "वृहद् भक्ति-तत्व-सार" की हस्तलिखित पोथी में मिलता है।[1] इसमें जीव गोस्वामी की वदना है। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। प्राचीन उल्लेख "प्रेम-विलास[2] में है।

रसिकदास

रसिकदास रसिकानद के नाम से भी विख्यात थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। इनका एक पद जो वगला में है और रसिकानद नाम से युक्त है, "पदकल्पतरु" में प्राप्त है। एक व्रजवुलि पद "रसिकदास" नाम से "पदकल्पतरु" मे है। तीन वगाली पद "रसिक", "रसिकानद", "रसिक आनद" के नाम से "गौर-पद-तरगिणी" मे है। डा सेन का विचार है कि "गौर-पद-तरगिणी" के दो पदो में चैतन्यदेव के सन्यास ग्रहण समय के सिरमुडन का वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी और वास्तविकता से पूर्ण है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह पद किसी ऐसे व्यक्ति की रचना है जिसने या तो यह सस्कार स्वय देखा है अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से सुना है जो उस समय उपस्थित था। इन सब आधारो पर कहा जा सकता है कि रसिकदास सोलहवी शती मे उपस्थित थे। ये श्यामानद पुरी के जो श्रीनिवास आचार्य के साथी थे शिष्य थे। श्यामानद पुरी नरोत्तम ठाकुर के समसामयिक थे। रसिकानद जाति से ब्राह्मण थे। इनके पिता अच्युतानद जमीदार थे, और दालभूमि के 'रायनी' ग्राम के निवासी थे। इनकी माता का नाम मालती था।[3] रसिकानद ने श्रीनिवास को पश्चिमी वगाल और उडीसा मे वैष्णव मत फैलाने में वडी सहायता दी थी। वे खेतुरी उत्सव मे थे।[4]

---

१. भावेर भूषण रूप। ...

वृन्दावन गुण नाम विलास। वर्ण गौर पड अभिलाष॥
वैयासकी-सम श्री श्रीनिवास। विरचित-लीला-गुण-विलास॥
वाहु विशाल धरि देअइ कोरा। वालक-केलि करत पहुं भोरा॥
वाउल सव-जन रोदन हास। वंचित भेला तहि रघुनाथ-दास॥

२. प्रे वि, विलास २० (हि. ग्र. वृ., प १९५)

३ प्रे. वि, विलास २०

४. न. वि, विलास ६

एक दूसरे रसिक, रसिक दास का भी नाम मिलता है जो श्रीनिवास के शिष्यो मे आता है।[१]

रसिकानद

रसिकानद श्यामानद पुरी के शिष्य थे। नरोत्तम विलास(वि ४)मे इसका उल्लेख है–

श्रीश्यामानदेर शिष्य रसिक मुरारि।

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १६१)

यह सोलहवी शती के उत्तर काल मे थे। इनका केवल एक पद पदकल्पतरु में है। इनके रचित "रति-विलास" और "शाखा-वर्णन" दो ग्रथो का नाम और सुना जाता है।

राघवेन्द्र राय

राघवेन्द्र राय का उल्लेख प्रेम-विलास मे है। इसके अनुसार ये, इनकी पत्नी विष्णुप्रिया और दो पुत्र पद्नराय और मतोपराय सब नरोत्तम ठाकुर के शिष्य हो गए थे।[२] सेन ने अपनी पुस्तक में इनका एक पद उद्धृत किया है जो उन्हे वगीय साहित्य परिषद् की एक हस्तलिखित प्रति में मिला है।[३] इनका विशेष विवरण अथवा साहित्य अप्राप्य है।

राधावल्लभदास

राधावल्लभदास के नाम से १७ पद प्राप्त है। दो पदो[४] से ज्ञात होता है कि वे श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे। परतु आचार्य के तीन शिष्य इस नाम के थे। (१) राधावल्लभ मडल, (२) राधावल्लभ दास, और (३) राधावल्लभदास ठाकुर। यह निर्णय करना कि इनमें से कौन व्यक्ति अभीष्ट कवि थे, कठिन है। जगद्वधु बाबू[५] के मतानुसार राधावल्लभ मडल जो सुधाकर मडल के पुत्र थे, अभीष्ट व्यक्ति है। "कर्णानद" मे इस सबध मे यह दिया है।

सुधाकर मडल प्रभुर भृत्य एक जन
तार स्त्री श्यामप्रिया कृपार भाजन
तार पुत्र राधावल्लभ मडल सुचरित्र
हरिनाम विना जार नाहि आर कृत्य।

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १६७)

इन राधावल्लभदास ने 'विलाप-कुसुमाजलि' का जिसके रचयिता रघुनाथदास गोस्वामी थे बगला में अनुवाद किया था। दो अन्य ग्रथो की रचना भी की थी, १ सनातन गोस्वामीर सूचक, २ सहजतत्व।

रस-कल्प-वल्ली ग्रथ में एक राधावल्लभदास चक्रवर्ती का नाम आया है। सेन

१ प्रे वि, विलास २०, कर्णानद, १ निर्यास
२ प्रे वि, विलास २०
३ हि ब्र वु, पृ ४०८
४ प क त, पद सख्या २३७९, २३८०
५ गौ प त, उपक्रमणिका पृ १६६

महोदय इनको ही अभीप्ट पदकर्त्ता मानते हैं।[1] रस-कल्प-वल्ली के लेखक ने इन चक्रवर्ती महोदय के एक पद का उद्धरण देकर प्रथम दो शब्दो का उल्लेख भर किया हैं। राधावल्लभदास के नाम से युक्त किसी भी पद में ये पद नही मिलते परतु उससे इतना तो ज्ञात होता ही हैं कि चक्रवर्ती महोदय पदकर्त्ता थे। "ठाकुर" उपाधि ब्राह्मणो की होती हैं। अत सेन महोदय राधावल्लभदास ठाकुर को चक्रवर्ती महोदय मानते हैं और इस प्रकार राधावल्लभदास ठाकुर को अभीप्ट पदकर्त्ता बताते हैं। जन्मतिथि सबकी अज्ञात है।

राधादास

राधादास का निश्चित समय अज्ञात है। राधादास के पद किसी भी प्रसिद्ध पद-सग्रह मे नही हैं। पीतांबरदास के एक ग्रथ रस-मजरी मे एक पद दिया हुआ है। सुकुमार सेन महोदय का कथन है कि एक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक मे जो दास महाशय के पास है २७ पद राधादास के पाए जाते हैं।[2] १८ पद 'रासपचाध्याय' नाम के अध्याय में सगृहीत हैं। ये १८ पद एक छोटी-सी हस्तलिखित प्रति के रूप में भी जिसका नाम "अप्टादश पदावली" हैं पाए जाते हैं।[3] इस प्रति का लिपिकाल १७०८ ई दिया है। यह कहना कठिन है कि ये राधादास कौन थे। "अप्टादश पदावली" के अतिम पद में केवल राधादास न होकर "राधावल्लभदास" नाम दिया है।

मधुकर कोकिल रति-जय-मगल

कहु राधावल्लभदास।

इससे ज्ञात है कि इनका पूरा नाम राधावल्लभदास था। एक 'राधावल्लभदास' का विवरण पहले दिया जाचुका है। परतु वे मुख्यतया ब्रजबुलि के लेखक थे। राधादास का केवल एक पद ब्रजबुलि में प्राप्त है। अत दोनो भिन्न-भिन्न व्यक्ति ज्ञात होते हैं। प्राचीन उल्लेखो मे पाच राधावल्लभो का पता चलता है। इनमें से तीन तो श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे, और दो नरोत्तम ठाकुर के। श्रीनिवास के शिष्यो का विवरण पीछे 'राधावल्लभ' के साथ दिया जा चुका है। नरोत्तम ठाकुर के दोनो शिष्यो में से एक राधावल्लभ दत्त उन्हीं के भतीजे थे। दूसरे राधावल्लभ चौधरी थे। इसका उल्लेख प्रेम-विलास और नरोत्तम-विलास दोनो में हैं।

यह कहना कठिन है कि पाचो मे से कौन राधादास के नाम से विख्यात थे और पदकर्त्ता थे। ये श्रीनिवास अथवा नरोत्तम ठाकुर के समसामयिक कहे जा सकते हैं।

रामचन्द्र

इस नाम के दो व्यक्ति हुए थे, जिनमे प्रसिद्ध रामचन्द्र कविराज ही हुए है, रामचन्द्र भणिता के केवल दो पद पदकल्पतरु मे प्राप्त हैं।

१. रामचन्द्र कविराज—ये गोविंददास कविराज के ज्येष्ठ भ्राता थे। श्रीनिवास आचार्य इनके गुरु और नरोत्तम ठाकुर अभिन्न-हृदय मित्र थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि

---

१. हि. ब्र बु, पृ. १६६
२. हि ब्र. बु, पृ. १७१
३ व. सा प., हस्तलिखित प्रति नं. २३५३

अज्ञात है। १५३७ ई से १६१२ ई गोविंददास का समय है। अत इसी के आगे पीछे इनका समय भी माना जाना चाहिए। इनका उल्लेख चार प्राचीन ग्रथो मे है।

(१) प्रेम-विलास, (२) भक्तमाल, (३) भक्ति-रत्नाकर, (४) कर्णानद

भक्तमाल में रामचन्द्र का वर्णन कुछ अधिक है। उसके अनुसार कवि गोविंददास के छोटे भाई थे। ये अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति थे। इनके विवाह के अनन्तर श्रीनिवास आचार्य ने इन्हें देख कर कहा कि इतना सुन्दर व्यक्ति यदि कृष्ण का भक्त होता तो कितना अच्छा होता। यह सुनकर रामचन्द्र ने गृहत्याग करके उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इससे पहले ये शाक्त थे।[1]

प्रेम-विलास ग्रथ के अनुसार ये गोविंददास के बडे भाई थे। प्रेम-विलास के रचयिता ने रामचन्द्र का श्रीनिवास को दिया हुआ आत्मपरिचय इस प्रकार अकित किया है —

रामचन्द्र नाम मोर अम्वष्ट कुले जन्म।
केवल लालसा प्रभुर चरण दर्शन॥
तिलिया-बुधरी ग्रामे जन्म मोर हय।
पितार नाम चिरजीव सेन महाशय॥
कनिष्ठ भ्रातार नाम हय श्रीगोविंद।
एकोदरे दुइ भाइ परम स्वच्छन्द॥

(प क त, परि, पृ ६०)

रामचन्द्र अत्यन्त विद्वान् थे। इसका उल्लेख कर्णानद में है। "रामचन्द्र कविराज परम पडित। वाचस्पति सम किंवा सरस्वतीख्यात॥" उन्होने "स्मरण दर्पण" नामक एक बगला ग्रथ रचा है।

२. रामचन्द्र गोस्वामी—रामचन्द्र गोस्वामी वशीवदन के पौत्र और चैतन्यदास के पुत्र थे। श्री नित्यानद प्रभु की पत्नी जाह्नवा ठकुरानी इनकी मत्रदाता थी।[2] इनकी जन्म-तिथि १५३४ ई के लगभग थी। नाम की समानता होने के कारण इनके और रामचन्द्र कविराज दोनो के पद एक में मिल गए है। इनके तीन ग्रथ उपलब्ध है—

(१) कडचा-मजरी, (२) सम्पुटिका, (३) पाखड-दलन।

इनका उल्लेख वैष्णव-वदना, और वशीशिक्षा में है। इन्होने तीर्थ-भ्रमण किया था और कुछ काल तक वृ दावन में रहे थे। वहाँ से युगल-विग्रह लेकर गौड आए।

रामानद

रामानद, रामानददास, "दीनहीन रामानद" नामो से ११ पद पदकल्पतरु में सगृहीत हैं। वैष्णव इतिहासो में दो रामानदो का उल्लेख आया है। रामानद वसु और

---

१ भ व, पृ २६४, १९वीं माला, ८८वा चरित्र

२ जाह्नवीर प्रिय वद रामाइ गोसाईं। जे आनिल गौड देशे कानाई बलाई॥ (वै व)
स्नानकाले रामकृष्ण श्री मूर्ति जुगल। प्रभु रामचन्द्र कोले आसिया लागिल॥ (व शि)
(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १६९)

रामानद राय। रामानद राय का केवल एक पद ब्रजबुलि में प्राप्त है ।[1] अन्य समस्त रचना सस्कृत में ही है। सस्कृत की रचनाओ में उन्होंने सर्वदा अपना नाम "रामानद राय" ही दिया है, रामानद, रामानद दास, "दीन हीन रामानद" करके कही भी नही दिया है। अत जो पद भाषा में प्राप्त है वे रामानन्द वसु के ही मानने होगे।

रामानद वसु—वर्दमान जिले के अन्तर्गत कुलीन ग्राम मे मालाधर वसु का जन्म हुआ था। ये वहा के जमीदार थे। मालाधर वसु ने "श्री कृष्ण-विजय" नामक ग्रथ भागवत के दशम स्कध के आधार पर लिखा था। चडीदास के बाद भाषा मे वैष्णव साहित्य की रचना करने वाले ये ही थे। गौड के यवन अधिपति ने इन्हे "गुणराज खान" की उपाधि दी थी। पदकल्पतरु के सपादक श्री सतीश चन्द्र का मत है[2] कि रामानद वसु इनके पुत्र सत्यराज खान के पुत्र थे। परतु सुकुमार सेन का मत है कि[3] रामानद वसु मालाधर के पौत्र न होकर पुत्र ही थे और सत्यराज खान उन्ही की उपाधि थी । दोनो ने चैतन्य-चरितामृत का उल्लेख किया है। वह उद्धरण नीचे दिया जाता है —

कुलीनग्रामी सत्यराज आर रामानद ।
जदुनाथ पुरुषोत्तम शकर विद्यानद ॥
वाणीनाथ वसु आदि जत ग्रामी जन ।
सबे चैतन्य भृत्य चैतन्य प्राणधन ॥ (चै. च., आदिलीला, परि. १०, पृ. ५९)

प्रथम पक्ति के आधार पर दोनो ही मत है। वैष्णव-वदना ग्रथ में भी इनका उल्लेख है —

वसु वंश रामानंद वदिव जतने ।
जार वंशे गौर विना अन्य नाहि जाने ।। (गौ प. त, उपक्रमणिका, पृ. १६४)

रामानद वसु चैतन्य देव के अनन्य भक्त थे और प्रतिवर्ष उनके दर्शन के लिए पुरी जाया करते थे । इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है । ये चैतन्य देव के समसामयिक थे।

रामानद राय—ये उडीसा के अधिपति "गजपति प्रतापरुद्र" के आमात्य और विद्यानगर के शासक थे। रामानद राय सस्कृत के परम विद्वान् और भक्त थे। चैतन्यदेव जब दक्षिणी तीर्थों की यात्रा के लिए चले तब वासुदेव सार्वभौम ने उनसे रामानद राय से मिलने का विशेष अनुरोध किया। वे रहस्यवादी कवि थे। दोनो की भेंट गोदावरी के तट पर हुई। गौरागदेव ने रामानद से वैष्णव धर्म और दर्शन पर प्रश्न किए और अत में उन्हें निरुत्तर कर दिया। तब रामानद ने अपना नीचे दिया पद सुनाया —

पहिलहि राग नयन-भंग भेल ।
अनुदिन वाढल अवधि ना गेल ॥

---

१. यह अत्यन्त प्रसिद्ध पद है जिसकी प्रथम पक्तिया निम्न है—
पहिलहि राग नयन-भग मेल।
अनुदिन वाढल अवधि ना गेल ॥ (प. क त., पद ५७९)

२. प क. त, परिशिष्ट पृ. २०२

३ हि. ब्र. बु., पृ. ३९

का भी नाम दिया है।[१] वल्लभदास ने एक सम्पूर्ण पद मे गोविंददास की प्रशंसा की है।[२] इन सब से ज्ञात होता है कि वल्लभदास या श्रीवल्लभ गोविंददास के समसामयिक थे। अत सन् १५८३ ई के आसपास ये उपस्थित थे।[३]

श्रीवल्लभ नाम के दो व्यक्ति एक ही समय में थे।

१ **श्रीवल्लभ ठाकुर** दिवली ग्राम के निवासी थे और श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।[४]

२ **श्रीवल्लभदास मजुमदार**—ये रामचन्द्र कविराज के शिष्य थे।

श्रीनिवास आचार्य के शिष्य वल्लभदास ही अभीष्ट कवि जान पडते हैं। इनकी निश्चित मृत्युतिथि भी अज्ञात है। अपने एक पद में इन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि ये श्रीनिवास, नरोत्तम, रामचन्द्र और गोविंददास इत्यादि के बाद तक जीवित रहे।[५] इनके एक पद में नरोत्तमदास के ग्रथो का उल्लेख है।[६]

३ **कवि वल्लभ**—कवि वल्लभ के नाम से केवल एक पद प्राप्त है। ये 'करतोया' नदी के किनारे स्थित महास्थान में रहते थे। इनके पिता का नाम राजवल्लभ था। ये उद्धवदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। 'रस-कदम्ब' नामक अपनी रचना में उसका रचनाकाल इन्होंने दिया है। शक १५२० अर्थात् १५९८ ई में यह लिखा गया था। अत ये १५९८ ई० के आसपास जीवित थे, यह निश्चित है। उनके प्राप्त पद के आधार पर उन्हे नरोत्तमदास का शिष्य भी बताया जाता है। वह पक्ति निम्न है —

नरोत्तमदास आश चरणे रहु
श्री वल्लभ-मन भोर (प क त, पद १०२२)

वासुदेव घोष

वासुदेवघोष का जन्म सिलहट जिले के 'वर्ण' अथवा बुरगी स्थान में हुआ था। माधव घोष और गोविंद घोष इनके दो भाई और थे। तीनो ही पदकर्त्ता और सुकठ गायक थे। वासुदेव घोष चैतन्य देव के अनन्य भक्त और अनुचर थे। इन्होंने समस्त पद केवल गौर पर ही रचे है। इन्होंने चैतन्य को कृष्ण का स्वरूप ही माना है। अत ठीक कृष्ण लीला वर्णन के समान ही चैतन्य लीला का वर्णन किया है। इन्होंने कृष्ण की 'दान-केलि', 'नौका विहार' और 'गोपी विहार' इन समस्त लीलाओ की कल्पना गौर-चरित्र मे भी की है। नदिया-नागरी-भाव अर्थात् नदिया की स्त्रियो की गौर के प्रति आसक्ति-भाव के जन्मदाता ये ही थे।

---

१ प क त, पद २२५, २३४
२ गौ प त, ६।४।७१, प ४८१
३ कर्णा, निर्यास ७, पृ १७
४ कर्णा, निर्यास २, पृ २६
५ प क त, पद २९८१
६ गौ प त, ६।४।६७, पृ ४७८

कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत में इनका उल्लेख किया है —

वासुदेव गीत करेन प्रभुर वर्णने ।
काष्ठ पाषाणादि द्रवे जाहार श्रवणे ।। (चै च, आदिलीला, परि ११, पृ. ६२)

देवकीनदनदास ने अपनी "वैष्णव-वदना" में इनकी वदना की है —

श्री वासुदेव घोष वंदिव सावधाने ।
गौरगुण विना जेइ अन्य नाहि जाने ।। (गौ. प. त., उपक्रमणिका, पृ १२६)

"वैष्णवाचार-दर्पण" ग्रथ में भी वासुदेव घोष का उल्लेख है । इसके अनुसार वासुदेव घोष जीवन के अतिम दिनो मे 'तमुलक' मे आकर वस गए थे ।

वासुदेव घोष की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है । ये चैतन्यदेव के समकालीन थे ।

वासुदेवदत्त

वासुदेवदत्त चैतन्यदेव के अनुयायी थे । क्षणदा-गीत-चिंतामणि के पहले सस्करण में इस नाम से एक पद है । वासुदेव दत्त चैतन्यदेव के प्रमुख अनुयायियो मे से थ ।

विजयानददास

चैतन्यदेव के अनुचरो में एक विजयदास थे । ये प्राचीन पोथियो को उनके लिए लिपिबद्ध किया करते थे । अनुमान किया जाता है कि विजयानददास नाम से जिनका एक पद पदकल्पतरु में है, ये ही विजयदास थे । कारण यह है कि वैष्णव साहित्य में किसी भी विजयानददास का उल्लेख नही है । जो पद प्राप्त है वह गौराग विषयक है और उसकी ध्वनि से भी ज्ञात होता है कि उन्होने उन्हे देखा था ।[१] इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है । ये चैतन्यदेव के समकालीन थे ।

विष्णुदास

अद्वैत पत्नी सीता देवी की एक छोटी गाथा विष्णुदास के नाम से पाई जाती है । विशेष विवरण अप्राप्य है । लेखक ने चैतन्य-चरितामृत और कृष्णदास का उल्लेख अपने काव्य में किया है । इससे ये कृष्णदास के परवर्त्ती कवि जान पडते है ।

वीरचन्द्र

वीरचन्द्र का एक पद प्राप्त है । इसे सेन महोदय ने अपनी पुस्तक में पद-कल्प-लतिका और कीर्त्तन-गीत-रत्नावली से उद्धृत किया है । कदाचित् इस पद के कर्ता वीरचन्द्र नित्यानद प्रभु के पुत्र वीरचन्द्र है । ये १५२५ ई में उत्पन्न हुए थे ।

वीर हाम्वीर

वीर हाम्वीर मल्ल-भूमि के राजा थे । १५८० ई के लगभग श्रीनिवास आचार्य ने उन्हे वैष्णव धर्म में दीक्षित किया । इसका विशद वर्णन प्रेम-विलास, कर्णानद, और भक्ति-रत्नाकर में है । दीक्षा के अनन्तर श्रीनिवास ने इनका नाम चैतन्यदास रक्खा ।[२] इनका

---

१ प क. त., पद २२४२
२. भ र., पृ. ५८१.

एक पद 'कर्णानद' (पृ १९) और पदकल्पतरु (१३७८) दोनो में है। एक अन्य पद भक्ति-रत्नाकर (पृ ५८१) मे है।

वृन्दावनदास

वृन्दावनदास श्रीवास पडित की भतीजी नारायणी ठकुरानी के पुत्र थे। श्रीवास पडित चैतन्य के परम भक्त थे। वृन्दावनदास का जन्म १५०७ ई में बताया जाता है। परतु यह तिथि सदिग्ध है। मृत्यु-तिथि १५८८ ई० के लगभग बताई जाती है। वृन्दावन-दास खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे।

पदो के अतिरिक्त वृन्दावनदास ने "चैतन्य-भागवत" नामक चैतन्य जीवनी लिखी है। चैतन्य-भागवत का रचनाकाल १५३५, १५४८, १५५७ से लेकर १५७३ ई० तक मिलता है। ये नित्यानद प्रभु के शिष्य थे। "चैतन्य-भागवत" के अतिरिक्त 'तत्व-विलास' 'दधिखड', 'वैष्णव-वदना' और 'भक्ति-चिंतामणि' ग्रथ भी इनके लिखे हुए बताए जाते है।

शकरदास

शकरदास नाम से तीन पद पदकल्पतरु में सगृहीत है। वैष्णव साहित्य में पाच शकरदासो का उल्लेख पाया जाता है। इनमे से दो के साहित्यकार होने की सभावना है।

१ चैतन्यदेव के भक्त और दामोदर पडित के छोटे भाई। इनका उल्लेख चैतन्य-चरितामृत के आदिखड के १०वे परिच्छेद में है।

ताहार अनुज शाखा शकर पडित।
प्रभुर पादोपाधान जार नाम विदित॥ (चै च, आदिलीला, परि १०, पृ ५७)

परन्तु ये पदकर्ता नही है।

२ चैतन्य-चरितामृत में उल्लिखित एक अन्य शकर।[1]

३ नित्यानद प्रभु की शिष्य-परपरा के शकर —

शकर मुकुद ज्ञानदास मनोहर। (चै च आदिलीला, परि. ११, पृ ६३)

इनका भी विशेष विवरण अज्ञात है।

४ नरोत्तम ठाकुर के शिष्य शकरदास। इनका उल्लेख नरोत्तम-विलास ग्रथ में है—

जय वैष्णवेर प्रिय शकर विश्वास।
गौर गुण गान जे हो परम उल्लास॥

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १७९)

५ देवकीनदन के वैष्णव-वदना ग्रथ में उल्लिखित शकर घोष।

वदिब शकर घोष किंचन रीति।
डमकेर वाद्येते जे प्रभुर कैल प्रीति॥

(गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १७९)

चौथ और पाचवें शकर ही पदकर्त्ता और ग्रथकार है। एक ग्रंथ 'गुरुदक्षिणा' प्राप्त है जिसके लेखक शकरदास है। वे कौन से हैं, 'शकर विश्वास' अथवा 'शकर घोष', यह कहना कठिन है।

---

१ चै च, आदिलीला, परि १०, पृ ५७

शचीनदनदास

शचीनदन रामचन्द्र गोस्वामी के छोटे भाई थे। ये वशीवदन के पौत्र और चैतन्यदास के पुत्र थे। रामचन्द्र गोस्वामी का जन्मकाल १५३४ ई के लगभग था। अत शचीनदन का जन्मकाल इसके कुछ वर्ष पीछे ही होगा। निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। इनका एक पद जो पदकल्पतरु और गौर-पद-तरगिणी दोनो मे ही प्राप्त है। एक बारहमासा भी प्राप्त है। इसमे गौराग-लीला और विष्णुप्रिया-विरह वर्णन है।

शिवरामदास

शिवरामदास के नाम से २४ पद पदकल्पतरु मे सगृहीत है। इनके कुछ पदो की भापा मिश्रित ही है। कुछ व्रजबुलि और कुछ व्रज भाषा मिली है। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। "भक्ति-रत्नाकर" और "नरोत्तम-विलास" दोनो में ही एक पयार छद दिया है।

जय शिवरामदास परम उदार।
गौर नित्यानंद अद्वैत सर्वस्व जाहार ॥

(गौ. प. त , उपक्रमणिका, पृ. १७९)

ये नरोत्तम ठाकुर के शिष्य थे, और उन्ही के समसामयिक भी थे। इससे अधिक विवरण अज्ञात है।

शिवानद आचार्य

चैतन्य-चरितामृत म कृष्णदास कविराज ने शिवानद आचार्य का नाम गदाधर पडित के शिष्यो में दिया है। पदकल्पतरु[1] में तीन पद शिवानद नाम से, और छ पद शिवाई नाम से प्राप्त है। भक्ति-रत्नाकर में भी एक पद शिवानद के नाम से प्राप्त है। इन समस्त पदो मे गदाधर की गौराग के साथ क्रीडा वर्णित है। अत शिवाई और शिवानद एक ही व्यक्ति ज्ञात होते है और गदाधर पडित के शिष्य भी ज्ञात होते है। भक्ति-रत्नाकर वाले पद मे इन्होने गदाधर पडित को 'पहु' कहा है। शिवानद आचार्य की निश्चित जन्मतिथि अज्ञात है। ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। इस प्रकार १५८३–१५८४ ई मे इनकी उपस्थिति स्पष्ट है।

शिवानद सेन

शिवानद सेन चैतन्य देव के अनन्य भक्त और समसामयिक थ। गौर-पद-तरगिणी के एक पद में इन्होने कुछ आत्म-परिचय दिया है।[2] ये कुलीन ग्रामवासी थे। ये सन्यास लेकर नीलाचल वास करते हुए चैतन्यदेव के पास प्रतिवर्ष यात्रियो के साथ जाते थे। इसका उल्लेख उक्त पद मे है। वैष्णव-वदना ग्रथ मे इनका उल्लेख है।[3] चैतन्य-चरितामृत मे भी कई स्थानो पर इनका उल्लेख है। शिवानन्द सेन प्रसिद्ध कवि कर्णपूर के पिता थे।

---

१. प क त, पद १८५१, २१२७, २३५५

२. गौ. प त., पृ. ३८२

३ प्रेममय तनु वद सेन शिवानद। जाति प्राणधन जांर गौर-पद-द्वन्द्व।

सेन के नाम से केवल तीन पद पदकल्पतरु में प्राप्त है । इनकी निश्चित जन्मतिथि और मृत्युतिथि अज्ञात है। ये १५१२ ई० के आस-पास अवश्य ही उपस्थित थे।

श्यामदास

श्यामदास नाम के चार व्यक्तियो का पता चलता है।

१ **श्यामदास चक्रवर्ती**—ये श्रीनिवास आचार्य के साले और शिष्य थे।[१] इनके पिता गोपाल चक्रवर्ती थे।

२ **श्यामदास चट्ट**—ये भी श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

३ **श्यामदास चक्रवर्ती**—ये व्यास चक्रवर्ती के पुत्र थे। दोनो पिता-पुत्र श्रीनिवास आचार्य के शिष्य थे।

४ **श्यामदास आचार्य**—अद्वैत आचार्य के शिष्य। इस वात का उल्लेख "वैष्णवाचार्य-दर्पण"[२] में है।

श्यामदास नामाकित कई पद प्राप्त है। पदकल्पतरु मे ६ पद, गौर-पद-तरगिणी में १ पद, सकीर्तनान्द में ३ पद, अप्रकाशित पद-रत्नावली में ११ पद और पदकल्पतरु में २ पद पाए जाते है। इन सब के पदकर्त्ता कौन है, एक ही व्यक्ति है अथवा कई यह सब कहना कठिन है। इनके ब्रजबुलि पदो में एक विशेषता अवश्य है। ये समस्त पद ब्रज-भाषा मिश्रित है। इससे दो बातें स्पष्ट हैं। या तो श्यामदास वृन्दावन में रहे या इस नाम का कोई ब्रजभाषा का कवि हुआ था। व्यास के पुत्र श्यामदास विद्वान् व्यक्ति थे। कदा-चित् ये वृन्दावन गए हो। परतु निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इनकी निश्चित जन्मतिथि, तथा मृत्युतिथि अज्ञात है, परतु ये श्रीनिवास के समसामयिक थे।

श्यामानददास

श्यामानद का दूसरा नाम 'दु खी कृष्णदास' भी था। ये धारेन्दा बहादुरपुर ग्राम के निवासी थे। इनकी निश्चित जन्मतिथि तो अज्ञात है। परतु ये खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। श्यामानद ने वृन्दावन में रह कर जीव गोस्वामी से वैष्णव शास्त्रो का अध्ययन किया था और उडीसा में वैष्णव धर्म का प्रचार किया था। फिर श्रीनिवास और नरोत्तम के साथ ये बगाल लौट आए। गौरीदास पडित इनके गुरु थे, पदकल्पतरु[३] के तीन पदो में इसका आभास मिलता है। श्यामानद के पद 'दु खी कृष्णदास', 'दु खिनी', 'दीन दु खी कृष्णदास' इन कई नामो से मिलते है। इन कुछ पदो में ब्रज भाषा का मिश्रण है।[४] इनकी

---

१ श्यामदास रामचन्द्र गोपाल-तनय।
श्यामानद रामचरणाख्या केह कय॥ (गौ प त, उपक्रमणिका, पृ १८१)
दोहे आचार्येर शिष्य अद्भुत चरित॥ (गौ प त, उपक्रमणिका, पृ. १८२)

२ श्यामदास अद्वैतेर शाखार प्रधान।
सीता माता जारे करिला स्तन-पान॥ (हि. ब्र बु, पृ ४७१)

३ प क त, पद २३५८, २३५९, २३६०

४ प क त, पद १०८५

जीवनी कुछ अधिक विस्तार से 'भक्ति-रत्नाकर' में पाई जाती है। नरोत्तमदास का एक पद[1] भी इनकी चर्चा करता है।

श्रीनिवास आचार्य

श्रीनिवास का महत्त्व कवि की दृष्टि से तो कम ही है। इनके रचे कुल ५ पद प्राप्त है। ये वडे भारी वैष्णव आचार्य हो गए है। श्रीनिवास की जीवनी कई ग्रथो में मिलती है। प्रेम-विलास, कर्णानद, अनुराग-वल्ली, भक्ति-रत्नाकर और नरोत्तम-विलास, इन समस्त ग्रथो में इनका उल्लेख है। ये शाखडी ग्राम निवासी गगाधर भट्टाचार्य उर्फ चैतन्यदास के पुत्र थे। इनकी माता जाजीग्राम के वलराम आचार्य की पुत्री थी। श्रीनिवास का जन्म १५१६ ई के लगभग हुआ था। इन्होने चैतन्यदेव के दर्शन नही कर पाए थे। वैसे उनके समसामयिक थे। वृन्दावन मे जाकर श्रीजीव गोस्वामी के पास वैष्णव धर्म शास्त्रो का अध्ययन किया था। गोपाल भट्ट इनके गुरु थे। वृन्दावन में ही नरोत्तम और श्यामानद से मित्रता हुई। कर्णानद[2] के अनुसार इन्होने ५ पद लिखे थे। तीन पद पदकल्पतरुमें प्राप्त हैं।[3]

सुवलचन्द्र ठाकुर

यदुनदन ने अपने ग्रथ कर्णानद[4] में कहा है कि सुवलचन्द्र ठाकुर श्रीनिवास आचार्य की पुत्री हेमलता देवी के शिष्य और भतीजे थे, अर्थात् ये श्रीनिवास आचार्य के पौत्र थे। आचार्य के तीन पुत्र थे, वृन्दावनचद्र, राधाकृष्ण और गतिगोविंद। गतिगोविंद के तीन पुत्र थे,—कृष्णप्रसाद, सुन्दरानन्द और हरि। अत सुवल ठाकुर अन्य दो पुत्रो में से किसी की सन्तान रहे होगे। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये हेमलता देवी के समकालीन कुछ काल तक रहे। १६वी शती का उत्तरार्ध और १७वी शती का पूर्वार्ध इनका समय है। इनके दो पद पदामृत-समुद्र में है।

स्वरूप दामोदर

स्वरूप दामोदर चैतन्यदेव के समसामयिक और उनकी लीला के सगी थे। नदिया निवास मे भी वे उनके समसामयिक थे। उनका पूर्व नाम पुरुषोत्तम आचार्य था। सन्यासी होने पर स्वरूप दामोदर नाम हुआ। सन्यास लेकर वे पुरी मे जाकर चैतन्यदेव के साथ रहने लगे। कृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्य-चरितामृत में उनका उल्लेख किया है और सकेत किया है कि इन्होने महाप्रभु की लीला वर्णन मे 'कडचा' की रचना की थी।

१. मध्ये शेष प्रभुलीला स्वरूप दामोदर। सूत्र करि ग्रथिलेन ग्रथेर भितर॥
(चै च., आदिलीला, परि १३, पृ. ६७)

२ दामोदर स्वरूप आर गुप्त मुरारि, मुख्य मुख्य लीला सूत्र लिखेछे विचारि।
(चै च, आदिलीला, परि १३, पृ. ६८)

---

१ गौ. प त, पृ. ४६९, ४७०

२. कर्णा., पृ. १११

३. प. क. त., पद ७९०, ३०७३, ८३९

४. कर्णा, निर्यास २, पृ. २७

स्वरूप दामोदर की निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये नवद्वीप (नदिया) के निवासी थे।

स्वरूपदास

इस नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है।

१ श्रीनिवास आचार्य की शिष्य परपरा में उल्लिखित स्वरूपाचार्य। ये प्राय श्रीनिवास के समसामयिक ही थे। इनका उल्लेख भक्ति-रत्नाकर मे है।

२ नरोत्तम-विलास में उल्लिखित स्वरूपदास—ये गौराग के परिकरो मे से थे, और चैतन्यदेव के समसामयिक थे।

हरिचरणदास

हरिचरणदास अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। इन्होने अपने ग्रथ "अद्वैत-मगल" की रचना अद्वैत के पुत्र अच्युतानद की आज्ञा मे की थी।[1] अद्वैत की बाल्यलीला इन्होंने विजय पुरी सन्यासी से सुनी थी जो अद्वैत के मामा थे। अद्वैत-मगल में इसका उल्लेख है।

सभार अग्रेते पुरी कहते लागिला। छिलद् देशेते हय नवग्राम नाम।

..

एकात करिया शुन सबे मन दिया। अद्वैत जन्म एबे कहि विवरिया।

कदाचित् "अद्वैत-मगल" की रचना आचार्य के जीवन काल में ही हुई थी। क्योकि कवि ने केवल कवि कर्णपूर का नाम चैतन्य-लीला वर्णन करने वालो मे दिया है। अन्य किसी का भी नही। अत ये कवि कर्णपूर और वृदावनदास तथा कृष्णदास के बीच के समय में रहे होगे।

श्री चैतन्य लीला वर्णिला कवि कर्णपूर।
ताहे नित्यानद लीला रसेर प्रचुर ॥
अद्वैत-प्रभुर आदि-अत्य लीला किछु।
वर्णन करिब सर्व करि आगु-पिछु ॥ (बां. सा इ, पृ २७५)

हरिरामदास

रामचन्द्र कविराज के एक शिष्य हरिराम आचार्य थे। इस बात का उल्लेख भक्ति-रत्नाकर में निम्न है —

श्री रामचन्द्रेर शिष्य हरिरामाचार्य।
सर्वत्र विदित अलौकिक सर्व कार्य ॥

प्रेम-विलास में इनकी जाति एव निवास-स्थान का विवरण है —

हरिदास आचार्य शाखा परम पडित। राढ़ी श्रेणी विप्र इहा जगत् विदित ॥
गगा पद्मार सगम जेवा स्थान हय। तथाय गोयास ग्राम तांहार आलय।

इनकी दीक्षा का विवरण नरोत्तम-विलास में है।[2]

---

१ वदे श्री अच्युतानद प्रभुर तनय।
बलराम कृष्ण मिश्र आर जत हय ॥
तोमार आज्ञाय लिखि यतन करिया। (पृ १९)

२ न वि, विलास १०

हिन्दी कवि और पदकर्ता

१ अग्रदास
२ अभयराम कवि
३ आसकरनदास
४ कल्याणदास
५ कल्यानी
६ कान्हरदास
७ कुमनदास
८ कृष्णदास
९ केवलराम
१० केशवदास
११ खेम कवि
१२ गगा स्त्री
१३ गदाधरदास
१४ गिरिधर
१५ गोकुलनाथ गोस्वामी
१६ गोपालदास
१७ गोपीनाथ
१८ गोविंददास
१९ गोविंद स्वामी
२० चतुरविहारी
२१ चतुर्भुजदास
२२ चन्द सखी
२३. छवीले कवि
२४ छीत स्वामी
२५ जगन्नाथदास
२६ जमुना स्त्री
२७ तानसेन
२८ तुकाराम
२९ तुलसीदास
३०. दामोदरदास
३१. घोघेदास
३२ नददास
३३. नरवाहन जी
३४ नरसैया अथवा नरसी
३५ नवल स्त्री
३६ नागरीदास
३७ नाथ व्रजवासी
३८ नाथ भट्ट
३९ नाभादास
४० नारायण भट्ट
४१ पद्मनाभ
४२ परमानददास
४३ प्राणचद चौहान
४४ वलरामदास
४५ व्रजपति
४६ भगवत रसिक
४७ भगवानदास (हित)
४८ भीषमदाम
४९ माणिकचन्द
५० माधवदास
५१ मीरावाई
५२ मुरारिदास
५३ रसिक
५४ रसिकविहारिनदाम
५५ रामदास
५६ लालचदास
५७ लालदास
५८ वनचन्द्र
५९ वल्लभ
६०. विट्ठलदास या वीठलदास
६१ विठ्ठलनाथ
६२ विठ्ठल विपुल
६३. विद्यादास
६४ विष्णुदास
६५ व्यास स्वामी
६६ श्रीभट्ट
६७ सगुनदास
६८. सूरदास

६९	सूरदास मदनमोहन	७३	हरिवंशअली
७०	सेवक	७४	हितरूपलाल
७१	हरिदास	७५	हितहरिवंश
७२	हरिराय	७६	हृदयराम

अग्रदास

स्वामी अग्रदास नाभादास के गुरु और पयहारी कृष्णदास के शिष्य थे। ये रामोपासक कवि थे। इनका जन्म और मृत्यु संवत निश्चित रूप से ज्ञात नही है। ये तुलसीदास के समकालीन थे। इनकी विशेष प्रसिद्धि सं० १६३२ वि के लगभग थी। इनकी कई रचनाये हैं, जो नीचे दी जा रही हैं

(१) ध्यान-मजरी (२) हितोपदेश उपाख्यान बावनी (३) रामभजन-मजरी (४) रामचरित्र के पद (५) हितोपदेश भाषा।

इनका उल्लेख भक्तमाल मे है।

(श्री)अग्रदास हरिभजन विन, काल वृथा नहि वित्तयो॥
सदाचार ज्यो सत प्राप्त जैसे करि आये।
सेवा सुमिरण सावधान चरण राघव चित लाये॥
प्रसिध बाग सो प्रीति सुहृथ कृत करत निरतर।
रसना निर्मल नाम मनहु वर्षत धाराधर॥
(श्री) कृष्णदास कृपा करि भक्ति दत्त, मन वच क्रम करि अटल दयो।
(श्री) अग्रदास हरिभजन विन काल वृथा नहीं वित्तयो।

(भ० हिन्दी, पृ० ३१८)

अभयराम कवि

अभयराम के कुछ पद राग कल्पद्रुम में प्राप्त है। इनका अन्य विशेष विवरण अज्ञात है। ये सन् १५४५ ई के लगभग उत्पन्न हुए थे।[1]

आसकरन दास

आसकरन दास नरवर गढ के राजा भीम सिंह के पुत्र थे। इनकी रुचि वैष्णव धर्म की ओर थी। इनकी निश्चित जन्म और मृत्यु तिथि अज्ञात है। इनका रचना काल सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे है। आसकरन दास के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय भक्तमाल में है।

(श्री) मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस विस्तर्यो॥
धर्मशील गुनसीव महाभागौत राजरिषि।
पृथीराज कुल दीप भीम सुत विदित कील्ह सिवि
सदाचार अति चतुर, विमल बानी, रचना पद
सूर धीर उद्दार विनै भलपन भक्तनि हद
सीतापति राधासुवर, भजन नेम कूरम धर्यौ
(श्री)मोहन मिश्रित पद कमल आसकरन जस विस्तर्यो॥" (भ हिन्दी, २७४ मृ० ८८३)

1 The Modern Vernacular Literature of Hindustan P 30

इसके अनुसार आसकरनदास कील्ह देव के शिष्य थे। भक्तमाल के वार्तिक में उल्लेख है कि यवन बादशाह इनसे मिलने गया था। बादशाह का नाम तो नही दिया है परतु वार्तिककार का तात्पर्य अकबर शाह से ही हो सकता है। आसकरनदास ने केवल पद रचना ही की है। ऊपर के छप्पय से यह भी ज्ञात होता है कि ये राम और कृष्ण दोनो के भक्त थे। इनके पद "कीर्तन-रत्नाकर" और "राग-कल्पद्रुम" मे मिलते है। कविता साधारण श्रेणी की है।

कल्यानदास

इनका अधिक विवरण अज्ञात है। ये १५१० से १५७३ ई तक के व्यक्ति है। कुछ पद ही इनकी रचना है जो "कीर्तन-रत्नाकर" और "राग-कल्पद्रुम" मे प्राप्त है। ये साधारण श्रेणी के कवि है। भक्तमाल मे कल्यानदास नाम के तीन व्यक्तियो का उल्लेख है। कृष्णदास पयहारी के शिष्यो में एक कल्याणदास है।

> पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी।
> देवा हेम कल्यान गगा गगासम नारी ॥ (भ. हिन्दी, ३९, पृ ३१४)

भक्तमाल मे एक कल्याणसिंह और एक अन्य कल्याणदास का भी उल्लेख है।

१ कल्याण सिंह—ये जगन्नाथ के भक्त थे। अतिम दिनो मे राम के भक्त हो गए। ये दास्य भक्ति को मानने वाले थे। कल्याणसिंह के पद कृष्णलीला सबधी है।

(भ हिन्दी, १८९, पृ ६१३)

२ दूसरे कल्याणदास को वार्तिक तिलककार ने इसी छप्पय (१८९) की टीका मे रूप गोस्वामी का शिष्य बताया है। अत ये भी कृष्ण-भक्त होगे।

वार्तिक तिलककार ने स्वय ही उन्हे शृगारनिष्ठा वाला कहा है। अभीष्ट पदकर्त्ता इनमें और सर्वप्रथम उल्लिखित कल्याणदास में से कोई भी हो सकते है।

कल्यानी

विशेष विवरण अज्ञात है। रचना काल स १६६६ वि के लगभग है। कुछ स्फुट भजन ही इनकी रचना है। इनका उल्लेख ध्रुवदास की भक्त-नामावली मे है।

कान्हरदास

'कान्हरदास' या 'कान्हर' नाम के छ व्यक्तियो का उल्लेख 'भक्तमाल' में मिलता निश्चित जन्म-और मृत्यु-तिथि तो किसी की भी ज्ञात नही है।

१ कान्हरदास—ये कान्हरदास पयहारी श्रीकृष्णदास के शिष्य थ।

> विष्णुदास कन्हर रंगा, चादन सबीरी गोविंद पर।
> पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पार कर॥

(भ. हिन्दी, ३९, पृ. ३१४)

२ कान्हर जी—इनका कुछ अधिक विवरण नही दिया है। १०० सख्या वाले छप्पय में कुछ भक्तो की तालिका दी है, जो "भक्तमाल दिग्गज भगत ग्रधानाइन सूर धीर" है। इन्ही में कान्हर का नाम दिया है -

छीतम द्वारिकादास माधव माडन रूपा दामोदर।
भल नरहरि भगवान बाल कान्हर केसौ सोहैं घर।
(भ हिन्दी, १००, पृ ६५४)

३ कान्हरजी—इनका भी कुछ अधिक विवरण भक्तमाल में नही है। भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक टीका के ७३४ पृष्ठ पर एक छप्पय (११७) दिया है जिसमें "भक्तनि कौ आदर अधिक राजवश में इन कियौ" कह कर कुछ राजवशियो की सूची दी है जिनमें "कन्हर" भी है। इससे यही ज्ञात होता है कि वे भक्तो का आदर करने वाले राजा थे। स्वय भक्त थे अथवा नही, यह नही कहा। अत ये अभीष्ट पदकर्त्ता नही हो सकते।

४ कान्हरजी—ये कान्हरजी गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र है। अत सोलहवी शती के परवर्त्ती व्यक्ति हुए।

५ कान्हरजी—इनके लिए भक्तमाल मे एक पूरा छप्पय १७१ (पृ ८८०) दिया गया है। "कान्हरदास सतिन कृपा, हरि हिरदै लाही लह्यौ।" इसमे कुछ विशेष विवरण ज्ञात नही होता। यही जाना जाता है कि ये भक्त थे। गुरु या अन्य किसी का भी उल्लेख नही है। अत इनका समय निश्चित करना भी कठिन है।

६ कान्हरजी—इनके लिए भी एक सम्पूर्ण छप्पय भक्तमाल में दिया गया है। उससे इतना ज्ञात होता है कि ये कृष्ण-भक्त थे और बूडिया ग्राम निवासी थे —

बूडिए विदित "कन्हर" कृपाल, आत्माराम आगमदरसी।
कृष्ण भक्ति को थभ, ब्रह्मकुल परम उजागर।
(भ हिन्दी, १९१, पृ ९१५)

इन विवरणो के आधार पर प्रथम और छठे व्यक्ति ही अभीष्ट व्यक्ति हो सकते है। इनके नाम से केवल पद प्राप्त है जो 'कीर्त्तन-रत्नाकर' और 'राग-कल्पद्रुम' में है।

कुभनदास

वल्लभाचार्य ने जिस अष्टछाप को जन्म दिया था उसके सर्वप्रथम शिष्य "कुभनदास" थे। कुभनदास के जीवन-चरित्र का उल्लेख जो वार्त्ताओ में है उससे ज्ञात होता है कि जिस समय वल्लभाचार्य ने व्रज आकर गोवर्द्धन पर "श्रीनाथ" का मदिर बनाया उस समय कुभनदास उनके शिष्य हुए। गोवर्द्धननाथ के प्राकट्य की वार्त्ता में लिखा है कि जब ये प्रकट हुए, तब कुभनदास १० वर्ष के बालक थे। प्राकट्य का समय स १५३५वि बताया है। इसके अनुसार कुभनदास की जन्म-तिथि लगभग स १५२५ वि के आती है। मृत्यु की निश्चित तिथि नही ज्ञात है। चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता के अनुसार वे सूरदास की मृत्यु के समय जीवित थे। डा दीन दयाल गुप्त उनकी मृत्यु लगभग स १६३९ वि मानते हैं।[1]

चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में लिखा है कि अकबर ने कुभनदास को फतेहपुर सीकरी बुलवाया था। इसका उल्लेख कुभनदास के एक पद में है[2] कि वे वहा गए थे।

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, अष्ट स० स० भाग १, पृ० २४४

२ भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम।
जाको मुख देखे दुख लागे ताको करन परी प्रनाम।

वार्त्ताओ के अतिरिक्त इनका उल्लेख भक्तमाल में भी है। परतु उन्हे कुछ अधिक महत्व नही दिया गया है। वहुत से भक्तो के साथ उल्लेख कर दिया गया है।।

पर-अर्थ-परायन भक्त ये, कामधेनु कलियुग्ग के।
लक्ष्मण, लफरा, लड्डू, संत, जोधपुर त्यागी।
सूरज कुभनदास, बिमानी, खेम विरागी॥

(भ. हिन्दी, ९८, पृ ६४६)

प्राचीन जीवनी-साहित्य मे जहा कुभनदास की जीवनी है, उनकी किसी रचना का उल्लेख नही है, केवल पदो का उल्लेख है कि वे प्रसिद्ध हुए।[1] ये पद 'कीर्त्तन-सग्रह', 'कीर्त्तन-रत्नाकर', 'राग-कल्पद्रुम' इत्यादि में मिलते है।

कृष्णदास

'भक्तमाल' में कृष्णदास नाम के ६ व्यक्तियो का उल्लेख है।

१. पयहारी कृष्णदास—इनके विवरण के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय है।

निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन परिहरि पय पान कियो।
जाके सिर कर धरयो, तासु कर तर नहिं अड्डयो।
अर्प्यो पद निर्वान सोक निर्भय करि छड्डयो॥
तेज पुंज बल भजन महामुनि ऊरधरेता।
सेवत चरण सरोज राय राना भुविजेता॥
दाहिमा वश दिनकर उदय, सत कमल हिय सुख दियो।
निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास अन परिहरि पय पान कियो॥

(भ हिन्दी, ३८, पृ ३०८)

वार्तिककार् न कृष्णदास पयहारी को अनंतानन्द जी का शिष्य वताया है - प्रियदास ने अपनी टीका मे इन अनतानद जी के पुत्र का विवरण वर्त्तमान काल में दिया है।

नृपसुत भक्त वडो अवलौं विराजमान . . (भ. हिन्दी, ३७, पृ ३१०)

इससे ज्ञात होता है कि अनतानद का पुत्र स १७६९ मे जीवित था। अनतानद प्रियादास के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति ठहरते है। अत कृष्णदास पयहारी भी प्रियादास के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति है। इनकी निश्चित तिथिया अज्ञात है। ये भक्त के साय साय कवि या लेखक भी थे, कहा नही जा सकता। इसी टीका के पृष्ठ ९०२ पर एक और छप्पय (१८५) है जिसमें ये 'गलता' वासी वताए गए हैं। युगल-मान-चरित्र और भक्तमाल की टीका इनकी रचनायें है।

२ भक्तमाल में एक सम्पूर्ण छप्पय है जिसमें एक अन्य कृष्णदास का उल्लेख है —

नन्दकुंवर कृष्णदास को निज पग तें नूपुर दियो॥
तान मान सुर ताल सुलय सुन्दर सुठि सोहैं।
सुधा अंग भ्रू भंग गान उपमाकों को है॥
रत्नाकर सगीत, रागमाला, रंगरासी।
रिझये राधालाल, भक्त पद रेनु उपासी॥

---

१. "सो कुंभन दास जी के पद जगत में प्रसिद्ध भये।"

स्वर्णकार "खरगू" सुवन, भयत भजन पद दृढ लियौ ।
नन्दकुवर "कृष्णदास" को निज पग तें नूपुर दियौ ॥
(भ हिन्दी, १८०, पृ ८९७)

इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि ये कृष्णदास 'खरग्' सुनार के पुत्र थे, भक्त थे और सगीत के ज्ञाता कीर्त्तनकार थे। निश्चित तिथि, रचना इत्यादि का परिचय नही मिलता।

३ कृष्णदास ब्रह्मचारी—ये सनातन गोस्वामी के शिष्य थे। इनका उल्लेख भक्तमाल में एक छप्पय में अन्य भक्तो के साथ किया गया है।

वृ दावन की माधुरी, इन मिलि आस्वादन कियौ ।
"कृष्णदास" पडित उभै अधिकारी हरि अग ॥ (भ हिन्दी, ९४, पृ ६१९)

हो सकता है कि नाभादास जी का तात्पर्य यहा उन कृष्णदास कविराज से हो जो "चैतन्य-चरितामृत" के रचयिता थे। यदि ये वही है तो इनका विशेष विवरण वगला कवियो के साथ देखिए।

४ ऊपर दिए छप्पय में "कृष्णदास पडित उभै अविकारी हरि अग" दिया है। अर्थात दो कृष्णदासो का उल्लेख हैं। कृष्णदास अधिकारी 'ब्रह्मचारी' इनका विवरण ऊपर दिया है। 'कृष्णदास हरि अग' का प्रियादास ने छप्पय ९४ के वार्तिक में कृष्णदास पडित करके उल्लेख किया है —

श्री गोबिन्दचन्द रूपरासि रसरासि दास, कृष्णदास
पडित ये दूसरे यों जानि लै। (भ हिन्दी, पृ ६२५)

इन कृष्णदास की निश्चित तिथियो का उल्लेख नही है। ये भक्त थे, यह तो वताया है पर कवि या लेखक भी थे यह नही वताया है।

५ कृष्णदास चालक—छप्पय सख्या १२४ मे जो रूपकला की टीका के पृ ७४९ पर दिया गया है, इन कृष्णदास चालक का उल्लेख है —

चालक की चरचरी, चहू दिशि उदधि अत लौ अनुसरी ॥
सक्कोप सुठि चरित प्रसिध, पुनि पचाध्याई ।
कृष्ण रुक्मिनी केलि, रुचिर भोजन विधि गाई ॥
गिरिराजधरन की छाप, गिरा जलधर ज्यों गाजै ।
सत सिखडी खड हृदै, आनद के काजै ॥
जाडा हरन जग जडता कृष्णदास देही धरो ।
चालक की चरचरी चहू दिशि उदधि अत लौ अनुसरी ।

इसके अनुसार ये कृष्णदास कवि थे। इनकी दो रचनायें 'रास-पचाध्यायी' और 'कृष्ण-रुक्मिणी केलि' वतायी जाती हैं। उपनाम "गिरिराजधरन" है। चर्चरी छद में इन्होने रचना की है।

ध्रुवदास ने भी इनका उल्लेख किया है।

युगल प्रेम रस अब्धि में, परचो प्रबोध मन जाय ।
वृन्दावन रस माधुरी, गाई अधिक लडाय ॥

निश्चित तिथिया अज्ञात हैं।

६. वल्लभाचार्य के शिष्य कृष्णदास—भक्तमाल में निम्न छप्पय दिया है —

गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माझ साझौ दियौ ।
श्री वल्लभ गुरुदत्त भजन सागर गुन आगर ।
कवित नोख निर्दोष नाथ सेवा में नागर ॥
बानी वदित विदुष सुजस गोपाल अलकृत ।
ब्रज रज अति आराध्य वहै धारी सर्व सुचित ।
सानिध्य सदा हरिदास वर्य गौर स्याम दृढ व्रत लियौ
गिरिधरन रीझि कृष्णदास कौं नाम माझ साझौ दियौ ॥

(भ हिन्दी, ८१, पृ ५८१)

ये कृष्णदास वल्लभाचार्य के शिष्य और सुकवि वताए गए है। अत ये अष्टछापी कृष्णदास हो सकते है। "चौरासी वैष्णव की वार्त्ता" में उल्लेख है कि ये कृष्णदास गुजरात के चिलोतरा ग्राम में कुनबी के घर उत्पन्न हुए थे -

सो ये कृष्णदास गुजरात में एक चिलोतरा ग्राम है
तहा एक कुनबी के घर जन्मे ॥

वैष्णवो की जीवनी सबधी रचनाओ से कृष्णदास की जन्म और मरण की निश्चित तिथियो का पता नही चलता। डा दीनदयालु गुप्त[1] ने वार्त्ताओ और वल्लभ-दिग्विजय के कुछ प्रसगो के आधार पर इनका जन्म सवत् १५५२ विक्रमी के लगभग माना है। कृष्णदास जी ने गोस्वामी विट्ठलनाथ के सातो पुत्रो की वधाई गाई थी। गोस्वामी जी के सातवें पुत्र सवत् १६२८ वि में उत्पन्न हुए थे। कृष्णदास उस समय तक जीवित थे। डा दीन दयालु गुप्त[2] इनका निधन-सवत् १६३२-३८ वि के वीच में मानते हैं।

कृष्णदास के नाम से आठ रचनायें वताई जाती हैं जिनके नाम निम्न है —

१ जुगल-मान-चरित्र
२ भक्तमाल पर टीका
३ भ्रमर-गीत
४ प्रेमसत्व निरूप
५ भागवत भाषानुवाद
६ वैष्णव-वदना
७. कृष्णदास की वाणी
८ प्रेमरस-रास

इनमे से तीसरी और चौथी रचना अधिक प्रसिद्ध है। परतु डा दीनदयालु गुप्त इनको सदिग्ध रचनाये मानते है । 'कृष्णदास की वानी' और 'प्रेमरस-रास' को भी वे स्वतत्र रचना नही मानते। शेष रचनाओ को उन्होने अप्रामाणिक माना है।[3] कृष्णदास के पद राग सागरोद्भव,राग रत्नाकर और छपे हुए कीर्त्तन सग्रहो मे प्राप्त हैं।

---

१. अष्ट. व स, पृ २५३-५४
२. " " ", पृ २५४
३. " " ", पृ० ३१७-३२०

केवलराम

केवलराम व्रजवासी थे। १५७५ ई के आस पास इनकी उपस्थिति ज्ञात है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त हैं जो मुख्यतया राधाकृष्ण लीला सबधी हैं। ये कृष्ण-दास पयहारी के शिष्य थे। इनका उल्लेख भक्तमाल मे है —

केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किये ॥
भक्ति भागवत विमुख जगत, गुरु नाम न जानै।
ऐसे लोक अनेक ऐंचि सनमारग आनै ॥
निर्मल रति निहकाम, अजा तें सदा उदासी।
तत्त्वदरसी तमहरन, सील करुना की रासी ॥
तिलक दाम नवधा रतन, कृष्ण कृपा करि दृढ दिये।
केवलराम कलियुग के पतित जीव पावन किये ॥

(भ० हिन्दी, १७३, पृ० ८८२)

केशव भट्ट

केशव काश्मीरी अत्यन्त विद्वान पडित थे। ये चैतन्यदेव के समकालीन थे। केशव ने चैतन्यदेव से शास्त्रार्थ किया था जिसमे ये पराजित हुए। फिर ये वृंदावन मे रहने लगे। इनकी रचनायें स्फुट पद हैं। दो पद रागकल्पद्रुम मे प्राप्त हैं। इनका उल्लेख भक्तमाल म है

केशौ भट नरमुकुटमणि जिनकी प्रभुता विस्तरी ॥
कास्मीरि की छाप, पाप तापनि जग मडन।
दृढ़ हरिभक्ति कुठार, आन धर्म विटप विहडन
मथुरा मध्य मलेच्छ, बाद करि बरबट जीते।
काजी अजित अनेक देखि परचै मे भीते ॥
बिदित बात ससार सब सत साखि नाहिन दुरी।
केशौभट नर मुकुटमणि, जिनकी प्रभुता बिस्तरी ॥ (भ० हिन्दी, ७५, पृ० ५६६)

इनके अतिरिक्त भक्तमाल में चार अन्य केशव जी नाम के व्यक्तियो का उल्लेख है।[1]

खेम कवि

खेम कवि का विशेष विवरण अज्ञात है। इस नाम से कुछ पद "रागकल्पद्रुम" में हैं। ये १५०४-१५७३ ई के बीच मे उपस्थित रहे होगे।[2] भक्तमाल में 'खेम' नाम के तीन व्यक्तियो का उल्लेख है।

१—भक्तपाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूरधीर ॥

खेम श्रीरग नद बिस्नु बीदा बाजूसुत जोरी। (भ० हिन्दी, १००, पृ० ६५४)

---

१ भक्तमाल, भ० सु० स्वाद तिलक टीका पृष्ठ ६५४, ६५५, ६५७, ८४३ (छप्पय १००, १०१, १०२, १५१)

२ (क) The Modern Vernacular Literature of Hindustan, p 32
(ख) मिश्रबन्धु-विनोद, पृ० २३४

२—निरवर्त भये संसार तें, ते मेरे जजमान सब ॥

. . .

किंकर कुंडा कृष्णदास खेम सोठा गोपानद . . .इत्यादि

(भ. हिन्दी, १४७, पृ. ८३०)

३—श्री अग्र अनुग्रह तें भये, शिष्य सबै धर्म की धुजा ॥

.

औरो अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघुऊधौ ॥

(भ. हिन्दी, १५०, पृ. ८४२)

अतिम 'खेम' अग्रदास की शिष्य परपरा में है। कदाचित् ये ही अभीष्ट पदकर्त्ता हो। एक खेमजी व्रजवासी का उल्लेख मिश्रवन्धु-विनोद मे पृ० ४०३ पर है। इनकी रचना 'खेमजी की चितवनी' और जन्म काल १६३० विक्रम सवत् वताया गया है।

गगास्त्री

गगास्त्री हित हरिवश की शिष्या थी। इनका उल्लेख ध्रुवदास की भक्तनामावली में है। इनकी रचना स्फुट पद है। इनका निश्चित जन्म समय तो अज्ञात है। ये हित-हरिवश की समकालीन रही होगी।

गदाधरदास

"गदाधरदास" नाम के तीन व्यक्तियो का उल्लेख भक्तमाल में वताया जाता है।

१ गदाधर भट्ट—गदाधर भट्ट के लिए एक सम्पूर्ण छप्पय दिया गया है जो निम्न है —

गुन निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन कौ लागै सुखद ॥
सज्जन सुहृद सुशील वचन आरज प्रतिपालय।
निर्मत्सर निहकाम कृपा करुणा को आलय ॥
अनन्य भजन दृढ़ करनि धर्यौ वपु भक्तनि काजै ॥
परम धरम को सेतु विदित वृन्दावन गाजै ॥
भागौत सुधा वरषै वदन काहू को नाहिन दुखद ॥
गुन निकर गदाधर भट्ट अति सबहिन कौ लागै सुखद ॥

(भ हिन्दी, १३८, पृ. ७९३)

गदाधर भट्ट चैतन्यदेव के भक्त शिष्य थे। इनका जन्म-समय शिवसिंह ने स १५८० दिया है। मिश्रवन्धु विनोद में भी स १५८०वि जन्म काल दिया है। गदाधर भट्ट चैतन्यदेव के समसामयिक तो थे ही अत- सवत् १५८४वि में जो चैतन्यदेव के लीला सवरण का समय है। उनकी उपस्थिति निश्चित है। जीव गोस्वामी से भी इनका साक्षात्कार हुआ था। इनका उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका के कवित्त मे किया है।[1]

---

१. "स्याम रग रगी" पद सुनि कै गुसाई जीव पत्र दै पठाये उभै साधु
वेगि धाये है (कवित्त १८२)
मिले श्री गुसाईं ज सो आखैं भरि आईं (कवित्त १८१)

बगला भक्तमाल में भी जो लालदास रचित है इस बात की पुष्टि होती है। यह विवरण निम्न है —

गदाधर भट्ट नाम रसिक भकत।
राधाकृष्ण-प्रेम-लीला-रसे उन्मत ॥
एक पद बानाइया भट्ट महाशय।
श्रीजीव गोस्वामि स्थाने आनदे पाठाय॥
वृदावने गोस्वामी पाइया सेइ पद।
उथलिल गोस्वामीर प्रेमानदमद ॥
गोस्वामिजी भट्टजीके लिखि पाठाइला।

पत्री पाठ करि भट्ट चलिला अमनि।
श्रीवृदावने जथा श्रीजीव गोस्वामी ॥
जाइया पडिला पदे गोस्वामी तुलिया।

(भ व, माला २३, पृ ३३९)

मोहिनी वाणी के नाम से इनके पदो का सग्रह बताया जाता है।

२ भक्तमाल की भक्ति-सुधा-स्वाद तिलक टीका के पृ ९०४ पर एक छप्पय (१८६) दिया गया है। यह सम्पूर्ण छप्पय एक दूसरे गदाधरदास का विवरण देता है।

भली भाति निबही भगति सदा गदाधरदास की ॥
लालबिहारी जपत रहत निशि बासर फूल्यौ।
सेवा सहज सनेह सदा आनंद रस झूल्यौ ॥
भक्तनि सो अति प्रीति रीति सबही मन भाई।
आसय अधिक उदार रसन हरि-कीरति गाई ॥
हरि विश्वास हिय आनि कै सपनेहु आन न आस की।
भली भाति निबही भगति सदा गदाधरदास की ॥

इन गदाधरदास का अन्य अधिक विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धु-विनोद के पृ ३५५ पर एक गदाधर मिश्र का नाम दिया है, जिनका जन्म सवत् १५८० वि है। यदि ये दोनो एक ही व्यक्ति हैं तो यही जन्म सवत् उनका समय निर्धारण करता है। अन्यथा इतना तो निश्चित है कि ये भक्तमाल रचयिता के पूर्ववर्त्ती व्यक्ति हैं। गदाधरदास नाम से सागरोद्भव में पद सकलित हैं। भक्तमाल के वार्त्तिक तिलककार रूपकला गदाधरमिश्र को वल्लभाचार्य का शिष्य बताते है।

३ गदाधर—भक्तमाल में एक तीसरे गदाधर का उल्लेख बहुत से अन्य भक्तो के साथ साथ किया गया है —

गुनगन विसद गोपाल के एते जन भये भूरिदा॥
बोहिथ रामगुपाल कुवरवर गोविन्द माँडिल।
छीत स्वामि जसवत गदाधर अनतानद भल ॥

(भ हिन्दी, १४६, पृ ८२९)

ये तीसरे गदाधर कौन थे यह कहना कठिन है। इनके समय के बारे में यह निश्चित है कि ये नाभादास के पूर्ववर्ती व्यक्ति थे।

गिरिधर

गिरिधर के कुछ स्फुट भजन प्राप्त हैं। इनका विशेष विवरण अज्ञात है। इनका रचना काल सवत् १६६६ वि के आसपास माना जा सकता है। भक्तमाल में इनका उल्लेख है।

गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा साच लौ सग कौ ॥
प्रेमी भक्त प्रसिद्ध गान अति गद गद वानी।
अतर प्रभु सो प्रीति प्रगट रहै नाहिन छानी ॥
नृत्य करत आमोद विपिन तन वसन विसारै।
हाटक पट हित दान रीझि ततकाल उतारै ॥
मालपुरै मगल करन रास रच्यौ रस रग कौ।
गिरिधरन ग्वाल गोपाल कौ सखा सान्न लौ संग कौ ॥

(भ. हिन्दी, १९४, पृ. ९२०)

ध्रुवदास ने भी इनका उल्लेख निम्न रूप से किया है —

गिरिधर स्वामी पर कृपा, वहुत भई दश कुंज।
रसिक रसिकनी की सुजश, गायी तिहिं रसपुज ॥

गोकुलनाथ गोस्वामी

गोकुलनाथ गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे। इनका जीवन-काल स. १६०८ वि से १६९७ वि तक है। इन्होंने दो गद्य ग्रथ "चौरासी वैष्णव की वार्त्ता" और "दो सौ वावन वैष्णव की वार्त्ता" रचे थे। ये मिश्रित व्रजभाषा की रचनायें है।

गोपीनाथ

मिश्रवन्धुओ ने इनका जन्म-काल स १५४८ वतलाया है और रचना-काल सवत् १५६८ निर्धारित किया है। भक्तमाल मे इस नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख है —

१ गोपीनाथ—ये मथुरावासी वताए गए हैं। यह नीचे दिए छप्पय के अश मे स्पष्ट है —

जे वसे वसत मथुरा मडल, ते दया दृष्टि मोपर करौ ॥
रघुनाथ गोपीनाथ रामभद्र दासू स्वामी। . . . . . इत्यादि

(भ हिन्दी, १०३, पृ. ६६१)

२ पंडा गोपीनाथ—इनका अन्य भक्तो के साथ उल्लेख मात्र है। वह छप्पय निम्न है —

वद्रीनाथ उडीसे, द्वारिका सेवक सव हरि भजन पर ॥

• •

पडा गोपीनाथ मुकुंदा गजपति महाजस। . . . इत्यादि

(भ. हिन्दी, १०१, पृ. ६५५)

गोपालदास

गोपालदास के नाम से पद रागकल्पद्रुम मे प्राप्त हैं। मिश्रवन्धु सवत् १५६१ से १६३० वि तक इनकी उपस्थिति वताते हैं। इनका निश्चित जन्मसवत् तो अज्ञात है। नाभादास इन्हे पयहारी कृष्णदास का शिष्य वताते हैं। इस प्रकार ये कदाचित् उनके समकालीन रहे हो। वैसे भी क्योकि इनका उल्लेख नाभादासजी ने किया है ये उनके पूर्ववर्त्ती व्यक्ति रहे होगे। यह छप्पय जिसमे अन्य भक्तो के साथ गोपालदास का उल्लेख है, निम्न है —

पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥

पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधरी
देवा हेम कल्यान गगा गगासम नारी इत्यादि

'(भ. हिन्दी, ३९, पृ ३१४)

गोविददास

गोविंददास की एक रचना पद-सग्रह प्राप्त है। इसका नाम एकात-पद है। ये राधाकृष्ण विपयक पद है जो ब्रजभापा मे हैं। इनका जन्म सवत् १६११ वि में हुआ था।[1] इनके पद रागकल्पद्रुम मे भी प्राप्त हैं।

गोविद स्वामी

गोविंद स्वामी अप्टछाप के एक कवि थे। ये पदकर्त्ता थे। इनके पद कीर्त्तन-सग्रहो में प्राप्त हैं। पदो के अतिरिक्त अन्य कोई रचना प्राप्त नही है। डा दीनदयालु गुप्त ने, "वार्त्ताओ", "अप्टछाप" "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" और श्री गिरिधर लाल के एक सौ बीस वचनामृत के आधार पर इनकी सक्षिप्त जीवनी दी है[2]। उनके कथनानुसार ये आतरी ग्राम में उत्पन्न हुए थे। वाद को ये गोवर्धन चले गए। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के शिष्य हुए थे। इनका जन्म-सवत् लगभग १५६२ विक्रमी और मृत्यु-सवत् १६४२ वि वताते हैं। इन्होने विट्ठलनाथ के सातवें पुत्र घनश्याम का उल्लेख एक पद में किया है।[3] घनश्याम सवत् १६२८ वि मे जन्मे थे। उस समय तक ये थे।

भक्तमाल में इनका अन्य भक्तो के साथ एक छप्पय मे उल्लेख है —

हरि सुजस प्रचुर कर जगत मै, ये कविजन अतिसय उदार ॥
विद्यापति ब्रह्मदास वहोरन चतुर बिहारी।
गोविन्द गगा रामलाल वरसानिया मगलकारी ॥

(भ हिन्दी, १०२, पृ ६५७)

प्रियादास ने अपने कवित्तो में कुछ अधिक विवरण दिया है जो इनकी भक्ति की दृढता वताता है।

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ ७१३
२ अष्ट व स, पृ २६६-२७२
३ भये श्री "वल्लभराय" "रघुपति" श्री यदुपति सामल घन।
गोविन्द प्रभु गिरिराज उद्धरण गुणनिधि श्री गिरधरन।

चतुरविहारी

चतुरविहारी के कुछ पद राग-सागरोद्भव में प्राप्त हैं। ये साधारण श्रेणी के कवि हैं। शिवसिंह और मिश्रवधु दोनो ही ने स १६०५ वि इनका जन्मकाल दिया है।[1] इनके विषय में अधिक तो ज्ञात नही है परतु ये विट्ठलनाथ के शिष्य ज्ञात होते है, जैसा कि उन्होंने एक पद में उल्लेख किया है।

जीवन मुक्त सदा तेही जन जो श्री वल्ल भनंदन के चेरे।
चतुर कहे श्री विट्ठलनाथ प्रभु सो, हमेहूं गिनिये तिनमें भले वुरे तो तेरे।
(की. र., पृ १९६)

चतुर्भुजदास

चतुर्भुजदास अष्टछाप के कवि कुभनदास के पुत्र थे और स्वय भी अष्टछाप के एक कवि थे। डा दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप के आधार पर जो चतुर्भुज दास की जीवनी दी है[2] उसके अनुसार ये कुभनदास के पुत्र थे। पिता ने जन्म होने के कुछ ही दिन वाद नवजात शिशु को गोस्वामी विट्ठलनाथ की शरण में दे दिया। विट्ठलनाथ व्रज में गिरिधर जी के जन्म के वाद आए थे। उस समय सवत् १५९७ वि० चल रहा था। तभी चतुर्भुजदास उनकी शरण मे दिए गए थे। अत उनका जन्मसवत् १५९७ वि० है। चतुर्भुजदास सवत् १६२८ वि० तक अवश्य विद्यमान थे। यह सवत् विट्ठलनाथ के सातवें पुत्र घनश्यामदास जी का जन्मकाल है। चतुर्भुजदास ने उनकी वधाई गाई है।[3] चतुर्भुजदास ने विट्ठलनाथ की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए पद लिखे है।[4] गोस्वामीजी का मृत्युसवत् १६४२ वि० फाल्गुन कृष्ण ७ माना जाता है। चतुर्भुजदास की मृत्यु इस सवत् मे ही हुई होगी।

चन्द सखी

चन्द सखी का विशेप विवरण अज्ञात है। यह भी नही कहा जा सकता कि यह कोई स्त्री है अथवा पुरुप। भक्तो के नाम पुरुप होते हुए भी राधा की सखियो के नाम पर पाए जाते हैं। ग्रियर्सन ने इनका उल्लेख पुल्लिग में किया है।[5] ये १५६१ से १६३० सवत् तक के कवियो में से एक है। चन्द सखी के पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त है। ऐसा ज्ञात होता है कि ये कृष्ण के वालरूप की उपासक थी क्योकि अधिकाश पदो की अन्तिम पक्ति मे "चन्द सखी

---

१ शिवसिंह—सरोज, पृ ४१४
मिश्रवंधुविनोद, पृ. ३६२
२. अष्ट. व. स, पृ. २६२-२६६
३. श्री वल्लभ सुजसु सन्तन नित्य गाऊ।
.
श्री घनश्याम अभिराम रूप वरषा स्वांति आस ज्यो रस चातक रटाऊ॥
४. श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अव सव कोऊ पछतैहं॥
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु जनमु सिरैहं॥
5. Modern Vernacular Literature of Hindustan, P. 332.

भज बाल कृष्ण छवि" दिया है। कदाचित् ये मीराबाई की भक्त और परवर्ती कवि थी, क्योकि इनके एक पद की भाषा बहुत कुछ मीरा बाई की भाषा है —

जावादे गुमानीडा कृष्ण म्हारे डेरे काम छे।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी यमुना किनारे म्हारो गाम छे।
म्हारे आंगन तुलसी को बिरवा सावरी सखी म्हारो नाम छे।
जानी नहीं तो पूछ लीजयो कुज द्रुमन म्हारो धाम छे।
चन्द सखी भज बाल कृष्ण छवि श्री राधा म्हारो नाम छे।

(रागकल्पद्रुम, पृ ५०६)

मीरा के दो पदो के कुछ भाव भी चन्द सखी के दो पदो में मिलते है।

कहिये जो कहवे की होय।

,

चन्द सखी पीर तब ही मिटेगी मिले सावरा वैद्य जो मोय॥

(रागकल्पद्रुम, पृ ६५)

"मीरा की प्रभु पीर मिटेगी वैद सवलिया होय" इस पक्ति का भाव चन्द सखी की अन्तिम पक्ति में है। इसी प्रकार दूसरा पद है —

जाने रे कोउ वैद्य न मन की।
जा तन लागे सोइ तन जाने अटपटी प्रीति लगन है कठिन की।

मीरा के पद की निम्न पक्ति से तुलना की जा सकती है —

घायल की गति घायल जाने की जिन लाई सोय।

छबीले कवि

छबीले कवि का समय अज्ञात है। विशेष विवरण भी अज्ञात है। इनका नाम शिवसिंह ने दिया है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में है जो सख्या में तीन हैं और राधा-कृष्ण लीला विषयक है।

छीत स्वामी

छीत स्वामी अष्टछाप के एक कवि हैं। डा दीनदयालु गुप्त ने अष्टछाप, वार्त्ताओ, और पद प्रसग माला के आधार पर इनके जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है।[1] इसके अनुसार छीत स्वामी मथुरिया चौबे थे और विट्ठल नाथ के शिष्य थे। शिष्य होने से पहले ही ये कवि थे। राजा वीरबल के पुरोहित थे। सम्प्रदाय कल्पद्रुम में इनकी शरणागति का समय सवत् १५९२ विक्रम दिया है। गुप्त जी ने इसी को मान कर उनके जन्मसवत् का अनुमान १५६७ वि के लगभग किया है। छीत स्वामी ने विट्ठलनाथ के सातो पुत्रो की बधाई गाई थी। गिरिधर लाल जी के १२० वचनामृत में इनकी मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद ही बताई है। इनका प्राचीन उल्लेख वार्ता के अतिरिक्त भक्तमाल में भी है। एक छप्पय में बहुत से अन्य व्यक्तियो के साथ इनका नाम दे दिया है —

गुनगन विसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा॥

---

१ अष्ट व स, पृ २७२-२७८

वोहिथ रामगुपाल कुंवरवर गोविन्द मांडिल ।
छीत स्वामि जसवंत गदाधर अनंतानंद भल ॥

(भ. हिन्दी, १४६, पृ. ८२९)

छीत स्वामी की रचना पदो तक ही सीमित है। ये विट्ठलनाथ के शिष्य थे जैसा इस पद से ज्ञात है —

हम तो विट्ठलनाथ उपासी ।
सदा सेंड श्री वल्लभ नंदन जाइ करौं कहा कासी ॥
इन्हें छाडि जो औरे धावे सो कहिये असुरासी ।
छीत स्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल, बानी निगम प्रकासी ॥

जगन्नाथदास

जगन्नाथदास का विशेष विवरण ज्ञात नही है। मिश्रवन्धु-विनोद मे इनका नाम सवत् १५६१ से १६३० वि०ं तक के कवियो में दिया है । भक्तमाल में अग्रदास के शिष्यो में एक जगन्नाथ का नाम दिया है।

श्रीअग्र अनुग्रह तें भये शिष्य सवै धर्म की धुजा ॥

.

कोमल हृदै किशोर, जगत, जगन्नाय सलूधो ।
ओरौ अनुग उदार खेम खीची धरमधीर लघुऊधो ।

(भ. हिन्दी, १५०, पृ. ८४२)

रागकल्पद्रुम में जगन्नाथ कवि के नाम से ३ पद प्राप्त हैं। कदाचित् ये इन्ही के पद हो।

जमुना स्त्री

जमुना स्त्री हित हरिवश की चेली थी। इनका निश्चित जन्म और मरण काल तो अज्ञात है। कदाचित् हित हरिवश की समसामयिक रही हो। भक्तमाल में कलियुगी भक्त नारियो के नाम एक छप्पय में दिए है। उसी में "जमुना" भी दिया है। हो सकता है उसका तात्पर्य इन्ही जमुना स्त्री से हो।

कलिजुग जुवतीजन भक्तराज महिमा सव जानै जगत ॥
कला लखा कृतगढ़ौ मानमती सुचि सतिभामा ।
जमुना कोली रामा मृगा देवादे भक्तन विश्रामा ॥

(भ हिन्दी, १०४, पृ० ६६४)

तानसेन

प्रसिद्ध गवैये भक्त तानसेन अकवर के दरवार के नवरत्नो में से एक रत्न थे। ये जाति के ब्राह्मण थे और ग्वालियर के रहने वाले थे। पीछे चल कर इन्होने मुस्लिम धर्म ग्रहण किया। इनका रचनाकाल स १६१७ वि० के लगभग है । इनके वनाए तीन ग्रथ वताए जाते है।[1]

---

१. मिश्रवधु-विनोद, पृ. ३४५

१ सगीतसार

२ रागमाला

३ श्री गणेश-स्तोत्र

तानसेन की प्रशसा में सूरदास ने कहा है

विधना यह जिय जानि कै सेसहि दिये न कान ।
धरा मेरु सब डोलते तानसेन की तान ॥

तुकाराम

तुकाराम महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सत और कवि थे । इन्होंने 'पारकरी' नामक पथ चलाया था और प्रेम-भक्ति का प्रचार किया था। इनके अभग (पद) महाराष्ट्र में बहुत प्रसिद्ध हैं । इनका समय सवत् १६६४ से १७०६ वि० तक है । इनकी कुछ रचनायें हिन्दी में भी है।

तुलसीदास

सुप्रसिद्ध भक्त और कवि तुलसीदास सोलहवी शती के महाकवि है । ये राम-काव्य के प्रणेता है। रामकाव्य ही इन्होंने अधिक लिखा है। कृष्ण और हनुमान पर भी इनकी रचनायें प्राप्त हैं। इनकी कविता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है । काव्य की प्रचलित समस्त शैलियो में इनकी रचनायें उपलब्ध हैं। ब्रज भाषा और अवधी दोनो में इन्होंने कविता की है । ये अकबर के समकालीन थे। इनकी जन्मतिथि के सबध में अत्यन्त मतभेद है। अधिकाश विद्वानो के मतो का उल्लेख कर डा माताप्रसाद गुप्त सवत् १५८९, भादो सुदी ११ मगलवार को अधिक सभव मानते हैं ।[१] मिश्रबधु भी यही तिथि देते है।[२] गोसाईं चरित में इनका जन्मसवत् १५५४ वि दिया हुआ है। तुलसीदास की मृत्युतिथि भी अनिश्चित है। इनकी तीन रचनाओ की रचना-तिथिया ज्ञात हैं —

१ रामचरितमानस वि स १६३१

२ पार्वती मगल, वि स १६४३,

३ कवितावली, स १६६५—१६८५ वि के बीच में

नाभादास ने अपने भक्तमाल में तुलसीदास का उल्लेख किया है —

कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक तुलसी भयो ॥
त्रेता काव्य निबध करि सत कोटि रमायन ।
इक अच्छर उद्धरैं ब्रह्म हत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुख देन बहुरि लीला विस्तारी ।
राम चरन रस मत्त रटत अहनिसि ब्रतधारी ॥
ससार अपार के भार को सुगम रूप नवका लयो ।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीक तुलसी भयो ॥

(भ. हिन्दी, १२९, पृ० ७६२)

---

१ तुलसीदास, पृ १०९–१११

२ मिश्रबधु-विनोद, पृ ३०४

वार्त्ताकार ने तुलसीदास को नददास का भाई बताया है। "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता" में नददास की वार्त्ता में तुलसीदास का उल्लेख है।[1]

"नंददास जी तुलसी दास के छोटे भाई हते।"
"सो नंददास जी के बडे भाई तुलसीदास जी काशी में रहते हुते"
"सो एक दिन नंददास के मन में ऐसी आई जो जैसे तुलसी दास
जी ने रामायण भाषा करी है, सो हमहूं श्रीमद्भागवत करें।"

इन अवतरणो से तुलसीदास का काशीवासी होना और रामायण लिखना ज्ञात होता है।

तुलसीदास की रचनायें सख्या में काफी है। नीचे उनकी तालिका दी जाती है।

१ राम गीतावली
२ कृष्ण गीतावली
३ रामचरितमानस
४ दोहावली
५ सतसई
६ राम-विनयावली या विनय-पत्रिका
७ रामलला नहछू
८ पार्वती-मगल
९ जानकी-मगल
१० बाहुक
११ वैराग्य-सदीपनी
१२ रामाज्ञा प्रश्न
१३ बरवै रामायण
१४ कवितावली

बगला भक्तमाल मे तुलसीदास का कई पृष्ठो में विवरण दिया है। उस में अलौकिक घटनाये ही अधिक है। प्रारम्भ की कुछ पक्तियाँ ये हैं

श्रीमान् तुलसीदास जगते विख्यात।
अलौकिक अद्भुत जाहार चरित ॥
पूर्वे तेंहो छिलेन वाल्मीकि मुनिवर।
लोकेर निस्तार हेतु केला अवतार ॥
लौकिक लीलाते एक ब्राह्मणेर घरे।
जन्मिलेन महाशय लोक-व्यवहारे ॥
कालेते विवाह करि गृहस्थालि कैल।
स्त्रीर वशीभूत विप्र एकात हइल ॥

(भ वं., माला २३, पृ. ३२९)

दामोदरदास

दामोदरदास की निश्चित जन्म- और मरण-तिथि अज्ञात हैं। मिश्रबधु इन्हें स. १५६१ से १६३० वि० तक के कवियो में से एक कवि मानते हैं। दामोदर नाम से कुछ पद कीर्त्तन-सग्रहो और रागकल्पद्रुम मे मिलते है। हिन्दी भक्तमाल में 'दामोदर' नाम के चार व्यक्तियो का उल्लेख है।

१ कील्हदेव के शिष्य दामोदर—बहुत से अन्य शिष्यों के साथ इनका भी उल्लेख है।

---

१. अष्टछाप, नददास की वार्त्ता

कील्ह कृपा कीरति विशद परम पारषद सिप प्रगट।

•

रसिक रायमल गौर देवा दामोदर हरिरग राचा इत्यादि

(भ हिन्दी, १५८, पृ ८५५)

२ इनके गुरु इत्यादि का विवरण नही है, केवल वहुत मे भक्तो के साथ नाममात्र दिया है।

निरवर्त्त भये ससार तें, ते मेरे जजमान सव ॥

जैदेव राघो विदुर दयाल दामोदर मोहन परमानद। इत्यादि

(भ हिन्दी, १४७, पृ ८३०)

३ इनका भी वहुत से भक्तो के साथ उल्लेखमात्र है। विशेप विवरण नही दिया है।

हरि के समत जे भगत, ते दासनि के दास

• •

दामोदर सापिले गदा ईश्वर हेम विदीता। इत्यादि

(भ हिन्दी, १०५, पृ ६६८)

४ इन चौथे दामोदर का भी वहुत से भक्तो के साथ उल्लेखमात्र है।

भक्त पाल दिग्गज भगत ए थानाइत सूर धीर ॥

•

छीतम द्वारिकादास माधव माडन रूपा दामोदर। इत्यादि

(भ हिन्दी, १००, पृ ६५४)

एक और दामोदरदास का उल्लेख हरिराय कृत "भावप्रकाश" मे है जो वल्लभाचार्य के शिष्य वताए जाते हैं। वल्लभाचार्य उन्हे "दमला" कहते थे। यह भी वे कहते हैं। 'पद्मनाभ' के एक पद में इन दमला का उल्लेख है।

घोघेदास

घोघेदास के कुछ पद रागकल्पद्रुम में प्राप्त है। इनका विशेष विवरण अज्ञात है। ये स १५६१ से स १६३० वि के वीच में उपस्थित थे। पद साधारण रूप से सुन्दर है। एक पद राम के ऊपर भी है [1] जिसमें दशरथ के मरने के वाद की घटना का वर्णन है। अन्य सव पद कृष्णविषयक हैं।

---

१ जवै भरत घर जाय माता सों कहा रिसाई।
विछुरे सीताराम लच्छमन से दोउ भाई।
वैठो कैकेयी राज करो दशरथ त्यागे प्राण।
ऊचे नीचे महल देख के कौन हमारो काम।
नगर छोड सवा हाथ मुह खोदी रामचरन चित्त लाई ॥
पैकरमा कर पूज पायरी भरत कीन्ह परणाम।
घोंघे दास विरह वियोगी जै वोलो सीताराम ॥ (रागकल्पद्रुम, भाग १, पृ० ६३१)

नददास

नददास अष्टछाप के एक कवि हैं। ये श्रेष्ठ कवियो मे से है। रचनायें भी विभिन्न शैलियो में और विभिन्न विपयो पर है। डा दीनदयालु गुप्त ने वार्त्ता, भक्तमाल, भक्त-नामावली, गोसाईं चरित इत्यादि के आधार पर जो इनकी जीवनी प्रस्तुत की है उसके अनुसार ये रामपुर ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे। वार्त्ता मे इन्हें तुलसीदास का भाई बताया गया है। गोस्वामी विट्ठलनाथ इनके गुरु थे। गुरु की वदना मे नददास ने कई पद बनाए हैं। एक पद नीचे दिया जाता है —

प्रात समै श्री वल्लभसुत को, वदन कमल को दर्शन कीजै।
तीन लोक वदित पुरुषोत्तम उपमा कहि जो पटतर दीजै॥
श्री वल्लभ सुत कुल उदित चन्द्रमा लखि छवि नैन चकोरन पीजै।
नददास श्री वल्लभसुत पर, तन मन धन न्योछावर कीजै॥

डा गुप्त नददास का जन्मसवत् १५९० वि के लगभग और मृत्युसवत् १६४३ वि के लगभग मानते हैं।[1] निम्न ग्रथ नददास की रचना बताए जाते हैं[2] —

१ रास-पचाध्यायी
२ रूप-मजरी
३ विरह-मजरी
४ रस-मजरी
५ मान-मजरी या नाममाला
६ अनेकार्थ-मजरी
७ भागवत, दशम स्कध
८ श्याम-सगाई
९ सुदामा-चरित
१० गोवर्द्धन-लीला
११ सिद्धात-पचाध्यायी
१२ रुक्मिणी-मगल
१३. भँवर-गीत
१४ दान-लीला
१५ जोग-लीला
१६ मान-लीला
१७ मान-लीला
१८ फूल-मजरी
१९ राजनीति हितोपदेश
२० नासिकेत भाषा
२१ रानी माँगो
२२ प्रबोध-चन्द्रोदय
२३. ज्ञान-मजरी
२४. विज्ञानार्थ प्रकाशिका
२५ पनिहारिन लीला
२६. राम लीला

इन के अतिरिक्त नन्ददास के स्फुट पद भी प्राप्त है।

नरवाहन जी

नरवाहन जी हित हरिवश के शिष्य थे और मौगात निवासी थे। इस बात का उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका में किया है। नाभादास ने एक छप्पय में बहुत से अन्य भक्तो के साथ इनका भी उल्लेख किया है।

---

१. अष्ट व स, पृ. २५५—२६२
२. अष्ट. व. स, पृ ३२४-३७४

हरि के समत जे भगत, ते दासनि के दास ॥

नरवाहन वाहन वरीस जापू जैमल वीदावत . . इत्यादि (भ हिन्दी, १०५, पृ ६६८)

प्रियादास के कथनानुसार इनके ऊपर दो कवित्त वना कर हितहरिवश ने अपने "हित चौरासी" ग्रथ में सम्मिलित किए है। मिश्रवधु इनका जन्मकाल स १६१७ वि वताते हैं।

नरसैया अथवा नरसी

नरसैया का विशेप विवरण ज्ञात नही है। मिश्रवधु[1] इन्हें स १५६१ से १६३० वि के वीच का कवि वताते हैं। नरसी नाम से कुछ पद "रागकल्पद्रुम" में है। ये हिन्दी-गुजराती मिश्रित है। अत ये नरसी गुजरात के प्रसिद्ध वैष्णव नरसी मेहता ही हो सकते है। नरसी मेहता का उल्लेख भक्तमाल में है।

जगत विदित "नरसी" भगत (जिन) "गुज्जर" धर पावन करी ॥
महास्मारत लोग भक्ति लौलेस न जानै ।
माला मुद्रा देखि तासु की निन्दा ठानै ॥
ऐसे कुल उत्पन्न भयौ भागौत सिरोमनि ।
ऊसर तें सर कियौ खड दोर्षाहि खोयो जिनि ॥
वहुत ठौर परचौ दियौ रसरीति भक्ति हिरदै धरी ।
जगत विदित नरसी भगत (जिन) गुज्जर घर पावन करी ॥

(भ हिन्दी, १०८, पृ ६८०)

भक्त नामावली में भी नरसी का उल्लेख निम्न प्रकार है —

नरसी हो अति सरस हिय, कहा देऊ समतूल ।
कहेउ सरस शृगार रस, जानि सुखनि को मूल ॥

प्रियादास इन्हे जूनागढ का निवासी वताते हैं। इनका सवत् १६०० से १६३५ वि तक का समय ज्ञात है। ये श्रेष्ठ भक्त और वडे परोपकारी व्यक्ति थे। इनके पदो का गुजरात में अच्छा प्रचार और मान है।

नवल स्त्री

इनका विशेप विवरण अज्ञात है। कुछ स्फुट पद इनकी रचनायें है। इनका रचना-काल स १६६६ वि के लगभग है। भक्तनामावली में इनका उल्लेख है।

नागरीदास

नागरीदास वृदावन में रहते थे। ये विहारिनीदास के शिष्य थे। इनका निश्चितजन्म और मृत्यु सवत् अज्ञात है। ये सवत् १६५० वि के आसपास उपस्थित थे। मिश्रवधु-विनोद (पृ ३८९) में इनकी एक रचना 'समय प्रवध सग्रह' का उल्लेख है जिसे मिश्रवधुओ ने छतरपुर में देखा है। इसमें नागरीदास ने अपने पदो के साथ हितहरिवश, हितध्रुव, व्यास, कृष्णदास, हितगोपीनाथ, हितरूपलाल के पदो का सग्रह किया है। इनके कुछ पद रागकल्पद्रुम में सगृहीत हैं।

---

१ मिश्रवधु-विनोद, पृ २३४

नाथ व्रजवासी

मिश्रबधु-विनोद मे नाथ व्रजवासी का जन्मसवत् १६०५ वि दिया है।[१] रचना-काल १६३० वि दिया है। अन्य विशेष विवरण अज्ञात है।

नाथ भट्ट

नाथ भट्ट का जन्म सवत् १६४१ वि में हुआ था। ये महत गोपाल भट्ट के पुत्र थे। इन्होने पदो की रचना की थी। ध्रुवदास ने अपनी भक्तनामावली में इनका उल्लेख किया है।

नाभादास

नाभादास स्वामी अग्रदास के शिष्य थे। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। भक्तमाल का रचनाकाल सवत् १६४२—१६८० वि० के बीच में सिद्ध किया जाता है।[२] यही समय उनकी उपस्थिति का भी है। इन्होने प्रसिद्ध 'भक्तमाल' की रचना की थी। कुछ पद भी इनके बनाए हुए प्राप्त हैं।

नारायण भट्ट

नारायण नाम से कुछ पद कीर्त्तन-सग्रहो और रागकल्पद्रुम में प्राप्त है। ग्रियर्सन इनका जन्म सन् १५६३ ई बताते है।[३] ये बरसाने के ऊचेगाव के निवासी थे —

नारायण भट्ट के लिए नाभादास जी ने एक सम्पूर्ण छप्पय रचा है।

"व्रजभूमि उपासक" भट्ट सो रचि पचि हरि एकै कियौ।
गोप्यस्थल मथुरा मडल जिते "वाराह" बखाने।
ते किये नारायण प्रगट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥
भक्ति सुधा को सिंधु सदा सतसग समाजन।
परम रसज्ञ अनन्य, कृष्णलीला को भाजन॥
ज्ञान समारत पच्छ को नाहिन कोउ खंडन वियौ।
"व्रजभूमि उपासक" भटट सो रचि पचि हरि एकै कियौ॥

(भ. हिन्दी ,८७, पृ. ५९५)

इसके अनुसार नारायण भट्ट ने वृदावन, मथुरा के सब प्राचीन तीर्थ स्थल जो वाराह पुराण में दिए है खोज निकाले थे।

पद्मनाभ

पद्मनाभ नाम के दो व्यक्तियो का उल्लेख भक्तमाल में है।

१ कबीर के शिष्य पद्मनाभ—ये कबीर दास के शिष्य थे और रामभक्त थे।

कबीर कृपा तें परम तत्व पद्मनाभ परचौ लह्यौ॥
नाम महा निधि मंत्र नाम ही सेवा पूजा।
जप तप तीरथ नाम, नाम बिन और न दूजा॥

---

१. मिश्रबधु-विनोद, पृ. ३०६
२. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम संस्करण, पृ ३९१
3. The Modern Vernacular Literature of Hindustan, p. 30.

नाम प्रीति नाम वैर नाम कहि नामी वोलै ।
नाम अजामिल साखि, नाम वधन ते खोलै ॥
नाम अधिक रघुनाथ तें राम निकट हनुमत कह्यौ ॥
कवीर कृपा तें परम तत्व पद्मनाभ परचौ लह्यौ ॥ (भ हिन्दी, ६८, पृ ५३९)

२ पयहारी कृष्णदास के शिष्य पद्मनाभ—ये वल्लभ मम्प्रदायी है। वल्लभाचार्य की वदना में इनके कुछ पद प्राप्त है। भक्तमाल में एक छप्पय मे अन्य भक्तो के साथ इनका भी उल्लेख है —

पैहारी परसाद तें शिष्य सवै ये पारकर।

पद्मनाभ गोपाल टेक टीला गदाधारी । इत्यादि । (भ हिन्दी, ३९, पृ ३१४)

पद्मनाभ नाम से पद अधिकतर कृष्ण-लीला सवधी या वल्लभ-वदना सवधी है। अत दूसरे पद्मनाभ ही अभीष्ट पदकर्ता है। इनका निश्चित जन्मसवत् अज्ञात है। पयहारी कृष्ण दास के समकालीन रहे होगे। मिश्रवघु इन्हें सवत् १५६१ से १६३० वि० के कवियो में मानते है।[1] इनके पद कीर्त्तन-सग्रहों और रागकल्पद्रुम में है। वहुत सभव है कि एक तीसरे पद्मनाभ और हो—क्योकि पद्मनाभ के नाम से केवल वल्लभाचार्य की वदनाये हैं, 'कृष्णदास' की नही—और समस्त प्राप्त पद इन्ही पद्मनाभ की रचना हो, 'कृष्णदास' के शिष्य की रचनायें न हो।

परमानददास

परमानददास अष्टछाप के एक कवि है। डा दीनदयालु गुप्त ने वार्त्ता, भक्तमाल और वल्लभ-दिग्विजय के आधार पर परमानददास की जीवनी की जो रूप-रेखा प्रस्तुत की है[2] उसके अनुसार यह कन्नौज में उत्पन्न हुए थे। जाति से कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वल्लभ सम्प्रदाय में आने से पहले ही ये कवि और गवैये के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे। सवत् १५७६ वि० के लगभग ये वल्लभ सम्प्रदाय मे आए। तव से कृष्णलीला सवधी वहुत से पद वनाए। गुप्त जी ने इनकी जन्म-तिथि सवत् १५५० वि०, अगहन सुदी ७ सोमवार सिद्ध की है। परमानददास ने विट्ठलनाथ के सातो पुत्रो की वधाई गाई है। सातवें पुत्र का जन्म सवत् १६२८ वि० है। तव तक इनका जीवित रहना निश्चित है। गुप्त जी इनका मृत्यु-सवत् १६४० वि० मानते है। इनकी दो रचनायें हैं पर पद वहुत से है।

१ दानलीला
२ ध्रुव चरित्र

प्राणचद चौहान

प्राणचद ने 'रामायण' महानाटक नामक एक ग्रथ की रचना की। इसमें रामकथा सवादो के रूप में वर्णित है। इनका जन्म और मृत्यु सवत् निश्चित रूप से ज्ञात नही है। सवत् १६६७ वि० रचना काल कहा जाता है।

---

१ मिश्रवघु-विनोद, पृ २३४
२ अष्ट व स, पृ २१९—२३०

वलरामदास

वलरामदास का विशेष विवरण अज्ञात है। मिश्रवन्धुओ ने इन्हे सवत् १५६१ से १६३० वि० के कवियो में गिनाया है।

ब्रजपति

ब्रजपति नाम से कुछ पद जो कृष्णलीलासवधी हैं कीर्त्तन-सग्रहो मे प्राप्त हैं। इनका विशेष विवरण अज्ञात हैं। मिश्रवधु इन्हें सवत् १५६१ वि से सवत् १६३० वि के कवियो में एक कवि वताते हैं।[1]

भगवत रसिक

भगवत रसिक स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इनका निश्चित जन्म और मृत्यु सवत् अज्ञात है। रचना काल सवत् १६२७ विक्रम है। इनकी कई रचनाये हैं।

१ अनन्य-निश्चयात्मक
२ नित्यविहारी-युगल-ध्यान
३ अनन्य-रसिकाभरण
४ निश्चयात्मक ग्रथ
५ निर्बोध-मनरजन

भगवानदास (हित)

मिश्रवधु-विनोद में एक भगवानदास का उल्लेख है,[2] जिसका जन्म सवत् १५९० वि० है। परतु भगवानदास, जन भगवानदास और केवल भगवानदास तीन नामो से कुछ पद कीर्त्तन-सग्रहो में प्राप्त हैं। मिश्रवधु प्रथम दो को एक ही व्यक्ति मानते हैं।[3] भगवान-दास (हित) ने गो. विट्ठलनाथ की वदना और उनके सातो पुत्रो की वधाई गाई है। अत ये उनके समसामयिक थे। कुछ पद कृष्णलीला सवधी भी हैं। एक पद मे कृष्ण के विवाह का वर्णन है —

दूल्हे हो नन्दलाल, न्याय दिन दूल्हे हो नंदलाल।
रीझ विकाय जहा वसे जहां नव दुल्ही ब्रजवाल ॥
सियल चाल अति डगमगे हो वसन मरगजे गात।
अति शोभित रसमसें मानो व्याह भयो जागे रात ॥... इत्यादि

(कीर्त्तन-रत्नाकर, पृ. २५)

भीषमदास

शिवसिंह-सरोज (पृ ४६६) में भीषमदास का उल्लेख है। परन्तु अन्य विशेप विवरण रचना-काल इत्यादि सवधी अज्ञात है।

माणिकचद

माणिकचद के नाम से कुछ पद कीर्त्तन-सग्रहो और रागकल्पद्रुम में प्राप्त है। इनका

---

१. मिश्र वंधु विनोद, पृ. २३४
२ मिश्र वंधु विनोद, पृ ३५९
३. मिश्र वंधु विनोद, पृ २३४, ३३८, ३६५

विशेप विवरण, निश्चित जन्म और मृत्यु काल अज्ञात है। मिश्रवन्धु इन्हे सवत् १५६१ वि० से १६३० वि० तक के कवियो में मानते हैं। माणिकचद ने वल्लभाचार्य और उनके पुत्र गो विट्ठलनाथ दोनो के जन्म-उत्सव गाए है। इससे वे वल्लभ के पुत्र विट्ठल के जन्म तक उपस्थित अवश्य रहे होगे।

माधवदास

माधवदास का जन्म सवत् १५८० वि० के लगभग हुआ था। रचना काल सवत् १६०२ वि० के लगभग है। रचना स्फुट पद हैं। ये पद कीर्त्तन-सग्रहो और "रागकल्पद्रुम" में हैं। शिवसिंह सेंगर इन्हे जगन्नाथ पुरी का निवासी वताते है। वगाली वैष्णव पद-कर्त्ताओ में भी एक माधवीदास या माधवदास हैं। इनका परिचय वगाली कवियो के साथ दिया जा चुका है। ये भी जगन्नाथ पुरी मे रहते थे। कदाचित् ये दोनो एक ही व्यक्ति हो जिसने हिंदी, वगाली दोनो में पद रचना की हो। दो माधवदासो का उल्लेख भक्तमाल में है।

१ जगन्नाथ जी के भक्त माधव दास—

विनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जन को हित माधौ कियौ॥
पहिले वेद विभाग कथित पुरान अष्टादस।
भारत आदि भागौत मथित उद्धारयौ हरि जस॥
अव सोध सव ग्रथ अर्थ भाषा विस्तारयौ।
लीला जै-जै जैति गाय भव पार उतारयौ॥
जगन्नाथ इष्ट वैराग्य सींव करुणा रस भीज्यौ हियौ।
विनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जग को हित माधौ कियौ॥

(भ हिन्दी, ७०, पृ ५४६)

२ सोभूराम के भाई माधवदास—

सोदर सोभूराम के, सुनौ तिनकी कथा॥

वहुरयौ माधवदास भजन वल परचौ दीनौ।　　इत्यादि

(भ० हिन्दी, १९०, पृ ९१४.)

मीरावाइ

प्रसिद्ध भक्त कवि मीरावाई की जन्म- और मृत्यु-तिथि के सवध में मतभेद है। मीरावाई का जन्म सवत् १५५५ वि से लेकर १५७३ वि तक वताया जाता है।[1] ये राजस्थानी थी। इनकी मृत्यु का सवत् भी निर्विवाद नही है। रामकुमार वर्मा सवत् १६२० से १६३० वि० के वीच में इनकी मृत्यु हुई वताते है। किंवदती है कि इनका पत्र-व्यवहार तुलसीदास से होता था। मीरावाई का उल्लेख भक्तमाल में है।

लोक लाज कुल-शृखला तजि मीरा गिरिधर भजी॥
सदृश गोपिका प्रेम प्रगट, कलि जुगहिं दिखायौ।

१ मिश्रवन्धु—स० १५७३, रामकुमार वर्मा स० १५५५, रामचन्द्र शुक्ल स० १५७३

निरअकुश अति निडर, रसिक जस रसना गायौ ॥
दुष्टनि दोष विचारि मृत्यु को उद्दिम कीयौ ।
वार न वांकौ भयौ गरल अमृत ज्यौ पीयौ ॥
भक्ति निसान वजाय कै काहू ते नाहिन लजी ।
लोक लाज कुल-शृखला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

(म. हिन्दी, ११५, पृ. ७१९)

वँगला भक्तमाल मे भी मीरावाई का उल्लेख है। विवरण पूरे डेढ पृष्ठ मे हैं। कुछ पंक्तिया नीचे दी जाती हैं :—

मेरता ग्रामेते जन्म मीरावाई नाम ।
रानी जे राजार वधू गुणे अनुपाम ॥
एकान्त श्रीकृष्णभक्त अनन्य मानस ।
प्रेमभक्ति चमत्कृत कृष्ण जाहे वश ॥ —इत्यादि

(भ. व., माला २२, पृ. ३२०)

वँगला भक्तमाल और प्रियादास की हिन्दी भक्तमाल की टीकाओ में सम्राट अकवर और तानसेन का मीरा के दर्शनो को आने का और मीरावाई का वृन्दावन जाकर रूप गोस्वामी के दर्शन करने का उल्लेख है। वँगला भक्तमाल की पक्तिया निम्न हैं .—

वाईजीर गानशक्ति आकवर साह ।
पातसा शुनिते मने करिला उत्साह ॥
तानसेने सगे करि वैष्णवेर वेशे ।
वाईजीर गृहे गेला हइया उल्लासे ॥—इत्यादि

(भ. व, माला २२, पृ. ३२०)

दो सौ वावन और चौरासी वैष्णव की वार्ता मे मीरावाई पर कोई स्वतत्र वार्ता नही है, अन्य व्यक्तियो की वार्त्ताओ के साथ उल्लेख है। ध्रुवदास की भक्त-नामावली में भी मीरावाई का उल्लेख है। इनकी रचनाये ये है —

१—गीत-गोविन्द की टीका
२—नरसी जी का मायरा
३—राग सोरठ पद संग्रह
४—फुटकर पद

मुरारिदास

"मुरारिदास" के नाम से कुछ पद कीर्तन-सग्रहो में प्राप्त है। विशेप विवरण अज्ञात है। मिश्रबन्धु इन्हे सवत् १५६१ से १६३० वि० तक के कवियो मे मानते है। भक्तमाल में एक रामभक्त मुरारिदास का उल्लेख है। परन्तु प्राप्त पद श्रीकृष्ण सवधी है। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है।

रसिक

रसिक नाम से कुछ पद कीर्तन-सग्रहो में मिलते है। कुछ पदो में वल्लभाचार्य का जन्म

उत्सव और कुछ पदो में विट्ठलनाथ का जन्म उत्सव वर्णित है। इससे ज्ञात होता है कि कवि वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ दोनो का भक्त है और कुछ काल तक दोनो का ही समसामयिक था। वैसे इनकी निश्चित तिथिया अज्ञात है। मिश्रबन्धु इनका रचना काल सवत् १६३१ वि० बताते हैं।[1] उनके कुछ पद राग-कल्पद्रुम मे भी है। कृष्ण लीला सबधी पदो में कवि ने बाल लीला पर ही अधिक ध्यान दिया है । मिश्रबन्धु एक अन्य रसिकदास और बताते हैं।

रसिकविहारी, रसिकविहारिनदास, विहारिनदास

विहारिनदास नागरीदास के गुरु थे। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। मिश्रबन्धु इन्हें सवत् १५६१ से १६३० वि के एक कवि बताते है और रचना काल सवत् १६२९ वि के लगभग मानते है।[2] "रसिकविहारी" के नाम से रागकल्पद्रुम में तीन पद है। यह कहना कठिन है कि ये "रसिकविहारी" और "रसिकविहारिदास" भिन्न व्यक्ति है अथवा अभिन्न। जो पद "पदकल्पद्रुम" में हैं, उनमें दो की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा नही है। विहारिनदास नाम से सयुक्त पद की भाषा इन पदो की भाषा से अच्छी है।[3]

१—उनींदा छो जी काई रात रा वैन शिथिल।
अरु नयन झुक्या ही आवे लगि वैठा परमातरा।
पलकां पीके अधरन अजन अलसाया छो गातरा॥
रसिकु विहारी वेनिया दुलावा कहा कहा करि आये यातरा।
(राग-कल्पद्रुम, भाग २, पृ ५०)

२—रसिया हो राज होरी रग राचे
म्हारी चुनर सबही भिजोई केसर कीच रह्यो माचे॥
वाज रहे छे बीणा मृदग इत्यादि (रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ. २९१)

विहारिनदास के नाम से "साखी" ग्रथ प्राप्त है। इनका एक पदो का ग्रथ भी है। अनुमान किया जा सकता है कि रसिकविहारी इनसे भिन्न ही व्यक्ति है।

रामदास

मिश्रबधुओ ने "रामदास" नाम के भी दो व्यक्तियो का उल्लेख किया है।[4]

१—रामदास—इन्हें ये सवत् १५६१ से १६३० वि तक के कवियो में से एक कवि बताते है। विशेष विवरण अज्ञात है।

२—रामदास बाबा—इन्हे ये गोपाचलवासी बताते है और इनका रचना-काल सवत् १६०७ बताते है।

---

१ मिश्रबन्धु विनोद, पृ ३२२

२ मिश्रबन्धु विनोद, पृ २३४, २९५

३ साधन सबै प्रेम के तरु हरि।
निकसत उमग प्रगट अकुर वर पात पुराने परिहरि॥
गुन सुनि भई दास की आसा बरस्यो परस्यो पावै। इत्यादि

४ मिश्रबन्धु विनोद, पृ २३४, २९९

भक्तमाल मे भी दो रामदासो का उल्लेख है।

१—इन रामदास का छीतस्वामी, गदाधर, गोविन्द इत्यादि के साथ उल्लेख है। कदाचित् ये इन लोगो के समसामयिक व्यक्ति ही रहे हो और ये और मिश्रवन्धु द्वारा उल्लिखित पहले "रामदास" एक ही व्यक्ति हो।

> "गुन गन बिसद गोपाल के, एते जन भये भूरिदा ॥
> ... .
> गोसू रामदास नारद श्याम पुनि हरिनारायन। इत्यादि
>
> (भ. हिन्दी, १४६, पृ. ८२९)

२—ये रामदास "वछवन" के निवासी वताए गए है और भक्त-सेवी भी है।

> श्री रामदास रस रीति सो, भली भांति सेवत भगत ॥
> सीतल परम सुसील वचन कोमल मुख निकसै।
> भक्त उदित रवि देखि, हृदै वारिज जिमि विकसै ॥
> अति आनंद मन उमगि संत परिचर्या करई।
> चरण धोय दंडौत विविध भोजन विस्तरई ॥
> "वछवन" निवास विस्वास हरि, जुगल चरण उर जगमगत।
> श्री रामदास रस रीति सो, भली भाति सेवत भगत ॥
>
> (भ. हिन्दी, १९६, पृ. ९२२)

यह कहना कठिन है कि इनमे से अभीष्ट पदकर्त्ता जिनके पद कीर्तन-सग्रहो और "रागकल्पद्रुम" मे प्राप्त है, कौन से है। रामदास नाम मे जो पद प्राप्त हैं, उनमें से दो पद रामचन्द्र सवधी है, शेष कृष्ण लीला के।[1] दोनो ही पद होली लीला के हैं।

लालचदास

लालचदास हलवाई रायवरेली के निवासी थे। इनकी दो रचनाएँ (१) भागवत-दशम स्कध-भाषा और (२) हरिचरित्र प्राप्त है। दोनो मे रचना काल दिया है। हरिचरित्र सवत् १५८५ वि० और भागवत-दशम स्कध १५८७ वि० में रचे गए है। कवि ने स्व-परिचय दिया है।

लालदास

लालदास का अधिक विवरण अज्ञात है। मिश्रवन्धु इनका रचना काल सवत् १६१० वि. वताते है।[2] एक लालदास कवि थे जिन्होने वॅगला भक्तमाल की रचना की है। उनका विवरण अन्यत्र दिया है। इन लालदास की रचनाओ की सूची मिश्रवधु-विनोद के आधार पर निम्न है।[3]

१—वानी, २—मगल, ३—चेतावनी, ४—स्फुट पद।

इनका एक पद "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त है।

---

१ रागकल्पद्रुम, भाग २, पृ. २७६, ३२१

२. मिश्रवन्धु विनोद, पृ ३०१

३. मिश्रवन्धु विनोद, पृ ३०१

रामकुमार वर्मा ने एक अन्य लालदास का उल्लेख किया है[1] जिनका कविता काल सवत् १५८५ वि है और (१) हरिचरित्र (२) भागवत-दशम-स्कध-भाषा दो ग्रथ हैं।

वनचन्द्र

गोस्वामी वनचन्द्र हितहरिवश के चौथे पुत्र थे। इनका निश्चित जन्म- और मृत्यु-सवत् तो अज्ञात है। रचना काल सवत् १६१० वि के आसपास माना जाता है। स्फुट पद ही इनकी रचना है। अन्य रचनाएँ नही मिलती।

वल्लभ

वल्लभ अथवा श्री वल्लभ नामाकित कुछ पद कीर्तन-सग्रहो में मिलते है। कहा नही जा सकता कि ये वल्लभ प्रसिद्ध वल्लभाचार्य महाप्रभु है या अन्य कोई भक्त। वल्लभाचार्य की समस्त रचनाएँ सस्कृत भाषा ही में है।[2] इन्होने पद भी रचे, इसका उल्लेख नही है। हो सकता है कि वल्लभ नाम से कोई अन्य कवि रहे हो। शिवसिंह सरोज[3] में एक वल्लभ का उल्लेख है जिनको सवत् १६०१ वि० में उत्पन्न बताया जाता है। पद राधाकृष्ण लीला विषयक हैं।

विट्ठलदास या वीठलदास

भक्तमाल में दो विट्ठलदासो का उल्लेख है।

१—माथुर चौबे विट्ठलदास

विट्ठलदास माथुर-मुकुट, भयौ अमानी मानदा ॥
तिलक दाम सों प्रीति गुनहि गुन अन्तर धार्यौ।
भक्तन को उतकर्ष जनम भरि रसन उचार्यौ ॥
सरल हृदै सतोष जहा तहा पर उपकारी।
उत्सव में सुत दान कियो कर्म दुसकर भारी ॥
हरि गोविन्द जै जै गोबिन्द गिरा सदा आनन्ददा।
विट्ठलदास माथुर मुकुट, भयौ अमानी मानदा ॥

(भ हिन्दी, ८४, पृ ५८७)

प्रियादास ने अपनी टीका में लिखा है कि ये कीर्तन करते थे। हो सकता है कि ये कवि रहे हो।

२—ये वीठलदास रैदासी भक्त थे। अत इनसे हमारा प्रयोजन नही है।

"बीठल" अथवा विट्ठल नाम से जो पद प्राप्त हैं, वे इनके या विट्ठलनाथ के या दोनो के ही हो सकते हैं। मिश्रबन्धु बीठलदास को सवत् १५४० वि के लगभग उत्पन्न हुआ बताते हैं और रचना काल १५६८ वि के लगभग अनुमान करते है।

विट्ठलनाथ

गोस्वामी विट्ठलनाथ वल्लभाचार्य के पुत्र थे। इनका जन्म सवत् १५७२ वि में और

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ ७१०
२ अष्ट व स, पृ ७३
३ शिवसिंह सरोज, पृ ४५५

मृत्यु सवत् १६४२वि. मे हुई। इन्होने अष्टछाप की स्थापना की थी। इनके नाम से प्राप्त पदो को कुछ लोग अन्य कवि की रचना बताते हैं। इन्होने राधाकृष्ण विहारी सबधी एक ग्रथ गद्य में लिखा था, जिसका नाम "श्रृगाररस-मडन" है। स्वय इनकी रचनाएँ अधिक नही हैं। परन्तु इनके कारण उस समय वैष्णव सप्रदाय की बहुत उन्नति हुई। अष्टछाप कवियो की वैष्णव रचनाएँ इन्ही के काल में रची गई।

विट्ठल विपुल

विट्ठल विपुल स्वामी हरिदास के मामा और शिष्य थे। अत. ये उनके समसामयिक थे। स्वामी हरिदास की उपस्थिति सवत् १६०० वि. से १६१७ वि तक ज्ञात है। विट्ठल विपुल को भी इस समय में उपस्थित माना जा सकता है। इन्होने वल्लभाचार्य और गो० विट्ठलनाथ दोनो की वदना में पद रचे हैं। इनकी रचना स्फुट पद हैं जो कीर्तन-सग्रहो और "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त हैं। इनका उल्लेख भक्तमाल में है।

बृन्दावन की माधुरी इन मिलि आस्वादन कियो।
सर्वस राधारमन, भट्ट गोपाल उजागर ॥
हृषीकेश" भगवान विपुल बीठल रस सागर।
इत्यादि

(भ. हिन्दी, ९४, पृ. ६१८)

विट्ठल विपुल अपने गुरु स्वामी हरिदास की मृत्यु के बाद तक जीवित थे, इसका उल्लेख प्रियादास ने अपनी टीका मे किया है।

विद्यादास

विद्यादास के नाम से एक पद "रागकल्पद्रुम" में प्राप्त है। इसमें राधा का शृगारिक वर्णन है। विद्यादास का अधिक विवरण अज्ञात है। शिवसिंह-सरोज में इनका जन्म सवत् १६५० वि. दिया है।[1] मिश्रबन्धुओ ने इनका नाम सवत् १५६१ से सवत् १६३० वि के कवियो की सूची में दिया है।

विष्णुदास

विष्णुदास के नाम से कुछ पद कीर्तन-सग्रहो मे मिलते है। इन पदो में वल्लभाचार्य का जन्म-उत्सव और विट्ठलनाथ की बधाई है। कृष्णलीला सबधी समस्त पद बाल्य लीला वाले हैं। इससे ज्ञात होता है कि विष्णुदास वल्लभ के भक्त शिष्य थे और विट्ठलनाथ के जन्मकाल, जो सवत् १५७२ वि. में है, तक उपस्थित थे।

भक्तमाल मे विष्णुदास नाम के तीन व्यक्तियो का उल्लेख है।

१—पयहारी कृष्णदास के शिष्य विष्णुदास

पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥
.. .. ..
विष्णुदास कन्हर रगा चांदन सबीरी गोविंद पर।
पैहारी परसाद तें शिष्य सबै भये पारकर ॥

(भ हिन्दी, ३४, पृ. ३१४)

---

१. शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४६१

२—मथुरा निवासी विष्णुदास

जे वसे वसत मथुरामडल ते दयादृष्टि मो पर करो ॥

...

चतुरभुज चरित्र विष्णुदास वेनी पदमो सिर धरो ।
जे वसे वसत मथुरा मडल, ते दयादृष्टि मो पर करो ॥

(भ हिन्दी, १०३, पृ ६६१)

३—ये विष्णुदास नामदेव और कबीर के ममकालीन थे। प्रियादास ने अपनी टीका मे इस बात का उल्लेख किया है।

अभीष्ट पदकर्ता पहले दो विष्णुदास में से एक हो सकते ह, अथवा दोनो ही रहे हो, जिनके पद मिश्रित हो गए है।

व्यास स्वामी

व्यास स्वामी का नाम पहले हरीराम था। ये ओरछा नरेश श्री मधुकर शाह के गुरु थे। ओरछा से ४५ वर्ष की आयु में ये वृन्दावन गए और हितहरिवश के शिष्य हुए। इनकी वृन्दावन यात्रा सवत् १६१२ वि में हुई थी। अत इनका जन्म सवत् १५६७वि के लगभग आता है। ये हितहरिवश के राधावल्लभी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तो परन्तु अपना भी एक अलग मत "हरिव्यासी" चलाया था। भक्तमाल मे इनका उल्लेख है —

उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥
काहू के आराध्य मच्छ कच्छ नरहरि सूकर ।
वामन फरसाधरन सेतवन्धन जु सैल-कर ॥
एकन कें यह रीति नेम नवधा सों लायें ।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युत गोत्री जु लडायें ॥
नौगुण तोरि नूपुर गुह्यो, महत सभा मधि रास के ।
उतकर्ष तिलक अरु दाम कौ, भक्त इष्ट अति व्यास के ॥

(भ हिन्दी, ९२ पृ, ६०९)

व्यास स्वामी ने अधिकतर पद ही वनाए है। ये राधाकृष्ण लीला विषयक है। मिश्र-वन्धु इनकी पाच रचनाएँ वताते है।[1]

१ व्यास जी की बानी
२ रास के पद
३ ब्रह्मज्ञान
४ मगलचार पद
५ पद (३०० पृष्ठ छोटे)

श्री भट्ट

श्री भट्ट की दो रचनाएँ है, जो पदो का सग्रह ही हैं।

१ युगल शतक—१०० पदों का सग्रह

---

१ मिश्र-वन्धु-विनोद, प ३५६

२. आदि बानी

रामचन्द्र शुक्ल इनका जन्मसवत् १५९५ वि. बताते है। इनका रचनाकाल सवत् १६२२ वि. के लगभग माना जाता है। भक्तमाल मे इनका उल्लेख है —

श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥
मधुर भाव सम्मिलित ललित लीला सुवलित छवि।
निरखत हरखत हृदै प्रेम बरसत सु कलित कवि ॥
भव निस्तारन हेतु देत दृढ़ भक्ति सवनि नित।
जासु सुजस ससि ऊदै हरत अति तम भ्रम श्रम चित ॥
आनन्द कन्द श्रीनन्द सुत, श्री वृषभानु सुता भजन।
श्रीभट सुभट प्रगट्यौ अघट रस रसिकन मन मोद घन ॥

(भ. हिन्दी, ७६, पृ. ५७०)

युगल-शतक में कृष्णभक्ति सबधी पद है।

सगुनदास

सगुनदास का निश्चित जन्म- और मृत्यु-सवत् तो अज्ञात है। ये सवत् १५६१ से १६२० वि. तक रहे होगे, ऐसा मिश्रबन्धुओ का अनुमान है।[1] इनके पदो मे वल्लभाचार्य के जन्म-उत्सव का वर्णन है। गो० विट्ठलनाथ की बधाई नही है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि कवि उनके जन्म से पहले दिवगत हो चुके होगे। इनकी रचना स्फुट पद है जो कीर्तन-सग्रहो में है।

सूरदास

सुप्रसिद्ध महाकवि सूरदास अष्टछाप के एक कवि थे। ये वल्लभाचार्य के समकालीन थे। गो० विट्ठलनाथ के भी समकालीन थे। सूर सारावली, वाणी, वल्लभ-दिग्विजय, अष्टछाप इत्यादि के आधार पर डा० दीनदयालु गुप्त ने इनके जीवन की जो रूप-रेखा प्रस्तुत की है, वह यो है।[2] सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनका जन्म दिल्ली से चार कोस दूर ब्रज की ओर स्थित सीही ग्राम मे हुआ। अन्त समय मे ये गोवर्द्धन पर रहे। अकबर शाह ने तानसेन से इनके पद सुन कर इनसे मथुरा में भेट की थी। सूरदास की जन्मतिथि सवत् १५३५ वि वैशाख सुदी पचमी और मृत्युसवत् १६३८ अथवा १६३९ वि. के लगभग है। सूरदास की रचनाओ में पदो की सख्या अधिक है। वार्ता में सूर ने "लक्षावधि" पद किए, ऐसा कहा गया है। डा० गुप्त ने सूरदास जी की २४ रचनाओ के नाम दिए हैं [3]—

१—सूरसागर
२—भागवत-भाषा
३—दशम-स्कध भाषा
४—सूरदास के पद
५—प्राणप्यारी
६—व्याहली
७—भवंरगीत
८—सूररामायण

---

१. मिश्रवन्धु-विनोद, पृ. २३४
२. अष्ट व. स, पृ. १९८—२१९
३. अष्ट व. स., पृ. २७९

९—नागलीला
१०—गोवर्द्धनलीला
११—सूर-पचीसी
१२—राधारसकेलि-कौतूहल
१३—सूरसागर-सार
१४—सूरसारावलि
१५—साहित्यलहरी
१६—सूरशतक
१७—दानलीला
१८—मानलीला
१९—सूरसाठी
२०—नल-दमयती
२१—हरिवश-टीका
२२—रामजन्म
२३—एकादशी-माहात्म्य
२४—सेवाफल

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन अकवर के कार्यकर्त्ता और समकालीन थे। ये वडे साधुसेवी थे। खजाने के १३ लाख रुपये साधुओ को खिला कर ये सडीले से वृन्दावन भाग गए और वही रहे। भक्तमाल में इनका उल्लेख है —

(श्री) मदनमोहन सूरदास की नाम शृखला जुरी अटल ॥
गान काव्य गुण राशि सुहृद सहचरि अवतारी।
राधाकृष्ण उपास्य रहसि सुख के अधिकारी ॥
नवरस मुख्य सिंगार विविधि भातिन करि गायौ।
वदन उच्चरित वेर सहस पायनि ह्वै धायौ ॥
अगीकार की अवधि यह, ज्यों आख्या भ्राता जमल।
(श्री) मदनमोहन सूरदास की नाम शृखला जुरी अटल ॥
(भ. हिन्दी, १२६, पृ ७५१)

इनकी रचनाएँ पद ही हैं जो कदाचित् नाम साम्य से सूरदास की रचनाओ में मिल गए हैं।

सेवक

सेवक हितहरिवश के पुत्र थे। हितहरिवश सवत् १५८२ वि में गृहत्यागी होकर वृन्दावन चले गए थे। सेवक का जन्म सवत् १५८२ वि के पहले ही हुआ रहा होगा। इन्होने हित हरिवश की प्रशसा और यश वर्णन में 'भक्ति परचावली मगलपद वध' और वानी दो ग्रथ रचे थे।

हरिदास

हरिदास के समय के वारे में कुछ अधिक ज्ञात नही है। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। ये अकवर के समकालीन थे। प्रियादास ने अपनी टीका में अकबर का इनसे साक्षात्कार करने आना वताया है। इन्होने टट्टी सप्रदाय चलाया था। इनकी रचनाएँ पद ही अधिक है। मिश्रवन्धु इनकी कई रचनाओ का उल्लेख करते है।[1]

१—वानी
२—साधारण सिद्धात

---

१ मिश्रवन्धु-विनोद, पृ ३०२

३—रस के पद
४—पद
५—भरथरी-वैराग्य
६—हरिदास जू को ग्रंथ

ये गानविद्या में निपुण थे, इस बात का उल्लेख नाभादास ने किया है —

आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की ॥
जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंजविहारी ।
अवलोकत रहै केलि सखी सुख के अधिकारी ॥
गान कला गन्धर्व, स्याम स्यामा को तोषें ।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषें ॥
नृपति द्वार ठाढ़े रहैं, दरसन आसा जास की ।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ॥

(भ. हिन्दी, ९१, पृ. ६०७)

हरिराय

हरिराय वल्लभाचार्य के भक्त और अनुयायी थे। इनकी निश्चित जन्म- और मृत्यु-तिथि अज्ञात है। रचनाकाल और प्रसिद्धि संवत् १६०७ वि के लगभग है । इन्होंने कई ग्रंथ लिखे है, जिनमें गद्य ग्रथ भी है।

१—आचार्य श्री महाप्रभून की द्वादस निज वार्ता (गद्य ग्रंथ)
२—श्री आचार्य जी महाप्रभून के सेवक चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता (गद्य ग्रंथ)
३—श्री आचार्य जी महाप्रभून की निज वार्ता व सह वार्ता (गद्य ग्रंथ)
४—ढोलामारू की वार्ता
५—भागवती के लक्षण
६—द्विदलात्मक स्वरूप विचार
७—गद्यार्थ भाषा
८—गोसाईं जी के स्वरूप के चिन्तन के भाव (गद्य ग्रंथ)
९—कृष्णावतार स्वरूप-निर्णय
१०—सातो स्वरूप की भावना
११—वल्लभाचार्य जी के स्वरूप को चिन्तन भाव
१२—श्रीयमुनाजी के नाम (गद्य ग्रंथ)
१३—वर्षोत्सव (निज पदों का संग्रह)

हरिवंशअली

ये हितहरिवंश के समकालीन बताए जाते हैं। इन्होंने "हिताष्टक" प्रथम और द्वितीय दो ग्रंथो की रचना की। इनमें हित जी की वन्दना है।

हितरूपलाल

हितरूपलाल हितहरिवंश की शिष्य परम्परा में थे। इनका निश्चित जन्म- और मृत्यु-

सवत् अज्ञात है । ये सवत् १६४० वि के आस-पास उपस्थित थे, जो इनका कविता-काल है । इनकी रचना मुख्यतया पद ही है । इनकी दो रचनाएँ प्राप्त हैं,(१)बानी, (२) समय-प्रबन्ध । समय-प्रबन्ध मे १९५ पद हैं ।

हितहरिवश

हितहरिवश का जन्म सवत् १५५९ वि के लगभग हुआ था । इन्होने "राधावल्लभी" नामक एक नया सम्प्रदाय चलाया था । इसमे राधा की उपासना प्रमुख है । भक्तमाल में इनका उल्लेख है ।

(श्री) हरिवंश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहैं ॥
(श्री) राधाचरण प्रधान हृदै अति सुदृढ उपासी ।
कुंज केलि दपति तहां की करत खवासी ॥
सर्वसु महा प्रसाद प्रसिद्ध ताके अधिकारी ।
विधि निषेध नहिं दास अनन्य उतकट व्रत धारी ॥
व्यास सुवन पथ अनुसरै, सोई भलै पहिचानिहैं ।
(श्री) हरिवश गुसाईं भजन की रीति सकृत कोउ जानिहैं ॥

(भ हिन्दी, ९०,पृ ६०३)

इनकी दो रचनाएँ हैं,(१) हित-चौरासी (२) राधा सुधानिधि । इनकी रचना मुख्यतया पदो में है । ये गोपाल भट्ट के शिष्य थे ।

हृदयराम

इनका विशेष विवरण अज्ञात है । ये रामभक्त कवि थे । इन्होने सवत् १६२३ वि. में "हनुमान-नाटक" के नाम से एक नाटक की रचना की थी । इस रचना का आधार सस्कृत का यही नाटक है ।

तृतीय अध्याय

सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य की अनुक्रमणिका

वैष्णव साहित्य से हमारा अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसका सबध किसी न किसी वैष्णव सप्रदाय से है। वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा इस देश में बडी पुरानी है। पर देश और काल भेद से इसमें बहुत से रूपातर उपस्थित हो गए। ब्रज के वैष्णव साहित्य और बगाल के वैष्णव साहित्य में व्यापक प्रवाह एकहोते हुएभी समुचित अन्तर उपस्थित होगया है। यह अन्तर निम्न रूपो में व्यक्त होता है—ब्रजका वैष्णव कृष्ण का भक्त है पर बगीय वैष्णव राधा और कृष्ण की समकक्षता में चैतन्य के प्रति अपनी भावनाएँ भी व्यक्त करता है। ब्रज वैष्णव भक्तो की अपनी एक अलग परम्परा है और बगीय भक्तो की इसमे भिन्न दूसरी है। भक्ति व्यक्त करने की पद्धतिया और उसके सबध के पद दोनो साहित्यो में पृथक् पृथक् शैलियो में है। बगीय वैष्णवो ने भक्ति-रस की सागोपाग शास्त्रीय चर्चा नायक-नायिका भेद अथवा सयोग-वियोग शृगार के ढग पर बडे विस्तार से की है। फलत उनकी रचनाओ में कभी-कभी भक्ति भावनायें शृगारिकता के आवरण में ऐसी लुप्त सी प्रतीत होती है जिनसे कभी कभी पढने वालो को ऐसा सन्देह होता है कि वे भक्ति-प्रधान न होकर शृगार-प्रधान ही है। इन सब बातो की विस्तृत विवेचना इस ग्रन्थ में आगे की जायगी। यहा केवल इतना ही जान लेना समुपयुक्त है कि ब्रज और गौड दोनो स्थानो की भक्ति की दार्शनिक व्याख्या के अन्तर ने उनके साहित्य भडार को मूलत एक होते हुए भी विभिन्न रूप दिया है। इसी साहित्य की सामग्री का सिंहावलोकन इस अध्याय मे किया जायगा।

इस शती की साहित्यिक सामग्री का वर्गीकरण विषयो के अनुसार करना उचित होगा। विषय विभाग कई प्रकार से किए जा सकते है। उदाहरणत श्री हरिदास ने अपने "गौडीय वैष्णव साहित्य" ग्रथ में विषय-विभाग निम्न प्रकार से किया है (१) दर्शन, सिद्धात आदि, (२) काव्य—महाकाव्य, खड काव्य, गीति काव्य, शतक, विरुद, कडचा इत्यादि, (३) नाटक, (४) रसग्रथ, अलकार, छद, व्याकरण इत्यादि, (५) स्मृतिशास्त्र (६) पदावली, (७) चरितावली, (८) भाष्य टीका, अनुवाद और व्याख्या, (९) विविध स्तव, माहात्म्य, भजन इत्यादि।

इस शती के समस्त बगीय और हिन्दी साहित्य को दृष्टि में रखते हुए विषय विभाजन निम्न प्रकार करना अधिक सरल और सुबोध होगा —

१—दर्शन और सिद्धात ग्रथ

२—काव्य

(क) महाकाव्य

(ख) खड काव्य

३—नाटक

४—पदावली

५—जीवनी

६—भाष्य, टीका, अनुवाद

७—विविध

(१) दर्शन और सिद्धान्त ग्रथ

दर्शन शब्द का प्रयोग उन वैष्णव धर्म ग्रथो के लिए किया जा रहा है जिनमें अपने मत-विशेष के अनुरूप पुराणो, मुख्यतया भागवत पुराण, की व्याख्या और ईश्वर, जीव, भक्ति इत्यादि की विवेचना भक्ति धर्म के विशेष दृष्टिकोण को रख कर की गई है। "हरिदास दास" ने भी यही व्याख्या दी है। "यथार्थतत्त्वनिर्णायक शास्त्रके दर्शन शब्दे अभिहित करा हय [१]।" इस प्रकार के दर्शन ग्रथ प्राय सबके सब संस्कृत में है। भाषा मे इस प्रकार के किसी ने भी दर्शन-ग्रथ केवल दार्शनिक विवेचना करने के लिए नही लिखे, ऐसा ज्ञात होता है। कृष्णदास कविराज की रचना "श्री चैतन्यचरितामृत" में कुछ अध्याय ऐसे अवश्य है जहा उन्होने इस प्रकार की दार्शनिक विवेचना दी है। परन्तु वह सब चैतन्यदेव के चरित्र वर्णन के प्रसग में आ गई है। दार्शनिक विवेचना करना उनका ध्येय नही है। चैतन्यदेव को परमतत्व सिद्ध करने के लिए उन्हें ईश्वर और उसके लोको का वर्णन करना पडा है। ये चैतन्यदेव को "स्वय कृष्ण" कह कर फिर कृष्ण को परम तत्व सिद्ध करते है। इस प्रकार चैतन्यदेव परम तत्त्व सिद्ध हो जाते है। कृष्णदास ने तर्क उपस्थित करके उन्हे परमतत्त्व नही सिद्ध किया है। इसी प्रसग मे परम तत्त्व के गुण, अवतार शक्ति, वैभव, सबका वर्णन आ गया है। जीव, भक्त एव माया का वर्णन भी यथा-स्थान आया है। आगे चल कर उन्होने चैतन्यदेव के मुख से भक्ति रस की व्याख्या, भक्ति का माहात्म्य इत्यादि कहलवाया है। इसी प्रकार तुलसीदास ने अपने "रामचरितमानस" में भी प्रसगानुसार कुछ न कुछ दार्शनिक विवेचना की है। अत इन रचनाओ को 'दार्शनिक ग्रथ' का नाम नही दिया जा सकता। प्रारम्भ में दिए भाव के अनुसार जो ग्रथ प्राप्त है, उनकी सूची नीचे दी जा रही है। वास्तविक रूप से जिन्हे दार्शनिक ग्रथ कहा जा सकता है, वे सब संस्कृत में है।

धार्मिक सिद्धात, उपासना पद्धति, माहात्म्य इत्यादि से सबध रखने वाले ग्रथ अवश्य भाषा में उपलब्ध है। यहा पर केवल इन्ही ग्रथो को सिद्धात ग्रथ कहा गया है। लेखको के नाम सहित उनकी सूची नीचे दी जा रही है। पीछे इनमें से प्रमुख रचनाओ का परिचय दिया जायेगा।

बगला विभाग

आत्मसाधन	नरोत्तमदास
आश्रयनिर्णय	नरोत्तमदास
उपासनापटल	नरोत्तमदास
उपासनासार-सग्रह	दु खी कृष्णदास
कृष्णलीलामृत	बलरामदास
गोलोकवर्णन	गोपाल भट्ट
चौषट्टि-दडनिर्णय	कृष्णदास
चैतन्य-प्रेमविलास	लोचनदास
छय-तत्त्वमजरी	नरोत्तमदास

१. श्री श्री गौडीय-वैष्णव साहित्य, पृ ३८

छय-तत्त्वविलास	वृन्दावनदास
तत्त्वनिरूपण	नरोत्तमदास
तत्त्वविकास	वृन्दावनदास
दुर्लभ-सार	लोचनदास
दशात्मिका प्रणाली	कवि शेखर
देह-निरूपण	लोचनदास
पाखड-दलन	रामचन्द्र गोस्वामी
प्रेमभक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
भक्ति-लतिका	नरोत्तमदास
भक्ति-लतावली	नरोत्तमदास
भक्ति-सारात्सार	नरोत्तमदास
भक्ति-चिन्तामणि	वृन्दावनदास
भक्ति-प्रदीप	शकरदेव
भक्ति-माहात्म्य	वृन्दावनदास
भक्ति-रत्नाकर	शकरदेव
भक्ति-रत्नावली	माधवदेव
भक्ति-लक्षण	वृन्दावनदास
भक्ति-साधन	वृन्दावनदास
भजन-निर्णय	ज्ञानदास
भागवत-तत्त्वलीला	नरोत्तमदास
रागानुगालहरी	लोचनदास
वस्तु-तत्त्व	लोचनदास
वस्तु-तत्त्वसार	नरोत्तमदास
सद्भावचन्द्रिका	नरोत्तमदास
साधन-तत्त्व	नरहरिदास
साध्य-प्रेम-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
सिद्धि-भक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
सिद्धात-चन्द्रिका	रामचन्द्र
सिद्धात-चन्द्रोदय	मुकुन्ददास
स्तोत्र-शतनाम	द्विज हरिदास
स्वरूपकल्पतरु	नरोत्तमदास
हाटपतन	नरहरिदास

हिन्दी विभाग

अष्टयाम	नाभादास
ज्ञान-मजरी	नददास
द्वादश-यज्ञ	चतुर्भुजदास

प्रेम-तत्त्व-निरूपण	कृष्णदास
प्रेम-तत्त्व-निरूपण	कृष्णदास अधिकारी
भक्ति-प्रताप	चतुर्भुजदास
भक्ति-रस-बोधिनी	प्रियादास
भेद-भास्कर	भागवतदास
रामार्चन-पद्धति	रामानन्द
विज्ञानार्थ-प्रकाशिका	नददास
वैराग्य-सदीपनी	तुलसीदास
वैष्णव-मत-भास्कर	रामानन्द
सिद्धात-पचाध्यायी	नददास
हनुमान-शिक्षा-मुक्तावली	तुलसीदास

कुछ ऐसे ग्रंथ भी हैं जिन्हे स्पष्ट रूप से तो सिद्धातग्रथ नही कहा जा सकता परन्तु इससे सम्बन्धित अवश्य है। ये ग्रंथ भक्ति-रस सबंधी हैं। वैष्णव धर्म में भक्ति का एक स्वतत्र रस है। इसमें प्रेम अर्थात् शृगार भी सम्मिलित है। इस भक्ति-रस की विवेचना या निदर्शन करने वाली रचनाएँ भी सिद्धात ग्रथो में आ जाती हैं। उनकी सूची नीचे दी जा रही है।

बगला विभाग

अमृत-रस-चन्द्रिका	नरोत्तम
गोविन्द-रति-मजरी	घनश्यामदास
रस-भक्ति-चन्द्रिका	नरोत्तम
रस-भक्ति-लहरी	नरोत्तम
रस-पुष्प-कलिका	किशोरदास
रसोज्ज्वल	जगन्नाथदास

हिन्दी विभाग

रसमजरी	नन्ददास

आगे उन रचनाओ का सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है जो इस साहित्य में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। यह स्थान उन्हे कुछ तो प्रमुख लेखको की रचना होने से मिला है, और कुछ स्वय श्रेष्ठ रचना होने के कारण और कुछ अपने विषय के महत्त्व और उसके प्रतिपादन के कारण। आगे लेखक का नाम देकर उसकी रचनाओ का परिचय एक स्थान पर दिया जा रहा है, अकारादि क्रम से नही।

बगाली साहित्य में लेखक कई प्रकार के सन्-सवतो का उपयोग करते हैं। जिसे वे शकाब्द कहते हैं वह सन् ७८ ई से आरम्भ हुआ, अर्थात् शकाब्द में ७८ की सख्या जोड देने से ईसवी सन् (ख्रीष्टाब्द) आ जाता है। दूसरी एक गणना बगाब्द (B E) या साल (B S) मे है, जिसमे ५९३ की सख्या जोडने मे ईसवी सन् या ख्रीष्टाब्द आ जाता है। ईसवी सन् में ५७ की सख्या जोडने मे हमारा विक्रम सवत् बनता है। उदाहरण ११९० साल=११९०+५९३ ई =१७८३ ई०=१७८३—७८ या १७०५ शकाब्द।

दर्शन और सिद्धात ग्रथ—वगला विभाग

नरोत्तमदास की रचनाए

सिद्धि-भक्ति-चद्रिका—इसका दूसरा नाम रस-भक्ति-चन्द्रिका भी है। एक दूसरी रचना भी, जो इसी नाम की है, प्राप्त है, इसके लेखक गोविन्ददास हैं। श्री चैतन्यदास के नाम से युक्त एक तीसरी "रस-भक्ति-चन्द्रिका" पाई गई है। इस तीसरी रचना का नाम "आश्रय-निर्णय" भी है। नरोत्तम की रचना की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल १९ पौष, १२१४ साल है।[1]

उपासना-पटल—किसी किसी हस्तलिखित प्रति में "उपासना-तत्त्व-सार" नाम भी दिया है। वैसे भी "उपासना-पटल" का नाम "गुरु-शिष्य-सवाद-पटल" भी है। कई एक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है जिनका लिपिकाल क्रमश २३ चैत्र, १२२२, १२२९ और ३ ज्येष्ठ, १२५९ साल है।[2]

वस्तुतत्त्वसार—लोचनदास के नाम से भी इसी नाम की एक रचना पाई जाती है।[3]

प्रेम-भक्ति-चन्द्रिका—नरोत्तमदास रचित यह ग्रथ अनेक वार मुद्रित हुआ और प्रचलित भी हुआ। इस ग्रथ में सरल भाषा के प्रयोग द्वारा त्रिपदी छद में वैष्णवो की भक्ति-साधना का विवरण दिया गया है। रचना छोटी ही है परन्तु अत्यन्त मार्मिक होने के कारण वैष्णव भक्तो और सन्यासियो ने उसे बहुत अपनाया है। प्राचीनतम हस्तलिखित प्रतियो का लिपिकाल क्रमश १०१६ लल्लाब्द और ११ भाद्र ११११ मल्लाब्द है।[4] इसका प्रामाणिक सस्करण मुर्शिदावाद जिला अन्तर्गत मिरजापुर ग्रामवासी श्री दुर्गादास राय ने प्रस्तुत किया है।[5] इसके अश सूक्तियो के रूप में बहुत प्रचलित हैं। उदाहरणस्वरूप ज्ञान-कर्म की हीनता के लिए कहा गया है —

ज्ञान काड कर्मकाड
केवल विषेर भांड
अमृत बलिया जेवा खाय[6]

कृष्ण की महिमा बताते हुए कवि कहते है —

तीर्थ-यात्रा-परिश्रम
केवल मनेर भ्रम
सर्व सिद्धि गोविंद चरण[7]

---

१ वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ ६६
२ वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ २६३
३ रायल एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी, पो न ३९६३
४ रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, पो न ३६१६, ३५८६
५ प क त, परिशिष्ट, पृ १४२, फुट नोट
६ राय सस्करण, पृ २४
७ राय सस्करण, पृ ५

धन-सम्पत्ति की क्षणभगुरता के लिए लेखक कहता है —

राजार से राजपाट
जेन नाट्‌यार नाट
देखिते देखिते किछु नय, इत्यादि[1]

आश्रय-निर्णय—'आश्रय-निर्णय' नाम से कृष्णदास की भी एक रचना प्राप्त है। नरोत्तम की रचना की हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल २५ माघ १७०५ शकाव्द है।[2]

स्वरूप-कल्पतरु—स्वरूप-कल्पतरु एक मूल्यवान रचना है। इसकी एक खडित हस्तलिखित प्रति प्राप्त है। कुछ लोग इसे सदेहास्पद रचना मानते हैं। परन्तु खडित प्रति में एक 'दोहा' है —

अनंग मंजरीर पद अहर्निश आश।
स्वरूप कल्पतरु कहे नरोत्तमदास ।

इससे ज्ञात होता है कि यह रचना इनकी हो सकती है। एक स्थान पर उल्लेख है कि यह प्रेम-भक्ति-चद्रिका के वाद की रचना है।

प्रेमभक्तिचन्द्रिका पूर्वे करियाछि लिखन
आपन भजनकथा राखिनु गोपन ॥

इस रचना में वैष्णवी रस-साधना का विवरण है। चैतन्य-चरितामृत के किसी-किसी अध्याय की व्याख्या भी की गई है। प्रसगानुसार नरोत्तमदास ने अपने और अन्य पदकर्ताओ के पद भी दिए हैं। ये पद रागात्मक है। प्रीति के लिए वे कहते है —

पिरित आखर तिन
जपह रजनि दिन।
पिरित ना जाने जारा
काष्ठेर पुतलि तारा ।
पिरित जानिल जे
अमर हइल से ।
पिरिते जनम जार
के वुझे महिमा तार ।
जो जना पिरित माने
वेद विधि से कि माने।
पिरिति वेदेर पर
हृदये ताहारि घर ।
भजन पूजन जत
पिरित विहने हत। इत्यादि

इसमें स्त्रियो का माधुर्यपूर्ण वर्णन भी है .—

नारी विने कोया आछे जुडावार स्थान।

---

१. वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ८, पृ ५३-५४
२ राय सस्करण, पृ १८

सर्व्वभावे नारी हैते जुडाय परान ।
पतिभावे पुत्रभावे भ्रातृ-पितृभावे ।
स्नेह-मोह-समता ममता भावे सेवे ॥

हाटपत्तन—हाटपत्तन को कुछ लोग सदेहास्पद रचना बतलाते है। 'हाटपत्तन' नाम से एक अन्य व्यक्ति की रचना भी प्राप्त है। इस छोटी रचना में चैतन्यदेव से प्रभावित सिद्धान्त है। वल्लभदास नामाकित एक पद में इस रचना को "हाट पत्तन मधुर केवल" कहा है।

मुकुददास की रचनाएँ

सिद्धातचन्द्रोदय—सिद्धातचन्द्रोदय मुकुददास गोस्वामी की रचना है। इस ग्रथ मे १८ प्रकरण हैं। इसमें नित्यलीला, गौर-कृष्ण-तत्व, रागभक्ति, नाम-माहात्म्य और वैष्णव के आचार इत्यादि की चर्चा है। श्री हरिदास का मत है कि इस ग्रथ में 'परकीया-वाद' का जो प्रकरण है वह प्रक्षिप्त अश है।[1] इसकी दो हस्तलिखित प्रतियो में ६ ही प्रकरण हैं, एक तीसरी प्राप्त प्रति में अठारह प्रकरण है। ढाका विश्वविद्यालय और बाराह-नगर के ग्रथागार में इसकी प्रतिया सुरक्षित हैं।

वृदावनदास की रचनाएँ

१ **तत्वविलास**—वृदावनदास की इस रचना का बडा आदर है। इसकी कई हस्त-लिखित प्रतिया प्राप्त हैं। वैष्णव-चरण बासक ने इसका मुद्रित सस्करण प्रस्तुत किया था।

२ **भक्ति-चिन्तामणि या भक्ति-तत्व-चिन्तामणि**—इस रचना की भी कई एक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है। एक प्रति का लिपिकाल जो रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सगृहीत है, १६१८ शक है। बटतला प्रेस से इसका मुद्रित सस्करण प्रकाशित हुआ है।

रामचन्द्र गोस्वामी की रचनाएँ

पाखड-दलन—पाखडदलन, एक छोटी सी रचना है। वृदावनदास की भी एक रचना 'पाखडदलन' है।[2] भक्ति-तत्व-सार में श्री कृष्णदास बाबाजी कृत एक अन्य 'पाखड-दलन' का उल्लेख है। रामचन्द्र गोस्वामी की रचना में श्रीकृष्ण का सवश्वरत्व,भजनीयत्व, कृष्ण को स्मरण विधि, अहैतुकी भक्ति-निरूपण, श्री कृष्णेर दयालुता, भक्ति ओ भक्त महिमा, साधुसग, असत्-सगत्याग, वैष्णव पूजा की श्रेष्ठता, गुरुपादाश्रय, नामकीर्त्तन माहात्म्य इन सब की विवेचना और वर्णन दिया है।

अनगमजरी सपुटिका—इस छोटी रचना में चार लहरी है। समस्त रचना में वृदावनदास की 'भजन चद्रिका' का प्रभाव है। उसी में से प्रमाणवाक्य उद्धृत किए गए हैं। इस रचना की एक प्रति वगीय साहित्य परिषद् की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।[3] देवकीनदन कृत वैष्णव-वदना में रामचन्द्र गोस्वामी का 'रामाई' नाम से उल्लेख है।

प्रथम लहरी—इसमें राधाकृष्ण और बलराम को आनन्द, चित् और सत् गुण से

१ श्री श्री गौडीय वैष्णव साहित्य, भाग २, पृ १४३
२ बगला साहित्येर इतिहास, पृ ४१६
३ बगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पोथी न २४३२

अभिहित करके तत्व वताया है और उन्हे रूप-मात्र की भिन्नता वताकर एक ही तत्व सिद्ध किया है। इसके वाद वलदेव का तत्व-निरूपण किया गया है। ये वलदेव सत् और चित् तत्वों को लेकर पुरुष देह धारण करके कृष्ण के साथ हास्य, सख्य, और वात्सल्य भाव मे क्रीडा करते है।

द्वितीय लहरी--वलराम ने प्रकृत्यश लेकर गोकुल की रचना की, स्वय प्रधान होकर सत् अश से गोष्ठ क्रीडा की, फिर आनन्द अश लेकर गूढ मति अनगमजरी हुए, और कृष्ण से विहार किया ।

तीसरी लहरी--राधा अनगमजरी पर प्रसन्न हुई, इत्यादि वताकर अनगमजरी की सखियो का निरूपण किया है।

चौथी लहरी--इसमें यह वताया है कि वे ही अनगमजरी अव जाह्नवा देवी है, अत उनकी उसी प्रकार सेवा करनी चाहिए।

रामचन्द्रदास की रचनाए

१ **सिद्धातचन्द्रिका**--इस ग्रथ[1] में लेखक का नाम 'रामचन्द्रदास' दिया हुआ है। यह रामचन्द्रदास गोविन्ददास के भाई रामचन्द्र कविराज हैं या अन्य कोई, यह कहना कठिन है। इसमें पाच प्रसग है। प्रथम और द्वितीय प्रसग में कृष्ण ने व्रज का त्याग किया या नही किया, इसकी मीमासा कई सन्देहो का निवारण कर के की गई है। अन्त मे मुख्य सिद्धात जो दिया है, वह "मथुरार छले कृष्णलीला सगोपने, परिवार सह कैल एइ वृदावने" है। तीसरे प्रसग में वृदावन और गोलोक का अभेद स्थापित किया गया है। लघुभागवतामृत के प्रमाण वाक्यो द्वारा वृदावन को गोलोक के अन्तर्गत वताया गया है।[2] चौथे प्रसग मे मर्त्य वृदावन और दिव्य वृदावन का अभेद वताया गया है। पाचवे प्रसग में कृष्ण और चैतन्य का अभेद वताया गया है। कृष्ण यदि वृदावन त्याग करके कही नही जाते तो चैतन्य का अवतार कैसे लिया, राधा को विरह कैसे हुआ, इन सव सन्देहो का निवारण किया गया है। गोपप्रकाश और स्वयप्रकाश इन दो मूर्तियो से कृष्ण-युक्त है। चैतन्य की मूर्ति स्वय-प्रकाश है।

२ **स्मरणदर्पण**--यह मुख्यतया गुरु महिमा और गुरु की भक्ति पर रचा हुआ ग्रथ है।[3] गुरु के प्रति स्नेह-भक्ति होने से भजन की शक्ति आती है। कृष्ण के प्रति अपराध हो जाय तो निस्तार हो सकता है, पर गुरु के प्रति अपराध होने से निस्तार नही होता। कवि कहता है --

साधुमुखे कथामृत, शुनिया विमल चित, तवे गुरुदेवे हय रति ।
नित्य नित्य वाडे रति, गुरु पदे हय गति, तवे हय भजन शकति ॥
कृष्णेते अपराध हय, ताहाते निस्तार पाय, गुरु अपराधे नाहि त्राण।
ताहे वड परमाद, वैष्णवेते अपराध, गुरुदेवे ना करे मार्जन ॥

---

१ रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, पो स ४९५०, वगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पो स. १६५७

२. 'गोलोक वृदावने आछये सर्वदा' ।

३ वगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पो स २४८९, लिपिकाल १०६६ साल।

लोचनदास की रचनाए

दुर्लभसार—इस ग्रथ के रचयिता श्री लोचनदास ठाकुर है । श्रीमद्भागवत के कुछ स्थलो को, जिन्हें वैष्णव मत के अनुकल मानने में कुछ सदेह होता है, अपने मत के अनुसार व्याख्या करने के लिए इसकी रचना की गई है । विरोधियो की उक्तियो का खडन करके गौडीय वैष्णव मत की स्थापना की गई है । इसमे चार अध्याय है । प्रथम खड को सूत्र-खड कहा गया है और उसमें भक्ति-माहात्म्य का वर्णन देने के बाद गौराग अवतार का कारण, सकीर्त्तन का महत्व, और अपना वश-परिचय दिया है । दूसरे खड को मध्य खड नाम देकर उसमें भक्त कौन है, यह बताकर भक्तो की निरपेक्ष, और सापेक्ष दो श्रेणिया बताई हैं । इसी खड में रागानुगाभक्ति की चर्चा की है । तीसरे और चौथे खडो में मुख्यतया श्रीकृष्णलीला, विशेषतया मथुरा जाने के बाद की घटनाओ का विवरण, देकर कृष्ण के ब्रज त्याग, तथा राधा त्याग का कारण बताया है । ब्रजवासियो के विरह दु ख का भी करुणाजनक वर्णन है । परकीया गोपिया क्या व्यभिचारिणी थी, इसकी भी मीमासा की गई है ।

दर्शन और सिद्धान्त ग्रन्थ—हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाए

वैराग्य-सदीपनी—वैराग्य सदीपनी तुलसीदास की एक छोटी सी रचना है । इस ग्रथ के चार भाग है । (१)मगलाचरण, (२) सत-स्वभाव-वर्णन, (३)सत-महिमा-वर्णन, (४) शाति-वर्णन । नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने इसका सस्करण प्रस्तुत किया है जो सवत् १९८० वि मे प्रकाशित 'तुलसी ग्रथावली' भाग २ में है । दोहा सख्या ७ में तुलसीदास ने इसे 'अखिल ज्ञान को सार' बताया है । वह दोहा निम्न है —

तुलसी वेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र विचार ।
यह बिराग-सदीपनी, अखिल ज्ञान को सार ॥

नददास की रचनाएँ

ज्ञानमजरी—नन्ददास कृत इस रचना का नाम मिश्रबन्धु-विनोद में है ।[1] यह रचना उपलब्ध नही है ।[2] अत इसके बारे में कुछ अधिक नही कहा जा सकता ।

विज्ञानार्थ-प्रकाशिका—'विज्ञानार्थ-प्रकाशिका' इसी नाम के सस्कृत ग्रथ की टीका है । मिश्रबन्धु-विनोद में इसका इतना ही उल्लेख है । मिश्रबन्धुओ ने इसे छत्रपुर में कही देखा था । वैसे तो यह रचना उपलब्ध नही है ।[3]

सिद्धात-पचाध्यायी—यह अत्यन्त छोटी सी रचना है । इसमें कृष्ण का ईश्वरत्व, कृष्ण-भक्ति का माहात्म्य और लीला इत्यादि का, थोडा वर्णन है । इसकी कई हस्त-लिखित प्रतिया प्राप्त है । एक प्रति में इसका नाम 'अध्यात्म-पचाध्यायी' भी मिलता है ।[4]

१ मिश्रबन्धु-विनोद, पृ २८२
२ नन्द, प्रथम भाग, पृ २० (स उमाशकर शुक्ल)
३ नन्द, पृ ८
४. नन्द, प्रथम भाग, पृ ८३

इस रचना का आधुनिकतम मुद्रित सस्करण उमाशकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

रस ग्रन्थ—वगला विभाग

घनश्यामदास की रचना

गोविंदरति मंजरी—घनश्यामदास कविराज ने इस नाम की दो रचनाएँ की। एक सस्कृत में और दूसरी वगला भाषा मे। वगला रचना में पाच स्तवक हैं।

प्रथम स्तवक—गोविंद-रत्यकुर—इसमें चैतन्य की वदना, गुरु नित्यानन्द की वदना, एव रचयिता का अपना परिचय है।

द्वितीय स्तवक—गोविंद-रति-पल्लव—इसमें राधा का पूर्व राग, श्रीकृष्ण का पूर्व राग, स्वय दौत्य, अभिसार, और सक्षिप्त सभोग वर्णित है।

तृतीत स्तवक—गोविंद-रति-कोरक—इसमें सकीर्ण सभोग, खडिता, तथा कलहातरिता का विवरण है।

चतुर्थ स्तवक—गोविंद-रति-प्रसून—सम्पन्न सभोग, प्रेम वैचित्य, वासकसज्जा, उत्कठिता और विप्रलब्धा का विवरण है।

पचम स्तवक—गोविंद-रत्यामोद—इस में समृद्धिमान-सभोग, विरह, दूती की सहायता, कृष्ण-गोपी सवाद, विरह वर्णन इत्यादि का विवरण है।

कवि ने विरह का वर्णन अधिक किया है। रचना पदो में है। इसकी हस्तलिखित प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी में सुरक्षित है (पो स ३७२५, ४९६६) वेनीमाधव दे ने एक सस्करण प्रकाशित किया है।

नदकिशोरदास की रचना

रसपुष्प कलिका—इस रचना का नाम रसकलिका भी है। यह रस पर भाषा मे प्राचीनतम रचना है। यह वगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी में सुरक्षित है (पो स १२५३) इस पुस्तक की रचना 'उज्ज्वल-नीलमणि' और 'विदग्ध-माधव' के अवलम्वन पर हुई है। कवि ने स्वय कहा है —

विदग्धमाधव आर, उज्ज्वलनीलमणि सार, ए दुइ रसेर सागर।
नानामृत आछे इथे, शुनि साधु-मुखादिते, आस्वादिते लोभ वाड़े मोर॥

.. ..

श्री गुरु वैष्णव पादपद्मे करि आश। रसपुष्पकलिका कहे नंदकिशोर दास।

रचना सोलह दलो में विभक्त है। प्रथम दल में नायक-गुण वर्णन, दूसरे में नायिका निरूपण, तीसरे में नायिका-स्वभाव भेद, चौथे मे दौत्य, पांचवें में उद्दीपन-विभाव, छठे में अनुभाव, सातवें में सात्विकी भाव, आठवें मे व्यभिचारी भाव, नवें में अष्टविध रति, दसवे में मोहन दशा, ग्यारहवे मे स्थायी भाव, वारहवे मे विप्रलब्ध, तेरहवें में सभोग-चतुष्टय, चौदहवें में पुष्पत्रोटन तथा वंशी चोरी, पद्रहवे में दान लीला और सोलहवें में सभोग लीला का वर्णन है। उदाहरण राधा-कृष्ण से न लेकर चैतन्यदेव के जीवन से लिए हैं, यह इस ग्रथ की विशेषता है। वीच-वीच मे वहुत-से सस्कृत श्लोक भी उद्धृत किए गए है। यह रचना 'चैतन्यचरितामृत' के वाद की है और उससे प्रभावित भी है। इसमें 'चैतन्य-चरितामृत' के कुछ अश उद्धृत भी किए गए हैं।

नरोत्तमदास की रचना

रसभक्तिचन्द्रिका—इस रचना को सिद्धि-भक्ति-चन्द्रिका भी कहा गया है। इसी नाम की दो रचनाएँ और प्राप्त है। ये गोविन्ददास और चैतन्यदास के नाम से हैं।[1]

रस ग्रन्थ—हिन्दी विभाग

नददास की रचना

रसमजरी—यह नायिका भेद और नायक भेद पर छोटी सी रचना है। इसकी कई हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हैं।[2] कवि का कथन है कि नदकुमार 'रसमय, रसकारन' है। प्रेम-रस उन्ही से है और उन्ही से करने में शोभा देता है परन्तु जब तक नायक-नायिका भेद नही जाना जाता तब तक यह प्रेम नही उत्पन्न होता। अत कवि ने यह सब वर्णन किया है। इस रचना का आधुनिकतम मुद्रित सस्करण श्री उमाशकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

(२) काव्य

वैसे तो सोलहवी शती का प्राय समस्त साहित्य कविता में ही है। गद्य में तो रचनाए प्राय है ही नही। विषय के अनुसार विभाजन करने पर भी सब रचनाए काव्य के अन्तर्गत आती हैं। यहा काव्य से तात्पर्य केवल उन रचनाओ से है जो कल्पना, छद, अलकार इत्यादि समस्त काव्य गुण से सम्पन्न ऊची श्रेणी की रचनाए है। गौडीय वैष्णव समाज के अत्यन्त ऊची श्रेणी के काव्य ग्रथ सस्कृत में हैं। इनके रचयिता मुख्यतया रूप-गोस्वामी और कवि कर्णपूर है। कुछ काव्य बगला भाषा में भी है। ये उतनी ऊची श्रेणी के तो नही है परन्तु सुन्दर कवित्वपूर्ण रचनाए तो है ही। काव्य के अन्तर्गत 'खड-काव्य' और 'महाकाव्य' दोनो आते है। यहा पहले छोटे-छोटे काव्यो की, जिन्हे खड-काव्य का नाम दिया गया है, सूची दी जा रही है।

खड काव्य

खड काव्य से तात्पर्य उन समस्त रचनाओ से है जो आकार में छोटी है। कुछ मे प्रबधात्मकता है, कुछ में नही है। कुछ में कथानक हैं, कुछ में केवल इष्टदेव का लीला वर्णन अथवा गुण गान मात्र है। ये कृष्ण से या राम से सबध रखते है। रामचरित पर कृष्ण-चरित की अपेक्षा कम रचनाए हुई है। हिन्दी में तुलसीदास के रामसबधी खड काव्य 'कवितावली' में काड तो सातो दिए है, रचना भी अपेक्षाकृत बडी है, पर प्रबधात्मकता नही है। बगला के राम-कथानक भी कुछ इसी प्रकार के है। खड काव्यो की सूची नीचे दी जा रही है—

बगला विभाग

[**कृष्णलीला संबधी**]

कृष्णमगल	गोविंद
कुजवर्णन	नरोत्तम

---

१ बगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ ६६

२ नददास, भाग १, भूमिका पृ ४५-४६, (स उमाशकर शुक्ल)

कृष्णमगल	कृष्णदास
कृष्णमगल	यशोराजखान (अप्राप्य)
कृष्ण-लीलामृत	कवि शेखर
गोपाल-विजय	दु खी श्यामदास
गोविंदमगल	दु खी श्यामदास
दधि-खड	वृन्दावनदास
दानकेलि-कौमुदी	यदुनदनदास
दूतिबोध	जगन्नाथदास
यशोदार-वात्सल्य-लीला	ज्ञानदास
राधाकृष्ण-लीला-कदम्ब	यदुनदनदास
श्रीकृष्ण-मगल	माधव आचार्य
श्रीकेशव-मगल	नरहरिदास

[राम-कथानक संबंधी]

१	अगदेर रायवार	शकर कविचन्द्र
२	रामायण	द्विज मधुकठ
३	रामगीता	वशीवदन द्विज
४	सीता-वनवास	घनश्यामदास
५	रामायण	चन्द्रावती

हिन्दी विभाग

१	कवितावली	तुलसीदास
२.	जानकीमगल	तुलसी
३	जुगल-मान-चरित्र	कृष्णदास
४	जोगलीला	नददास
५	दोहावली	तुलसी
६	दानलीला	नददास
७	नागलीला	नददास
८	पार्वती-मगल	तुलसी
९	पनिहारिन-लीला	नददास
१०	वरवै रामायण	तुलसी
११	भवरगीत	नददास, सूरदास
१२	भ्रमरगीत	कृष्णदास
१३	रामलला नहछू	तुलसी
१४	रुक्मिणी-मगल	नददास
१५	रासपचाध्यायी	नददास
१६	श्याम-सगाई	नददास

हिन्दी और बगला दोनो के ही काव्य ग्रथो में 'मगल' नाम की रचनाए है। परन्तु दोनो में भिन्नता है। हिन्दी की 'मगल' रचनाए केवल विवाह का वर्णन करती है परन्तु बगला के 'मगल' ग्रथ विवाह का वर्णन नही करते, वरन् देवता का यश वर्णन करते हैं। कुछ प्रमुख रचनाओ का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

काव्य—बगला विभाग

माधव आचार्य कृत श्रीकृष्ण मगल—इस रचना का उल्लेख देवकीनदन की वैष्णव-वदना में मिलता है।

माधव आचार्य वदो कवित्व शीतल।
जाहार रचित गीत श्रीकृष्ण मगल॥

इस रचना की कई एक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हैं। परन्तु प्राय सब में ही अन्य कवियो की रचनाओ और पदो का मेल हो गया है। इस रचना का सर्वप्रथम मुद्रित सस्करण 'श्रीमद्भागवत सार' के नाम से सन् १८२६-२७ ई (१२३३ साल) में प्रस्तुत हुआ था। यह नाम सपादक का दिया हुआ है। वैसे मूल रचना मे नीचे दी पक्ति के अतिरिक्त और कही भी यह नाम नही आया है। इस पक्ति में भी यह ध्वनि नही निकलती कि रचना का नाम 'भागवत-सार' है

पद पुरान आर श्रीभागवत सार केवल परम परकाशे।

इसका तो इतना ही अर्थ है कि पद, पुराण और भागवत का सार प्रकाशित करता हू। वैसे इस रचना का मूलाधार भागवत का दशम स्कन्ध तो है ही। दशम स्कध की कथा के अतिरिक्त इसमें दान-खड, नौका-खड, रुक्मिणी की फूल-शैया, अजामिल का उपाख्यान, यदुवश को ब्रह्मशाप, युधिष्ठिर का स्वर्ग गमन इत्यादि विशेष प्रसग है। हरिवश और विष्णुपुराण से भी कथायें ली हैं। लेखक ने स्वय कहा है —

१ राज राज अभिषेक नाहि भागवते। विस्तारि कहिव ताहा हरिवश मते।
२ पारिजात हरण ईषत भागवते। विस्तार कहिव विष्णुपुराणेर मते॥

दूसरा मुद्रित सस्करण बगवासी कार्यालय ने १३३३ साल में निकाला। इसकी एक हस्तलिखित प्रति (पो स ५४४९) रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में है।

कृष्णदास कृत श्रीकृष्णमगल—कृष्णदास की रचना श्री कृष्णमगल भागवत का अवलम्बन ले कर रची हुई है। यह अपेक्षाकृत छोटी रचना है। भागवत के दशम स्कध के कथानक के अतिरिक्त दान-खड और नौका-खड का आख्यान उन्होने हरिवश से लिया है, ऐसा वे कहते हैं।

दानखड नौकाखड नाहि भागवते। अन्न नहि विष्णु कहि हरिवश मते।

इन दो कथानको के साथ मार-खड, और वशी-चोरी-लीला भी वर्णित है। इस रचना का मुद्रित सस्करण वगीय साहित्य परिषद् ने प्रकाशित किया है। रचना सुन्दर है। इसमें तद्भव शब्दो का बाहुल्य है।

गोविंद आचार्य कृत कृष्णमगल—गोविन्द आचार्य ने कृष्ण-लीला सम्बन्धी काव्य लिखा था, इसका उल्लेख देवकीनदन, और माधव दोनो ने अपनी रचना 'वैष्णव-वन्दना' में किया है।

गोविंद आचार्य वदो सर्वगुणशाली।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली। (वैष्णव-वदना, देवकीनदन कृत)
गोविंद आचार्य पद करिल वंदन।
राधा कृष्ण रहस्य जे करिल वर्णन। (वैष्णव-वंदना, माधव कृत)

रायल एशियाटिक सोसाइटी की लाइब्रेरी मे द्विज गोविंद भणिता से युक्त एक कृष्णमगल की प्रति खडित रूप में है। सुकुमार सेन इसे गोविंद आचार्य की ही रचना मानते है।[1] काव्य मुख्यतया वर्णानात्मक है। इसमें अधिकतर पयार छदो का ही प्रयोग हुआ है। इसमें परीक्षित का उपाख्यान, ध्रुवचरित्र, अजामिल का उपाख्यान, प्रह्लाद चरित्र, गजेन्द्र-मोक्ष कथा, रामलीला, और अत मे कृष्णलीला वर्णित है। कृष्णलीला में दानखड और नौकाखड भी सम्मिलित है। इसमे 'वडायी' पात्र का भी उल्लेख है।

वलरामदास कृत कृष्णलीलामृत—कृष्णलीलामृत काव्य की रचना भागवत और ब्रह्मवैवर्त्तीय पुराण के आधार पर की गई है। प्राप्त प्रति मे[2] वारह परिच्छेद है। इन परिच्छेदो में कृष्ण का मथुरागमन और गोपियो का विरह वर्णित है। मगलाचरण में कवि ने गदाधरदास का नाम दिया है। रचना का भी नाम दिया है —

श्रीयुत गदाधर चरण भरसे,
कृष्णलीलामृत कहे वलदेव दासे॥

कविशेखर कृत गोपाल विजय—'गोपाल विजय' पाचाली काव्य है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त हैं।[3] कलकत्ता विश्वविद्यालय की सुरक्षित प्रति में १६५६-५७ शकाव्द लिपिकाल दिया है। काव्य वर्णानात्मक है। इसमें श्रीकृष्ण की व्रजलीला, मथुरागमन की कथा तक वर्णित है। अधिकतर पयार छद का और कही कही त्रिपदी छद का प्रयोग किया गया है। कथा चडीदास कृत 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' के अनुरूप है। इसमें भी 'वडायी' एक पात्र है। वह राधाकृष्ण के वीच में कुटनी का काम करती है।

दु.खी श्यामदास कृत गोविंदमंगल—गोविंद-मगल की कोई भी प्राचीनतम प्रति नही प्राप्त है। इस रचना का प्रथम मुद्रित सस्करण १८७० ई मे हुआ था। दूसरा मुद्रित सस्करण ईशानचन्द्र वसु के सपादन में वगवासी कार्यालय मे प्रकाशित हुआ। गोविंद-मगल की रचना 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' के अनुकरण में हुई है। इन दोनो में वहुत अधिक साम्य है। उसी के समान गोविंद-मगल में दानखड और नौकाखड है। कही कहीं भागवत कथा भी है। काव्य अत्यत वर्णनात्मक नही है। वीच-वीच मे पद है। इसमें पयार और त्रिपदी छदो का अधिक प्रयोग है।

शकर कविचन्द्र कृत 'अंगदेर रायवार'—'अगदेर रायवार' छोटी-सी रचना है। इसमें अगद के दूतत्व की कथा वर्णित है। समस्त रचना वर्णनात्मक है और 'पयार' छद मे लिखी गई है। अगद का राम के शिविर मे प्रस्थान, लका-आगमन, रावण से उत्तर-

---

१. वांगला साहित्येर इतिहास, पृ २०५
२ वगीय साहित्य परिषद् लाइब्रेरी, पोथी स १२६९
३ वांगला साहित्येर इतिहास, पृ २१४

प्रत्युत्तर, दोनो का क्रोध, अगद का रावण के मुकुट उतारना इत्यादि का वर्णन है। सवादो में व्यग्य का अच्छा चित्रण है। दिनेशचन्द्र सेन ने अपने 'वग साहित्य परिचय' मे इस रचना को उद्धृत किया है।[1] उन्होने अपनी दूसरी रचना Bengali Language & Literature में शकर कवि चन्द्र कृत ४१ अन्य रचनाओ की सूची दी है जिसकी हस्तलिखित प्रतिया उन्होने देखी है।[2]

घनश्यामदास कृत 'सीतार वनवास'—यह रचना भी छोटी ही है। इसमें राम द्वारा सीता के वनवास देने की कथा वर्णित है। लक्ष्मण उन्हें रथ मे बैठा कर वन ले जाते हैं, वहा जाने के पूर्व सीता कौशल्या से प्रार्थना करती हैं, कौशल्या मना करती हैं, परन्तु फिर सीता के अनुनय पर अनुमति दे देती है, लक्ष्मण उन्हें छोड आते है। अन्त मे वाल्मीकि आ जाते है। समस्त रचना वर्णनात्मक है और पयार छन्द मे है। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति पर लिपिकाल वगला सन् १०३५ (१६२७ ई०) पडा है।

काव्य—हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाए

कवितावली—कवितावली का रचना काल डा रामकुमार वर्मा स १६६९ वि के लगभग मानते है।[3] यह रचना ७ काडो मे विभाजित है और राम की कथा है। रचना सम्यक् ग्रथ न होकर समय समय पर लिखी कविताओ की सग्रह है।

जानकी-मगल—इस रचना का रचना-काल डा रामकुमार वर्मा स १६४३ वि० मानते है।[4] इस छोटी-सी रचना में सीता और राम का विवाह वर्णित है?

पार्वती मगल—इसका रचना काल भी डा वर्मा स १६४३ वि० ही मानते है। इसमें पार्वती शिव का विवाह वर्णन है।

दोहावली—अन्तर्साक्ष्य के अनुसार डा वर्मा इसका रचना काल सवत् १६६५-१६८० वि मानते है।[5] इस रचना मे दोहा छद में नीति, भक्ति, राम महिमा, नाम माहात्म्य, प्रेम इत्यादि पर उक्तिया है।

इन सब रचनाओ का मुद्रित सस्करण नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी-ग्रथावली, भाग २ में प्राप्त है।

नददास की रचनाए

जोगलीला—उमाशकर शुक्ल जोगलीला के नददास कृत होने में सदेह करते है। उन्होने तर्क भी उपस्थित किए हैं। वे इसका सर्वप्रथम उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में हुआ बताते है। कुछ अश भी उन्होने उद्धृत किए है।[6]

१ वग साहित्य परिचय, पृ ५२४
२ Bengali Language & Literature, P 185
३ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ ४४७
४ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ ४०४
५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ ४१०
६ नददास, भमिका, पृ ३०

दानलीला—'दानलीला' को भी उमाशकर शुक्ल सदिग्ध रचना ही बताते है। इस रचना की जो प्रति उन्हे प्राप्त हुई है उसे उन्होने पूरा का पूरा उद्धृत किया है। रचना नददास की अन्य प्रामाणिक रचनाओ से हीन तो अवश्य ज्ञात होती है। यह कृति अत्यन्त छोटी है।[1]

भवर-गीत—यह अत्यन्त सुन्दर रचना है। छोटी है। ऊधव और गोपियो का उत्तर-प्रत्युत्तर है जिसमे सगुणवाद-निर्गुणवाद की विवेचना है। इसका विशेष विवरण सिद्धात ग्रथो के साथ दिया जा चुका है।

रुक्मिणी-मगल—यह सुन्दर काव्य-गुण सम्पन्न छोटी रचना है। इसमें रुक्मिणी का कृष्ण को पत्र भेजना, रुक्मिणी-हरण और अन्त में कृष्ण-रुक्मिणी का विवाह रोला छद मे वर्णित है। इसका सर्वप्रथम मुद्रित सस्करण अग्रवाल प्रेस प्रयाग द्वारा स १९९० वि में प्रकाशित हुआ था। इसकी चार हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है।[2]

श्याम-सगाई—यह रचना भी अत्यन्त छोटी है। इसमें कृष्ण की माता के पास राधा की सगाई का समाचार आना और उनका स्वीकार कर लेना, बस इतनी ही कथा है। यह रचना भी रुक्मिणी-मगल के साथ ही अग्रवाल प्रेस द्वारा स. १९९० वि में प्रकाशित हुई थी।[3]

रासपचाध्यायी—रासपचाध्यायी नददास कृत अत्यन्त श्रेष्ठ रचना है। यह एक प्रसिद्ध कृति है। इसकी कई एक हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है।[4] इसका विषय कृष्ण की रासलीला है।

नददास के प्रामाणिक ग्रथो का आधुनिक सस्करण श्री उमाशकर शुक्ल द्वारा सपादित और प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित है। यह सस्करण सन् १९४२ ई में प्रकाशित हुआ है।

महाकाव्य

काव्य शास्त्र के अनुसार यदि देखा जाय तो जितने भी काव्य यहा पर महाकाव्य की सूची में रक्खे गए है उनमे से प्राय कोई भी महाकाव्य नही ठहरेगा। महाकाव्य से तात्पर्य केवल उन रचनाओ से है जो खड, सर्ग या परिच्छेद या काड में विभक्त लबे आख्यानक काव्य है। इनकी सख्या बहुत कम ही है। प्राप्त महाकाव्यो की सूची नीचे दी जा रही है।

बगला विभाग

१	चैतन्यचरितामृत	कृष्णदास कविराज
२	चैतन्यभागवत	वृदावन दास
३	चैतन्यमगल	जयानन्द

हिन्दी विभाग

१	रामचरित मानस	तुलसीदास

---

१ नददास, भूमिका, पृ २३—२५
२. नंददास, भूमिका, पृ. ६९
३. नंददास, भूमिका, पृ. ६९
४. नददास, भूमिका, पृ ७०

चैतन्यचरितामृत, चैतन्य-भागवत, चैतन्यमगल इन तीनो का परिचय जीवनी साहित्य के साथ प्रस्तुत किया जायगा। रामचरितमानस हिन्दी की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। उसका परिचय नही दिया जा रहा है।

(३) नाटक

नाट्य साहित्य का हिन्दी और बगला दोनो ही स्थानो के वैष्णव साहित्य में अभाव है। गौडीय वैष्णव समाज मे सस्कृत में रचे सुन्दर और बडे नाटक प्राप्त है। रूप गोस्वामी-रचित 'ललित-माधव', 'विदग्ध-माधव' और 'दान-केलि-कौमुदी' बडे आदर से देखे जाते हैं। कर्णपूर रचित 'चैतन्य-चन्द्रोदय' चैतन्यदेव पर रचा गया है। ब्रज के वैष्णव लेखको ने सस्कृत में ऐसी कोई रचना (अर्थात् नाटक) नही की। जो नाटक पाए जाते है, उनकी सूची नीचे दी जा रही है —

बगला विभाग

१	कस-वध यात्रा	रामचरण
२	रामविजय नाट	शकरदेव
३	रुक्मिणी हरण नाट	शकरदेव
४	गोपीनाथ विजय	कवि शेखर

हिन्दी विभाग

१	हनुमान्नाटक	हृदयराम

ये नाटक भी शास्त्रीय पद्धति और नाट्य साहित्य के नियमो का पूर्ण रूप से पालन नही करते। 'यात्रा' एक प्रकार के सगीत-नाट्य को कहते है। बगाल में यह बहुत प्रचलित है। 'कस-वध यात्रा' भी कुछ कुछ उसी प्रकार की रचना है।

नाटक—बगला विभाग

शकरदेवकृत राम विजयनाट—यह नाटक प्राचीन सस्कृत रूपक 'भाड' की पद्धति पर लिखा गया है। यह ब्रजबुलि में रची गद्य की रचना है। इसमें कुछ पद्य भी है। प्रारम्भ में सूत्रधार नादी पाठ करता है। उसी में कथा का परिचय देता है। वह राम की स्तुति "जय जय रघुकुल कमल प्रकाशक दासक नाशक भीति" पद द्वारा करता है। प्रारभिक वदना तो सस्कृत के श्लोको द्वारा की गई है। इस रचना को हरिविलास गुप्त ने 'सीता-स्वयवर' नाटक के नाम से सर्वप्रथम बगला सन् १२९१ में प्रकाशित किया था।

शंकरदेव कृत रुक्मिणी-हरण नाट—यह भी गद्य की रचना है। इसकी भाषा ब्रज बुलि है। प्राचीन सस्कृत रूपक भाड की शैली पर इसकी रचना है। सूत्रधार आकर परिचय देता है, नादी पाठ करता है। कथावस्तु जैसा कि नाम से ज्ञात है, 'रुक्मिणी हरण' से सम्बन्धित है। पद जो ब्रजबुलि में हैं, बीच बीच यें यथेष्ट मात्रा में है। इसका प्रथम मुद्रित सस्करण सन् १८७५ ई में जोडाहाट से हुआ।[१]

रामचरण कृत कस-वध यात्रा—यह रचना शकरदेव की 'रुक्मिणी हरण नाट' के

१ बां० सा० इ०, पृ० ३४२

अनुकरण में बनाई गई है। यह मुख्यतया सगीतात्मक है क्योकि यात्रा की शैली पर बनी है। इसमे अनेक पद भी है।

नाटक—हिन्दी विभाग

हृदयराम कृत हनुमान्नाटक—इस नाटक की रचना सवत् १६२३ वि में हुई। यह स्वतत्र रचना नही है। सस्कृत में इसी नाम के नाटक के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें राम-भक्ति बडे सुन्दर ढग से व्यक्त की गई है।[1]

(४) पदावली

सोलहवी शती के प्राय सब वैष्णव लेखको ने पद रचे है। वे पद स्फुट रूप में ही प्राप्त है। बहुत कम कवियो ने अपने पदो के सग्रह स्वय ही प्रस्तुत किए थे। आगे चल कर कुछ लोगो ने उन पदो के सग्रह किए। हिन्दी में 'रामगीतावली', 'कृष्णगीतावली' और 'विनयावली' इत्यादि ऐसी रचनाए है जिनका सग्रह पीछे से किया नही ज्ञात होता। श्री हरिदास दास ने कुछ हिन्दी पदकर्त्ताओ के पद-सग्रहो की सूची दी है।[2] वह हिन्दी विभाग में दे दी गई है।

बगला विभाग

गीतामृत	गोविंददास
गोपालेर कीर्तन-अमृत	कवि शेखर
दडात्मिका प्रणाली	कवि शेखर
सगीतमाधव	गोविंददास

हिन्दी विभाग

कृष्णगीतावली	तुलसीदास
परमानद-सागर	परमानद दास
मोहिनी-वाणी	गदाधर भट्ट
माधुरी-वाणी	श्री माधुरी जी
सरस-सागर	सरस माधुरी
रास के पद	हरिदास
रामगीतावली	तुलसीदास
रामचरित के पद	अग्रदास
विनयावली	तुलसीदास
सूरसागर	सूरदास
सुहृत वाणी	सूरदास मदनमोहन

आगे चल कर किए गए सग्रह ग्रथ

अप्रकाशित पद-रत्नावली	सतीशचन्द्र राय
कीर्त्तनानद	गौर सुन्दरदास

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ५४०
२. श्री श्री गौडीय वैष्णव साहित्य, द्वितीय खड, पृ. ५६-५९

गीतचन्द्रोदय	नरहरि चक्रवर्त्ती
गीतमाला	रघुनदन
गौरपदतरगिणी	जगद्वधु भद्र
गौरागपदावली	दीनवधुदास
पदामृतसमुद्र	राधामोहन ठाकुर
पदकल्पतरु	वैष्णवदास
पदकल्पलतिका	गौरीमोहनदास
पदचिन्तामणिमाला	प्रसाददास
पदरत्नाकर	कमलाकान्तदास
पदरससार	निमानददास
पदसमुद्र	वाउल मनोहरदास
सकीर्त्तनामृत	दीनवधुदास

पदावली—बगला विभाग

गोविददास कृत गीतामृत—यह रचना गीतावली के नाम से भी प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि गोविददास ने अपने पदो का सग्रह इस नाम से स्वय किया था। परन्तु यह रचना अप्राप्य है।

गोविददास कृत सगीतमाधव—सगीतमाधव रूप गोस्वामी के नाटक का पद्यमय अनुवाद है।

कवि शेखर कृत दडात्मिका-प्रणाली—यह छोटी रचना राधाकृष्णलीला सम्बन्धी है। इसमें रात दिन के प्रत्येक दड की लीला, सेवा, उपासना इत्यादि सम्बन्धी पद हैं।

कवि शेखर कृत गोपाल-कीर्त्तन-अमृत—यह राधाकृष्णलीला सम्बन्धी पदावली का सग्रह है।

पदावली—हिन्दी विभाग

तुलसीदास कृत कृष्ण-गीतावली—कृष्ण-गीतावली कृष्णलीला सम्बन्धी पदावली का सग्रह ग्रथ है। इसमें ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना-तिथि का स्पष्ट निर्देश कही नही दिया है। कुछ विद्वान इसकी रचना-तिथि सवत् १६३० वि से लेकर १६४३ वि तक बताते हैं।[1] परन्तु सब लोग इनसे सहमत भी नही हैं।[2]

तुलसीदास कृत रामगीतावली—इसका नाम गीतावली या 'पदावली रामायण' करके भी दिया हुआ है। तब इसमें विनयपत्रिका भी सम्मिलित थी, ऐसा अनुमान किया जाता है।[3] इसकी हस्तलिखित प्रतिया पर्याप्त सख्या में प्राप्त हुई है। इस रचना में, जो छोटी ही है, रामलीला वर्णित है। इस रचना की तिथि का स्पष्ट निर्देश कही भी नही है। विद्वानो ने अनुमान लगाए हैं और फलस्वरूप सवत् १६१५ वि से लेकर १६४३ वि के लगभग

---

१ तुलसी कवि, पृ. ४०५, हि सा आ इ, पृ ४१२
२ तुलसी — माताप्रसाद गुप्त, पृ ३४३-४५
३ तुलसी — माताप्रसाद गुप्त, पृ १९६-२००

के बीच तक रचना-तिथिया बताई है ।[१] इस कृति की भाषा ब्रज है। सम्पूर्ण कृति काडो मे विभक्त है। ये काड मानस के सदृश्य ही है, परन्तु रचना उससे कही छोटी है।

तुलसीदास कृत विनयपत्रिका—यह रचना विनयावली नाम से भी प्रसिद्ध है। इसकी रचना रामविनय सम्बधी स्फुट पदो में हुई है। राम के साथ-साथ उनकी पत्नी सीता, भाई, पार्षद सबके लिए स्तुतिया है। पदो से सयुक्त यह रचना तुलसीदास की राम के दरबार में दी गई अर्जी है। इसीलिए उन सब की स्तुति की गई है जो राम के प्रिय है और तुलसी की सिफारिश उनसे कर सकते है। रचना-तिथि का स्पष्ट उल्लेख कही नही है। एक हस्तलिखित प्रति पर स० १६६६ वि. दिया है।[२] ऐसा ज्ञात होता है कि कवि के जीवन काल में किसी ने इसकी प्रतिलिपि की थी। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसका उल्लेख करके उन रचना-तिथियो पर भी विचार किया है जो अन्य विद्वानो ने दी है।

इनके मुद्रित सस्करण 'तुलसी-ग्रथावली, भाग २' में नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किए है।

सूरदास कृत सूरसागर—सूरसागर एक विशाल पद सग्रह ग्रथ है। इसकी रचना भागवत के आधार पर हुई है। कवि ने भागवत के समस्त स्कधो का पदो में सक्षिप्त रूपातर किया है। दशम स्कध अधिक विस्तार से है। इसकी भाषा ब्रज है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। सूरसागर का उल्लेख "वार्त्ता" में है। इसका मुद्रित सस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने प्रस्तुत किया है (स० २००५ वि०)।

गदाधर भट्ट कृत मोहिनीवाणी—इसके लेखक गदाधर भट्ट बताए गए है। इनके पदो का सग्रह कुसुम-सरोवर निवासी कृष्णदास महाराज ने 'मोहिनी वाणी' नाम से प्रकाशित किया है।[३] यह सग्रह योग पीठ, उपदेश, विनय, व्रजजन सम्बन्ध, बधाई, नाम माहात्म्य, यमुना, वशी, स्मरण-वदना, अनुराग, रूप माधुरी, श्री राधावदन शोभा, मान, दान, रास, विवाह, भोजन, वसत, होरी लीला (कृष्ण और चैतन्य दोनो की), वर्षा, झूलन इत्यादि विषयो के पदो को लेकर किया गया है।

माधुरी कृत माधुरीवाणी—इसके रचयिता श्री माधुरी जी है।[४] यह रचना पदो में है और छ भागो में है। वशीवट-विलास माधुरी, उत्कठा माधुरी, केलि माधुरी, श्री वृदावन-विहार माधुरी, दान माधुरी, मान माधुरी, ये विभाग है। प्रत्येक विभाग के प्रारम्भ में चैतन्य देव की वदना है। केलि माधुरी के अत मे इस ग्रथ की रचना तिथि दी है।

सवत् सोलस से असी सात अधिक हिय धार।
केलि माधुरी छटि लिखि श्रावन बदि बुधवार।

---

१. गोस्वामी तुलसीदास—डा० श्यामसुन्दर दास, पृ. ७७, तुलसी कवि रामनरेश त्रिपाठी, पृ. ३८०, हि. सा आ इ., पृ ४१९–२१

२ तुलसी, पृ २४०-४३

३. श्री श्री गौडीय वैष्णव साहित्य, द्वितीय खंड, पृ ५८

४ वही, पृ ५७

सरस-माधुरी कृत सरससागर--इसके रचयिता सरस-माधुरी हैं ।[1] ये राजपूताना के निवासी थे । सरससागर मे प्राय तीन हजार पद सगृहीत हैं । इसमें नाम, धाम, विनय, भगवत्कृपा, विश्वास, विरह, शृगार, चैतन्य, हितहरिवश, दादू इत्यादि पर पद हैं । मुख्य भाषा व्रज है जिसमे राजपूताने की प्रादेशिक भाषा भी मिश्रित है ।

सूरदास मदनमोहन कृत सुहृत वाणी--इसके रचयिता सूरदास मदनमोहन हैं । १०५ पदो का सग्रह सुहृत-वाणी के नाम से जयपुर मे प्रकाशित हुआ है ।[2] इसमें लालजी की बधाई, श्रीजी की बधाई, पालना झूलना, प्रभाती, मुरली, अनुराग, राम, खडिता, कुज विहार, वसत, फुल दोल, चन्दन यात्रा, हिंडोला इत्यादि पर पद हैं ।

सग्रह ग्रथ बगाली विभाग

नीचे उन सग्रह ग्रथो का परिचय दिया जा रहा है जो प्राचीनतम हैं और रचयिताओ के अपने प्रस्तुत किए सग्रह नही है । आगे चलकर भक्तो ने उन्हें सगृहीत कर दिया है और नाम दे दिए है ।

पदसमुद्र--हुगली जिला निवासी हाराधन दत्त ने कई बार लिखा था कि उनके 'अतिवृद्ध पितामह' के समसामयिक बाबा बाउल मनोहरदास ने एक पद सग्रह पदसमुद्र नाम से प्रस्तुत किया था जिसमें १५०० पद थे और यह सोलहवी शती के मध्य में सगृहीत हुआ था ।[3] परन्तु यह सग्रह ग्रथ किसी ने देखा नही । कहा जाता है कि इसकी हस्तलिखित प्रति हाराधन दत्त के पास थी । उनकी मृत्यु के बाद उसका पता नही चला ।[4]

क्षणदा-गीत-चितामणि--'क्षणदा-गीत-चिंतामणि' के सकलनकार श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती हैं । इनका नाम 'हरिवल्लभ' या 'वल्लभ' भी है । सतीशचन्द्र राय की सम्मति है कि यह सकलन सत्रहवी शती में किया गया था, यद्यपि चक्रवर्ती महाशय सोलहवी शती के अत मे थे ।[5] इसमें तीस क्षणदायें हैं जिनके नाम शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तिथियो पर 'सप्तमी क्षणदा, अष्टमी क्षणदा' करके हैं । समस्त पद कृष्ण-राधा लीला विषयक है । इस सग्रह का सर्वप्रथम सपादन वृदावन के प्रसिद्ध आचार्य राधानाथ गोस्वामी के शिष्य कृष्णपद बाबाजी ने किया था और मुद्रित सस्करण देवकीनदन यत्रालय वृदावन ने निकाला ।

पदामृत समुद्र--इसका सकलन राधामोहन ठाकुर ने किया था । ये १७वी शती के अतिम भाग में थे । पदामृत समुद्र में ७४६ पदो का सग्रह है जिसमें २२८ पद इनकी अपनी रचना हैं । स्वर्गीय रामनारायण विद्यारत्न ने राधारमण यत्रालय से इसका सटीक सस्करण निकाला था ।

गीतचन्द्रोदय--इस सग्रह ग्रथ के सकलनकर्ता नरहरि चक्रवर्ती हैं । उन्होने अपने सग्रह ग्रथ को आठ भागो में बाटा है --

---

१ श्री श्री गौडीय वैष्णव साहित्य, ख २, पृ ५९

२ वही, पृ ५६

३ दीनेशचन्द्र सेन, पृ ५६२

४ वही, पृ ५६२

५ प क त, परिशिष्ट, भूमिका, पृ १

१ गौरकृष्णामृत
२ गौरकृष्णभावनामृत
३ गौरकृष्णचरितामृत
४. गौरकृष्णविलासामृत
५ गौरकृष्णलीलामृत
६ नित्यसेवामृत
७ नामामृत
८ प्रार्थनामृत

इसमें मुख्यतया गौराग सम्बन्धी पद हैं। कुल मिलाकर ४३ पदकर्त्ताओ के पद सगृहीत है।

पदकल्पतरु—"पद कल्पतरु" के सग्रहकार वैष्णवदास है, जिनका असली नाम गोकुलानद सेन हैं। ये राधामोहन ठाकुर के शिष्य थे। 'पदकल्पतरु' मे चार शाखा में है। प्रथम शाखा में ११, द्वितीय में २४, तृतीय में ३१, और चौथे मे २६ पल्लव है। इस सग्रह में १३० पदकर्त्ताओ के लगभग ३००० पद सगृहीत है।

पदरससार—श्री निमानददास ने 'पदकल्पतरु' के आदर्श पर इस सग्रह ग्रथ को प्रस्तुत किया। 'पदकल्पतरु' में जिन पदकर्त्ताओ के पद दिए है, उनके अतिरिक्त २१ अन्य व्यक्तियो के पद भी इसमें हैं। इसमें लगभग २००० पद सगृहीत हैं।

पदरत्नाकर—१२१३ वगाब्द मे कमलाकात दास ने इस सग्रह को प्रस्तुत किया था। इसमें ४३ तरगें हैं। कुल मिलाकर १३५८ पद सगृहीत हैं जिसमें १२ या १३ स्वरचित पद हैं।

(५) जीवनी साहित्य

जीवनी साहित्य की रचना ब्रज अर्थात् हिन्दी वैष्णव साहित्य मे अपेक्षाकृत बहुत कम है। वगीय वैष्णव साहित्य में चरित-ग्रन्थ (जीवनी ग्रथ) अधिक हैं। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि वगीय जीवनी साहित्य हिन्दी की अपेक्षा बहुत अधिक है। हिन्दी में जीवनी साहित्य की जो रचना उपलब्ध है वह 'भक्तमाल' है। इस रचना मे पौराणिक और लौकिक भक्तो की जीवनी पर अधिकाशतया कुछ अधिक प्रकाश नही पडता। कही-कही एक छप्पय एक भक्त के लिए दे दिया गया है परन्तु अधिकतर नाम का उल्लेख मात्र ही है। एक तरह से यह रचना यशगाथा मात्र है। वगाली रचना "वैष्णव-वदनायें" भी इसी प्रकार की है। परन्तु वगला जीवनी साहित्य मे इनके अतिरिक्त लम्बे आख्यानक काव्य और अन्य चरितग्रथ भी है जो प्रमुख भक्तो के जीवन पर विशद रूप से प्रकाश डालते हैं। नीचे इन रचनाओ की सूची दी जा रही है।

वगला विभाग

अद्वैतप्रकाश—ईशाननागर
अद्वैततत्त्व—श्यामदास
अद्वैतमगल—हरिचरणदास

मध्य लीला, परिच्छेद १—रूप-सनातन वर्णन
२—यौवन लीला के आगे के १२ वर्ष
३—सन्यास की परवर्त्ती घटनायें
४-६—उडीसा तीर्थभ्रमण, सार्वभौम मिलन
७-८—दक्षिण भारत की यात्रा, रामानद से मिलन, भक्ति पर वाद-विवाद
९—दक्षिण भारत भ्रमण
१०-११—प्रत्यागमन
१२-१८—वृदावन यात्रा, प्रत्यागमन
१९-२५—भक्ति-सिद्धान्त, धर्म इत्यादि का वर्णन

अत्यलीला, परिच्छेद १-२०—चैतन्यदेवकी जीवनी का उत्तरार्ध, रूप-सनातन से मिलन, दिव्योन्माद इत्यादि।

चैतन्यचरितामृत क्योकि गाने के लिए नही बना था अत इसमें गेय छद नही है। कुछ पद बीच में दिए गए है। इसका सर्वप्रथम मुद्रित सस्करण, वेणीमाधव दत्त ने चन्द्रिका प्रेस से प्रकाशित किया था।

वृन्दावनदास कृत चैतन्यभागवत—इसके रचयिता वृन्दावनदास थे। इस ग्रथ और ग्रथकर्त्ता दोनो का उल्लेख "चरितामृत" में कृष्णदास ने किया है —

कृष्णलीला भागवते कहे वेद व्यास।
चैतन्य लीलार व्यास वृदावनदास॥

(चै च, आदिलीला, परि ८,पृ ५३)

"चैतन्यभागवत" का नाम पहले चैतन्य-मगल था, फिर न जाने क्यो चैतन्य भागवत हुआ। कहा जाता है जयानद के चैतन्य-मगल से अलग करने के लिए नाम परिवर्तन किया गया। यह कहा तक ठीक है कहा नही जा सकता, परन्तु वृदावनदास रचित चैतन्य-चरित ग्रथ का नाम "चैतन्य-मगल" था इसका उल्लेख चैतन्यचरितामृत में है —

वृदावन दास कैल चैतन्यमगल।
जाहार श्रवणे नाशे सर्व अमगल॥

(चै च, आदिलीला परि ८, पृ ५३)

इससे भ्रम हो सकता है कि चैतन्यमगल ही वृदावनदास रचित है, 'भागवत' नही, परन्तु प्रेम-विलास में स्पष्ट उल्लेख है कि यह दोनो ग्रथ एक ही है —

चैतन्यभागवतेर नाम चैतन्यमगल छिल।
वृदावनेर महान्तेरा भागवत आख्या दिल॥

"चैतन्यभागवत" में चैतन्यदेव का चरित्र भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण के चरित्र के रूप में उपस्थित किया गया है। इस प्रकार उन्होने श्री चैतन्य के अवतार की स्थापना की है।

प्रस्तुत ग्रथ की निश्चित रचना-तिथि अज्ञात है परन्तु यह नित्यानद प्रभु के जीवन-

काल में उनकी आज्ञा से ही रचा गया था यह निश्चित है।[१] इसमें श्रीवास, रूप और सनातन का भी ऐसा उल्लेख है कि वे उस समय जीवित थे[२] यह स्पष्ट होता है।

प्रेम-विलास में इस काव्य का रचनाकाल दिया है —

चौदशत् पंचानव्वइ शकाब्दा जखन।
श्री चैतन्य भागवत रचे दास वृंदावन॥

एक वात और निश्चित है। यह ग्रथ कृष्णदास के 'चरितामृत' से पहले उपस्थित था क्योकि उन्होने इसका उल्लेख किया है।

'चैतन्य-भागवत' का ऐतिहासिक महत्त्व अधिक है। इसमें तात्कालीन वगाल की दशा का वर्णन है। यह ग्रथ तीन खडो मे विभक्त है,—आदिखड, मध्यखड और अत्यखड। आदिखड मे १५ अध्याय है। सव में चैतन्य की वाल्यकाल से लेकर गया-यात्रा तक की कथा वर्णित है। मध्यखड मे सत्ताईस अध्याय है। यह सन्यास ग्रहण की कथा मे ही समाप्त किया गया है। अत्यखड में केवल दश अध्याय है। नीलाचल वास तक की कथा वताकर यह अत्यन्त आकस्मिक रूप से समाप्त हो गया है। इसका कारण अज्ञात है। कृष्णदास के समय में भी यह इतना ही था, इसका उन्होने उल्लेख किया है।

नित्यानदलीलावर्णने हइल आवेश।
चैतन्येर शेषलीला रहिल अवशेष॥

परन्तु यह कारण कहा तक ठीक है, कहा नही जा सकता। हो सकता है कि कवि ने चैतन्यदेव के जीवनकाल में ही ग्रथ समाप्त कर दिया हो।

अम्बिकाचरण ब्रह्मचारी द्वारा प्रकाशित "चैतन्यभागवत" के तीन अतिरिक्त अध्याय "वगीय साहित्य परिषद्" के सग्रह में है। परन्तु सेन महोदय उन्हें वृंदावनदास की रचना नही मानते। यदि ये तीन पीछे के अध्याय जिसमें चैतन्यदेव की अत्यलीला वर्णित है वृंदावनदास की रचना होती तो कृष्णदास यह न कहते कि "चैतन्येर शेपलीला रहिल अवशेष"।

यह ग्रथ पयार छद में रचित है। त्रिपदी छद भी है परतु ये वही प्रयुक्त हुए है जहा काव्य को गेय वनाया है। पद भी है। स्थान-स्थान पर राग-रागिनी भी दी है। इससे ज्ञात होता है कि यह गेय काव्य भी है।

लोचनदास कृत चैतन्यमगल—लोचनदास ने चैतन्यमगल की रचना मुरारिगुप्त की सस्कृत रचना 'कडचा' के आधार पर की है। ये नरहरि सरकार के शिष्य थे और उन्ही की आज्ञा से उन्होने इस ग्रथ की रचना की थी। चैतन्य-मगल मे चार खड है।

---

१. अंतर्यामी नित्यानद वलिला कौतुके।
चैतन्य चरित्र किछु लिखिते पुस्तके॥

२. अद्यापिओ श्रीवासेर चैतन्य कृपाय।
द्वारे सव उपसन्न हतेछे लीलाय॥ (चै. भा शेपखड, अ. ५, पृ. ३१०)
अद्यापिओ दुइ भाइ रूप-सनातन।
चैतन्य कृपाय हैल विदित भुवन॥ (चै. भा, शेपखड, अ ५., पृ ३५०)

१ सूत्रखड—इसमें मगलाचरण, गुरु वदना, शची और जगन्नाथ मिश्र का जन्म, कलि में पाप का आधिक्य वर्णन, नारद का द्वारका में जाकर कृष्ण से कलि के जीवो की दुर्दशावर्णन, कृष्ण का अवतार लेना स्वीकार करना, ब्रह्मा और शिव को सूचना, रुक्मिणी से भावी अवतार की बातचीत करना तथा सब भक्तो का जन्म लेना इत्यादि दिया गया है।

२ आदिखड—इसमें शची गर्भ स्थिति, चैतन्य की अद्वैत आचार्य द्वारा वदना, चैतन्य का जन्म, जन्म उत्सव, नामकरण, चैतन्य की बाल्य लीला, उपनयन, जगन्नाथ मिश्र की मृत्यु, चैतन्य का विद्यारम्भ, विवाह, यात्रा, पत्नी लक्ष्मी की मृत्यु, लक्ष्मी का पुनर्जन्म, विष्णुप्रिया से पुनर्विवाह, गया-यात्रा, ईश्वरपुरी में मिलन और दीक्षा-ग्रहण, वृन्दावन यात्रा, तथा नवद्वीप आगमन की कथा वर्णित है।

३ मध्यखड—इसमें भक्तो से साक्षात्कार, कृष्ण-भक्ति और सकीर्तन, नित्यानद से मिलन, जगाई मधाई उद्धार, वृन्दावन यात्रा की इच्छा, केशव भारती से मिलन, सन्यास ग्रहण, माता-पत्नी का दु ख, नवद्वीप त्याग कर नीलाचल यात्रा और निवास इत्यादि का विवरण है।

४ शेषखड—इसमें दक्षिण भारत का भ्रमण, तीर्थ-दर्शन, नीलाचल में पुनरागमन, वृदावन यात्रा, नवद्वीप आगमन, भक्तो से मिलन इत्यादि की कथा है।

यह रचना वर्णनात्मक है। इसमें छद भी कई प्रकार के प्रयुक्त हुए है। पयार, लघु त्रिपदी, दीर्घत्रिपदी, मध्यतरजा, करुणा इत्यादि छदो का प्रयोग हुआ है। रचना श्रेष्ठ काव्य मानी जाती है।

जयानद कृत चैतन्यमगल—जयानद की यह रचना पाचाली काव्य की शैली पर है। इसमें ऐतिहासिक की अपेक्षा जनश्रुति पर अवलबित तथ्य अधिक है। इसमे तात्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति का निर्देश मिलता है। चैतन्यदेव सबधी कुछ ऐसे तथ्य है जो वैष्णवों को स्वीकार नही है। अत यह रचना वैष्णव समाज मे आदरणीय नही है। इसमें चैतन्य-देव के तिरोधान की कथा है। रचना मामूली है। इसका सर्वप्रथम परिचय वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने प्रस्तुत किया। फिर नगेन्द्रनाथ वसु और कालिदास नाग ने सपादन करके वगीय साहित्य परिषद् की ओर से इसे प्रकाशित किया। मुद्रित प्रति का पाठ सम्पूर्ण रूप से शुद्ध नही है।

गोविददास कृत कडचा—कहा जाता है कि गोविंददास कर्मकार चैतन्यदेव के सेवक थे जो दक्षिण-भ्रमण में भी उनके साथ गए थे। इन्होने चैतन्यदेव की जीवनी लिखी जो 'कडचा' कहलाती है। शातिपुर निवासी जयगोपाल गोस्वामी ने इस कडचा का मुद्रित सस्करण सस्कृत प्रेस डिपोजिटरी से १८९५ ई मे प्रकाशित किया था। दीनेशचन्द्र सेन ने एक दूसरा सस्करण स्वय सपादित करके कलकत्ता विश्वविद्यालय से १९२६ ई मे प्रकाशित किया था। इस कडचा की प्रामाणिकता सदिग्धसी ही है। कुछ लोग इसे गोविंद-दास कृत मानते है, कुछ नही मानते।[1] गोविंद कर्मकार और उनके कडचा का उल्लेख लोचन, जयानद या वृदावनदास किसी ने नही किया है।

---

[1] बां सा इ, पृ २७१

स्वरूपदामोदर कृत कड़चा—स्वरूपदामोदर चैतन्यदेव के अनन्य सहचर थे और उन्होंने चैतन्यदेव की जीवनी लिखी थी, इसका उल्लेख 'चैतन्यचरितामृत' में है। इस कड़चा से बहुत सहायता ली गई है, यह भी 'कृष्णदास' ने कहा है। रचना संक्षिप्त है, इसका भी उल्लेख है।[1] यह रचना अब अप्राप्य है।

हरिचरणदास कृत अद्वैतमंगल—अद्वैत आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र अच्युतानंद के आदेशानुसार हरिचरणदास ने अद्वैत मंगल की रचना की थी। ये अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। इन्होंने अद्वैत आचार्य के मातुल विजयपुरी के मुख से उनकी बाल-लीला सुनी और तब लिखी। उन्होंने अपनी रचना में केवल कवि कर्णपूर का नाम दिया है। इससे ज्ञात होता है कि यह रचना अद्वैत के जीवनकाल में ही बन गई थी। १९०१ ई में सान्याल ने प्रथम तीन परिच्छेद प्रकाशित किए थे। सर्वप्रथम परिचय बंगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने दिया था।[2] इसकी एक हस्तलिखित प्रति १७१३ शक (१७९२ ई०) की प्राप्त है। कहा जाता है कि अद्वैत के एक अन्य शिष्य श्यामदास आचार्य ने भी एक अद्वैतमंगल रचा था पर वह अब प्राप्त नही है। इस ग्रंथ मे पाच अवस्था और तेइस संख्यायें है।

ईशान-नागर कृत अद्वैतप्रकाश—ईशान-नागर अद्वैत आचार्य के शिष्य थे। चैतन्यदेव के तिरोधान पर अद्वैत आचार्य अत्यन्त संतप्त हुए और आत्मसंगोपन की इच्छा करके उन्होंने ईशान को प्रचार करने का आदेश दिया। उनकी पत्नी ने अद्वैत आचार्य की गुणावली लिखने को कहा। इसलिए 'अद्वैतप्रकाश' की रचना हुई। इस रचना के मुख्य उपादान लाउडिया कृष्णदास की संस्कृत रचना 'बाललीला-सूत्र' और पद्मनाभ तथा श्यामदास के मुख से सुनी कथा है। यह रचना ईशान ने १४९० शक (१५६९ ई) में सत्तर वर्ष की आयु में समाप्त की थी। इसमें बाइस अध्याय है। अद्वैत की जीवन-घटनाओ के साथ साथ प्रसंगानुसार चैतन्य देव के और अन्य भक्तो के भी वृत्तांत है। इस रचना का सर्वप्रथम मुद्रित संस्करण अमृतबाज़ार-पत्रिका के कार्यालय से १८९७ ई मे प्रकाशित हुआ था। साहित्य परिषद् पत्रिका ने (भाग ३, पृ २४९-५४) एक हस्तलिखित प्रति के अवलंबन पर, जिस पर १७०३ शक (१७८२ ई) लिपिकाल दिया है, इस रचना का परिचय प्रस्तुत किया था। मुद्रित प्रति के अकृत्रिमत्व पर कुछ लोगो को सन्देह है। वे इसे इतनी पुरानी रचना नही मानते।[3]

विष्णुदास कृत सीतागुणकदम्ब—सीतागुण कदंब मे अद्वैत आचार्य की पत्नी सीता देवी की जीवनी वर्णित है। लेखक ने स्वपरिचय में अपने को माधवेन्द्र आचार्य का पुत्र और सीता देवी का शिष्य बताया है। श्री हृषिकेश वेदांत शास्त्री ने संपादन करके १३४६ साल (१९३९ ई) में प्रकाशित किया। रचना का आरम्भ कदाचित् १४४३ शक (१५२१-२२ ई) में हुआ था।[4]

---

१. मध्य शेष प्रभु लीला स्वरूप दामोदर। सूत्र करि ग्रंथिलेन ग्रंथेर भितर॥
(चै च, आदिलीला, परि १३, पृ ६७)

२. भाग ३, पृ. २५५-६७

३ बां. सा. इ, पृ. २७६

४. बां. सा. इ., पृ २७७

लोकनाथ कृत सीताचरित—इस छोटी रचना मे अद्वैत-पत्नी सीता देवी की जीवनी है। रचना में चैतन्यचरितामृत का लेखक के नाम सहित उल्लेख है। अत यह अद्वैत आचार्य के शिष्य लोकनाथ चक्रवर्ती की रचना नही हो सकती। भक्ति-प्रभा कार्यालय ने इसे १३३३ साल (१९२६ ई) में प्रकाशित किया। रचना सदिग्ध है।[1]

नित्यानन्ददास कृत प्रेमविलास—नित्यानददास का जन्म १५३७ ई में हुआ था। कुछ प्रतियो के आधार पर 'प्रेमविलास' का रचना-काल १६०० ई वताया जाता है। अत इस रचना को भी सोलहवी शती की रचनाओ में सम्मिलित कर लिया गया है। श्रीनिवास आचार्य की द्वितीय पत्नी गौरागप्रिया के आदेशानुसार उनके शिष्य गुरुचरण-दास ने 'प्रेमामृत' ग्रथ रचा था। इसमें प्रेमविलास का नाम है। प्रेमविलास की रचना आचार्य की प्रथम पत्नी जाह्नवा देवी के आदेश से हुई थी। इसमे प्रधानतया श्रीनिवास आचार्य और श्यामानद प्रभु की जीवनी वर्णित है। यह अत्यन्त ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। वग देश में वैष्णव धर्म-प्रचार की कथा इसमें मिलती है। खेतरी उत्सव, तथा कटोया उत्सव का भी वर्णन है। इसके द्वारा बहुत से वैष्णव लेखको का समय निर्धारित होता है। इसमें बीस विलास हैं। सर्वप्रथम मुद्रित सस्करण वरहमपुर के राधारमण यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। द्वितीय सस्करण यशोदानन्द तालुकदार ने १३२० साल (१९१३ ई) में प्रकाशित किया।

यदुनन्दनदास कृत कर्णानन्द—यदुनदनदास सोलहवी शती के उत्तरार्ध के व्यक्ति है। कर्णानन्द १५२९ शक (१६०८ ई) की वैसाखी पूर्णिमा को समाप्त हुआ था। अत इसे भी सोलहवी शती की रचनाओ में सम्मिलित कर लिया गया है। इसमें सात निर्यास है। राधारमण यन्त्रालय वरहमपुर द्वारा प्रथम मुद्रित सस्करण १२९८ साल (१८९१ ई) में प्रकाशित हुआ। इसकी रचना प्रेमविलास के अनुरूप ही है।

देवकीनन्दन कृत वैष्णव-वन्दना—'वैष्णव-वदना' में लगभग २०२ वैष्णव भक्तो की वदना की गई है। इन व्यक्तियो की जीवनी पर तो कुछ प्रकाश इस रचना से नही पडता, नाम बहुत से मिल जाते है। यही इसका ऐतिहासिक मूल्य है। यह रचना अत्यन्त लोकप्रिय है।

माधवदास कृत वैष्णव-वन्दना—इस रचना का प्रचार उस वैष्णव-वदना की अपेक्षा, जो देवकीनदन की रचना है, कम है। वगीय साहित्य परिषद् ने शिवचद शील द्वारा सपादित इस रचना को १३१७ पौष वगाब्द (१९१० ई) में प्रकाशित किया है। इसमें श्री चैतन्य, नित्यानद, अद्वैत, हरिदास, श्रीनिवास, रामचन्द्र कविराज, मुरारि गुप्त, वासुदेव, इत्यादि का उल्लेख है।

जीवनी-साहित्य—हिन्दी विभाग

नाभादास कृत भक्तमाल—नाभादास अष्टछापीय कवियो के समकालीन थे। इन्होने भक्तो का माहात्म्य दर्शाने के लिए भक्तमाल की रचना की थी। इसकी रचना छप्पय छद में है। इस ग्रथ में दिए भक्तों के वृत्तात विशद नही हैं, केवल महिमा सूचक हैं।

---

१ वा सा इ, पृ २७७

किसी किसी भक्त का वर्णन एक सम्पूर्ण छप्पय मे हुआ है, परतु अधिकाशत तो भक्तो के नाम ही दिए गए हैं। एक ही छप्पय मे वहुत से नाम आ गए हैं। इस ग्रथ की रचना-तिथि के वारे में कुछ मतभेद हैं। स० १६४२ से लेकर १६८० वि तक में इसकी रचना वताई जाती है।[1] छोटी और अपूर्ण होने पर भी यह रचना अत्यन्त लोकप्रिय हुई। वगला के दो कवियो ने भक्तमाल का अनुकरण किया। ये दोनो ही सोलहवी शती के परवर्त्ती कवि है। एक तो लालदास या कृष्णदास वावाजी रचित ग्रथ है जिसका नाम भी भक्तमाल ही है। इसमें मूल हिन्दी छप्पय देकर फिर उसका वगला में भाष्य सा किया गया है। उन सम्पूर्ण भक्तो की नामावली तो वगला भक्तमाल में नही है जो हिन्दी भक्तमाल में है। थोडे से मुख्य हिन्दी भाषा-भाषी वैष्णव भक्तो का परिचय है। दूसरी रचना जगन्नाथदास कृत भक्तचरितामृत है। यह भी भक्तमाल का अवलवन लेकर रची गई है।[2]

वेणीमाधवदास कृत मूल गोसाईं चरित—इस छोटी रचना में गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी वर्णित है। इसका एक मुद्रित सस्करण गीता प्रेस गोरखपुर ने स० १९९१ में प्रस्तुत किया है। इसमें १२१ दोहे, १९ सोरठे, एक सवैया और शेष चौपाइया है।

(६) भाष्य, टीका और अनुवाद

इस विभाग में वैष्णव कवियो कृत वे सव रचनाए सम्मिलित कर ली गई है जो भागवत, पुराणो और अन्य प्रमुख सस्कृत रचनाओ के अनुवाद है। रचनाओ के परिचय के साथ उस रचना का उल्लेख कर दिया गया है जिसका वह अनुवाद है। नीचे इन ग्रथो की सूची दी जा रही है।

बंगला विभाग

कृष्णमगल	शेखर
कृष्णकर्णामृत	यदुनदनदास
केशवमगल	नरहरिदास
कृष्णप्रेमतरगिणी	रघुभागवताचार्य
गोविंदमगल	दु खी श्यामदास
गोविंदलीलामृत	यदुनदनदाम
गीता	गोविंद मिश्र
चन्द्रहास	घनश्यामदाम
जगन्नाथ-वल्लभ	लोचनदास
दशम स्कव	रामकात
दश-श्लोकी भाष्य	राधाकृष्णदाम
दानलीला-चन्द्रामृत	यदुनदनदाम
निकुज-रहस्य-स्तव	वशीदास
वृहन्नारदीय पुराण	देवड

१ अष्ट. व. स., पृ १०९
२. गौ. वैं. सा, पृ ९६, भाग २

भागवत पुराण	रामकान
भागवत पुराण	शकरदेव
भागवत-तत्त्व-लीला	ज्ञानदाम
भागवत पुराण	जगन्नाथदाम
रमकदव	कवि वल्लभ
रसिकरगदा	वीरचन्द्र
राधा-कृष्ण-लीला-रम-कदव	यदुनदन
विष्णु-भक्ति-रत्नावली	लाउडिया कृष्ण दाम
मुबोधिनी	चैतन्यदाम
स्मरण मगल	नरोत्तम

हिन्दी विभाग

गीतगोविद टीका	मीराबाई
निबादित्य दशश्लोकी भाष्य	हरिव्यास
भागवत दशम स्कध	नददास
भागवत भाषा	भूपति
वृदावन महिमामृत	भगवत
सुबोधिनी	वल्लभ
हितोपदेश उपाखणा बावनी	अग्रदास

तुलसीदास के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोट (१९०४) मे 'गीता-भाष्य' अनुवाद ग्रथ का नाम आया है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट (१९१७-१९१९) मे सूरदास के नाम मे 'भागवत' नामक एक ग्रथ का उल्लेख हुआ है।

इनकी प्रामाणिकता सदिग्ध है।

भाष्य, टीका और अनुवाद—बगाली विभाग

लोचनदास कृत जगन्नाथ-वल्लभ का अनुवाद—रामराय कृत जगन्नाथ-वल्लभ नाटक का अनुवाद लोचनदास ने किया था। यह अनुवाद पद्य मे ही है। इन्होने अनुवाद में मूल को सुरक्षित रखने की चेष्टा की है। नाटक सस्कृत की रचना है। लोचनदास ने उस पदावली को वैसे ही रख दिया है। उदाहरण के लिए दोनो की कुछ पक्तिया नीचे दी जा रही है —

मूल

परिणत-शारद शशधर वदना।
मिलिता पाणितले गुरुमवना॥
देवि! किमिह परमस्ति मदिष्ट।
बहुतर-सुकृत फलितमनुविष्ट॥

अनुवाद

निर्मल-शारद शशधरवदनी।
विदलित-काचन-निंदितवरणी॥

पिकरुत गुंजित-सुमधुर-वचना ।
मोहन कृत करि शत शत मदना ॥
देवि ! श्रृणु वचन मम सार ।
किल गुणधाम मिलित, मनुवार ॥ इत्यादि । (५।६१)

नरोत्तम कृत स्मरण मङ्गल का अनुवाद—श्री राधाकृष्ण की अष्टकालीन लीला और उपासना सबधी ग्रथ स्मरण-मगल का अनुवाद नरोत्तमदास ने पयार छद मे किया है।

कविवल्लभ कृत रसकदम्ब—रसकदब की रचना "श्री कृष्णसहिता" के आधार पर हुई है। इसमे प्रसग के क्रम से कृष्णलीला का वर्णन है। रसकदब मे वाइस अध्याय है। कवि वल्लभ ने रचना में इसका समाप्तिकाल १५२० शक[1] दिया है। यह लगभग १५९८ ई होता है। वगीय साहित्य परिषद् ने तारकेश्वर भट्टाचार्य और आशुतोष चट्टोपाध्याय द्वारा सपादित इस रचना को १३३२ साल अर्थात् सन् १९२५ ई में प्रकाशित किया है।[2]

यदुनन्दनदास के अनुवाद

१ श्री राधाकृष्ण-लीला-रस-कदम्ब—प्रस्तुत रचना रूप गोस्वामी कृत 'विदग्ध-माधव' नाटक का रूपातर है। वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका ने एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है[3] जिसका लिपिकाल १७, भाद्रपद १५९३ शकाब्द (१६७२ ई) दिया हुआ है। इस रचना का मुद्रित सस्करण ज्ञानरत्नाकर प्रेस से १८५० ई मे प्रकाशित हुआ है।

२. दानलीला-चन्द्रामृत—प्रस्तुत रचना रूप गोस्वामी कृत 'दानकेलि-कौमुदी' भाडिका का अनुवाद है। केशवचन्द्र दे ने इसे १९१८ ई मे प्रकाशित किया था।

३ गोविन्दविलास—इस रचना का दूसरा नाम गोविन्द-लीलामृत भी है। यह कृष्णदास कविराज की रचना गोविन्द-लीलामृत का अनुवाद है। चैतन्य-चन्द्रोदय प्रेस ने १७७४ शकाब्द अर्थात् १८५२-५३ ई में इसका मुद्रित सस्करण प्रकाशित किया।

४ कृष्ण-कर्णामृत—प्रस्तुत रचना विल्वमगल कृत सस्कृत रचना 'कृष्ण-कर्णामृत' और उस पर की गई कृष्णदास कविराज की सस्कृत टीका 'सारग-रगदा' दोनो का अनुवाद है। वरहमपुर स्थित राधारमण प्रेस ने इसका मुद्रित सस्करण प्रकाशित किया है।

रघुभागवताचार्य कृत कृष्ण-प्रेम-तरंगिणी—रघुभागवताचार्य गदाधर पडित के शिष्य थे। इनकी यह रचना बगला भाषा में भागवत का अनुवाद है। यह अनुवाद अत्यन्त सरल और सरस है। अनुवाद सक्षिप्त है और प्रत्येक अध्याय का धारावाहिक रूप मे है। कवि कर्णपूर ने अपनी रचना 'गौर-गणोद्देश-दीपिका' में इस रचना का उल्लेख किया है। कवि कर्णपूर की रचना १५७७ ई० की है, अत कृष्ण-प्रेम-तरगिणी उससे पहले ही रची गई होगी। इसके दो मुद्रित सस्करण प्राप्त है। एक तो नगेन्द्रनाथ वसु सपादित और वगीय साहित्य परिषद् द्वारा १९०५ ई० मे प्रकाशित और द्वितीय वसतरजन राय द्वारा सपादित और वगवासी कार्यालय द्वारा १९१० ई० में प्रकाशित।

---

१. विंशति अधिक पचदश शत
२. बां. सा. इ., पृ ३३५
३ साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ. २५७

भाष्य, टीका और अनुवाद—हिन्दी विभाग

नन्ददास कृत दशम-स्कध—दशम स्कध की रचना नददास ने अपने किसी मित्र के आग्रह पर की थी, ऐसा उन्होंने प्रारभ मे कहा है।

तिन कही 'दशम स्कध' जुआहि,
भाषा करि लघु वरनो ताहि। (न दास, द. स्क० १।५)

इस रचना में भागवत दशम स्कध के उन्तीस अध्यायो का पद्यबद्ध अनुवाद है। दशम स्कध का मुद्रित सस्करण उमाशकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

(७) विविध

इस विभाग में वे रचनाए ली गई है जो सोलहवी शती के वैष्णव लेखको और कवियो की रचनायें है परन्तु पीछे दिए विभागो में नही आती। ये समस्त रचनाए कुछ न कुछ धार्मिकता का पुट अवश्य लिए है। कुछ राधाकृष्ण लीला सबधी, कुछ प्रार्थना वदना, इत्यादि सबधी, और कुछ तीर्थ माहात्म्य सबधी रचनाएँ है।

बगला विभाग

अद्वैततत्त्व	दु खी कृष्णदास
अर्थरत्नाल्पदीपिका	रामनरायण मिश्र
आत्मजिज्ञासा	कृष्णदास
आत्मनिरूपण	कृष्णदास
आत्मसाधन	कृष्णदास
आद्या-चिन्तामणि	कृष्णदास
आनन्दभैरव	नरोत्तमदास
आनन्दलतिका	लोचनदास
आनन्दलहरी	वृदावनदास
आश्रयनिर्णय	कृष्णदास
उपासनासार-सग्रह	श्यामानददास
किशोरीमगल	कृष्णदास
कुजरास्तव	यदुनदनदास
कुजरास्तव	शचीनदन
गुरुतत्त्व	कृष्णदास
गुरु-शिष्य-सवाद	कृष्णदास
गोकुलविलास	वृदावनदास
गोलोकसहिता	वृदावनदास
गोवर्धनस्तव	श्यामानन्द
गोवर्धनोपदेश-मप्रार्थना	श्यामानन्द
गौराग-अष्ट-मालिका	नरहरिदास
चन्द्रमणि	नरोत्तमदास

वैष्णव साहित्य की अनुक्रमणिका—विविध

चमत्कार-चन्द्रिका	नरोत्तमदास
चैतन्य-तत्त्व-सार	कृष्णदास
चैतन्य-प्रेम-विलास	लोचनदास
ज्ञान-रत्न-माला	कृष्णदास
तत्त्वनिरूपण	वृंदावनदास
तत्त्वसार	वृंदावनदास
दिनमणि-चन्द्रोदय	मनोहरदास
दीपान्विता	वशीवदन
दुर्लभामृत	रामचन्द्र
देह-कडच	नरोत्तमदास
नवराधातत्त्व	नरोत्तमदास
निगूढ-तत्त्वसार	कृष्णदास
नृलोकसार-चिन्तामणि	कृष्णदास
पद्यमाला	रामचन्द्र
पाखड-दलन	वृंदावनदास
प्रार्थना	नरोत्तमदास
प्रार्थना	लोचन
प्रेमरत्नावली	कृष्णदास
प्रेमविलास	कृष्णदास
प्रेमसाधन	जगन्नाथदास
वाल्यविलास	कृष्णदास
भक्ति-चिन्तामणि	वृंदावनदास
भक्ति-तत्त्व-चिन्तामणि	वृंदावनदास
भक्ति-प्रदीप	शकर देव
भजनक्रम	कृष्णदास
भजननिर्देश	नरोत्तमदाम
भावमाला	श्यामानन्द
भावावेग	वृंदावनदास
मनोवृत्ति-पटल	कृष्णदास
रघुनाथ दास गोस्वामीर शोचक	कृष्णदास
रति-विलास	कृष्णदास
रस-कदव-कलिका	कृष्णदास
रसमय-चन्द्रिका	कृष्णदास
रागमय-कर्ण	कृष्णदास
रागमाला	नरोत्तमदास
राग-रत्नावली	कृष्णदास

सेन ने दी है।[१] यहा इन्ही के अनुसार इन रचनाओ का सूक्ष्म परिचय दिया जा रहा है।

आत्मजिज्ञासा—यह रचना 'आत्मजिज्ञासा-तत्त्व' अथवा 'आत्मजिज्ञासा-मारात्सार' नाम से भी प्रसिद्ध है। वगीय साहित्य परिपद् पत्रिका, भाग ६, पृ ३१, ४९ पर इसका उल्लेख है। प्राप्त प्रति का लिपिकाल १२१६ माल है। माहित्य सभा वर्धमान मे सुरक्षित प्रति है जिसकी सम्या ३१८ है।

आत्मसाधन—वगीय साहित्य परिपद् पत्रिका, भाग ६, पृ ४९ पर उल्लेख है। लिपिकाल जो उल्लिखित प्राप्त प्रति पर है, १२२२ साल दिया हुआ है।

आत्मनिरूपण—इस रचना की प्रति सख्या ३९६६ रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी मे सुरक्षित है।

आश्रयनिर्णय—इस नाम की कई रचनाएँ विभिन्न कवियो के नाम से प्राप्त है। इस रचना की हस्तलिखित प्रति रायल एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी में सगृहीत है। प्रति की सख्या ३५८५ है।

जवामजरी—एक अज्ञातनामा लेखक की अत्यन्त छुद्र रचना 'जवा-मजरी-तत्त्व-निरूपण' पाई गई है। यह एक प्रकार से 'जवामजरी' की व्याख्या-सी है। इस रचना का उल्लेख वगीय साहित्य परिपद् पत्रिका, भाग ८, पृ ३३ पर है। प्रति सख्या ३५३ साहित्य सभा वर्धमान में सुरक्षित है।

वाल्य-रस-विलास—वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ ७०-७१ पर इस रचना का उल्लेख है। वैष्णव चरण वसाक ने इसे प्रकाशित किया है।

शिक्षादीपिका—भक्तिरसामृतसिन्धु के अनुसरण में वनी हुई यह रचना कृष्णदास के नाम से प्रसिद्ध है। इसके लेखक ने अपने गुरु का नाम रामचन्द्रदास दिया है। इसकी एक प्रति सख्या ३४१ साहित्य सभा वर्धमान में और एक प्रति सख्या ३७४६ एशियाटिक सोसायटी लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

रस-कदम्ब-कलिका—इस रचना को वेणीमाधव दे ने प्रकाशित किया है।

गीत गोविन्द कृत वीर-रत्नावली—यह रचना एक प्रकार से जीवनी ग्रथ है। इसमें वीरचन्द्र प्रभु की महिमा वर्णित है। लेखक ने वीरचन्द्र और चैतन्य की अभिन्नता स्थापित करते हुए इसे द्वितीय अवतार का प्रयोजन वताया है। फिर उनकी प्रेमभक्ति प्रचार की कथा वताई है। इसमें कई अध्याय है। प्रत्येक अध्याय के अत में निम्न पक्ति है —

महाप्रभु वीरचन्द्र अमूल्य पद वदे, वीररत्नावली कहे ए गति गोविन्दे।

नरोत्तमदास की रचनाए

चमत्कार चन्द्रिका—इस रचना का उल्लेख वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, २६३ पर है। वर्धमान साहित्य सभा में प्रति, सख्या ३०७, सुरक्षित है, जिस पर ११ कार्तिक १२१० लिपिकाल दिया हुआ है।[१]

---

१ वां सा इ, पृ ४१७

१ वा सा इ, पृ ३१५

प्रेमभक्ति-चिन्तामणि, चन्द्रमणि, सूर्यमणि—वल्लभदास ने नरोत्तमदास की वदना करते हुए अपने पद में कहा है

चन्द्रिका पचम सार, **तिन मणि सारात्सार**
गुरुशिष्यसवादपटल

'तिन-मणि' से ऊपर दी गई तीनो रचनाओ से तात्पर्य है। परन्तु चन्द्रमणि और सूर्यमणि का कुछ विवरण ज्ञात नही है। प्रेमभक्ति-चिंतामणि की प्रति (५३५६) एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी मे सुरक्षित है।

देह-कड़च—१६०४ शकाब्द (१६८३ ई०) मे की गई हस्तलिखित प्रति का उल्लेख वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ४ में है। यह प्रति कलकत्ता विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में सुरक्षित है।

रागमाला—इस रचना की कई प्रतिया प्राप्त है। वगीय साहित्य परिषद् पत्रिका, भाग ६, पृ ५१ पर एक प्रति का उल्लेख है जिसका लिपिकाल १ फाल्गुन ११६२ साल है। इसी भाग के पृ ६७ पर एक अन्य रचना का उल्लेख है जिसका लिपिकाल २३ ज्येष्ठ १२४१ साल है। शिवरतन मिश्र ने अपनी रचना 'वागला प्राचीन पुथिर विवरण' में भी इसका विवरण दिया है। एशियाटिक सोसाइटी की सुरक्षित प्रति की सख्या ५३८५ है।

प्रार्थना—प्रस्तुत रचना मे नरोत्तमदास के रचे प्रार्थना सबधी पद है। यह रचना वैष्णव समाज में वडे आदर की दृष्टि से देखी जाती है। इसमें सप्रार्थनात्मिका, स्वदैन्य-बोधिका, साधकदेहेर लालसा-सूचिका, मन शिक्षा, विलापात्मिका, वैष्णव-महिमा प्रकाशिका, श्री गुरु वैष्णवे विज्ञप्तिरूपा, श्रीधामवासे लिप्सात्मिका, सिद्ध देहेर लालसामयी, एव आक्षेप वोधिका इत्यादि भेद से प्रार्थना सगृहीत है।

मनोहरदास कृत दिनमणिचन्द्रोदय—राय रामानद के भ्राता वाणीनाथ पट्टनायक के प्रपौत्र ये मनोहरदास थे। इन्होने अपने भक्तिसबधी भाव प्रकट करने के लिए चन्द्रसूर्य-सम राधाकृष्ण की लीला वर्णन की है। अत रचना का नाम 'दिनमणिचन्द्रोदय' रखा। रचना पयार और त्रिपदी छद मे है। रचना में सहजिया वैष्णव मत की छाप अधिक है। उन्होने गौराग देव को शिक्षा गुरु माना है —

शिक्षा गुरु गौरहरि बाउल गोसाईं। तिहं मोर श्री गुरु हन जे दिन देखाई॥

विविध—हिन्दी विभाग

तुलसीदास की रचनाए

रामलला नहछू—यह अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमे केवल २० छद है। इस रचना मे विवाह के समय किया गया राम का नहछू वर्णित है। रचना साधारण है। इसका मुद्रित सस्करण नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने प्रकाशित किया है।

रामाज्ञा प्रश्न—यह रचना सात सर्गो में है। प्रत्येक सर्ग मे सात सप्तक है। इनमे रामकथा के साथ साथ शकुन अपशकुन विचार वर्णित है। इसका मुद्रित सस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किया है।

वरवै रामायण—तुलसीदास ने इस ग्रथ में वरवै छद मे सम्पूर्ण रामकथा कही है।

इस छोटी सी रचना में सातों कांड हैं। कुल मिलाकर ६९ बरवै हैं। इसका मुद्रित संस्करण नागरी प्रचारिणी सभा ने प्रस्तुत किया है।

नंददास की रचनाएँ

रूपमंजरी—यह रचना कृष्ण काव्य संबंधित है। कुंवरि रूपमंजरी का विवाह-संबंध एक अयोग्य वर से ठहरता है। सखी उसका संबंध कृष्ण से करवा देती है। बीच में विरह वर्णन और प्रकृति वर्णन भी है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

विरहमंजरी—इस छोटी सी रचना में द्वादश मासिक विरहों का वर्णन है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

रसमंजरी—इस रचना में नायिकाभेद वर्णित है। मुद्रित संस्करण उमाशंकर शुक्ल ने प्रस्तुत किया है।

चतुर्थ अध्याय

आध्यात्मिक विचार

१ तर्क, श्रद्धा और शब्द प्रमाण

सोलहवी शती का प्राय समस्त वैष्णव साहित्य धार्मिक साहित्य है। भापा मे रचित जो साहित्य है उसमे मुख्यतया अपने इष्टदेव की लीला का गान किया गया है। उनके गुण गाए गए है और उनकी भक्ति करने की प्रेरणा की गई है। कवियो ने इष्टदेव का स्वरूप वर्णन करने के लिए और मन को भक्ति की ओर उन्मुख करने के लिए ईश्वर, जीव, माया, ससार, भक्ति इत्यादि के सम्बन्ध मे कुछ-न-कुछ कहा है, किसी ने कम, और किसी ने अपेक्षाकृत अधिक। यह समस्त वर्णन प्रसगानुसार है। प्राय किसी ने भी केवल आध्यात्मिकता या दार्शनिक सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने के लिए लेखनी नही उठाई है। गौडीय वैष्णव समाज, और व्रज वैष्णव समाज दोनो अपने आचार्यो के दार्शनिक सिद्धान्तो को मान कर चले हैं। परन्तु स्वय दार्शनिकता की उलझनो में नही पडे है। यह कार्य रूप, सनातन, जीव और वल्लभ ने किया है। इनके वृहद्-भागवतामृत, लघु-भागवतामृत, षट्-सदर्भ और तत्त्वदीप-निबध इत्यादि ग्रथ सस्कृत मे रचे गए है। इन ग्रथो में दार्शनिक आलोचनायें तथा श्रीमद्भागवत की व्याख्यायें अपने अपने मतानुसार की गई है। भापा के कवियो ने केवल दार्शनिक विचारो के प्रतिपादन के लिए कोई भी रचना नही की। वे भक्त थे, विद्वान् भी थे परतु आचार्य नही थे। उनकी रचनाओ मे कृष्ण और राम की लीला वर्णित है। उन्ही के स्वरूपवर्णन मे कही कही ब्रह्म, ईश्वर इत्यादि का वर्णन आ गया है। इसी प्रकार भक्ति करने के लिए मन को उपदेश देते समय ससार की असारता, माया के स्वरूप, और कार्य का निर्देश किया गया है। इस प्रकार के उल्लेखो को दार्शनिक विचार न कह कर आध्यात्मिक विचार कहना अधिक उचित होगा।

वैष्णव भक्त कवि तो बहुत से है और उनका रचा साहित्य भी प्रचुर है। परन्तु आध्यात्मिक विचार जिन्हे महत्त्व दिया जा सके बहुत कम ने प्रस्तुत किए हैं। बगाली वैष्णव भक्तो में कृष्णदास कविराज ही ऐसे हैं जिन्होने 'चैतन्यचरितामृत' में आध्यात्मिक विचार उपस्थित किए हैं। 'चैतन्यचरितामृत' में भी लेखक ने केवल दार्शनिकता के प्रतिपादन करने के लिए कुछ भी नही कहा है। चैतन्य को कृष्ण वताया है, अत कृष्ण का स्वरूप बताने में ब्रह्म इत्यादि की व्याख्या की है। नित्यानद को सकर्षण बलराम बताया है। सकर्पण का स्वरूप और कार्य बताने में ससार, माया और इनकी उत्पत्ति इत्यादि का विवरण आ गया है। चैतन्य और रामानदराय की वार्ता में तथा चैतन्यदेव द्वारा रूप सनातन को उपदेश देने मे, भक्ति, श्रुति, शब्द, इत्यादि का विवरण आया है। अर्थात् सब कुछ कथा के प्रसग मे है। स्वतत्र विवेचन नही है। इसी प्रकार हिन्दी की रचनाओ में भी आध्यात्मिक विचार प्रसगानुसार ही हैं। तुलसीदास ने रामचरितमानस में ब्रह्म की जो कुछ व्याख्या की है वह राम का स्वरूप बताने के लिए। जीव, ससार, भक्ति, माया इत्यादि की कथा कभी राम के मुख से, कभी काग-भुशुडि के मुख से और कभी शिव से कहलाई है। उन्होने भी स्वतत्र रूप से अपनी आध्यात्मिक विचारधारा कही भी उपस्थित नही की है। नददास की "सिद्धान्त-पचाध्यायी" नाम से तो सिद्धान्त सबधी रचना ज्ञात होती है परन्तु उसमें भी केवल सिद्धान्तो

की विवेचना नही, रास इत्यादि का भी वर्णन है। कृष्ण के स्वरूप का वर्णन अवश्य है। वे ब्रह्म वताए गए है परन्तु ब्रह्म इत्यादि की व्याख्या नही की गई है। सूरदास की रचनाओ में दार्शनिक व्याख्यायें पाई जाती है परन्तु वे भी प्रसगानुसार है। उनका "सूरसागर" भागवत के प्रत्येक स्कध की कथा को लेकर चला है। उसमें भी स्कध है। इस प्रकार भागवत के जिन स्कधो में दार्शनिक तत्त्वो की जो विवेचना है वह सूरसागर में भी आ गई है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है समस्त आध्यात्मिक विचार प्रसगानुसार है। स्वतत्र रूप से प्रतिपादित विषय नही है। अत उनमे विवेचना नही है और न व्याख्या है। ऐसा न होने के कारण तर्कपूर्ण शैली भी नही दृष्टिगोचर होती। ये भक्त तर्क को कोई स्थान नही देते। जो कुछ ज्ञान है वह तर्क से नही आता।[1] वह 'तर्कासह' है। अनुमान प्रमाण से भी कुछ नही होता। विश्वास से सव कुछ जाना जा सकता है और सव से वडी वात तो ईश्वर की कृपा है।[2] कृष्णदास चैतन्य की भगवत्ता के वारे में और ईश्वर के वारे मे भी यही वात कहते है।[3] तुलसीदास ने यद्यपि स्पष्ट रूप से तर्क और विश्वास के वारे मे कुछ नही कहा है परन्तु वालकाड में जो रामकथा दी है उसमें से ध्वनि यही निकलती है।[4] वे वार-वार कहते है कि मेरी कविता तो कुछ नही है, उसमे वर्णित रामकथा ही सव कुछ है। लोग उसी के लिए कविता का आदर करेंगे।[5] दुष्ट लोग तो हँसी उडायेंगे ही, कौए 'कल कठ' को 'कठोर' कहते ही है। परन्तु सज्जन इस कथा मे अवगाहन करके पार उतर जायेंगे, काक पिक और वक मराल हो जायेंगे। रामकथा मे यह रुचि भी ईश्वर के देने से ही होगी

---

१ प्रति युगे करेन कृष्ण युग अवतार।
तर्कनिष्ठ हृदय तोमार नाहिक विचार।। (चै च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९)

२ आचार्य कहे अनुमाने नहे ईश्वर ज्ञाने।।
अनुमान प्रमाण नहे ईश्वरत्व ज्ञाने।
कृपा विना ईश्वरेर केह नाहि जाने।।
ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे।
सेइत ईश्वरतत्व जानिवारे पारे।। (चै च., मध्यलीला, परि० ६, पृ० १२९)

३ (१) चैतन्येर गूढतत्व जानि इहा हैते।
विश्वास करि शुन तर्क ना करिह चिते।।
अलौकिक लीला एई परम निगूढ।
विश्वासे पाइये तर्के हय वहु दूर।।(चै च, मध्यलीला, परि ९, पृ १५६)
(२) अलौकिक लीलाय जार ना हय विश्वास।
इह लोक परलोक तार हय नाश।।(चै च, मध्यलीला, परि. १७, पृ. १४१)

४. हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहं मधुर कथा रघुवर की।
(रा च. मा., वा ९, पृ. ७)

५ सव गुन रहित कुकवि कृत वानी। राम नाम जस अंकित जानी।
सादर कहहि सुनहि वुध ताही। (रा च. मा, वा. १०, पृ ८)

और वही उन्हें जानेगा भी जिसे वे जना देंगे।[1] इतने पर भी जो शका करेंगे वे मूर्ख हैं।[2] कृष्णदास कविराज चैतन्य की कथा केवल विश्वासी भक्त के लिए ही बोधगम्य बताते हैं।[3] 'भक्त कोकिल' के लिए उसमे सब कुछ है, अभक्त 'ऊट' के लिए कुछ नही।

बगाली भक्त और ब्रज मडल के भक्त दोनो ही इस बात पर जोर देते है कि तर्क से कुछ नही होता। तर्क करने वाला, जिसे वे लोग कुतार्किक कहते है, अन्धकार में ही पडा रहता है। वह विद्वान् होते हुए भी ईश्वर से दूर रहता है। कृष्णदास ने चैतन्यचरितामृत में सार्वभौम ठाकुर और गोपीनाथ आचार्य के बीच में चैतन्य देव के परिचय के बारे में जो बातचीत की है उसमें इसी को दिखाया है। सार्वभौम चैतन्य को कृष्ण अवतार मानने को तैयार नही है। परन्तु गोपीनाथ उन्हे तर्क से न समझा कर यही कह कर छोड देते हैं कि तुम माया के बधन में हो। वे कहते हैं —

ईश्वरेर कृपालेश हय त जाहारे।
सेइत ईश्वरतत्त्व जानिबारे पारे॥

यद्यपि जगद्गुरु तुमि शास्त्र ज्ञानवान।
पृथिविते नाहि पडित तोमार समान॥
तोमार नाहिक दोष शास्त्रे एइ कहे।
पाण्डित्याद्ये ईश्वर तत्व कभु ज्ञान नहे॥

तबुत ईश्वर ज्ञान ना हय तोमार।
ईश्वरेर माया एइ बलि व्यवहार॥

. .

तोमार आगे एत कथार नाहि प्रयोजन।
ऊषर भूमेते जेन बीजेर रोपण॥

---

१ (१) अस बिवेक जब देइ बिधाता। तब तजि दोष गुनहिं मनु राता।
(रा च मा, बा ७, पृ ५)
(२) सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हई होइ जाई।
(रा च मा, अ १२७, पृ २२२)
२ एतेहु पर करिहहिं ते असका। मोहितें अधिक जे जड मतिरका।
(रा च मा, बा १२, पृ ९)
३ ए सब सिद्धान्त गूढ कहिते ना जुयाय।
ना कहिले केह एर अत नाहि पाय॥
अतएव कहि किछु करिया निगूढ़।
बुझिबे रसिक भक्त ना बुझिबे मूढ़॥

ए सब सिद्धान्त-रस आम्रेर पल्लव। भक्तगण कोकिलेर सर्वदा वल्लभ॥
अभक्त उष्ट्रेर इथे ना हय प्रवेश। (चै च, आदिलीला, परि ४, पृ ३१)

तोमार उपरे तार कृपा जवे हवे।
ए सव सिद्धान्त तवे तुमिह करिबे ॥
तोमार जे शिष्य कहे कुतर्क नाना वाद।
इहार कि दोष एइ मायार प्रसाद ॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९-३०)

अर्थात् जिस पर ईश्वर की कृपा का लेश होता है वही ईश्वरतत्त्व को जान सकता है। यद्यपि तुम जगद्‌गुरु हो और ज्ञानवान् हो, पृथिवी पर तुम्हारे समान पडित नहीं है, परन्तु तुम्हारा भी कुछ दोष नही है। शास्त्र ऐसा ही कहते है कि पाडित्य से ईश्वर का ज्ञान कभी नही होता। इतने पर भी तुम्हें ईश्वर का ज्ञान नही होता यह ईश्वर की माया ही है। तुम्हारे आगे इस कथा को कहने से कुछ लाभ नही है। यह ऊसर भूमि मे वीज वोने के समान है। तुम्हारे ऊपर जव उनकी कृपा होगी तव तुम भी यह सव सिद्धान्त कहोगे। तुम्हारे जो शिष्य कुतर्क करके नाना प्रकार के 'वाद' कहते हैं उसमें उनका क्या दोष। यह तो माया का प्रसाद है।

यद्यपि यह वात गोपीनाथ आचार्य ने चैतन्य की भगवत्ता मे अविश्वास करने वाले सार्वभौम भट्टाचार्य और उनके शिष्यो के लिए कही है, परन्तु यह केवल उन्ही तक सीमित नही है। यह समस्त वैष्णव भक्तो का विश्वास है। वे तर्क नही मानते, न करते हैं, और न करना चाहते है। वे अपने इष्टदेव के, चाहे वे राम हो, चाहे कृष्ण और चाहे चैतन्य, अनन्य भक्त हैं। उनके ईश्वरत्व में वे तर्कहीन विश्वास करते है और भक्ति में भर कर उनका गुणगान करते रहते हैं। तर्क और तार्किक उन्हें माया से घिरे और मूढ ही ज्ञात होते हैं।

वैष्णव रचयिताओ ने तर्क को अत्यन्त तुच्छ मान कर उसे अपनी रचनाओ में स्थान नही दिया है। परन्तु वे 'प्रमाण' में विश्वास अवश्य करते है। हिन्दी वैष्णव लेखको की रचनाओ में प्रमाण के इस विश्वास को और कौन से प्रमाण मान्य है इस वात को इतना अधिक महत्त्व नही दिया गया है। वगाली वैष्णव कवि इसे वहुत अधिक महत्त्व देते है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत में चैतन्यदेव के मुख से कहलाया है कि श्रुति के प्रमाण प्रधान है।[1] श्रुतियो में भी वे श्रुतिया विशेप प्रमाण हैं जो वैष्णव धर्म सवधी है। गोपीनाथ आचार्य भागवत और महाभारत को प्रधान शास्त्र मानते है।[2] इन्ही श्रुतियो के कथन मान्य हैं। वेदो पर वैष्णव लेखको की आस्था है, तथा उन्हें स्वत प्रमाण माना गया है।[3]

---

१. प्रमाणेर मध्ये श्रुति प्रमाण प्रधान।
श्रुति जे मुख्यार्थ कहे सेइ से प्रमाण ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ. १३१)

२. भागवत भारत दुइ शास्त्रेर प्रधान। (चै च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १२९)

३ स्वतः प्रमाण वेद सत्य जेइ कये।
लक्षणा करिते स्वतः प्रमाण्यहानि हये ॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

कहने के लिए वेदो को श्रुति मान कर उनकी महत्ता स्वीकार की गई है परन्तु उन्हे अपने लिए 'शब्द' प्रमाण नही माना गया है। वेद अत्यन्त गूढ है, उनका अर्थ समझ में नही आता है। अत उनमें दिए सिद्धान्तो का अर्थ पुराणो मे ज्ञात करना चाहिए।[1] चैतन्यदेव कहते है कि वेद तो यही कहते है कि ब्रह्म सविशेष है, परन्तु लोग लक्षणा मे गलत अर्थ करते है और भ्रम फैलाते है।[2] गीता जीव को भगवान् की शक्ति मानती है परन्तु लोग दोनो में अभेद मानते हैं।[3] यह सब मुख्यार्थ न करके कल्पना से लक्षणार्थ लेने के कारण होता है। वेदो का इसमें कोई दोष नही है। वे तो स्वत प्रमाण हैं ही। उनका लक्षणा मे अर्थ मत करो। वेद को न मानने वाले बौद्ध नास्तिक थे। परन्तु वेदाश्रय लेकर लोग बौद्धो से भी अधिक नास्तिकता फैलाते हैं।[4] इन्ही कारणो से चैतन्यदेव कहते है कि पुराणो को मानो, वे गूढ नही है अत भ्रम में नही डालेंगे।

वेदो पर आस्था तो तुलसीदास ने भी दिखाई है। परन्तु इतनी अधिक विवेचना नही की है। वेद ने ऐसा कहा है, निगम नेति नेति कहते है, वेद में राजा दशरथ विदित है, इत्यादि कह कर ही वेदो का महत्त्व स्वीकार कर लिया है।[5] वेद शरीर धारण करके राम की स्तुति भी करते हैं। इन उल्लेखो से अधिक तुलसीदास और कुछ नही कहते।

प्राचीन दार्शनिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन करने वाले गथो के वैष्णव लेखको के प्रति आस्था, कृष्णदास को व्यास के सूत्रो के बारे में भी कुछ कहने को बाध्य करती है। सूत्र श्रेष्ठ है, श्रद्धा करने के योग्य हैं और मुख्यार्थ लिया जाय तो मानने के भी योग्य है। सार्वभौम भट्टाचार्य ब्रह्मसूत्रो का वही अर्थ बताते है जो पीछे से चला आ रहा है। परन्तु

---

१ वेदेर निगूढ अर्थ बुझने न जाय।
पुराणवाक्ये सेइ अर्थ करये निश्चय ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३१)

२ अतएव श्रुति कहे ब्रह्म सविशेष।
मुख्या छाडि लक्षणाते माने निर्विशेष ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३२)

३ गीता शास्त्रे जीवरूप शक्ति करि माने।
हेन जीवे अभेद कर ईश्वरेर सने ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३२)

४ वेद ना मानिया बौद्ध हय त नास्तिक।
वेदाश्रय नास्तिकवाद, बौद्धते अधिक ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३२)

५ (क) तहाँ वेद अस कारन राखा। (रा च मा, बा १३, पृ ९)
(ख) तदपि सत मुनि बेद पुराना।
जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना ॥
(रा च मा, बा १२१, पृ ६४)
(ग) वेद विदित तेहि दसरथ नाऊ। (रा च मा, बा १८८, पृ ९५)

चैतन्यदेव वेदान्त का कुछ दूसरा अर्थ बताते हैं। वे कहते हैं कि सूत्रों का अर्थ तो अत्यन्त निर्मल है।[1] सूत्रों का भाष्य उनका अर्थ प्रकाशित करने के लिए किया जाता है परन्तु लोग भाष्य कह कर तो उन वेदान्त सूत्रों के अर्थ को और भी प्रच्छन्न कर देते हैं।[2] सूत्रों के मुख्य अर्थ न कह कर कल्पना से उन्हें और भी गूढ कर देते हैं।[3] उपनिषदों में जो मुख्य अर्थ शब्द के वर्णित है उन्ही को व्यास ने अपने सूत्रों में कहा है।[4] परन्तु लोग उन मुख्यार्थों को छोड कर गौणार्थ की कल्पना करते हैं और अभिधा को छोड कर लक्षणा लेते हैं। इस कारण सूत्रों का महत्व नष्ट हो जाता है।[5] व्यास के सूत्र तो सूर्य की किरण के समान हैं। स्वकल्पित भाष्य रूप मेघ से उसे ढक दिया गया है। जीवों के निस्तार के लिए व्यास ने वेदान्त सूत्रों की रचना की थी परन्तु उन सूत्रों का मायावादी भाष्य अत्यन्त विनाशकारी है। परिणामवाद तो व्यास के सूत्रों के अनुकूल है, परन्तु कल्पना कर के विवर्त्तवाद स्थापित किया जाता है।[6] वेदान्त सूत्रों का इस प्रकार का भाष्य आखिर शंकराचार्य ने किया ही क्यों! चैतन्यदेव कहते हैं कि इसमें उनका दोष नही है। उन्हें ईश्वर ने ही आज्ञा दी थी जिससे उन्होंने कल्पना करके नास्तिक शास्त्र बनाए।[7]

इस प्रकार बंगाली वैष्णव साहित्यकार शब्द प्रमाण को ही मानते हैं। वेदों को छोड कर क्योंकि उनके अर्थ गूढ हैं, भागवत, गीता, महाभारत और पुराणों का प्रमाण मानते हैं।

---

१. प्रभु कहे सूत्रेर अर्थ बुझिये निर्मल।

(चै. च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

२. भाष्य कह तुमि सूत्रेर अर्थ आच्छादिया।

(चै च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

३. सूत्रेर मुख्य अर्थ ना करह व्याख्यान।
कल्पनार्थे तुमि ताहा कर आच्छादन॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ १३१)

४. उपनिषद् शब्दे जेइ मुख्य अर्थ हय।
सेइ मुख्य अर्थ व्यास सूत्रे सब कय॥

(चै च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

५ मुख्यार्थ छाडिया कर गौणार्थ कल्पना।
अभिधा-वृत्ति छाडि कर शब्देर लक्षणा॥

(चै च, मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१)

६. जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास। मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश॥
परिणामवाद व्यासेर सूत्रेर सम्मत।...
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिया॥

(चै च, मध्यलीला, परि. ६, पृ १३२)

७ आचार्येर दोष नाहि ईश्वर आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल॥

(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३३)

भागवत को जीव गोस्वामी व्यासदेव प्रणीत वह भाष्य बताते है जो व्यास ने स्वय प्रस्तुत किया। इस प्रकार की श्रुतियो की महत्ता और उन पर अनन्य विश्वास की भावना, बगाली लेखको को अपने विचारो को प्रस्तुत करने की शैली को एक खास विशेपता प्रदान करती है जो हिन्दी कवियो में नही ही पाई जाती है। बगाली लेखक अपना विचार स्वतत्र रूप से नही रखते। वे एक बात कहते है परन्तु उसे तर्क से सिद्ध नही करते। वे अपनी मान्य श्रुतियो में से उस तथ्य का समर्थन करने वाले वाक्य या श्लोक ढूढ कर रखते जाते हैं। इन्ही प्रमाण वाक्यो से उनकी विचारधारा की पुष्टि होती है। कदाचित् इस प्रकार ये लेखक अपने कथन का मडन करके उसको मान्य बनाने की चेष्टा करते है। परन्तु ऐसा करने से उनके कथन मे विचार-स्वातत्र्य नही रह जाता। ऐसा ज्ञात होता है कि यह समस्त विचारधारा उनकी अपनी नही है। वे दूसरो की बातो को अपने शब्दो मे कह रहे हैं। वैसे तो प्राय सभी प्राचीन दार्शनिक अपने दार्शनिक सिद्धान्त वेदान्त सूत्रो की अपनी दृष्टि से व्याख्या करके प्रस्तुत करते है। इस प्रकार वह उनकी अपनी वस्तु हो जाती है। परन्तु गौडीय वैष्णव लेखक अपनी श्रुति पर इतनी अधिक श्रद्धा रखते ज्ञात होते हैं कि वे कोई भी कथन स्वतत्र रूप से नही कहते। उदाहरणस्वरूप कृष्णदास कविराज कहते हैं, "तुरीय कृष्णेर नाहि मायार गध" इसी पक्ति के नीचे श्रीधर स्वामी की श्रीमद्भागवत का एक श्लोक देते है —

विराट् हिरण्यगर्भश्च कारण चेत्युपाधय ।
ईशस्य यत् त्रिभिर्हीन तुरीय तत् पद विदु ॥

श्लोक के ऊपर जिस ग्रथ का प्रमाण वाक्य देते है उसका नाम भी दे देते है। ऊपर दिए श्लोक के ऊपर जिस प्रकार "तथाहि श्रीमद्भागवते एकादशस्कधे पचदशाध्याये षोडशाकधृते नारायणे तुरीयाख्ये इत्यस्य व्याख्याया श्रीधरस्वामिधृत श्लोक" लिखा है उसी प्रकार प्रत्येक विचार को रख कर उसके नीचे इसी प्रकार ग्रथ और अध्याय इत्यादि का प्रसग बताकर तब श्लोक दिए गए है। यह पद्धति केवल कृष्णदास ने ही नही अपनाई है, वृन्दावनदास के "चैतन्यभागवत" में भी ऐसा ही है। रूप, सनातन और जीव गोस्वामी ने भी यही पद्धति अपनाई है। इस प्रकार की पद्धति हिन्दी के वैष्णव कवियो ने नही प्रयोग की। तुलसी-सूर जब आध्यात्मिक विचार प्रस्तुत करते है तब स्वतत्र रूप से ही कहते है, प्रमाण वाक्य नही देते।

कृष्णदास कविराज चैतन्यदेव को कृष्ण बताते है। गौडीय वैष्णव समाज मे सब ही का ऐसा विश्वास है। चैतन्यदेव क्या है, उनके गुण इत्यादि क्या हैं, यह सब प्रत्यक्ष रूप से कोई भी नही कहता। कृष्ण का स्वरूप, गुण, इत्यादि बताकर परोक्ष रूप से वे सब गुण चैतन्यदेव में बता दिए गए मान लिए जाते है। चैतन्य कृष्ण हैं अत जो कुछ कृष्ण है वही चैतन्य भी हैं। कृष्ण स्वय भगवान हैं अत चैतन्य भी वही हैं। ऐसा क्यो किया गया है, इसका उत्तर कृष्णदास यो देते हैं —अवतार ज्ञात होता है परन्तु अवतारी अज्ञात होता है। ज्ञात से ही अज्ञात की ओर जाया जाता है। अत जो प्रत्यक्ष दीख रहा है, उसको देख कर ही यह समझा जा सकता है कि उसका वास्तविक स्वरूप क्या है। चैतन्य को देख कर उनमें अलौकिक भाव पाकर उन्हे कृष्ण समझा जा सकता है, कृष्ण के स्वरूप को भी कृष्ण के

अवतार से समझा जा सकता है। ज्ञात वस्तु को अनुवाद और अज्ञात वस्तु को विधेय कहते हैं।[1] अनुवाद कह कर विधेय कहना चाहिए। प्रत्यक्ष से परोक्ष का ज्ञान हो सकता है, परोक्ष से प्रत्यक्ष का नही। जैसे कृष्ण का स्वय भगवान होना तो कृष्ण को देख कर साध्य है परन्तु स्वय भगवान का कृष्णत्व समझा नही जा सकता।[2] इस प्रकार एक सिद्धान्त सा वन जाता है जो कुछ इस तरह रक्खा जा सकता है चैतन्य देव ज्ञात, उनका कृष्णत्व ज्ञात, परन्तु कृष्ण अज्ञात। अवतारी कृष्ण ज्ञात, उनका स्वय भगवान होना ज्ञात, परन्तु भगवान अज्ञात। यदि चैतन्यदेव को पहचान लिया तव कृष्ण का स्वरूप ज्ञात होगा, फिर भगवान का। परन्तु पहले भगवान का स्वरूप ज्ञात कर लेना कठिन है। इसी सिद्धान्त को लेकर कृष्णदास कविराज ने अपने समस्त आध्यात्मिक विचार उपस्थित किए हैं।

सूरदास, तुलसीदास, नददास, इत्यादि ने इस प्रकार से अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने की शैली के वारे में कुछ भी नही कहा है। कृष्ण अथवा राम का स्वरूप वताते समय न तो उन्होने प्रमाण वाक्य ही उद्घृत किए है और न प्रत्यक्ष से परोक्ष को जानना चाहा है। कृष्ण क्या है, राम क्या है, यह वे यो ही सहज भाव से कह जाते हैं। कृष्णदास के वरावर विशद व्याख्या भी इन लोगो ने नही की है।

यह तो हुई विचार प्रस्तुत करने की शैली की वात। अव क्रमश इष्टदेव, ससार, माया, जीव और भक्ति इत्यादि पर इन लेखको के विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

---

१. चैतन्यचरितामृत, पृ. १५

२ अतएव कृष्ण शब्द आगे अनुवाद।
स्वयं भगवत्व पिछे विधेय संवाद॥
कृष्णेर स्वय भगवत्व इहा हैल साध्य।
स्वयं भगवानेर कृष्णत्व हैल वाच्य॥
(चै. च, आदिलीला, परि. २, पृ १५)

२. इष्टदेव

सोलहवी शती के प्राप्त वैष्णव साहित्य में स्पष्ट रूप से तीन इष्टदेव दीखते है। गौडीय वैष्णव साहित्य मे कृष्ण और चैतन्य तथा हिन्दी वैष्णव साहित्य में कृष्ण और राम। इष्टदेव कृष्ण को इष्टदेव राम की अपेक्षा बहुत अधिक भक्तो ने ग्रहण किया है। गौडीय वैष्णव साहित्य में तो इष्टदेव राम के प्राय कही भी दर्शन नही होते। कहा जाता है कि चैतन्य के अनन्य भक्त और जीवनीकार मुरारि गुप्त उनके सम्पर्क में आने से पहले राम-भक्त थे[१] परन्तु उनके प्राप्त पदो में राम का उल्लेख नही है।[२] वासुदेव घोष चैतन्य देव को अवतार बताते समय अवतारो में राम का उल्लेख कर देते है और उन्हें पूर्व-अवतार में राम बता देते है,[३] परन्तु राम साहित्य प्राय नही के ही बराबर है। कृत्तिवास की रामायण बहुत पहले की रचना है। सोलहवी शती मे प्राप्त प्राय कोई भी रचना ऐसी नही है जो इष्टदेव राम का दार्शनिक स्वरूप स्पष्ट रूप मे विवेचना करके बताती हो। कृष्ण के स्वरूप के विषय मे दार्शनिक विचारो की तो कमी नही है। राम साहित्य में दो तीन उल्लेखनीय रचनाए है।[४] परन्तु उनमें भी राम का दार्शनिक रूप नही ज्ञात होता। सोलहवीं शती के गौडीय वैष्णव समाज ने राम को किस रूप मे देखा यह कहना कठिन है। राम को विष्णु का अवतार बताया है और कुछ राक्षस, जिनमें अतिकाय मुख्य है, उन्हें उस रूप में देखते है परन्तु उन राम-कथाकारो ने राम का जो रूप रक्खा है वह अपना स्वतन्त्र रूप नही ज्ञात होता। इस सम्बन्ध में दीनेशचन्द्र सेन का मत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं —

"The battle fields in the hands of the poets were changed into pulpits. and the Rakshas into reformed Vaishnavas of the Gaudiya order The influence of Chaitanya is so apparent that we feel inclined to support the theory that it was Kavichandra who brought this flow of Bhakti It appears that these sinners threw their mantle of the Rakshas of the Bengali Ramayans while Ram and Laksman were made to play the parts of Chaitanya and Nityanand The Lanka Kand is saturated with Vaishnava ideas and Ram appears as orthodox Vaishnava "[५]

राम विष्णु के अवतार थे, राक्षसो के मन में उन्हें देख कर भक्ति-भावना उदित होती थी। परन्तु वह भक्ति भावना वही रस-भक्ति है जिसके पुरोहित चैतन्यदेव थे। हिंदी वैष्णव साहित्य में भी राम को इष्टदेव के रूप में देखने वाले कम है। परन्तु इस कमी को एक अकेले तुलसीदास ने ही पूरा कर दिया है।

---

१ मुरारि गुप्त मुखे शुनि राम गुण ग्राम।
ललाटे लिखिल तार रामदास नाम॥ (चै च, आदिलीला, परि. १७, पृ ८१)

२ पदकल्पतरु में सगृहीत पद ७५१, २१२१, २२३१, २२३५, २२३४

३ (क) सेतु बध कैला तुमि राम अवतारे। (प क त, पद २२९२
(ख) केहो बले पुरवेते रावण बधिला। (प क त, पद २१९२)

४ कवि रामचन्द्र की रामायण, चन्द्रावती की रामायण, शकर देव का नाट्।

5 B R, page 84

कृष्ण इष्टदेव के रूप मे प्राय समस्त वैष्णव भक्तो के आराध्य है। तुलसीदास ने भी कृष्ण गीतावली लिख कर अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है। अन्य सब छोटे बडे कवियो ने जिनकी सख्या सैंकडो तक पहुचती है कृष्ण को इष्टदेव और एकमात्र आराध्य मान कर रचनाए की है। कृष्ण के दार्शनिक रूप की विवेचना सबने नही की है। पर उनके ईश्वर होने का उल्लेख, और उस प्रकार लीला गुण गान प्राय सबने किया है। दार्शनिक विवेचनापूर्ण व्याख्या मुख्यतया कृष्णदास कविराज ने और प्रसगानुसार सूरदास और नद-दास ने की हैं।

गौडीय वैष्णव समाज में चैतन्यदेव भी उसी प्रकार इष्टदेव के रूप मे दृष्टिगोचर होते है जिस प्रकार कृष्ण। सोलहवी शती के प्रत्येक वैष्णव कवि ने चैतन्यदेव का लीला गुण गान किया है। मानो उनकी लीला गुण गान और भक्ति कृष्ण की ही गुण गान और भक्ति है। वासुदेव घोष, मुरारि गुप्त, नरहरि इत्यादि ने तो केवल चैतन्य पर ही पद लिखे है। जिन लोगो ने कृष्ण पर रचनाए की है उन्होने "तदुचित गौर-चन्द्रिका" कह कर चैतन्य पर भी समानान्तर रचनाए की है। चैतन्य तत्त्व है, कृष्ण है यह उन लोगो का विश्वास है। हिन्दी वैष्णव साहित्य मे वल्लभाचार्य पर भी कुछ पद मिलते है। उनमें उन्हें परब्रह्म, कृष्ण, अवतार सब बताया है।[१] उक्तियो की समानता होते हुए भी उनमें से उनके ईश्वरत्व की भावना दृढ विश्वास के रूप में परिलक्षित नही होती। कृष्णदास कविराज चैतन्य-तत्व की भी व्याख्या करते है और नित्यानद एव अद्वैत की भी। परन्तु जिस प्रकार चैतन्य उस व्याख्या के फलस्वरूप "कृष्ण" हो जाते हैं, और नित्यानद, और अद्वैत नही हो पाते, उसी प्रकार उक्तियो की समानता होते हुए भी वल्लभ 'कृष्ण' नही हो जाते। सूरदास ने तो केवल एक पद ही उन पर लिखा है। वह गुरु वदना मात्र है।[२]

---

१. (क) श्री वल्लभ सुखकारी।
पुरुषोत्तम लीला अवतारी॥
काल अकाल तें न्यारे।
रसनिधि प्रेम भक्ति प्रतिपारे।
गोविंद प्रभु गिरिराज उद्धरण।
श्री वल्लभ सुखकारी॥
(की. सं, भाग २ जो, पृ २१०)

(ख) शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष
प्रमाण भूतल आवीया।
कृष्णदास के प्रभु आय प्रगटे
व्रज सुन्दरी मन भावीया॥
(की स, भा. २ जो, पृ. २१६ इत्यादि)

२. भरोसो दृढ इन चरणन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग मांझ अंधेरो॥
साधन और नाहिं या कलि में जासो होत निबेरो।... .इत्यादि

३. इष्टदेव—चैतन्य और वल्लभ

चैतन्य—जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है चैतन्यदेव और वल्लभाचार्य की भावना में भेद है। यह भेद तात्कालीन दोनो वैष्णव समाजो में उन लोगो को प्राप्त स्थान के कारण है। हिन्दी वैष्णव समाज मे वल्लभ वे नही हैं जो गौडीय समाज में चैतन्य है। दोनो के विषय मे कथनो की समानता के कारण दोनो का विवरण एक साथ ले लिया गया है।

चैतन्यदेव के जीवन काल मे उनके नदिया निवासी भक्तगणों ने उन्हें ईश्वरत्व की श्रेणी तक पहुचा दिया था और उन्हें 'स्वय कृष्ण' माना था। यह भावना नदिया तक ही सीमित नही रही, आगे भी बढी। वृन्दावन स्थित षट् गोस्वामी गौडीय वैष्णव धर्म के व्यवस्थाकार थे। इन लोगो ने कृष्ण की भगवत्ता और उनके एकमात्र सत्य होने को सिद्धान्त रूप मे बडे विशद तर्कों द्वारा, अन्य प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो के आधार पर स्थापित किया है, परन्तु चैतन्य के देवत्व के बारे में वे लोग प्राय मौन हैं। इन गोस्वामियो ने अपने काव्यो के प्रारभ में जो सस्कृत में हैं, नमस्-क्रियाओ में चैतन्य की वदना ईश्वर, कृष्ण इत्यादि के रूप में अवश्य की है।[1] परन्तु अपने सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से जिसके द्वारा वे कृष्ण को परम सत्य मानते है इस भावना का सतुलन करने की चेष्टा नही की। या तो उस समय चैतन्य का स्वय कृष्णत्व और परम तत्व होना इतना अधिक निर्विवाद था कि उन लोगो ने इसे सिद्ध करने की चेष्टा ही नही की अथवा जब वे कृष्ण के परम तत्व होने को बडी गवेषणापूर्ण रचनाओ द्वारा प्रतिपादित कर चुके थे तब दूसरे को परतत्व सिद्ध करके स्वमत का ही खडन कैसे करते। जो कुछ भी हो भाषा में प्राप्त साहित्य चैतन्य देव के बारे मे

---

१ (क) हृदि यस्य प्रेरणया प्रवर्त्तितोऽह वराक-रूपोऽपि।
तस्य हरे पदकमल वदे चैतन्य-देवस्य ॥ (रूप गोस्वामी, भ र सि)

(ख) अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्ण कलौ।
समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ॥
हरि पुरट-सुन्दर-द्युति-कदम्ब-सदीपित ।
सदा हृदय-कदरे स्फुरतु व शचीनदन ॥ (रूप गोस्वामी, ल मा)

(ग) स्वदयितनिज-भाव यो विभाव्य स्वभावात् ।
सुमधुरमवतीर्णो भक्तरूपेण लोभात् ॥
जयति कनकधामा कृष्ण-चैतन्य-नामा।
हरिरिहजतिवेश श्री शचीसूनुरेष ॥ (सनातन गो, बृ भा)

(घ) वदे श्रीकृष्णचैतन्य भगवत कृपामयम् ।
प्रेम-भक्ति वितानार्थं गौडेष्ववततार य ॥ (सनातन गो, वै तो)

(ङ) निजामुज्ज्वलिसा भक्ति-सुधामर्पयितु क्षितौ ।
उदित त शची-गर्भ-व्योम्नि पूर्ण विधु भजे ॥ (रघुनाथदास, मुक्ताचरित्र)

वहुत कुछ कहता है।

चैतन्य परतत्व है—वेदादि शास्त्र और उपनिषद् में जिसे अद्वैत ब्रह्म कह कर निर्देश करते हैं वह इन्ही चैतन्य की अगकाति है, जिसे परमात्मा या अतर्यामी पुरुष कहते है वह इन्ही का अश स्वरूप है। जो जगत् की उत्पत्ति और प्रलय करता है, जीवो की अगति और गति दोनो हैं, ज्ञान-गम्य और ज्ञानातीत, पुरुष-प्रधान, षडैश्वार्यशाली पूर्ण भगवान हैं वह यही चैतन्य हैं। इन कृष्ण-चैतन्य से भिन्न अन्य कोई भी परतत्व नही है।[1] चैतन्य अद्वैत ब्रह्म से भी ऊपर है क्योकि वह तो केवल उनकी अगकाति ही है। परमात्मा चैतन्य का अश है अत अशी चैतन्य उससे वहुत वडे है। यह परतत्व ब्रह्म, आत्मा और भगवान्, ये तीन रूप प्रकाश विशेप से धारण करता है।[2] चैतन्य देव यह सब हैं। वे देवी-देवो के वदनीय और योगी-यती के परम ध्येय हैं।[3] वे समस्त ससार के पिता अचित्य अगम्य तत्व हैं।[4] कृष्ण जो स्वय भगवान हैं, पूर्ण ज्ञान, पूर्णानन्द एव परतत्व है, वही कृष्ण-चैतन्य देव के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। अर्थात् चैतन्य परतत्व है।[5] उपनिषद् जिस ब्रह्म को सुनिर्मल और शुद्ध प्रकाश से युक्त वताते हैं और जिस ब्रह्म की विभूति करोडो ब्रह्माडो में भरी है वह ब्रह्म गोविंद की अगकाति मात्र है। वही गोविन्द चैतन्य है।[6] यह गोविंद षडैश्वर्य से पूर्ण हो कर, लक्ष्मी सहित 'नारायण' नाम धारण करके परव्योम में वैठता है। यह नारायण भगवान है और भक्त को ही उपलब्ध होते हैं। क्योकि चैतन्य और गोविंद में कोई भेद नही है,

---

१. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा।
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्याशविभवः॥
षडैश्वर्यै पूर्णो य इह भगवान् स स्वयमयम्।
न चैतन्यात् कृष्णाज्जगति परतत्वं परमिह॥
(चै च, आदिलीला, परि. १, पृ. १)

२. प्रकाश विशेषे तेंह धरे तिन नाम।
ब्रह्म परमात्मा आर स्वयं भगवान॥ (चै. च, आदिलीला, परि २, पृ. ११)

३. ब्रह्म आत्म भगवान्, जारे सर्वशास्त्रे गान, देव-देवीर चरणवंदन।
जोगी जति सदा ध्याय तवु जारे नाहि पाय, वंदो सेइ शचीर नदन॥
(गौ प त. १।२।६१)

४. जय आदि हेतु जय जनक सवार।
. . .
जय जय अचित्य अगम्य आदि तत्व। जय जय परम कोमल शुद्ध सत्व॥
(गौ. प त १।२।६५)

५. स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व। पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व॥
नदसुत वलि जारे भागवते गाइ। सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोंसाञि॥
(चै. च, आदिलीला, परि १, पृ. ११)

६ तांहार अंगेर शुद्ध किरण मडल।
उपनिषद् कहे तांरे ब्रह्म सुनिर्म्मल॥

अत चैतन्य और नारायण भी एक ही है। चैतन्य देव भी षडैश्वर्य-पूर्ण लक्ष्मीकात भगवान है। यह अनत जीवो मे प्रकाशित है, अत चैतन्य भी अनन्त जीवो मे प्रकाशित है। वे भी परव्योम के स्वामी है।[1]

चैतन्य विष्णु हैं—विष्णु परब्रह्म का गुणावतार मात्र हैं। चैतन्य क्योकि परब्रह्म और परतत्व है, अत वे विष्णु भी है।[2] यह क्षीर-सागर-शायी, रमापति और सिंधु-सुता के स्वामी है। चैतन्य वैकुठ के नाथ हरि है।

चैतन्य ने ही समस्त अवतार लिए—वासुदेव घोष, गोविन्ददास, वृदावनदास इत्यादि ने इस मत का वार-वार उल्लेख किया है। चैतन्य केवल कृष्ण ही नही हैं, राम, कृष्ण, हिरण्यकश्यप इत्यादि सब है। वे जानकी-वल्लभ राम थे, जिन्होने सेतु बाधा था।[3] ये चैतन्य धनुषधारी राम है जिन्होने रावण का वध किया था।[4] ये चैतन्य अखिल भुवनपति

कोटि कोटि ब्रह्माडे जे ब्रह्मेर विभूति ।
सेइ ब्रह्म गोविंदेर हय अगकाति ॥

सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि । (चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११-१२)

१ (क) सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि ।
जीव निस्तारिते एछे दयालू आर नाञि ॥
परव्योमेते वैसे नारायण नाम ।
षडैश्वर्य पूर्ण लक्ष्मीकांत भगवान ॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ १२)

(ख) अनत स्फटिके जैछे एक सूर्य भासे । तैछे जीवे गोविंदेर अश परकाशे ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १२)

(ग) तुमि से वेदात वेद तुमि नारायण । (गौ प त १।२।६३)

२ (क) विष्णु अवतारे तुमि प्रेमेर भिखारी । शिव शुक नारद लैया जना चारि ॥
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

(ख) तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण तुमि यज्ञेश्वर ।
तोमार चरण युगे गगातीर्थ वर ॥ (वृदावनदास, गौ प त १।२।६३)

३ (क) केह कहे जानकी वल्लभ छिल राम ।
(गोविन्ददास, गौ प त १।२।१७)

(ख) केह बोले गोरा, जानकीवल्लभ । (नयनानद, गौ प त १।२।४)

(ग) जानकी-जीवन तुमि, तुमि नरसिंह । (वृदावनदास, गौ प त १।२।६३)

(घ) सेतु बध कैला तुमि राम अवतारे ।
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

४ (क) राम अवतार, धनुक धरिया । (रामानद, गौ प त १।२।४९)

(ख) केह वले पूरबे रावण बधिला (वासुदेव घोष, गौ प त १।२।३)

(ग) तुमि रक्ष-कुलहता जानकीजीवन । तुमि प्रभु वरदाता, अहिल्या मोचन ॥
(वृदावनदास, गौ प त १।२।६४)

है। सतयुग, त्रेता, द्वापर सब में अवतार लेकर ध्यान, यज्ञ, पूजा का प्रकाश किया और अब चैतन्य रूपमे आए हैं।[१] वृदावनदास कहते है कि 'तुम नरसिह हो, तुमने प्रह्लाद केलिए अवतार लिए, हिरण्यकश्यप का वध किया, इसलिए नृसिह कहलाए। तुम अनतशयन हो, नारायण हो, तुम्ही ने छल करके वामनरूप मे वलि को छला। तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म हो, और तुम्ही वाराह हो। तुम इसी प्रकार अवतार लेकर प्रति युग मे देवताओ का पालन करते हो। तुम्ही ने अजामिल का उद्धार किया। तुम महाकाल स्वरूप हो। तुम इच्छामय महामहेश्वर हो। तुम सर्वकाल में सत्य हो।[२]' वासुदेव घोप कहते है कि जो जगन्नाथ है वे ही चैतन्य है। नीलाचल मे जगन्नाथ शख चक्र धारण करके निवास करते हैं परतु नदिया मे दड और कमडल लिए है। वस इतना ही अतर है। वे ही एक ईश्वर है, उन्हे ब्रह्म और शिव भी भक्ति कर के नही पाते।[३] इस प्रकार ईश्वर के जितने भी अवतार स्वरूप हो सकते हैं वे सब चैतन्य है।

चैतन्य कृष्ण है—चैतन्य देव के कृष्णत्व को सिद्ध करने के लिए तर्कपूर्ण प्रयत्न कृष्णदास कविराज ने किया है। अन्य वैष्णव कवियो ने भी यत्रतत्र इसका उल्लेख किया है। चैतन्य और कृष्ण अभिन्न है ऐसा सब का ही विश्वास है। मगलाचरण के सर्वप्रथम श्लोक में ही कृष्णदास चैतन्य न कह कर कृष्ण चैतन्य कहते है।[४] चैतन्य तत्त्व का निरूपण करने में इसीलिए कृष्ण तत्व का निरूपण किया गया है। कृष्ण तत्त्व का निरूपण ही चैतन्य तत्त्व का निरूपण है।[५] चैतन्य स्वय भगवान व्रजेन्द्रनदन है। जो कृष्ण स्वय भगवान परतत्व, पूर्णानन्द, पूर्ण ज्ञान है और भागवत नदसुत कह कर जिनका गान करती है वही कृष्ण चैतन्य रूप मे अवतीर्ण हुए है। उन्ही व्रजेन्द्र कुमार अवतारी कृष्ण ने चैतन्य अवतार लिया है। और आगे चल कर कृष्णदास कहते है कि चैतन्य साक्षात् शृगार, एव रसमय मूर्ति कृष्ण है। स्वय भगवान कृष्ण नदात्मज है, एक ईश्वर है, रास करने वाले है, सबको नचाते है, वही कृष्ण चैतन्य है।[६] गोविददास कविराज कहते है कि जो पहले गोकुल मे गोपाल थे वे

---

१ (क) अखिल भुवनपति, गोलोके जाहार स्थिति।
(गोविददास, गौ प त १।२।२२)

(ख) सत्य त्रेता द्वापर, सत्ययुगेर ईश्वर, ध्यान यज्ञ, पूजा, प्रकाशिला।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौरहरि.।
(माधवदास गौ प. त १।२।२६)

२ गौरपदतरगिणी, द्वितीय उच्छ्वास, पद सख्या ६३, ६४, ६५, ६६, ६७।

३ पदकल्पतरु, पद १६३४, २१९२

४ तत् प्रकाशांश्च तच्छक्ती. कृष्णचैतन्य सज्ञक।
(चै च, आदिलीला, परि. १, पृ. १)

५ चैतन्य प्रभु महिमा कहिवार तरे।
कृष्णेर महिमा कहि करिया विस्तारे॥
(चै च, आदिलीला, परि. २, पृ. १७)

६ (क) चैतन्य गोसाञिर एइ तत्त्व निरूपण।
स्वय भगवान चैतन्य व्रजेन्द्रनदन॥ (चै च, आदिलीला, परि. २, पृ. १७)

अत चैतन्य और नारायण भी एक ही है। चैतन्य देव भी षडैश्वर्य-पूर्ण लक्ष्मीकात भगवान हैं। यह अनत जीवो मे प्रकाशित है, अत चैतन्य भी अनन्त जीवो मे प्रकाशित है। वे भी परव्योम के स्वामी है।[1]

चैतन्य विष्णु हैं—विष्णु परब्रह्म का गुणावतार मात्र हैं। चैतन्य क्योकि परब्रह्म और परतत्व हैं, अत वे विष्णु भी है।[2] यह क्षीर-सागर-शायी, रमापति और सिंधु-सुता के स्वामी है। चैतन्य वैकुठ के नाथ हरि है।

चैतन्य ने ही समस्त अवतार लिए—वासुदेव घोष, गोविन्ददास, वृदावनदास इत्यादि ने इस मत का बार-बार उल्लेख किया है। चैतन्य केवल कृष्ण ही नही हैं, राम, कृष्ण, हिरण्यकश्यप इत्यादि सब हैं। वे जानकी-वल्लभ राम थे, जिन्होने सेतु बाधा था।[3] ये चैतन्य धनुषधारी राम है जिन्होने रावण का वध किया था।[4] ये चैतन्य अखिल भुवनपति

कोटि कोटि ब्रह्माडे जे ब्रह्मेर विभूति।
सेइ ब्रह्म गोविंदेर हय अगकाति ॥

सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि। (चैं च, आदिलीला, परि २, पृ ११-१२)

१ (क) सेइत गोविंद साक्षात् चैतन्य गोसाञि।
जीव निस्तारिते एछे दयालू आर नाञि ॥
परव्योमेते वैसे नारायण नाम।
षडैश्वर्य पूर्ण लक्ष्मीकात भगवान ॥ (चैं च, आदिलीला, परि २, पृ १२)

(ख) अनत स्फटिके जैछे एक सूर्य भासे। तैछे जीवे गोविंदेर अश परकाशे ॥
(चैं च, आदिलीला, परि २, पृ १२)

(ग) तुमि से वेदात वेद तुमि नारायण। (गौ प त १।२।६३)

२ (क) विष्णु अवतारे तुमि प्रेमेर भिखारी। शिव शुक नारद लैया जना चारि ॥
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

(ख) तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण तुमि यज्ञेश्वर।
तोमार चरण युगे गगातीर्थ वर ॥ (वृदावनदास, गौ प त १।२।६३)

३ (क) केह कहे जानकी वल्लभ छिल राम।
(गोविन्ददास, गौ प त १।२।१७)

(ख) केह बोले गोरा, जानकीवल्लभ। (नयनानद, गौ प त १।२।४)

(ग) जानकी-जीवन तुमि, तुमि नरसिंह। (वृदावनदास, गौ प त १।२।६३)

(घ) सेतु बध कैला तुमि राम अवतारे।
(वासुदेव घोष, प० क० त०, पद २२९२)

४ (क) राम अवतार, धनुक धरिया। (रामानद, गौ प त १।२।४९)

(ख) केह बले पूरवे रावण बधिला (वासुदेव घोष, गौ प त १।२।३)

(ग) तुमि रक्ष-कुलहता जानकीजीवन। तुमि प्रभु वरदाता, अहिल्या मोचन ॥
(वृदावनदास, गौ प त १।२।६४)

है। सतयुग, त्रेता, द्वापर सब मे अवतार लेकर ध्यान, यज्ञ, पूजा का प्रकाश किया और अब चैतन्य रूपमे आए है।[१] वृदावनदास कहते है कि 'तुम नरसिह हो,तुमने प्रह्लाद केलिए अवतार लिए, हिरण्यकश्यप का वध किया, इसलिए नृसिह कहलाए। तुम अनतशयन हो, नारायण हो, तुम्ही ने छल करके वामनरूप मे वलि को छला। तुम मत्स्य हो, तुम कूर्म हो, और तुम्ही वाराह हो। तुम इसी प्रकार अवतार लेकर प्रति युग मे देवताओ का पालन करते हो। तुम्ही ने अजामिल का उद्धार किया। तुम महाकाल स्वरूप हो। तुम इच्छामय महामहेश्वर हो। तुम सर्वकाल में सत्य हो।[२]' वासुदेव घोप कहते है कि जो जगन्नाथ है वे ही चैतन्य है। नीलाचल मे जगन्नाथ शख चक्र धारण करके निवास करते है परतु नदिया मे दड और कमडल लिए है। बस इतना ही अतर है। वे ही एक ईश्वर है, उन्हे ब्रह्मा और शिव भी भक्ति कर के नही पाते।[३] इस प्रकार ईश्वर के जितने भी अवतार स्वरूप हो सकते है वे सब चैतन्य है।

चैतन्य कृष्ण है—चैतन्य देव के कृष्णत्व को सिद्ध करने के लिए तर्कपूर्ण प्रयत्न कृष्णदास कविराज ने किया है। अन्य वैष्णव कवियो ने भी यत्रतत्र इसका उल्लेख किया है। चैतन्य और कृष्ण अभिन्न है ऐसा सब का ही विश्वास है। मगलाचरण के सर्वप्रथम श्लोक में ही कृष्णदास चैतन्य न कह कर कृष्ण चैतन्य कहते है।[४] चैतन्य तत्त्व का निरूपण करने में इसीलिए कृष्ण तत्व का निरूपण किया गया है। कृष्ण तत्त्व का निरूपण ही चैतन्य तत्त्व का निरूपण है।[५] चैतन्य स्वय भगवान व्रजेन्द्रनदन है। जो कृष्ण स्वय भगवान परतत्व, पूर्णानन्द , पूर्ण ज्ञान है और भागवत नदसुत कह कर जिनका गान करती है वही कृष्ण चैतन्य रूप मे अवतीर्ण हुए है। उन्ही व्रजेन्द्र कुमार अवतारी कृष्ण ने चैतन्य अवतार लिया है। और आगे चल कर कृष्णदास कहते है कि चैतन्य साक्षात् शृगार, एव रसमय मूर्ति कृष्ण है। स्वय भगवान कृष्ण नदात्मज है , एक ईश्वर है, रास करने वाले है, सबको नचाते है, वही कृष्ण चैतन्य है।[६] गोविंददास कविराज कहते है कि जो पहले गोकुल मे गोपाल थे वे

---

१ (क) अखिल भुवनपति, गोलोके जाहार स्थिति।
(गोविंददास, गौ प त १।२।२२)

(ख) सत्य त्रेता द्वापर, सत्ययुगेर ईश्वर, ध्यान यज्ञ, पूजा, प्रकाशिला।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौरहरि .।
(माधवदास गौ प त १।२।२६)

२ गौरपदतरगिणी, द्वितीय उच्छ्वास, पद संख्या ६३, ६४, ६५, ६६, ६७।

३ पदकल्पतरु, पद १६३४, २१९२

४ तत् प्रकाशश्च तच्छक्ती कृष्णचैतन्य संज्ञक।
(चै च , आदिलीला, परि. १, पृ. १)

५. चैतन्य प्रभु महिमा कहिबार तरे।
कृष्णेर महिमा कहि करिया विस्तारे॥
(चै च., आदिलीला, परि. २, पृ. १७)

६ (क) चैतन्य गोसाञिर एइ तत्त्व निरूपण।
स्वय भगवान चैतन्य व्रजेन्द्रनदन॥(चै च., आदिलीला, परि २,पृ. १७)

ही श्रीकृष्ण चैतन्य गौराग शची के दुलारे हैं, जो व्रजेन्द्र नदन थे वे ही शची सुत हैं।[1] शिवानद कहते हैं कि पहले जो गोपीनाथ श्रीमती राधिका के साथ थे, वे ही अब सुखदायी चैतन्य हैं। पहले हाथ में वशी थी, अब दड कमण्डल है।[2] नरहरि कहते हैं कि यह तो तुम्हारी चतुराई है कि तुम व्रजभूमि को शून्य करके, नदिया मे अवतीर्ण हुए हो। न तो शिखि पुच्छ है, न पीत वस्त्र है, न हाथ में वशी है, परन्तु इस रूप मे भी मेरा मन भ्रम मे नही डाला जा सकता। तुम वही व्रज के कन्हाई हो, जिसे विश्वास न हो आकर देख जाय।[3] जो कृष्ण परतत्व हैं

(ख) स्वय भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व ।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥
नद सुत बलि जारे भागवते गाइ ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसाञ्जि ॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११)

(ग) सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्रकुमार ।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १६)

(घ) श्रीकृष्ण चैतन्य गोसाञ्जि व्रजेन्द्र-कुमार ।
रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् शृगार ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ. ३१)

(ङ) स्वय भगवान कृष्ण एकले ईश्वर ।
अद्वितीय नदात्मज रसिक-शेखर ।
रासादि विलासी व्रज ललना-नागर ।
आर जत सब देख तार परिकर ॥
सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्रीकृष्ण चैतन्य ।
सेइ परिकर गण अशे सब धन्य ॥
(चै. च, आदिलीला, परि ७, पृ ४६)

(च) एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य ।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य ॥
एइमत चैतन्य गोसाञ्जि एकले ईश्वर ।
आर सब पारिषद् केह वा किंकर ॥
(चै च, आ ली, परि ५, पृ. ३८)

१ (क) श्रीकृष्ण चैतन्य गोरा शचीर दुलाल ।
एइ जे पूरवे छिल गोकुलेर गोपाल ॥
(गोविन्ददास, गो प. त १।२।१७)

(ख) व्रजेन्द्र नदन जेई शची सुत हैल सेइ ।
(गोविन्ददास, गो प त १।२।१८)

२ गौ प त, पृ १५

३ गौ प त, पृ १२

वे ही चैतन्य है अत चैतन्य परतत्व की सीमा है।[१] ये श्रीकृष्ण-चैतन्य पच-तत्व स्वरूप है। वे भक्ति-रूप, भक्ति स्वरूप, भक्तावतार-रूप, भक्ताख्या रूप, और भक्ति-शाक्तिक रूप है।[२]

प्राय ये समस्त उक्तिया वल्लभाचार्य के लिए भी प्राप्त है। उनके भक्त भी उन्हे केवल अलौकिक पुरुष ही नही, ब्रह्म, कृष्ण सब मानते है।

वल्लभ पूर्ण ब्रह्म हैं—नददास कहते है कि श्री लक्ष्मण के गृह पर बधाई बजती है क्योंकि पूर्ण ब्रह्म प्रगट हुए है।[3] वे पूर्ण परमानद पुरुष हैं जिनका स्मरण करने मात्र से सब पवित्र हो जाते है।[४] वे अनन्त लीला पूर्ण सनातन ब्रह्म हैं।[५] वे पूर्ण पुरुषोत्तम, सकल कला-गुण-निधान है, जिनका यश वेद गाते हैं और जो समस्त श्रुतियो के सार है।[६] इन पूर्ण-काम पुरुषोत्तम की ज्योति करोडो सूर्य भी नही दिखा सकते। निगम इन्हें नेति नेति कह कर

---

१. सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्रकुमार।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार॥
अतएव चैतन्य गोसाञि परतत्त्व सीमा।......
(चैं. च., आदिलीला, परि. २, पृ १६)

२. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, परि. १, पृ. ३)

३. श्री लक्ष्मण गृह बजत बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रकटे पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई॥ (की. र., पृ. २७१)

४. पुरुष परमानन्द पूरण भक्तहित वपु धारियो।
नाम सुमरत भये पावन सकल खल कलिके जिया।
कृष्णदास प्रभु की गाय लीला मन मनोरथ कर लिया॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

५. पूरणब्रह्म सनातन माधो।
कलि केशव अवतार वहा॥
... ...
गोपालदास अनन्त लीला प्रकट श्री वल्लभ भया॥
(गोपालदास, की. र, पृ. २७४)

६. (क) श्री वल्लभ पूरण पुरुषोत्तम सकल वेद यश गावे।
श्रीविट्ठल गिरिधरनलालसो, अहर्निश प्रीति बढावे॥
(की स, भाग २ जो, पृ. २०५)

(ख) श्री लक्ष्मण गृह आइ नवनिधि।
प्रगटे जान पूरण पुरुषोत्तम द्वार बुहारत फिरत अष्टसिधि॥
(की र, पृ २७४)

(ग) प्रगट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
रामदास प्रभु सब भक्तन के जीवन प्राण आधार॥
(रामदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०७)

ही श्रीकृष्ण चैतन्य गौराग शची के दुलारे है, जो ब्रजेन्द्र नदन थे वे ही शची सुत है।[1] शिवा-नद कहते है कि पहले जो गोपीनाथ श्रीमती राधिका के साथ थे, वे ही अब सुखदायी चैतन्य हैं। पहले हाथ में वशी थी, अब दड कमण्डल है।[2] नरहरि कहते है कि यह तो तुम्हारी चतुराई है कि तुम ब्रजभूमि को शून्य करके, नदिया में अवतीर्ण हुए हो। न तो शिखि पुच्छ है, न पीत वस्त्र है, न हाथ मे वशी है, परन्तु इस रूप में भी मेरा मन भ्रम मे नही टाला जा सकता। तुम वही ब्रज के कन्हाई हो, जिसे विश्वास न हो आकर देख जाय।[3] जो कृष्ण परतत्त्व हैं

(ख) स्वय भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्त्व।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व॥
नद सुत बलि जारे भागवते गाइ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोसाञि॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११)

(ग) सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १६)

(घ) श्रीकृष्ण चैतन्य गोसाञि ब्रजेन्द्र-कुमार।
रसमय मूर्ति कृष्ण साक्षात् शृगार॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ ३१)

(ङ) स्वय भगवान कृष्ण एकले ईश्वर।
अद्वितीय नदात्मज रसिक-शेखर।
रासादि विलासी ब्रज ललना-नागर।
आर जत सब देख तार परिकर॥
सेइ कृष्ण अवतीर्ण श्रीकृष्ण चैतन्य।
सेइ परिकर गण अशे सब धन्य॥
(चै. च, आदिलीला, परि ७, पृ ४६)

(च) एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य॥
एइमत चैतन्य गोसाञि एकले ईश्वर।
आर सब पारिषद् केह वा किंकर॥
(चै. च, आ ली, परि. ५, पृ ३८)

१ (क) श्रीकृष्ण चैतन्य गोरा शचीर दुलाल।
एइ जे पूरबे छिल गोकुलेर गोपाल॥
(गोविन्ददास, गौ प त १।२।१७)

(ख) ब्रजेन्द्र नदन जेई शची सुत हैल सेइ।
(गोविन्ददास, गौ प त १।२।१८)

२ गौ. प त, पृ १५

३ गौ प त, पृ १२

वे ही चैतन्य है अत चैतन्य परतत्व की सीमा है।[1] ये श्रीकृष्ण-चैतन्य पच-तत्व स्वरूप है। वे भक्ति-रूप, भक्ति स्वरूप, भक्तावतार-रूप, भक्ताख्या रूप, और भक्ति-शाक्तिक रूप है।[2]

प्राय ये समस्त उक्तिया वल्लभाचार्य के लिए भी प्राप्त हैं। उनके भक्त भी उन्हे केवल अलौकिक पुरुष ही नही, ब्रह्म, कृष्ण सब मानते है।

वल्लभ पूर्ण ब्रह्म हैं—नददास कहते है कि श्री लक्ष्मण के गृह पर बधाई बजती है क्योकि पूर्ण ब्रह्म प्रगट हुए है।[3] वे पूर्ण परमानद पुरुष है जिनका स्मरण करने मात्र से सब पवित्र हो जाते है।[4] वे अनन्त लीला पूर्ण सनातन ब्रह्म है।[5] वे पूर्ण पुरुषोत्तम, सकल कला-गुण-निधान है, जिनका यश वेद गाते है और जो समस्त श्रुतियो के सार है।[6] इन पूर्ण-काम पुरुषोत्तम की ज्योति करोडो सूर्य भी नही दिखा सकते। निगम इन्हे नेति नेति कह कर

---

१. सेइ कृष्ण अवतारी व्रजेन्द्रकुमार।
आपना चैतन्यरूपे कैल अवतार॥
अतएव चैतन्य गोसाञि परतत्त्व सीमा।......
(चैं. च., आदिलीला, परि. २, पृ. १६)

२. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, परि. १, पृ. ३)

३. श्री लक्ष्मण गृह बजत बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रकटे पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई॥ (की. र, पृ. २७१)

४. पुरुष परमानन्द पूरण भक्तहित वपु धारियो।
नाम सुमरत भये पावन सकल खल कलिके जिया।
कृष्णदास प्रभु की गाय लीला मन मनोरथ कर लिया॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २७५)

५. पूरणब्रह्म सनातन माधो।
कलि केशव अवतार वहा॥
... ...
गोपालदास अनन्त लीला प्रकट श्री वल्लभ भया॥
(गोपालदास, की. र., पृ २७४)

६. (क) श्री वल्लभ पूरण पुरुषोत्तम सकल वेद यश गावे।
श्रीविट्ठल गिरिधरनलालसो, अहर्निश प्रीति बढावे॥
(की. सं, भाग २ जो, पृ. २०५)

(ख) श्री लक्ष्मण गृह आइ नवनिधि।
प्रगटे जान पूरण पुरुषोत्तम द्वार बुहारत फिरत अष्टसिधि॥
(की र, पृ २७४)

(ग) प्रगट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
रामदास प्रभु सब भक्तन के जीवन प्राण आधार॥
(रामदास, की. सं., भाग २ जो, पृ. २०७)

पुकारते है। सनकादिक शुक, शिव, शेष, नारद, शारदा सब वर्णन करके पागल हो गए पर पार नही मिला।[1] इन ब्रह्म ने इस बार ब्राह्मण का शरीर धारण किया है। वे ईश्वर के स्वरूप हैं, अखड अवतारी है, युगावतार धारण किया है आसुरी जीवो का उद्धार करने के लिए।[2] वे ही सब के आदि अंत है।[3]

वल्लभ विष्णु हैं—वल्लभ के विष्णुत्व का अधिक उल्लेख नही है। वे गरुडगामी है, यही कह दिया गया है। षोडश-ग्रथ-सग्रह मे यह कहा गया है कि वल्लभ विष्णु के मुख की अग्नि लेकर प्रकट हुए है। इस बात का उल्लेख कई जगह है कि वे अग्नि-स्वरूप हो कर उत्पन्न हुए है।[4] कुभनदास 'रमापति' कह कर उनके विष्णु होने का उल्लेख करते हैं।[5]

वल्लभ कृष्ण हैं—वल्लभ के कृष्णत्व का तो अनेक पदकर्ताओ ने उल्लेख किया है। कुभनदास कहते हैं कि मैं वल्लभ अवतार का वर्णन करता हू। गोकुलपति फिर से गोकुल में प्रगट हुए है, वे सकल विश्व के आधार है।[6] कमल दल के से नेत्र वाले हैं और मधुर वाणी बोलते हैं। वे भक्तो के प्राणाधार सकल सुख-दाता श्री गोकुल नाथ है।[7] उनके भजन से मन निर्मल होता है। यह भजन भी बडे भाग्य से मिलता है। यह निश्चय रूप मे गोकुलपति हैं।[8] वृन्दावन के वे ही इदु प्रगट हुए हैं जिन्होने रस की वर्षा की थी और जिन्होने गोवर्धन धारण किया था और जिनका मुख देख कर गोपी ग्वाल जीवित रहते थे।[9] इस जन्म में

---

१ कृष्णदास का पद, कीर्तन सग्रह, पृष्ठ २१६

२ नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
अखड अवतार जुगधार लीला करी।
आसुरी जीव सब मोह पामी॥ (कृष्णदास, की. र, पृ ३६५)

३. सकल कला सपूरण गुणनिधि आदि अन्त जय नमो नमो।
(कृष्णदास, की. र, पृ. २८६)

४. आज जगती पर जय जय कार।
प्रगट भये श्री वल्लभ पुरुषोतम वदन अग्नि अवतार॥
(गिरिधर, की र, पृ २७१)

५ अष्टसिधि नवनिधि रमापति अखिल भुवन के मुकुट मनी।
(की र, पृ. ३६३)

६. बरनों श्री वल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रगटे फिर गोकुल सकल विश्व आधार।
(कुभनदास, की स, भाग २ जो, पृ २०६)

७ कृष्णदास, कीर्तन-रत्नाकर, पृ २७५

८. रसिकदास, कीर्तन-रत्नाकर, पृ. २८०

९ उदित भयो इन्दु वृन्दाविपिन को हरण बरख रस,
वचन सुन श्रवण निजजन पिये।
कृष्णदासनि नाथ हाथ गिरिधर धर्यो साथ सब,
गोप मुख निरख नैनन जिये॥ (कृष्णदास, की र, पृ २८१)

लक्ष्मण के पुत्र जो हैं वे अगम निगम में वर्णित देवता और मुनि को भी अप्राप्य, सकल कला और गुणो के निधान पूर्ण पुरुष नदनदन है। वे स्मरण करते ही तीनो तापो का हरण कर लेते हैं।[1] यशोदा के पुत्र ने भक्तो को अपना सुख देने के लिए वल्लभ के रूप मे अपनी मूर्ति प्रगट की है।[2] कृष्णदास कहते हैं कि शोभा-शिरोमणि, व्रज सुन्दरियो के मनभावन, प्रमाण पुरुष, पृथ्वी पर आए है।[3] कोई उन्हे कुछ कहे परन्तु कृष्णदास (स्वकीयजन) उन्हें कृष्ण ही कहते है।[4]

---

१. अगम निगम कहत जाहि सुर नर मुनि न लहे ताहि
सकल कला गुणनिधान पूरण उर लाऊ।
गोविन्द प्रभु नन्दनन्दन श्रीलक्ष्मण सुत जगत वन्दन
सुमरत त्रय ताप हरत चरण रेणु पाऊ॥
(गोविन्द स्वामी, की. र., पृ. २८२)

२. यशोमतिसुत निज सुखदेवेको मुख मूरति प्रगटाई॥
(रसिकदास, की. सं, भाग २ जो, पृ २०४)

३. शोभा शिरोमणि प्रकट पुरुष प्रमाण भूतल आवीया।
कृष्णदास के प्रभु आयप्रगटे व्रज सुन्दरी मन भावीया॥
(की. सं, भाग २ जो, पृ. २१६)

४. कोउ कहे विप्र कोउ विविध पंडित कहे
कोउ कहे अंश कोउ आत्मारामी।
स्वकीय जन एक निर्धार निश्चे कीये
वस्तुतः कृष्ण जो वन्धे दामी॥
(की र, पृ. ३६५)

४. चैतन्य और वल्लभ के अवतारों के कारण

गौडीय वैष्णव साहित्य मे और हिन्दी वैष्णव साहित्य में ही चैतन्य और वल्लभ अवतार बताए गए हैं। उनके-कृष्ण अवतार होने का विश्वास अधिक स्पष्ट है। प्रश्न उठता है कि इन अवतारो का कारण क्या है। कृष्ण को क्यो ऐसी आवश्यकता आ गई कि वे पृथ्वी पर फिर से अवतरित हो। वल्लभ अवतार के लिए जो कुछ कारण बताए गए हैं वे निम्न है —

१. **भक्तो का हित करने के लिए**—श्रीकृष्ण ने जो श्रीमुख से वचन कहे थे कि मैं भक्तो के लिए आता हू, वे ही वचन पूरे करने के लिए गोवर्धनधारी कृष्ण ने पृथ्वी पर शरीर धारण किया है। भक्तो के प्राणाधार श्री वल्लभ भक्तो के उद्धार के लिए प्रगट हुए हैं।[1]

२ **भागवत का प्रकाश करने के लिए**—शुक के मुख से अमृतरस रूपी जो भागवत निकली है उसके अर्थ अत्यन्त गूढ है। उन गूढ अर्थो का प्रकाश करने के लिए वल्लभ ने जन्म लिया है। उस भागवत में जो आत्म अग है अर्थात् कृष्ण और कृष्ण भक्ति का अग है, उसे प्रगट करने के लिए आए हैं।[2]

३. **पुष्टिमार्ग का प्रकाश करने के लिए**—श्री वल्लभ उस पुष्टि का रस देने और प्रगट करने आए है जो पाखड को दूर करती है। पुष्टि का प्रकाश करके माया मत को दूर

---

१ (क) श्री मुख वचन कहे प्रतिपाले भक्त भय हरे आप धनी।
ताहीते दासत्व दिखायो, श्रीकृष्ण वदन प्रकटे अगनी।
याहीते भूतल वपुधार्यो, दैविकी विध अधिक बनी।
कुभनदास प्रभु गोवर्द्धन धर मिट गये रविसुत त्रास रनी॥
(की र, पृ ३६३)

(ख) प्रगट्या प्रानअधार श्री वत्सल भक्त हित वपु धारियो।
दैवीजीव उद्धारण कारण करुणासिन्धु विचारियो॥
(विष्णुदास, की स, भाग २ जो, पृ २१४)

२ (क) शुक मुख द्रवित सुधारस मथ के गूढ़भाव दशविध कर ले।
(की र, पृ २८६)

(ख) श्रीभागवत गूढ़ रस प्रकटन कारण कीयो विचार॥
(रसिक, की स, भाग २ जो, पृ २०४)

(ग) सकल पतित उद्धारन कारन प्रकट कियो अवतरन।
गूढ़ श्री भागवत प्रति पद अरथ प्रकट करन॥
(हरिदास, की र, पृ, ३६३)

(घ) श्री भागवत आत्म अग जिनके प्रगट करन विस्तार।
(गिरिधर, की र, पृ २७९)

करेंगे, इस प्रकार मर्यादा की रक्षा करने के लिए वे अवतरित हुए हैं।[1]

सक्षेप में वल्लभाचार्य के अवतार के ये ही तीन कारण है। चैतन्यदेव के अवतार के कारणो का विवरण इतने सक्षिप्त रूप में नही दिया गया है। उनके अवतार के कारणो का विशेप विवरण कृष्णदास कविराज ने दिया है। वे उनके कृष्ण-अवतार होने के कई कारण बताते है। ये कारण वहिरग और अन्तरग दो प्रकार के है।[2] इन्ही कारणो के वश कृष्ण फिर से चैतन्य रूप में आए।

१ वहिरग कारण

(१) प्रेम-भक्ति प्रचार
(२) सकीर्तन प्रचार
(३) अपनी भक्ति देना
(४) भक्तो का ऋण परिशोध करना

२ अतरंग कारण

(१) जिस प्रकार राधा कृष्ण-प्रेम का आस्वादन करती थी उसी प्रकार स्वप्रेम आस्वादन करने के लिए।

(२) अपनी रूप माधुरी का आस्वादन उसी प्रकार करने के लिए जैसे राधा करती थी।

(३) राधा के महाभाव का वास्तविक रूप समझने के लिए।

१ वहिरंग कारण—कृष्णदास कहते है कि वहिरग कारण मुख्य कारण नही है। यह सब भी सत्य है। द्वापर युग के अन्त मे अठ्ठाइस चतुर्युग जब हो गए, तब कृष्ण ने अवतार लिया। वे व्रज लोक और भक्त सबको लेकर प्रकाशित हुए। वे दास्य, सख्य,

---

१ (क) प्रकटे पुष्टि महारस देन।
श्री वल्लभ हरि भाव अति मुख रूप समर्पित लेन॥
(रसिकदास, की र, पृ २८७)

(ख) मायामत को दूर करेंगे पुष्टिभक्ति प्रकटाई।
(सगुणदास, की र, पृ. २८८)

(ग) फल्यो जन भाग्य पय पुष्टि प्रकट करण
दुष्ट पाखंड मत खड खडन किये।
.. ..
सकल मर्याद मडन प्रभु अवतरे॥
(कृष्णदास, की. र., पृ. २८१)

२. सत्य एइ हेतु किन्तु एहो वहिरंग।
आर एक हेतु शुन आछे अतरग॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ २२)

वात्सल्य, शृगार चारो भावो के भक्तो के वश मे रहते हैं।[1] दास, सखा, माता-पिता, और प्रेयसी गण इन सब के साथ प्रेमाविष्ट हो कर कृष्ण व्रज मे क्रीडा करते थे। यथेच्छ विहार करके वे अन्तर्ध्यान हो गए। अतर्ध्यान होने के वाद वे मन में विचार करते हैं कि मैंने चिर-काल से प्रेम-भक्ति का दान नही किया। भक्ति के विना जगत का कल्याण नहीं है। समस्त ससार वैधी भक्ति कर रहा है। इस भक्ति से व्रज भाव को शक्ति नही मिलती। सारा ससार मेरे ऐश्वर्य ज्ञान से भरा है और इस ऐश्वर्य भाव से अद्भुत भक्ति मुझे अच्छी नही लगती। ऐसे भक्त चार प्रकार की भक्ति पाकर वैकुठ जाते है परन्तु मेरा भक्त ब्रह्म-सायुज्य नही चाहता जो वैधी भक्ति से मिलता है।[2] अत मैं शुद्ध भक्ति को सिखाने के लिए जन्म लूगा।[3] इसके साथ ही साथ युग-धर्म-सकीर्तन का प्रचार करूगा और चार भाव की भक्ति देकर ससार को नचाऊगा। चैतन्यदेव कृष्ण थे परन्तु वे स्वय कृष्ण-भक्ति क्यो करते थे? इसका उत्तर कृष्णदास यह कह कर देते हैं कि अपने आप न करे तो ससार में कोई कुछ

---

१ अष्टाविंश चतुर्युगे द्वापरेर शेषे। व्रजेर सहित हय कृष्णेर प्रकाशे॥
दास्य, सख्य, वात्सल्य शृगार चारि रस। चारि भावे भक्त जत कृष्ण तार वश॥
दास सखा पिता माता प्रेयसी गण लञा। व्रजे क्रीडा करे कृष्ण प्रेमाविष्ट हञा॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १७)

२ यथेच्छ विहार कृष्ण करि अन्तर्धान।
अन्तर्धान करि मने करे अनुमान॥
चिरकाल नाहि करि प्रेम भक्ति दान।
भक्ति विना जगते नाहि अवस्थान॥
सकल जगते मोरे करे विधि भक्ति।
विधि भक्तये व्रजभाव पेते नाहि शक्ति॥
ऐश्वर्य ज्ञानेते सब जगत मिश्रित।
ऐश्वर्यशिथिल प्रेमे नाहि मोर प्रीत॥
ऐश्वर्य ज्ञानेते विधि भजन करिया।
वैकुठेते जाय चतुर्विध मुक्ति पाञा॥
सार्ष्टि सारूप्य आर सामीप्य सालोक्य।
सायुज्य ना लय भक्त जाते ब्रह्म ऐक्य॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १७)

३. एई शुद्धभक्ति लये करिनु अवतार।
करिव विविध विधि अद्भुत विहार॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २२)

४ युग धर्म प्रवर्त्ताव नाम संकीर्तन। चारि भाव भक्ति दिया नाचाव भुवन॥
आपनि करिबे भक्तभाव अगीकारे। आपनि आचरि भक्ति शिखाव सवारे॥
आपनि ना कैले धर्म शिखान ना जाय। एइत सिद्धात गीता भागवते गाय॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १७)

सिखा नही सकता। अत मैं स्वय वैसा आचरण करूगा। अत मैं अपने भक्तगण साथ लेकर धरती पर अवतरित हूगा और नाना प्रकार की लीला करूगा। ऐसा सोच कर कलिकाल की प्रथम सध्या को वे नदिया मे अवतरित हुए।[1] कलियुग का युग-धर्म ही नाम-प्रचार है। उसीलिए पीतवर्ण चैतन्य आए।[2] एक मुख्य हेतु भक्तो का उद्धार और ऋण परिशोध करना भी है। अद्वैत आचार्य ने जन्म लेकर देखा कि ससार में कृष्ण-भक्ति नही है। लोग पाप पुण्य करके विषय भोग कर रहे हैं, भक्ति का नाम निशान भी नहीं है जिससे भय-रोग नष्ट हो सके। भक्त तुलसी जल से कृष्ण की पूजा करते हैं। भगवान कृष्ण उनका ऋण मानते हैं। वे आत्मा बेच कर भी भक्तो का ऋण परिशोध करेंगे। अत मैं उनका आवाहन करू, वे अवश्य आएँगे। अद्वैत भक्त की भावना और आवाहन के फलस्वरूप भी कृष्ण आए।[3]

२. अंतरंग कारण—अतरग कारण एकमात्र प्रेम-रस का आस्वादन है। चाहे वह राधा भाव का हो, चाहे गोपी भाव का हो। प्रश्न यह उठता है कि कृष्ण ने व्रज अवतार में क्या इस प्रेम का अनुभव नही किया था जो अब आए। इस प्रेमास्वादन को कृष्णदास मूल कारण बताते हैं। वे कहते हैं, कि शास्त्र बराबर कहते हैं कि कृष्ण का अवतार पृथ्वी का भार हरण करने के लिए हुआ था, परन्तु स्वय भगवान का कार्य पृथ्वी का भार हरण नही है। यह तो सृष्टिकर्ता विष्णु का काम है। परन्तु वह समय (भारहरण का) कृष्ण के अवतार का था। इस प्रकार भार हरण का काल और कृष्ण अवतार का काल एक साथ मिल गए। जिस समय पूर्ण भगवान का अवतार होता है उस समय सब अवतार आकर उससे मिल जाते हैं। अत नारायण, विष्णु इत्यादि सब पूर्ण भगवान कृष्ण मे स्थित थे। उन्ही विष्णु के द्वारा कृष्ण ने असुरो का सहार किया। यह असुर मारना अवतार का आनुषगिक कारण है। रसिक शेखर कृष्ण के अवतार लेने का मुख्य हेतु तो प्रेम रस का आस्वादन और राग-मार्गी भक्ति का प्रचार है। इन्ही दोनो इच्छाओ से उन्हे कलियुग मे अवतार लेने की इच्छा हुई। चैतन्य अवतार का समय सयोग मे युग धर्म प्रचार का भी समय था। अत कृष्ण जो प्रेम रस का आस्वादन करने आए थे, युग धर्म (नाम सकीर्त्तन) का भी प्रचार करने

---

१. ताहाते आपन भक्तगण करि सगे ।
पृथिवीते अवतरि करिब नाना रगे ॥
एत भावि कलिकाले प्रथम संध्याय ।
अवतीर्ण हैला कृष्ण निजे नदियाय ॥
(चै. च., आदिलीला, परि ३, पृ १८)

२. कलियुगे युग धर्म नामेर प्रचार ।
तथि लागि पीतवर्ण चैतन्यावतार ।
(चै च, आदिलीला, परि. ३, पृ १८)

३. चैतन्येर अवतार एई मुख्य हेतु ।
भक्तेर इच्छाय अवतार धर्मसेतु ॥
(चै च., आदिलीला, परि. ३, पृ २१)

लगे थे।[1] कृष्ण कहते हैं, कि मेरा पुत्र, मेरा सखा और मेरा प्राणपति कह कर जो मेरी भक्ति करते हैं, वह शुद्ध भक्ति है। मैं उन्हीं के वशीभूत रहता हूँ। मा का पुत्र-भाव का बंधन और मुझे दीन समझना, सखाओं का ममता करना, प्रिया की भर्त्सना करना, सब मुझे वेदों की स्तुति से भी अधिक अच्छा लगता है। मैं इसी शुद्ध भक्ति के लिए अवतार लूंगा।[2] ब्रज की इस निर्मल राग-भक्ति को सुनकर सब भक्त धर्म-कर्म छोड कर राग-मार्ग में भजन करेंगे।[3]

कृष्ण की तीन शक्तियों में एक ह्लादिनी शक्ति है। उसका सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव है। भाव की पराकाष्ठा महाभाव है। महाभाव-स्वरूपा श्री राधा है। राधा कृष्ण से प्रेम करती हैं जो महाभाव-स्वरूप हैं।[4] कृष्ण सोचते हैं, कि न जाने राधा का वह प्रेम

---

१ चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, परि ४, पृ २२

२ मोर पुत्र मोर सखा मोर प्राणपति।
एइ भावे जेइ मोरे करे शुद्धभक्ति॥
आपनाके बड माने मोरे समहीन।
सेइ भावे हइ आमि ताहार अधीन॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २२)

३ व्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण।
रागमार्गे भजे जेन छाडि धर्म्म कर्म्म॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २२)

४ (क) ह्लादिनीर सार प्रेम प्रेम सार भाव।
भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्रीराधाठाकुरानी।
सर्व्व गुणखनि कृष्णकांता शिरोमणि॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४)

(ख) सेइ प्रेमेर राधिका परम आश्रय।
सेइ प्रेमेर आमि हइ केवल विषय॥
विषय जातीर सुख आमार आस्वाद।
आमा हैते कोटिगुण आश्रये आह्लाद
आश्रय जातीय सुख जेते मन धाय।
जत्ने नारि आस्वादिते कि करि उपाय॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २६-२७)

(ग) एइ एक शुन आर लोभेर प्रकार। स्वमाधुर्य देखि कृष्ण करेन विचार।
अद्भुत अनन्त पूर्ण मोर मधुरिमा। त्रिजगते एर केह नाहि पाय सीमा।

दर्पणाद्ये देखि जदि आपन माधुरी। आस्वादिते हय लोभ आस्वादिते नारि॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २७)

कैसा है। राधा प्रेम का आश्रय है, मैं उनके प्रेम का विषय हू। मैं केवल 'विषय' जाति का सुख अनुभव करता हू परन्तु 'आश्रय' का सुख कोटि गुना अधिक होता है। यत्न करके भी उसे आस्वादन नही कर सकता। अच्छा हो, यदि किसी प्रकार कर सकू। उस प्रणय मे कैसी शक्ति है जो मुझे भी नचा लेती है। अत कृष्ण ने राधा भाव जानने के लिए चैतन्य का अवतार लिया। फिर आगे कृष्ण सोचते हैं, कि मेरी मधुरिमा अद्भुत, अनत और पूर्ण है। उसे राधा और भक्त अपने अपने भाव से आस्वादन करते हैं। मै उसे कैसे अनुभव करु। दर्पण से भी नही अनुभव कर सकता। अच्छा हो, यदि किसी प्रकार कर सकू। इसलिए भी चैतन्य का अवतार लिया। राधा ने चैतन्य को स्वप्न में देखा और व्याकुल हो कर कृष्ण से पूछने लगी, यह कौन है। कृष्ण ने कहा, वह मै हू।[1]

चतन्यदेव और वल्लभाचार्य के अवतार के दिए कारणो मे भिन्नता है। भक्ति प्रचार करने दोनो आए, यह तो गौडीय लेखक और हिन्दी लेखक दोनो ही मानते है। परन्तु प्रेम प्रचार, प्रेम आस्वादन इत्यादि कारणो मे केवल कृष्ण-चैतन्य का ही अवतार वताया गया है। चैतन्यदेव के अवतारो के अतरग कारणो ने एक नई भावना उत्पन्न कर दी है। यदि कृष्ण राधाभाव से कृष्ण के प्रेम का आस्वादन करना चाहते है, यदि वे राधा के समान ही अपनी रूप माधुरी का सुख लेना चाहते हैं, तव कृष्ण होकर आने से क्या होगा। ऐसा तो वृन्दावन में हो ही चुका है। आश्रय जाति का सुख कैसे प्राप्त हो। उसके लिए मन दौडता है, पर उपाय क्या है। विचार करके कृष्ण देखते है, कि यदि कोई उपाय है तो वह राधा का स्वरूप लेकर अवतार लेना ही है।[2] अत राधा कृष्ण का स्वरूप और काति लेकर चैतन्य रूप मे आए।[3] कृष्णदास कविराज कहते है कि चैतन्यदेव ने रामानन्द राय को रसराज (अर्थात् कृष्ण) और महाभाव (अर्थात् राधा) का सयुक्त रूप अपने मे अवस्थित दिखाया।[4] इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि चैतन्यदेव अकेले स्वय कृष्ण न होकर कृष्ण-राधा सयुक्तावतार हैं।

---

१. मोहे करवि हेन रूप ॥
कैछन तुया प्रेमा, कैछन मधुरिमा, कैछन सुखे तुहुं भोर।
ए तिन वाछित धन, व्रजे नहिल पूरण कि कहव न पाइया ओर।
. . नदीयाते करव उदय ॥ (गौ. प त. १।१।२)

२. आश्रय जातीय सुख पेते मन धाय।
यत्ने नारि आस्वादिते कि करि उपाय ॥
.. . ..
विचार करिये यदि आस्वाद उपाय। राधिका स्वरूप हैते तवे मन धाय ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २७)

३. राधा भाव काति दुइ अगीकार करि ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य रूपे कइल अवतार। (चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २५)

४. तवे हासि प्रभु निज देखाल स्वरूप।
रसराज महाभाव दुइ एक रूप ॥

सयुक्तावतार की यह भावना चैतन्य के गौरवर्ण मे मुख्य रूप मे सवधित ज्ञात होती है। कृष्ण का रग तो नीला है। यह गुण आरोपित नही है परन्तु स्वय विदित है। तब चैतन्यदेव जो स्वय कृष्ण है नीलवर्ण न होकर पीतवर्ण (गौरवर्ण) क्यो है। कृष्णदास कविराज कहते है कि राधा-कृष्ण वैसे तो एक ही रूप है, केवल लीला करने के लिए दो रूप धारण करते है।[1] अत प्रेम भक्ति प्रचार करने के लिए जब कृष्ण आए तब राधा का भाव और वर्ण दोनो लेकर आए। यदि राधा का भाव लेकर न आते तो प्रेम करना, जो आश्रय जाति का काम है, कृष्ण विषय होकर अकेले कैसे सिखाते। अत चैतन्यदेव के रूप मे कृष्ण राधा-सयुक्त होकर अवतरित हुए।[2] उनका अन्तर का वर्ण तो भिन्न है (कृष्ण है), बाहर का वर्ण श्री राधा की अगकाति है।[3]

इस प्रकार गौड देश के वैष्णव-भक्त चैतन्यदेव के स्वय कृष्णत्व में बाधा देने वाले उनके गौर वर्ण की समस्या को सुलझा लेते है। यह मत उन्होंने निर्विवाद रूप से और दृढ विश्वास के रूप में माना है। कृष्णदास एक स्थान पर भागवत से उद्धरण लेकर यह भी कह देते है कि चैतन्य का अवतार उसमें दिया ही है, क्योकि भागवत कहती है कि भगवान का जो अवतार कलियुग मे होता है वह पीतवर्ण का होता है।[4] परन्तु अन्य अभक्त तो शका करेगे ही। कृष्णदास कहते है कि चैतन्यदेव ही कृष्ण है, वे ही राधा है, यह परम विरोधी मत ज्ञात होते हैं परन्तु तर्क करके सशय मत करो। कृष्ण की अचिन्त्य शक्ति इसी प्रकार की है।

---

१. राधाकृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥
(चै. च, आदिलीला, परि ४, पृ २५)

२ प्रेम भक्ति शिखाइते आपने अवतरि।
राधाभाव काति दुइ अगीकार करि॥
(चै च, आदिलीला, परि. ४, पृ. २५)

३ अतरे वरण भिन्न, बाहिरे गौरांग चिह्न,
श्री राधार अगकाति राजे।
(गौ. प त १।३।११)

४ (क) प्रमाण वाक्य जो कृष्णदास ने श्रीमद्भागवत से उद्धृत किया है —
आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुग तनू।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णता गत॥
(चै च आदिलीला, परि ३, पृ १८)

(ख) शुक्ल रक्त पीत वर्ण एइ तिन द्युति।
सत्य, त्रेता, कलिकाले धरेन श्रीपति॥
इदानीं द्वापरे तिहों हैला कृष्ण वर्ण।
एइ सब शास्त्रागम पुराणेर मर्म्म॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १८)

इसी प्रकार कृष्ण-चैतन्य का विहार भी है। तर्क से इसे नही जाना जा सकता। जो नही जानता वह कुभीपाक मे पडता है, उसका निस्तार नही होता।[1]

---

१. सेइ कृष्ण सेइ गोपी परम विरोध ।
अचित्य चरित्र प्रभु अति सुदुर्व्वोध ॥
इथे तर्क करि केह ना कर संशय ।
कृष्णेर अचित्य शक्ति एइमत हय ॥
अचित्य अद्भुत कृष्ण चैतन्य विहार ।
चित्र भाव चित्र गुण चित्र व्यवहार ॥
तर्क इहा नाहि जाने जेइ दुराचार ।
कुभीपाके पचे सेइ, नाहिक निस्तार ॥

(चै. च., आदिलीला, परि १७, प. ८९)

५ इष्टदेव--कृष्ण और राम

कृष्ण--गौडीय वैष्णव समाज में इष्टदेव कृष्ण का बहुत बड़ा स्थान है। वे ही एकमात्र इष्टदेव है, वे ही उपास्य है। वे विष्णु के या ब्रह्म के अवतार नही है। स्वय भगवान है। वे परतत्व, अद्वय ज्ञान है। द्वितीय-रहित ज्ञान को अद्वय ज्ञान कहते है। इसी को तत्व कहते है।[1] स्वय भगवान कृष्ण ईश्वर है। सर्व अवतारी और समस्त सृष्टि के प्रधान कारण हैं।[2] अनन्त वैकुठो के अनत अवतारो के और अनत ब्रह्माडो के आधार है। ये ब्रजेन्द्रनदन है, सच्चिदानद रूप हैं, सर्वैश्वर्यशाली, सर्वशक्तिमान और समस्त रसो मे पूर्ण है। वे ही एकमात्र तत्व वस्तु हैं। समस्त शास्त्र कहते हैं कि कृष्ण स्वय भगवान हैं। वे सब के आश्रय हैं। वे परम ईश्वर है। वे पूर्ण भगवान हैं और ब्रजेन्द्र कुमार है। वे ब्रज मे गोलोक सहित विहार करते है। ये ब्रजेन्द्र कुमार कृष्ण अवतारी नही हैं, स्वय भगवान है।

---

१ (क) स्वय भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्व ।
पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११)

(ख) प्रभु कहे भट्ट तुमि ना कर सशय ।
स्वय भगवान कृष्ण एइ त निश्चय ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ९, पृ १६१)

(ग) अद्वय ज्ञान तत्त्ववस्तु कृष्णेर स्वरूप ।
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १४)

२ ईश्वर परम कृष्ण स्वय भगवान ।
सर्व्व अवतरी सर्व्व कारण प्रधान ॥

(क) अनत वैकुठ आर अनत अवतार ।
अनत ब्रह्माड इहा सवार अधार ॥
सच्चिदानन्द तनु ब्रजेन्द्रनन्दन ।
सर्वैश्वर्य, सर्व्वशक्ति, सर्व्वरसपूर्ण ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४८)

(ख) तत्त्व वस्तु कृष्ण, कृष्ण भक्ति
(चै च, आदिलीला, परि १, पृ १०)

(ग) स्वय भगवान कृष्ण, कृष्ण सर्वाश्रय ।
परम ईश्वर कृष्ण सर्व शास्त्रे कय ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १६)

(घ) पूर्ण भगवान कृष्ण ब्रजेन्द्रकुमार ।
गोलोके ब्रजेर सह करेन विहार ॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १७)

अन्य अवतार उनके कला अश मात्र है।[1] परव्योम में जो नारायण स्वय भगवान हैं, वह भी कृष्ण में आकर अवतार लेता है।[2] कृष्ण ही एकमात्र ईश्वर है और सब उनके सेवक है। जिसे जैसा नचाते है वह वैसे ही नाचता है।[3] वे अवतारी है और सब अवतार भी, अतः उनमे किसी को कुछ दीखता है और किसी को कुछ। कोई कहता है—कृष्ण साक्षात् नारायण हैं, कोई कहता है—वामन है, कोई कहता है—क्षीरोदकशायी अवतार है। सब के ही वचन सत्य है। कृष्ण में जब जो अवतार आकर मिल जाता है वे वही हो जाते है। उनके लिए कुछ भी असभव नही है।[4] वे कृष्ण ही सर्वाश्रय है, उन्ही में समस्त ब्रह्माड अवस्थित है।[5]

कृष्ण का यह अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु का स्वरूप जो है वह प्रकाश विशेष से ब्रह्म, परमात्मा और भगवान तीन रूप धारण करता है।[6] अब यह देखना है कि ब्रह्म, परमात्मा

---

१. अवतार सब पुरुषेर कला अश।
स्वय भगवान कृष्ण सर्व्व अवतंस॥ (चै. च, आदिलीला, परि २, पृ. १४)

२ परव्योमे नारायण स्वय भगवान।
तिंह आसि कृष्ण रूपे करे अवतार॥ (चै. च, आदिलीला, परि २, पृ. १४)

३. एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
जारे जैछे नाचाय से तैछे करे नृत्य॥ (चै च, आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

४. केह कहे कृष्ण हय साक्षात् नारायण।
केह कहे कृष्ण हय साक्षात् वामन॥
केह कहे क्षीरोदकशायी अवतार।
असभव नहे सत्य वचन सबार॥
कृष्ण जबे अवतरे सर्व्वांश आश्रय।
सर्व्वांश आसि तबे कृष्णेते मिलय॥
जेइ जेइ रूपे जाने सेइ ताहा कहे।
सकल सभवे कृष्णे किछु मिथ्या नहे॥ (चै च, आदिलीला, परि ५, पृ ३८)

५. कृष्ण एक सर्व्वाश्रय कृष्ण सर्व्वधाम।
कृष्णेर शरीरे सर्व्व विश्वेर विश्राम॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ १६)

६ (क) अद्वय ज्ञान तत्व वस्तु कृष्णेर स्वरूप।
ब्रह्म, आत्मा, भगवान तिन तार रूप॥ (चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १४)

(ख) प्रकाश विशेषे तेह धरे तिन नाम।
ब्रह्म परमात्मा आर स्वय भगवान॥ (चै च, आदिलीला, परि. ३, पृ. ११)

और भगवान क्या है। जो कुछ ये है वे ही सब कृष्ण भी है। कृष्णदास कविराज ने इन तीनो की कुछ विशेष व्याख्या नही की है। जो उल्लेख है वे भी अधिक स्पष्ट और विशद नही है। चैतन्यदेव ने सनातन को आध्यात्मिकता की शिक्षा दी थी। उनकी यह शिक्षा कृष्णदास कविराज ने चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला के बीसवें परिच्छेद में दी है। चैतन्यदेव कहते है—हे सनातन, कृष्ण के स्वरूप का विचार सुनो। ब्रजेन्द्र नन्दन अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु है। सबके आदि, सर्वांशी, किशोर, शेखर, चिदानन्द स्वरूप, सर्वाश्रय और सर्वेश्वर है। वे स्वय भगवान है,इनका दूसरा नाम गोविन्द है, सर्वैश्वर्यपूर्ण है, गोलोक धाम मे है।[1] ये कृष्ण ज्ञान, योग और भक्ति तीनो साधनो से वश होते हैं। ब्रह्म, आत्मा, भगवान उनका त्रिविध प्रकाश है।[2] चैतन्यदेव कहते है, कि ब्रह्म उन कृष्ण की निर्विशेष प्रकाशयुक्त अगकाति है। वह उसी प्रकार ज्योतिमय दीखता है जैसे सूर्य चर्मचक्षुओ को दीखता है।[3] परमात्मा के लिए भी चैतन्यदेव कहते है, कि परमात्मा जो है वह भी कृष्ण का एक अश है। आत्मा की आत्मा कृष्ण सर्व-अवतश है।[4] फिर भगवान के लिए वे कहते हैं कि भक्त भगवान का अनुभव पूर्ण रूप से ही करता है। भगवान का विग्रह एक ही है पर वह अनत रूपो में है।[5] इतना उल्लेख इन त्रिविध प्रकाशो का मिलता है। फिर इस प्रकार की व्याख्यायें जो मिलती है उनमे कही ब्रह्म, कही ईश्वर, कही भगवान कह कर जो उल्लेख है वे सब जिस ब्रह्म से सबध रखते है वह वही अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु है। प्रकाश विशेष ब्रह्म नही। काशी के मायावादी सन्यासियो

---

१ कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन।
अद्वयज्ञानतत्व वस्तु ब्रजेन्द्रनदन॥
सर्व्वादि सर्व्वअशी किशोर शेखर।
चिदानद देह सर्व्वाश्रय सर्व्वेश्वर॥
स्वय भगवान कृष्ण गोविंद परनाम।
सर्व्वैश्वर्य्यपूर्ण जार गोलोक नित्य धाम॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६१)

२ ज्ञान योग भक्ति तिन साधनेर वशे।
ब्रह्म आत्मा भगवान त्रिविध प्रकाशे॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६१)

३. ब्रह्म अग कांति तार निर्व्विशेष प्रकाशे।
सूर्य जेन चर्मचक्षे ज्योतिर्मय भासे॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६१)

४ परमात्मा जिहों तिहों कृष्ण एक अश।
आत्मार आत्मा हय कृष्ण सर्व्व अवतस॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६१)

५ भक्त्ये भगवानेर अनुभव पूर्णरूप।
एकइ विग्रहे तार अनत स्वरूप॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६२)

को समझाते हुए चैतन्यदेव व्यास-सूत्रो मे वर्णित ब्रह्म की स्वमत से व्याख्या करते हैं। उसी में बहुतसी बातें स्वरूप आदि की आ जाती हैं। वे कहते हैं—ब्रह्म शब्द का मुख्य अर्थ भगवान है। वह चिदैश्वर्य से परिपूर्ण अनूर्द्ध समान है। उनकी विभूतिमयी चिदाकार देह है। चिद्विभूति से आच्छादित होने के कारण ही उसे निराकार कहते हैं। उस चिदानन्दमयी देह में स्थान भेद से प्राकृत सत्व और गुण के विकार आ जाते हैं।[1] वृंदावन से प्रस्थान करते समय चैतन्यदेव ने एक यवन पीर से तर्क किया। वे ईश्वर के सबध मे कहते हैं—"तुम्हारे शास्त्र में निर्विशेष ब्रह्म की स्थापना की गई है। मैं उसका खडन करता हू। जो कुछ शेष रहता है वह सविशेष ईश्वर है। तुम्हारे शास्त्र मे भी तो एक ही ईश्वर बताया गया है। (मेरा स्थापित) ईश्वर सर्वैश्वर्यपूर्ण श्याम कलेवर वाला है। वह पूर्ण ब्रह्म स्वरूप, सच्चिदानन्द देहवाला, सर्वात्मा, सर्वज्ञ, नित्य और सर्वादि स्वरूप है।[2] उसी में सृष्टि और प्रलय स्थित है। स्थूल और सूक्ष्म जगत् का वही आश्रय है। वह सर्वश्रेष्ठ, सबका आराध्य, कारण का भी कारण है।" वही ब्रह्म, भगवान् और कृष्ण है।

---

१. ब्रह्म शब्दे मुख्य अर्थे कहे भगवान ।
 चिदैश्वर्य्य परिपूर्ण अनूर्द्ध समान ॥
 ताहार विभूति देह सब चिदाकार ।
 चिद्विभूति आच्छादिया कहे निराकार ॥
 चिदानद देह तार स्थान परिवार ।
 तारे कहे प्राकृत सत्व गुण विकार ॥
 (चै० च०, आदिलीला, परि० ७, पृ० ४९)

२. (क) प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्विशेष ।
 ताहा खडि सविशेष स्थापियाछे शेष ॥
 तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर ।
 सर्व्वैश्वर्यपूर्ण तिंह श्याम कलेवर ॥
 सच्चिदानद देह पूर्ण-ब्रह्मस्वरूप ।
 सर्वात्मा सर्व्वज्ञ नित्य सर्व्वादिस्वरूप ॥
 सृष्टि स्थिति प्रलय तांहा हैते हय ।
 स्थूल सूक्ष्म जगतेर तिंहो समाश्रय ॥
 सर्व्वश्रेष्ठ सर्वाराध्य कारणेर कारण ।
 तार भक्त्ये हय जीवेर संसारतारण ॥
 (चै च, मध्यलीला, परि १८, पृ २४३)

 (ख) ब्रह्म शब्देर अर्थ तत्त्व सर्व्व वृहत्तम ।
 स्वरूप ऐश्वर्य करि नाहि जार सम ॥
 सेइ ब्रह्म शब्दे कहे स्वय भगवान् ।
 अद्वितीय ज्ञान जाहा विना नाइ आन ॥
 (चै च, मध्यलीला, परि. १४, पृ. २९६)

ऊपर कहा गया है कि कृष्ण और नारायण एक ही हैं, क्योंकि परमतत्व नारायण नाम से परव्योम में बैठता है। प्राकृत-अप्राकृत, जितनी जीव रूपी सृष्टि में सब की जो आत्मा है, कृष्ण उसके मूल रूप हैं। पृथ्वी जैसे घडे का कारण-आश्रय है उसी प्रकार जीवो का निदान और सर्वाश्रय कृष्ण हैं। 'नार' शब्द का अर्थ जीव है और 'अयन' का आश्रय। कृष्ण जीवो के आश्रय हैं, अत नारायण हैं। जीवो मे, ईश्वर मे, पुरुषादि अवतार मे, सबमे कृष्ण का ऐश्वर्य अपार है। कृष्ण अधीश्वर हैं, सर्वपिता हैं, उनकी शक्ति से समस्त जगत् रक्षित है। जीवो (नार) के आश्रय 'अयन' होकर वे पालन करते हैं अत वे नारायण हैं। अनत ब्रह्माण्ड मे जितने वैकुठ आदि धाम हैं और उनमे जितने जीव हैं उनके त्रिकाल के कर्मों के वे साक्षी हैं, तथा सब मर्म जानते हैं। कृष्ण के दर्शन से ही सब जगत् स्थित है। वे न देखें तो किसी की भी स्थिति या गति न रह जाय। जीवो (नार) के आश्रय (अयन) इसी से सब उन्हे देखते हैं अत कृष्ण मूल नारायण हैं।[1] जीव हृदिरूप जल में निवास करने वाला नारायण कृष्ण ही है। यह नारायण सृष्टि करने के लिए तीन जलो में शयन करता है। यह

---

१ प्राकृताप्राकृत सृष्टि जत जीव रूप।
ताहार जे आत्मा तुमि मूल स्वरूप॥
पृथ्वी जैछे घटकुलेर कारण आश्रय।
जीवेर निदान तुमि तुमि सर्व्वाश्रय॥
'नार' शब्दे कहे सर्व जीवेर निचय।
'अयन' शब्देते कहे ताहार आश्रय॥
अतएव तुमि हओ मूल नारायण।
एइ एक हेतु शुन द्वितीय कारण॥
जीवेर ईश्वर पुरुषादि अवतार।
ताहा सवा हैते तोमार ऐश्वर्य अपार॥
अतएव अधीश्वर तुमि सर्व्व पिता।
तोमार शक्तिते तारा जगत् रक्षिता॥
नारेर अयन जाते करह पालन।
अतएव हओ तुमि मूल नारायण॥

तृतीय कारण शुन श्री भगवान्।
अनत ब्रह्माड बहु वैकुठादि धाम॥
इथे जत जीव तार त्रिकालिक कर्म्म।
ताहा देख साक्षी तुमि जान सब मर्म्म॥
तोमार दर्शने सर्व्व जगतेर स्थिति।
तुमि ना देखिले कार नाहि स्थिति गति॥
नारेर अयन जाते कर दरशन।
ताहातेओ हओ तुमि मूल नारायण॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ १३)

ब्रह्माण्ड की आत्मा पुरुष कारणाब्धि, क्षीरोदक और गर्भोदक तीन जलो में शयन करता है। यह सर्व-अतर्यामी है। यह माया द्वारा सृष्टि करता है अत मायी है। हिरण्यगर्भ (सूक्ष्मदेह) की आत्मा होकर गर्भोदकशायी है। जीवो की अतर्यामी व्यष्टि होकर क्षीरोदकशायी है। यद्यपि तीनो रूपो मे माया का व्यवहार करता है परन्तु माया का उसमे स्पर्श भी नही है, सबसे पार है।[1] नारायण कृष्ण की विलास मूर्ति है।[2]

कृष्ण की अनत शक्तिया हैं। इन शक्तियो में से तीन शक्तिया प्रधान है। इनके नाम चिच्छक्ति, मायाशक्ति और जीवशक्ति है। इन्हे अतरगा, बहिरगा और तटस्था शक्ति भी कहते हैं। अतरगा या स्वरूपशक्ति सर्वश्रेष्ठ है। कृष्ण का स्वरूप सत्, चित् और आनदमय है अत यह स्वरूप शक्ति भी तीन प्रकार की है। आनन्द अश से उद्भूत शक्ति ह्लादिनी, सत् अश से उद्भूत सधिनी, और चिद् अश से उद्भूत शक्ति सवित् कहलाती है।[3] बहिरगा मायाशक्ति है जो जगत् की कारण है, इसका वैभव ब्रह्माण्ड मे है। तटस्था शक्ति जीवशक्ति

---

१. कारणाब्धि, क्षीरोद, गर्भोदकशायी।
मायाद्वारे सृष्टि करे ताते सब मायी॥
सेइ तिन जलशायी सर्व्व अतर्य्यामी।
ब्रह्माड वृन्देर आत्मा पुरुष नामी॥
हिरण्यगर्भेर आत्मा गर्भोदकशायी।
व्यष्टि जीव अंतर्यामी क्षीरोदकशायी॥

... ...

जद्यपि तिनेर माया लइया व्यवहार।
तथापि तत्स्पर्श नाइ सबे माया पार॥
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ., १३)

२. प्रभु कहे भट्ट तुमि ना कर संशय।
स्वय भगवान् कृष्ण एइ त निश्चय॥
कृष्णेर विलास मूर्त्ति श्री नारायण॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६१)

३. कृष्णेर अनंत शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति मायाशक्ति जीवशक्ति नाम॥
अतरंगा बहिरंगा तटस्था कहि जारे।
अंतरंगा स्वरूपशक्ति सबार उपरे॥
सच्चित् आनदमय कृष्णेर स्वरूप।
अतएव स्वरूप शक्ति हय तिन रूप॥
आनंदाशे ह्लादिनी सदंशे सन्धिनी।
चिद्अंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

है जो अनन्त है।[1] ह्लादिनी शक्ति कृष्ण के प्रेम का विकार है, सधिनी कृष्ण के शुद्ध तत्त्व का विकार है, सवित् कृष्ण की भगवत्ता का ज्ञान है।

भक्त इन स्वय भगवान कृष्ण का अनुभव पूर्ण रूप मे करता है। ये कृष्ण एक विग्रह वाले हैं परतु उनके स्वरूप अनन्त हैं। कृष्ण मुख्य तीन रूपो मे प्रकाशित होते हैं,—स्वयरूप, तदेकात्म रूप, और आवेश रूप। स्वय रूप में कृष्ण का स्वय प्रकाश है। यह केवल द्वापर में था। यह प्रकाश 'प्रभाव' और 'वैभव' दो रूपो में भासता है। 'प्रभाव' प्रकाश मे कृष्ण का एक वपु अनेक रूपो मे दीखता है, जैसे रास के समय एक कृष्ण वपु है, परतु प्रत्येक गोपी उन्हे अपने पास देखती है। 'वैभव' प्रकाश मे वही वपु और वही रूप होता है, परन्तु अलग सा ज्ञात होता है। यह वैभव प्रकाश बलराम है। तदेकात्म रूप में 'विलास' और 'स्वाश' दो प्रकार है। विलास भी 'प्राभव' और 'वैभव' दो है। कृष्ण के प्राभव विलास सकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। वपु वही है परन्तु आवास और आकार कुछ भिन्न है। इन चारो की तीन तीन मूर्तिया हैं। यह केवल चक्रादि धारण के भेद से है। वासुदेव की मूर्तिया केशव, नारायण, और माधव है। सकर्षण की गोविंद, विष्णु और मधुसूदन हैं। प्रद्युम्न की त्रिविक्रम, वामन और श्रीधर है। अनिरुद्ध की हृषिकेष, पद्मनाभ और दामोदर है।[2] स्वाश का दर्शन प्राय

---

१. चिच्छक्ति, स्वरूप शक्ति, अतरगा नाम।
ताहार वैभवानन्त वैकुठादि धाम॥
माया शक्ति बहिरगा जगत्-कारण।
ताहार वैभवानन्त ब्रह्माडेर गण॥
जीवशक्ति तटस्थाख्य नाहि जार अत।
मुख्य तिन शक्ति तार विभेद अनत॥ (चै. च, आदिलीला, परि. २०, पृ. १६)

२. सक्त्ये भगवानेर अनुभव पूर्ण रूप।
एकइ विग्रहे तार अनत स्वरूप॥
स्वय रूप तदेकात्मरूप आवेश नाम।
प्रथमेइ तिन रूपे रहे भगवान॥
स्वय रूपे स्वय प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्ति।
स्वय रूपे एक कृष्ण ब्रजे गोपमूर्त्ति॥
प्रभाव वैभवरूपे द्विविध प्रकाशे।
एक वपु बहु रूप जैछे हैल रासे॥
• •
वैभव प्रकाश कृष्णेर श्री बलराम।
वर्णमात्र भेद सब कृष्णेर समान॥
• • •
सेइ वपु भिन्नावासे किछु भिन्नाकार।
भावावेशाकृतिभेदे तदेकात्म नाम तार॥
तदेकात्मरूपेर विलास स्वाश दुइ भेद।
विलास स्वाशेर भेद विविध विभेद॥

अवतारो के रूप में होता है। स्वाश के एक भेद मे एक पुरुषावतार संकर्षण और दूसरे भेद में लीलावतार, गुणावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार और शक्त्यावेशावतार हैं। इन सव विग्रहो के वाल्य और पौगड दो ही धर्म हैं।[1] सृजन करने के लिए जो अवतार है, वह पुरुषावतार सकर्षण है। लीलावतार अगणित हैं। इसमे मत्स्य, कूर्म, रघुनाथ, नृसिह, वामन, वाराह आदि है।[2] गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन हैं।[3] मन्वन्तरावतार

प्राभव वैभव भेदे विलास द्विधाकार।
विलासेर विलास भेदे अनंत प्रकार॥
प्राभव विलास वासुदेव संकर्षण।
प्रद्युम्न अनिरुद्ध मुख्य चारि जन॥
... ...
चारि जनेर पुनः पृथक् तिन तिन मूर्त्ति।
केशवादि जाहा हैते विलासेर स्फूर्त्ति॥
चक्रादि धारण भेदे नाम भेद सव।
वासुदेव मूर्त्ति केशव नारायण माधव॥
संकर्षण मूर्त्ति गोविन्द विष्णु श्री मधसूदन।
ए अन्य गोविन्द नहे व्रजेन्द्रनन्दन॥
प्रद्युम्न मूर्त्ति त्रिविक्रम वामन श्रीधर।
अनिरुद्ध मूर्त्ति हृषिकेश पद्मनाभ दामोदर॥ (चै.च, मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६२-६३)

1. प्रकाश विलासेर एइ कैल विवरण।
स्वाशेर भेद एवे शुन सनातन॥
संकर्षण मत्स्यादिक दुइ भेद तार।
पुरुषावतार संकर्षण मत्स्यादि अवतार॥
अवतार हय कृष्णेर षड्विध प्रकार।
पुरुषावतार एक लीलावतार आर॥
गुणावतार आर मन्वन्तरावतार आर।
युगावतार आर शक्त्यावेशावतार॥
वाल्य औ पौगंड हय विग्रहेर धर्म। (चै च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६४)

2. लीलावतार कृष्णेर ना जाय गणन।
प्रधान करिया कहि दिग्दरशन॥
मत्स्य कूर्म रघुनाथ नृसिह वामन।
वराहादि लेखा जार ना जाय गणन॥ (चै. च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६६)

3. लीलावतारेर कैल दिग्दरशन।
गुणावतारेर एवे शुन विवरण॥
ब्रह्मा विष्णु शिव तिन गुण अवतार।
त्रिगुणांगीकरि करे सृष्ट्यादि व्यवहार॥
(चै च, मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)

चौदह हैं। ये यज्ञ, विभु, सत्यसेन, हरि, वैकुंठ, अजित, वामन, सार्व्वभौम, ऋषभ, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर, और बृहद्भानु हैं।[1] युगावतार चारों युगों में होते हैं। शुक्ल, रक्त, कृष्ण और पीतवर्ण धारण करके कृष्ण अवतार लेते हैं।[2] शक्त्यावतार अनंत हैं। इनमें से कुछ मुख्य अवतार सनकादिक, नारद, पृथु, परशुराम इत्यादि हैं।[3]

ऊपर कृष्ण के अनेक स्वरूप जो वैभव, प्रभाव इत्यादि में भासते हैं बताए गए हैं। परन्तु उनका एकमात्र अविकारी, स्वतः सिद्ध नित्य स्वरूप जो अन्यापेक्षी नहीं है, नंदसुत व्रजेन्द्रनंदन गोप मूर्ति, द्विभुज कृष्ण का ही रूप है।[4] यही भक्तों का आधार है। भक्त इसी स्वरूप की उपासना करता है। इससे भिन्न किसी की भी नहीं। यही उनका स्वयं रूप है। उसकी समस्त लीलाओं में नरलीला सर्वश्रेष्ठ है।[5] ये रसमय मूर्ति और साक्षात् शृंगार हैं।[6]

संक्षेप में गौडीय वैष्णव समाज में मान्य इष्टदेव कृष्ण का परिचय पीछे के पृष्ठों में प्रस्तुत किया गया है। राम की विवेचना प्रायः नहीं ही मिलती है। राम को अवतार तो माना गया है। चैतन्यदेव और इष्टदेव का रूप जो पीछे बताया गया, उसे बताते समय उनके कई अवतारों में राम का अवतार भी कह कर उल्लेख आया है। अब दोनों साहित्यों में वर्णित इष्टदेवों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है सोलहवीं शती के वैष्णव साहित्य में तीन इष्टदेव हैं। चैतन्यदेव और वल्लभ उस काल के कुछ भक्तों के समकालीन थे। इन चैतन्यदेव और वल्लभ की भावना (concept) में अन्तर है। दूसरे इष्टदेव जो कृष्ण हैं या राम हैं, किसी भी भक्त के सम्मुख स्थूल देह से उपस्थित नहीं थे। ये इष्टदेव आध्यात्मिक हैं, युगों युगों से पूजित हैं। दोनों के भक्त असंख्य हैं। भक्त अपनी दृष्टि और भक्ति-भावना

---

१ चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६८

२ युगावतार कहि एवे शुन सनातन।
सत्य त्रेता द्वापर कलिजुग वर्णन॥
शुक्ल रक्त कृष्ण पीत क्रमे चारि वर्ण।
चारि वर्ण धरि कृष्ण करे जुग धर्म॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६८)

३ चै च, मध्यलीला, परि. २०, पृ २७०

४. स्वयरूपे स्वय प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्त्ति।
स्वयरूपे एक कृष्ण व्रजे गोपमूर्त्ति॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६२)

५ कृष्णेर जतेक खेला, सर्व्वोत्तम नरलीला, नरवपु ताहार स्वरूप।
गोपवेश वेणु कर, नवकिशोर नटवर, नवलीला, हय अनुरूप॥
(चै च, मध्यलीला, परि २१, पृ २७५)

६ रसमय मूर्त्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ ३१)

विशेष से अपने इष्टदेव की भक्ति-उपासना करते रहे है। वे स्वमत अनुकूल उनकी मूर्ति के दर्शन कराते रहे हैं। परन्तु दोनो ही स्थानो मे इष्टदेवो का जो स्वरूप बताया है उसमे प्राय: सबकी ही विचारधारा अविच्छिन्न और एकरस है। मूल रूप मे इष्टदेव अमित-शक्तिवान्, अमित रूपवान्, अखड, अमित-ऐश्वर्यपूर्ण, पूर्ण भगवान्, एव परम तत्त्व ही है। भक्त अपने भावो के चरम उत्कर्ष में कभी कुछ, कभी कुछ कह कर लीलागान करते है, वह दूसरी बात है। कृष्ण रसमूर्ति है। राम शीलमूर्ति हैं। परन्तु इसमे कोई अन्तर नही पडता। मूलत दोनो एक ही हैं। इष्टदेवो के स्वरूप इत्यादि का विवरण मुख्यतया कृष्णदास कविराज, तुलसीदास, सूरदास और नन्ददास की रचनाओ मे मिलता है। कृष्णदास कविराज ने चैतन्य-चरितामृत मे इष्टदेव का जो तत्त्व निरूपण दिया है, वह अधिक विशद और क्रमपूर्वक है। तुलसीदास और सूरदास ने जो कुछ निरूपण किया है वह प्रसगप्राप्त है। दार्शनिकता और तत्त्वचिंतन की उतनी प्रवृत्ति उसमें नही है। वैसे केवल दार्शनिकता और तत्त्वचिंतन की प्रवृत्ति कृष्णदास मे भी उतनी नही है जितनी रूप और जीव गोस्वामी मे। परन्तु सूर या तुलसी से अधिक अवश्य है। क्योकि राम और कृष्ण मूलत एक ही हैं, इसलिए दोनो को साथ ही ले लिया गया है।

इष्टदेव परब्रह्म है—कृष्णदास कविराज कहते है कि चैतन्य और कृष्ण एक ही है। वे चैतन्य को अद्वैत ब्रह्म परतत्त्व यही कह कर सिद्ध करते है कि कृष्ण यह सब है।[1] ये परब्रह्म कृष्ण परतत्त्व है। ये ही पूर्ण ज्ञान, पूर्णानन्द, सच्चिदानन्द पूर्ण ब्रह्म है। यह ब्रह्म अद्वैत हैं, सब की आत्मा और सब का आदि कारण हैं। कृष्ण अधकार से हीन परम ब्रह्म है। ये परमात्मा और स्वामी है। यह ब्रह्मण्य ज्ञान-विज्ञान के प्रकाशक सच्चिदानन्द नदनदन है। कृष्ण प्रकट पुरुषोत्तम पूर्ण ब्रह्म अविनाशी अलख पुरुष है। इनकी शोभा अपार है, ये अविगत हैं, आदि-अन्त से हीन है।[2] ये इष्टदेव कृष्ण घट-घट-व्यापी आदि सनातन परब्रह्म

---

१. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा।
य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभव.॥
(चै च, आदिलीला, परि १, पृ० १)

२. श्रीपुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु, परम-ब्रह्म परमेष्टि अधारे॥
(परमानंद का पद, प. क त., पद २९७४)

(क) स्वय भगवान कृष्ण कृष्ण परतत्त्व,
पूर्ण ज्ञान पूर्णानन्द परम महत्त्व।
(चै च, आदिलीला, परि. २, पृ ११)

(ख) सच्चिदानंद देह पूर्ण-ब्रह्मस्वरूप।
सर्वात्मा सर्वज्ञ नित्य सर्वादिस्वरूप।
(चै च, मध्यलीला, परि १८, पृ. २४३)

(ग) कृष्न अनावृत परम ब्रह्म, परमातम स्वामी।
(नददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ. १८९)

(घ) जैसेई कृष्न अखंड रूप, चिदरूप उदारा।
(नददास, सिद्धान्त-पंचाध्यायी, पृ १९१)

हैं। वे पूर्ण ब्रह्म हैं।[1] ठीक उसी प्रकार इष्टदेव राम भी परब्रह्म है। वे परमानन्द, निरंजन, निर्गुण, सुख-दुःख-रहित, अलख, अविनाशी, चिदानन्द, व्यापक ब्रह्म हैं। वे परमार्थ ब्रह्म हैं, वे विकाररहित हैं। वेद उन्हे नेति नेति कहते हैं।[2]

इष्टदेव अद्वैत या अद्वय है—गौडीय वैष्णव भक्त और हिन्दी के वैष्णव भक्त दोनों ही यह बात कहते है कि इष्टदेव—कृष्ण अथवा राम—एक हैं।[3] उनके दो रूप नही हैं। वे

(ड) परम धाम ब्रह्मण्य, ग्यान विज्ञान प्रकासी ।
(नददास, सिद्धान्त-पचाध्यायी, पृ. १८४)

(ट) सघन सच्चिदानद नद नदन ईश्वर जस ।
(नददास, सिद्धान्त-पचाध्यायी, पृ १८४)

(ठ) पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम नित निज लोक विलासी ।
अविगत, आदि अनत अनूपम अलख पुरुष अविनाशी ॥ (सू सा)

१. (क) आदि सनातन परब्रह्म प्रभु घट-घट अतरजामी ।
सो तुम्हरे अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी कै (सू सा १०।८६, पृ २९०)

(ख) आदि सनातन, हरि अविनासी । सदा निरतर घट-घट वासी ॥
पूरन ब्रह्म, पुरान बखानै । चतुरानन सिव अन्त न जानै ॥
(सू सा १०।३, पृ २५५)

(ग) पूरन ब्रह्म सनातन वेई, मै भूल्यो ससार ।
(सू सा १०।९७४, पृ ५९५)

२ (क) व्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन विगत विनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(रा च. मा, बा १९८, पृ १००)

(ख) व्यापकु ब्रह्म अलखु अविनासी । चिदानदु निरगुनु गुनुरासी ॥
(रा च मा, बा ३४१, पृ १६९)

(ग) रामु ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल विकार रहित गतभेदा । कहि नित नेति निरूपहि बेदा ॥
(रा च मा, अ ९३, पृ २१८)

(घ) तात राम कहु नर जनि मानहु । निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
(रा च मा, कि २६, पृ ३६७)

३. (क) कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन ।
अद्वयज्ञानतत्ववस्तु व्रजेन्द्र नदन ॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६१)

(ख) अद्वय ज्ञान तत्ववस्तु कृष्णेर स्वरूप ।
(चै च, आदिलीला परि २, पृ १४)

(ग) तत्त्ववस्तु कृष्ण, कृष्ण-भक्ति प्रेमरूप ।
(चै च, आदिलीला, परि १, पृ १०)

अद्वितीय हैं। उनके समान कोई भी नही है। उस अद्वितीय इष्टदेव को गौडीय वैष्णव साहित्य में 'अद्वय' कहा है और हिन्दी वैष्णव साहित्य मे वह अद्वैत है। इष्टदेव कृष्ण अद्वय-ज्ञान-तत्त्व-वस्तु है। द्वितीय-रहित ज्ञान ही अद्वय ज्ञान या तत्त्व है और यह कृष्ण हैं। भागवत के श्लोको की स्वमत से व्याख्या करते हुए चैतन्यदेव प्रकाशानन्द से, जो मायावादी सन्यासी थे, कहते हैं—भगवान् ने स्वय ब्रह्मा से कहा है कि सृष्टि के आरम्भ में मै ही था। समस्त प्रपच और प्रकृति, पुरुष इत्यादि सब मुझ मे ही है। सृष्टि करके उसके मध्य मे मैं ही बैठता हू। प्रलय के अन्त में भी मै ही रह जाता हू। यह सब प्रपच जो दीखता है मेरा ही है।[1] क्योकि कृष्ण एकमात्र तत्त्व स्वयं भगवान् है,[2] अत यह एकमात्र भगवान् भी वही हैं अर्थात् कृष्ण अद्वितीय है। इष्टदेव कृष्ण ही अकेले ईश्वर हैं और सब देवता उनके सेवक है।[3] सूरदास भी इसी प्रकार कहते हैं। प्रसग भी वही भागवत के भगवान् ब्रह्म के सवाद का है। भगवान् कहते है —मैं पहले एक ही था। मैं अमल, अकल, अज हू, परन्तु एक होने पर भी अनेक रूपो में अनेक वेशो मे दीखता हू। अन्त मे अपने इन गुणो को छोडकर मैं ही रह जाऊगा। हरि आदि सनातन अविनाशी और निरतर घटघटवासी हैं। पुराण उन्हे पूर्ण ब्रह्म कहते हैं। वे ही एकमात्र पुरातन पुरुष हैं। वे कृष्ण जो सूर के इष्टदेव हैं, आदि-अनादि-रूप-रेख-हीन हैं, इससे भिन्न और कोई प्रभु नही है।[4] इष्टदेव राम भी अद्वितीय है। अगणित भुवनो मे

---

१. सृष्टि पूर्वे षडैश्वर्य्य पूर्ण आमित हइये।
प्रपंच प्रकृति पुरुष आमातेइ लये॥
सृष्टि करि तार मध्ये आमित वसिये।
प्रपच जे देख सब सेह आमि हइये॥
प्रलये अवशिष्ट आमि पूर्ण हइये।
प्राकृत प्रपंच पाय आमातेइ लये॥
(चै. च., मध्यलीला, परि २५, पृ. ३१३)

२. स्वयं भगवान कृष्ण कृष्ण, परतत्व।
(चै. च., आदिलीला, परि. २, पृ. ११)

३. एकले ईश्वर कृष्ण आर सब भृत्य।
(चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. ३८)

४. (क) पहिले हौं ही हौं तब एक।
अमल, अकल, अज, भेद विवर्जित सुनि विधि विमल विवेक।
सो हौं एक अनेक भाति करि सोभित नाना भेष।
ता पाछे इन गुननि गए तें, हौं रहिहौं अवसेष॥
(सू. सा., २।३८, पृ. १२७)

(ख) आदि सनातन, हरि अविनासी।
सदा निरंतर घट-घट वासी॥ (सू. सा., १०।३, पृ. २५५)

(ग) आदि अनादि रूप-रेखा नहि,
इनतें नहि प्रभु और बियौ॥ (सू. सा., १०।८५, पृ. २८९)

असख्य देवता है परन्तु अकेले राम एक ही है। उनके समान न तो किसी का रूप ही है और न कोई स्वामी ही है। वे राम उन सब देवताओ से पूजित है, पर वे एक ही है।[1]

इष्टदेव सगुण है या निर्गुण—प्राय सब भक्त लेखकों ने जिन्होंने अपने अपने इष्ट-देवो का तत्त्व-विश्लेषण किया है और उन पर अपने विचार प्रकट किए है उन्होंने इष्टदेव को 'सगुण' ही बताया है। वे जिस ब्रह्म के स्वरूप है वह तो निर्गुण है। परब्रह्म कृष्ण भी निर्गुण है, परब्रह्म राम भी निर्गुण है, परन्तु इष्टदेव कृष्ण सगुण है, इष्टदेव राम भी सगुण ही है। वह निर्गुण ब्रह्म ध्यान की वस्तु है, परन्तु उपासना की नहीं। वह ज्ञान मे जाना जा सकता है पर उससे प्रेम नही किया जा सकता। बिना प्रेम किए भक्त को सतोष कहा! अत निर्गुण ब्रह्म सगुण कृष्ण और सगुण राम हो कर आता है। ऐसा वह भक्तो के लिए ही करता है। वेद-उपनिषद् जिसे निर्गुण बताते है वही सगुण होकर नन्द की दावरि मे बधता है।[2] गोपाल नन्द के आगे हसते है, निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप रख कर हस रहा है परन्तु वे उसे पुत्र कर के समझते है। जो ब्रह्म व्यापक, निरजन, निर्गुण, और विनोदरहित है वह प्रेम भक्ति के

(घ) मोहि भावे देवाधि देवा।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन, गोकुल नाथ एक मेवा ॥
(परमानद दास का एक पद)

१ (क) पूजहि प्रभुहि देव बहु वेषा। राम रूप दूसर नहि देखा ॥
(रा च मा, बाल, ५५, पृ ३२)

(ख) अगनित भुवन फिरेउ प्रभु राम न देखेउ आन ॥
(रा च मा, उ ८१, पृ ५३३)

(ग) जाकी कृपा लव लेस तें मतिमद तुलसीदास हू।
पाएउ परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहू ॥
(रा च मा, उ १३०, पृ ५६८)

(घ) हो प्रभु सुद्ध तत्व मय रूप।
एक रूप पुनि नित्य अनूप ॥ (नददास, दशमस्कध, अ २७, पृ ३१५)

२. (क) वेद-उपनिषद जासु कौं निर्गुनहि बतावै।
सोइ सगुन ह्वै नद की दावरी बधावै ॥ (सू सा, ११४, पृ २)

(ख) हसत गोपाल नद के आगें नद सरूप न जान्यौ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन लीलाधर सोई सुत करि मान्यौ ॥
(सू सा, १०।२६३, पृ ३४९)

(ग) व्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन बिगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(रा च मा, वा १९८, पृ. १००)

(घ) व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि करत चरित्र अनूप ॥
(रा च मा, वा २०५, पृ १०३)

कारण ही कौशल्या की गोदी में हैं। तुलसीदास ने वार वार राम को सगुण-निर्गुण रूप कहा है।[1] वे निर्गुण होते हुए भी 'गुनरासी' है। ये हिन्दी वैष्णव कवि अपने इष्टदेवो को निर्गुण मूल रूप में तो मानते हैं परन्तु उपास्य इष्टदेव के रूप मे वह सगुण ही हैं। सूरदास कहते हैं कि अविगत की गति तो उसी प्रकार कहते नही वनती जैसे गूगा मीठा खाकर उसका स्वाद नही कह सकता, वह अविगत मन वाणी से अगोचर है। जान कर पाया ही जा सकता है, परन्तु रूप-रेखा-गुण-जाति से विहीन वस्तु की ओर किस अवलवन से जाया जाय! वह निर्गुण विचार के लिए सव तरह से अगम है। अत 'सूर' 'सगुण' लीला गाता है।[2] तुलसीदास कहते है, सगुण, अगुण मे कुछ भेद ही नही है। अगुण-अरूप-अलख जो है वह भक्त के प्रेम के वश में सगुण हो जाता है। जो गुणरहित है, वह सगुण कैसे है,—जैसे जल और हिम अलग अलग होते हुए भी एक ही है।[3]

गौडीय वैष्णव भक्तो की विचारधारा इस सवध मे कुछ दूसरे प्रकार की ही दीखती है। उसमे इष्टदेव के निर्गुणत्व पर कुछ अधिक विश्वास नही दीखता। चैतन्यदेव भी ब्रह्म हैं, कृष्ण भी ब्रह्म है, परन्तु निर्गुण ब्रह्म है या नही इसका स्पष्ट कथन प्राय. नही ही है। कृष्णदास कविराज कहते है, कि उपनिषद् जिसे निर्गुण अद्वैत ब्रह्म कहते है वह चैतन्य की अगकाति है। अर्थात् चैतन्य तो देहधारी सगुण इष्टदेव है, निर्गुण ब्रह्म चैतन्य नही है। हो भी कैसे सकता है। वह उनकी अगकाति मात्र है।[4] कृष्ण ही तो प्रकाश विशेष से तीन

---

१. (क) जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
(रा च मा., अर २२, पृ ३४३)
(ख) जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
(रा च मा, उ १३, पृ. ४९६)
(ग) जय निर्गुन जय जय गुन सागर।
(रा च. मा, उ ३४, पृ. ५०९)

२. अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूंगै मीठे फल को रस अंतरगत हीं भावै॥
.. .. ..
मन-वानी कौं अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-विनु निरालव कित धावै॥
सव विधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै॥ (सू सा १।२, पृ. १)

३. सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।
गावहि मुनि पुरान वुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई।
भगत प्रेम वस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें।
जलु हिम उपल विलग नहिं जैसें॥
(रा च मा, वा. ११५, पृ ६२)

४. यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदप्यस्य तनुभा। (चै च, आदिलीला, परि १, पृ. १)

रूप रखते हैं, जिनमें एक ब्रह्म भी है ।[1] फिर आगे चलकर यह विचार और अधिक स्पष्ट किया गया है । चैतन्यदेव ब्रह्म को भी सविशेष ही मानते हैं । व्यास-सूत्र अथवा वेद सबके मुख्य अर्थ लो, तो वे भी भगवान् को निर्विशेष (निर्गुण) नही बताते । वे भी उन्हे सविशेष कहते हैं । जो उसे निर्विशेष बताते हैं वह प्राकृत अर्थ को छोडकर अप्राकृत की स्थापना करते हैं । ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति है, उसी मे जीता है और उसी मे लय हो जाता है । इसके साथ जो अपादान, करण और अधिकरण कारक हैं, ये ब्रह्म का सविशेष होना बताते है ।[2] निर्गुण ब्रह्म तो कृष्ण की अगकाति है । नददास भी ऐसा ही कहते हैं ।[3] भगवान् ने जब अनेक होने का मन किया तब प्राकृत शक्ति की ओर देखा । परन्तु यह तो नही कहा जाता कि उस समय उनके प्राकृत नेत्र हो गए जिससे उन्होने देखने की क्रिया की । उस ब्रह्म के नेत्र आदि इद्रिया एव मन तो है परन्तु अपाचभौतिक है । अर्थात् ब्रह्म अपाचभौतिक रूप से सगुण है । श्रुति कहती है कि ब्रह्म 'अपाणिपाद 'है, परन्तु फिर कहती है कि वह जल्दी चलता है और सब ग्रहण कर लेता है । अर्थात् सब कार्य करता है अत वह निर्विशेष कैसे हुआ ? वह तो सविशेष है । यह ब्रह्म पूर्ण स्वय भगवान् हैं, कृष्ण है । जिनका विग्रह ही षडैश्वर्य, पूर्णानद है । उस समय भगवान् को निराकार कैसे कहा जा सकता है । जिस ब्रह्म में

---

१. प्रकाश विशेषे तेंह धरे तिन नाम ।
ब्रह्म, परमात्मा, आर स्वय भगवान ॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११)

२ वेद पुराणे करे ब्रह्म निरूपण ।
सेइ ब्रह्म बृहद्वस्तु ईश्वर लक्षण ॥
सर्वैश्वर्य परिपूर्ण स्वय भगवान ।
तांरे निराकार करि करह व्याख्यान ॥
निर्विशेष तांरे कहे जेइ श्रुतिगण ।
प्राकृत निषेधि करे अप्राकृत स्थापन ॥
ब्रह्म हैते जन्मे विश्व ब्रह्मेते जीवय ॥
सेइ ब्रह्मे पुनरपि ह'ये जार लय ॥
अपादान करणाधिकरण कारण तिन ।
भगवानेर सविशेष एइ चिह्न तिन ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३१)

३. (क) तांहार अगेर शुद्ध किरण मडल ।
उपनिषद कहे तारे ब्रह्म सुनिर्मल ॥

कोटि कोटि ब्रह्माडे जे ब्रह्मेर विभूति ।
सेइ ब्रह्म गोविंदेर अगकांति ॥ (चै च, आदिलीला, परि २, पृ ११)

(ख) मोहन अद्भुत रूप, कहि न आवै छबि ताकी ।
अखिल अड व्यापी जु ब्रह्म, आभा है जाकी ॥
(नददास, रासपचाध्यायी, अ १, पृ १५८)

स्वाभाविक रूप से तीन शक्तिया है, उसे निर्गुण कहने से वह शक्तिहीन हो जाता है।[1] यवनपीर से तर्क करते हुए भी चैतन्यदेव निर्गुण का निवारण करके सगुण की स्थापना करते हैं। एक ही ईश्वर है परन्तु वह निर्विशेष नही है, सविशेष है।[2] वह सर्वैश्वर्यपूर्ण श्याम कलेवर है। ब्रह्म शब्द के दो अर्थ है, एक तो सर्व महत्व तत्व और दूसरा स्वय भगवान। उस अद्वितीय ब्रह्म के बराबर और कोई नही है। स्वय भगवान कृष्ण यह दोनो ही हैं। नि र्विशेष ब्रह्म ज्ञान का विषय है। भगवान तो भक्ति से प्रकाशित होते हैं। भक्ति निर्गुण निराकार की नही होती। अत कृष्ण सगुण ही हैं।[3] मुख्यार्थ लो तो वेदात भी साकार

---

१. भगवान बहु हैते जबे कैल मन।
प्राकृत शक्ति के तबे कैल विलोकन॥
से काले नाहि जन्मे प्राकृत मन नयन।
अतएव अप्राकृत ब्रह्मेर नेत्र मन॥
ब्रह्म शब्दे कहे पूर्ण स्वयं भगवान।
स्वय भगवान कृष्ण शास्त्रेर प्रमाण॥
वेदेर निगूढ अर्थ बुझने ना जाय।
पुराण वाक्ये सेइ अर्थ करये निश्चय॥
अपाणि श्रुति वर्ज्जे प्राकृत पाणि चरण।
पुनः कहे शीघ्र चले करे सर्व्वग्रहण॥
अतएव श्रुति कहे ब्रह्म सविशेष।
मुख्य छाडि लक्षणाते माने निर्विशेष॥
षडैश्वर्य पूर्णानन्द विग्रह जाहार।
हेन भगवाने तुमि कह निराकार॥
स्वाभाविक तिन शक्ति जेइ ब्रह्मे हय।
निःशक्ति करिया तारे करह निश्चय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ६, पृ. १३१-३२)

२. प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्विशेष।
ताहा खंडि सविशेष स्थापियाछे शेष॥
तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर।
सर्व्वैश्वर्य पूर्ण तिह श्याम कलेवर॥ (चै. च, मध्यलीला, परि. १८, पृ. २४३.)

३. ब्रह्म शब्देर अर्थ तत्व सर्व्ववृहत्तम।
स्वरूप ऐश्वर्य करि नाहि जार सम॥
सेइ ब्रह्म शब्दे कहे स्वय भगवान।
अद्वितीय ज्ञान जाहा विना नाइ आन॥
सेइ दुइ तत्व कृष्ण स्वयं भगवान।
तिनकाले सत्य सेइ शास्त्रेर प्रमाण॥

ब्रह्म का निरूपण करता है।[1] वह इष्टदेव सर्वश्रेष्ठ सर्वाराध्य, कारण का कारण है। उसकी भक्ति से ससार से तर जाते हैं। उसकी चरणसेवा पूर्णानद की प्राप्ति है, मोक्षादि उसके सामने तुच्छ हैं। निर्विशेष की व्याख्या की जाती है परन्तु सेव्य तो साकार ही है।[2] इस प्रकार के कथनो का तात्पर्य यही है कि गौडीय वैष्णवो के इष्टदेव सविशेष (सगुण) भगवान हैं, वे ब्रह्म रूप मे अद्वितीय तो हैं पर निर्गुण नही हैं। वे पुरुषोत्तम हैं, परमेश्वर हैं।[3]

इष्टदेव नारायण हैं—इष्टदेव कृष्ण नारायण हैं, इस बात को कृष्णदास कविराज ने कुछ अधिक विस्तार मे कहा है। यह सब तर्क पीछे दिए जा चुके हैं। कृष्ण प्राणियो के रक्षक, पालक और उनके कर्मों के देखने वाले हैं। अत नारायण हैं। हिन्दी वैष्णव कवि भी इस बात को कहते हैं। हरि अपने अश को लेकर प्रगटे हैं, अति आनद स्वरूप नारायण ने इस रूप में भू का भार हरण किया है।[4] मोहन अद्भुत रूप वाले हैं, वे परमात्मा, परब्रह्म, सब के स्वामी हैं, नारायण भगवान हैं।[5]

ज्ञानमार्गे निर्व्विशेष ब्रह्म प्रकाशे।
योगमार्गे अतर्यामी स्वरूपेते भासे॥ ..
राग भक्ते व्रजे स्वय भगवान पाय। (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ. २९६)

१ वेदात मते ब्रह्म साकार निरूपण।
निर्गुण व्यतिरेके तेँह हयत सगुण॥ (चै च, मध्यलीला, परि २५, पृ ३११)

२ सर्व्वश्रेष्ठ सर्व्वाराध्य कारणेर कारण।
तार भक्त्ये हय जीवेर ससारतारण॥
तार सेवा विना जीवे ना जाय ससार।
ताहार चरणे प्रीति पुरुषार्थ सार॥
मोक्षादि आनव जार नहे एक कण।
पूर्णानन्द प्राप्ति तार चरण सेवन॥

निर्विशेष गोँसाजि लञा करेन व्याख्यान।
साकार गोँसाजि सेव्य कार नाहि ज्ञान॥ (चै च, मध्यलीला, परि १८, पृ २४३)

३ श्री पुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु
परम ब्रह्म परमेष्टि अधारे। (प क त पद २९७४)

४ अपने अश आप हरि प्रकटे पुरुषोत्तम निज रूप।
नारायन भुव-भार हरो है अति आनन्द-स्वरूप॥
(अष्ट व स, पृ ४०९ से उद्धृत)

५ (क) मोहन अद्भुत रूप
परमात्मा परब्रह्म, सबन के अन्तर्जामी।
नाराइन भगवान, धर्म करि सबके स्वामी।
(नददास, रासपचाध्यायी, अ १, पृ १५९.)

इष्टदेव विष्णु हैं—इस बात का स्पष्ट उल्लेख दोनो ही के साहित्य में मिलता है कि विष्णु कृष्ण के एक गुणावतार हैं। कृष्ण के अनेक अवतार है। उनमे से कुछ गुणावतार हैं। ये गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र है। यज्ञ पुरुष कहते है कि ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र ये तीनो ही मेरे रूप हैं। शभु, विरचि और विष्णु भगवान उसी अश से जन्मे है।[1] इन उल्लेखों से यह ध्वनि निकलती है कि कृष्ण और राम विष्णु से बड़े हैं। वे अशी हैं और विष्णु अश,[2] परन्तु हिन्दी में कई स्थलो पर विष्णु और राम अथवा कृष्ण एक ही बताए गए है। राम की वदना करते हुए अत्रि उन्हे 'इदिरापति' कहते है, शिव उन्हें विष्णु मान कर 'जय राम रमा रमन समन' कह कर उनकी वदना करते है। तुलसीदास स्वय उन्हे 'रमा निवासा' कहते हैं।[3] सूरदास कृष्ण लीला वर्णन मे कृष्ण के उन पदो के बारे मे कहते हैं जो पद काली के फन पर नृत्य करते हैं कि ये पद रमा अपने हृदय में रखती है और गगा उन्हे स्पर्श करके आई है।[4] कृष्णदास ने विष्णु का नाम तो कई स्थानो पर लिया है, चैतन्य के पिता, स्वय वे, एव उनकी माता सब विष्णु की पूजा

(ख) षट गुन अरु अवतार धरन नाराइन जोई।
सबकौ आश्रय अवधि-भूत नद नन्दन सोई।
(नंददास, सिद्धान्त पचाध्यायी, पृ. १८३)

१ (क) अवतार हय कृष्णेर षडविध प्रकार।
पुरुषावतार एक लीलावतार आर॥
गुणावतार आर मन्वन्तरावतार आर।....
(चै च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६४)

(ख) जज्ञ प्रभु प्रगट दरसन दिखायौ।
विष्नु-विधि-रुद्र मम रूप ये तीनिहूं, वच्छ सौं वचन यह कहि सुनायौ।
(सू. सा, ४।६, पृ. १४१)

(ग) संभु बिरचि विष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।
(रा. च मा, बा. १४४, पृ. ७५)

२. पालनार्थ स्वाश विष्णुरूपे अवतार। सत्वगुण दृष्टात ताते गुण मायापार॥
स्वरूप ऐश्वर्य्य पूर्ण कृष्णमय प्राय। कृष्ण अशी तिहो अश वेदे हेन गाय।
(चै. च, मध्यलीला., परि. २०, पृ २६७)

३. (क) नमामि इंदिरापतिम् .. (रा च. मा, अर ४, पृ. ३२१)

(ख) जय राम रमा रमनं समनं।
भव ताप भयाकुल पाहि जन। (रा. च. मा., उ १४, पृ. ४९७)

(ग) प्रनमामि निरंतर श्री रमन।.... (रा. च. मा., उ. १४, पृ. ४९८)

४. ठाढे देखत हं व्रजवासी।
.. .. ..
जे पद-कमल रमा उर राखति,
परसि सुरसरी आई। (सू. सा., १०।५६८, पृ. ४५४)

करते थे, पर उन्हें वे कृष्ण के बराबर नही बताते। हा, चैतन्य को 'तुमि विष्णु' वृदावनदास कहते हैं। चैतन्य कृष्ण हैं अत कृष्ण भी विष्णु हुए। हिन्दी वैष्णव भक्त कई स्थलो पर कुछ इस प्रकार का वर्णन करते है, जहा विष्णु ही कृष्ण अथवा राम मे बडे ज्ञात होते है और भू-भार हरने के लिए कृष्ण और राम का अवतार लेते है।[1] परन्तु गौडीय वैष्णव कवियो ने इस प्रकार कहा हो, ऐसा प्राय ज्ञात नही होता। तुलसी और सूर की रचनाओ में कई स्थानो पर ऐसी ध्वनि निकलती थी कि एक भगवान है जो अच्युत है, क्षीरसागरशायी है, रमा सेवित है, भृगुलता उनके हृदय पर है, गगा उनके चरणो से निसृत हुई है। यही रूप विष्णु का भी है। अत ये भगवान और कोई नही, विष्णु है। वे विष्णु, राम और कृष्ण के रूप में आए। परन्तु गौडीय वैष्णव समाज के कृष्ण तो स्वय भगवान है, परतत्व है, अत वे विष्णु के अवतार नही हैं। विष्णु उनके अश हैं। पालन करने के लिए कृष्ण स्वरूप होकर प्रकाशित होते है। ब्रह्मा-शिव भी कृष्ण के आज्ञाकारी भक्त अवतार हैं।[2] ये लोग विष्णु को कृष्ण के स्वाश का अवतार मानते है, जब कि हिन्दी वैष्णव भक्त विष्णु को

---

१. (क) कस बस को नास करत है, कह लौं जीव उबारौं।
यह बिपदा कब मेटहि श्रीपति, अरु हौं काहि पुकारौं॥
धेनु-रूप धरि पुहुमि पुकारी, सिव बिरचि कैं द्वारा।
सब मिलि गए जहा पुरुषोत्तम, जिहि गति अगम अपारा॥
छीर समुद्र मध्य तैं यौं हरि, दीरघ बचन उचारा।
उधरौं धरनि असुर कुल मारौं, धरि नर-तन-अवतारा॥
(सू. सा, १०१६४, पृ २५७)

(ख) चरन-कमल नित रमा पलोवै।
चाहति नैकु नैन भरि जोवै॥
अगम अगोचर लीला-धारी।
सो राधा-बस कुज-बिहारी॥ (सू सा. १०१३, पृ. २५६)

(ग) सुनि बिरचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मति धीर॥
जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवन्ता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कता॥

• • •

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा॥
असन्ह सहित मनुज अवतारा।
लेहौं दिनकर बस उदारा॥
(रा च मा, बा १८५-१८७, पृ ९३-९५)

२. ब्रह्मा शिव आज्ञाकारी भक्त अवतार।
पालनार्थे विष्णु कृष्णेर स्वरूप आकार॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ २६७)

कृष्ण-राम रूप में अवतरित वताते हैं। यहा पर ये विष्णु राम-कृष्ण से भी ऊचे परम ब्रह्म, ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाते हैं। जय विजय जो विष्णु के द्वारपाल थे, मुनि के शाप से कुभकर्ण और रावण होकर जन्मे थे, उनके उद्धार के लिए विष्णु राम होकर आए। नारद के शाप के कारण भी विष्णु राम होकर आए।[1] व्रज में कृष्ण भी वपुधारी श्रीपति हैं।[2] चैतन्यचरितामृत में विष्णु को मायातीत गुणातीत परमेश कहा गया है। चैतन्य-जन्म से पहले ससार विष्णु-भक्ति-शून्य था, यवन विष्णु-द्रोही थे, यह वृदावनदास ने कहा है।[3] परन्तु इन कथनो से विष्णु का श्रेष्ठत्व तो सिद्ध होता है परन्तु उनका और कृष्ण का अभेद नही सिद्ध होता। प्रकाशानद ने चैतन्यदेव को ब्रह्म कह कर प्रणाम किया और वदना की। इस पर चैतन्यदेव ने कहा, "विष्णु! विष्णु! मैं हीन जीव हू। जीव को विष्णु मानना अपराध का चिह्न है। जो जीव में विष्णु-वुद्धि करता है वह ब्रह्म-रुद्र को नारायण के वरावर मानता है, वह पाखडी है।"[4] इस कथन से भी विष्णु का श्रेष्ठत्व तो सिद्ध होता है परन्तु वे नारायण है या नही, यह नही जाना जाता। गोविंद-कृष्ण नारायण नाम से परव्योम में वैठते हैं, यह तो पीछे कहा जा चुका है। परन्तु विष्णु कृष्ण नही हैं, प्राय ऐसा ही आभास मिलता है।

इष्टदेव अवतारी है या अवतार—गौडीय वैष्णव कवि इस वात का अत्यन्त दृढ विश्वास के रूप में प्रतिपादन करते है कि इष्टदेव कृष्ण-अवतार नही है। वे स्वय भगवान

---

१. द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु विजय जान सव कोऊ॥
विप्र स्राप तें दूनौ भाई।
तामस असुर देह तिन्ह पाई॥
.. .. ..
एक वार तिन्ह कें हित लागी।
धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥
(रा च. मा., वा. १२२-१२३, पृ. ६५)

२. तुम जानत जव धरनि पुकारी। पापहिं पाप भई अति भारी॥
पौढें सेप संग श्री प्यारी। ते व्रज भीतर हें वपुधारी॥
(सू. सा, १०।९४५, पृ ५८५)

३. (क) मायातीत गुणातीत विष्णु परमेश।...
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६७)
(ख) अन्येर कि दाय विष्णुद्रोही जे यवन।... (चै. भा, आदिखंड, अ ३, पृ. २१)

४. प्रभु कहे विष्णु विष्णु आमि जीव हीन।
जीवे विष्णु मानि एइ अपराध चिह्न॥
जीवे विष्णुवुद्धि करे जेइ ब्रह्म रुद्र सम।
नारायणे माने तार पाखडे गणन॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. ३१२)

हैं। चैतन्य के रूप मे अथवा गोप-वशी-कृष्ण के रूप में जो इष्टदेव हैं वे नित्य-धाम-अवस्थित कृष्ण ही हैं, अर्थात् कृष्ण ही कृष्ण का अवतार है। वे ही अवतार हैं, वे ही अवतारी। वे ही अश हैं, वे ही अशी। पुरुष के कला-अश समस्त अवतार हैं परन्तु कृष्ण तो स्वय भगवान हैं, अत सब अवतार उन्ही मे अवस्थित है।[1] कोई कृष्ण को वामन कहता है, कोई नारायण। कृष्ण तो पूर्ण भगवान हैं, अवतारी हैं, उनके लिए सब सभव है।[2] एक कृष्ण ही ब्रज में पूर्णतम भगवान हैं और सब स्वरूप या तो पूर्णतर हैं या पूर्ण हैं।[3] ये अवतार या अश कैसे हो सकते हैं? चैतन्यचरितामृत के कृष्ण-तत्व-निरूपण और चैतन्य-तत्व-निरूपण इन दोनो स्थलो मे यही भावना है। कृष्ण ही ब्रह्म हैं, कृष्ण ही परतत्व हैं, कृष्ण ब्रह्म के अवतार नही हैं। वे जब चाहते हैं, लीला करते हैं। जब चाहते हैं, अतर्धान हो जाते हैं। उनकी लीला अनत ब्रह्माडो मे चलती रहती है। इसी से वह नित्य लीला कहलाती है।[4] अद्वय-ज्ञान-तत्व-वस्तु स्वय भगवान श्रीकृष्ण का स्वरूप और शक्ति रूप से अवस्थान है। स्वाश से वे अनेक रूप धारण करते हैं और अनत ब्रह्माडो मे और वैकुठो मे विहार करते हैं। स्वाश का विस्तार चतुर्व्यूह अवतार है।[5] जो नारायण है, वह कृष्ण का अश है। वह नारायण माया को लेकर सृष्टि करता है और उसमें विकार आ जाता है परन्तु कृष्ण तुरीय हैं। उनमें तो माया की गन्ध भी नही है। तीनो जलो में शयन करने वाले जो पुरुष हैं, उन तीनो का अशी तो नारायण है,

---

१ अवतार सब पुरुषेर कला अश ।
स्वय भगवान् कृष्ण सर्व्व अवतस ।।
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १४)

२. सकल सभवे ताते जाते अवतारी। (चै च, आदिलीला, परि ५, पृ ३८)

३ एक कृष्ण व्रजे पूर्णतम भगवान ।
आर सब स्वरूप पूर्णतर पूर्ण नाम ।।
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २७१)

४ किशोर-शेखर धर्मी व्रजेन्द्रनन्दन ।
प्रकटलीला करिवारे जवे करे मन ।।
आदौ प्रकट कराय माता पिता भक्तगणे ।
पाछे प्रकट हय जन्मादिक लीलाक्रमे ।।
पूतना वधादि जत लीला क्षणे क्षणे ।
सब लीला नित्य प्रकट करे अनुक्रमे ।।
. . . . .
कोन ब्रह्माडे कोन लीला हय अवस्थान ।
ताते नित्य लीला कहे निगम पुराण ।।
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २७०-२७१)

५. अद्वय ज्ञान तत्व कृष्ण स्वयं भगवान। स्वरूप-शक्तिरूपे तार हय अवस्थान ।।
स्वाश विभिन्नाश रूपे हइया विस्तार। अनत वैकुंठ ब्रह्माडे करेन विहार ।।
स्वाश विस्तार चतुर्व्यूह अवतारगण। (चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २७९)

परन्तु नारायण भी कृष्ण का प्रकाश-मात्र हैं। नारायण अवतारी हैं, कृष्ण अवतार हैं, अतर केवल इतना ही है कि नारायण चतुर्भुज हैं और कृष्ण द्विभुज, ऐसा कह कर जो नाना प्रकार से पूर्व-पक्ष स्थापित करते हैं उन्हें भागवत वर्जित करती है। शुक ने सब अवतारो का सामान्य लक्षण करके कृष्ण को उसमे रक्खा तो, परन्तु फिर सब से अलग-अलग लक्षण देते समय बता दिया कि कृष्ण सर्वावतंश हैं। पूर्व-पक्ष वाले फिर कहते हैं कि तुम्हारी व्याख्या अच्छी है परन्तु परव्योम मे जो नारायण हैं, वे स्वय भगवान हैं। वे कृष्ण रूप मे अवतार लेते है। परन्तु जब शुक स्वय ही कृष्ण को स्वय-भगवान सर्वावतंश कहते हैं, तब यह अर्थ कुतर्कानुमान ही हैं। कृष्ण अवतारी और अवतार सब के आश्रय हैं।[1] नंददास ने भी ऐसा

---

१. (क) ब्रह्मा कहे जले जीवे जेइ नारायण ।
से सब तोमार अंश ए सत्य वचन ॥
कारणाब्धि क्षीरोद गर्भोदकशायी ।
मायाद्वारे सृष्टि करे ताते नव मायी ॥
.. ..
एसवार दर्शनेते आछे माया गव ।
तुरीय कृष्णेर नाहि मायार सवंव ॥
(चै. च , आदिलीला, परि. २, पृ १३)

(ख) सेइ तिनेर अंशी परव्योम नारायण ।
तेहं तोमार प्रकाश तुमि मूल नारायण ॥
.. .
अवतारी नारायण कृष्ण अवतार ।
तिह चतुर्भुज इह मनुष्य आकार ॥
एइ मते नानारूप करे पूर्व्वपक्ष ।
ताहारे निर्ज्जिते भागवत पद्यदक्ष ॥
..
सर्व्व अवतारेर करि सामान्य लक्षण ।
तार मध्ये कृष्णचन्द्रेर करिल गणन ॥
तबे शुकदेव मने पाञा बड भय ।
जार जे लक्षण ताहा करिल निश्चय ॥
अवतार सब पुरुषेर कला अंश ।
स्वयं भगवान कृष्ण सर्व्व अवतंश ॥
पूर्वपक्ष कहे तोमार भालत व्याख्यान ।
परव्योमे नारायण स्वयं भगवान ॥
तिह आसि कृष्ण रूपे करे अवतार ।
एइ अर्थ श्लोके देखि, कि आर विचार ॥

उल्लेख एक स्थान पर किया है।[1] अवतारी, अवतार और अन्य जितनी विभूतिया हैं, सब के आश्रय और आधार कृष्ण है। नारायण तो कृष्ण का परव्योम मे चतुर्भुज-प्रकाश मात्र है।[2]

हिन्दी के वैष्णव भक्त विष्णु और नारायण को एक ही मानते हैं, ऐसा ज्ञात होता है। यह नारायण विष्णु क्षीर-सागर मे रहते हैं, भक्तो की पुकार पर भू भार हरने राम-कृष्ण के रूप मे अवतरित हुए, यह पीछे कहा है। कस के अत्याचारो से दुखी पृथ्वी और देवता क्षीर-सागर के शेषशायी विष्णु के पास गए थे। उन्होने वचन दिया था कि मैं अवतार लूगा। इसी प्रकार देवता राम-अवतार के लिए भी विष्णु के ही पास गए थे। उन्होंने परम शक्ति के सहित अवतार लेने को कहा था। यह सब विवरण पीछे दिया जा चुका है। हरि अपना अश लेकर स्वय कृष्ण रूप में प्रगट हैं। नारायण ने अति आनद रूप धारण करके भू का भार हरण किया हैं। कृष्ण पूर्ण अवतार हैं, जब जब दानव प्रगट हुए हैं तब तब कृष्ण ने अवतार धर कर असुरो का सहार किया। यद्यपि वे परम हस, अच्युत, अविगत, अविनाशी परमानद हैं, परन्तु शरीर धारण करके भू का भार हरते हैं।[3] तुलसीदास के राम भी अनीह,

---

तारे कहि केन कर कुतर्कानुमान ।
शास्त्र विरुद्धार्थ कभु ना हय प्रमाण ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १४)

(ग) कृष्ण एक सर्वाश्रय कृष्ण सर्व्वधाम ।
कृष्णेर शरीरे सर्व्व विश्वेर विश्राम ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ १६)

१ अवतारी अवतार-धरन, अरु जितक विभूती ।
इह सब आश्रय के अधार, जग जिहि को ऊती ॥
(नन्ददास, सिद्धान्त पचाध्यायी, पृ १९०)

२ परव्योम मध्ये करि स्वरूप प्रकाश। नारायण रूपे करे विविध विलास ॥
स्वरूप विग्रह कृष्णेर केवल द्विभुज। नारायण रूपे सेइ तनु चतुर्भुज ॥
(चै च, आदिलीला, परि ५, पृ ३४)

३ (क) अपने अश आप हरि प्रगटे पुरुषोत्तम निज रूप ।
नारायण भव भार हरो है अति आनन्द स्वरूप ॥
वासुदेव यो कहत वेद में, है पूरन अवतार ॥
सेष सहस मुख रटत निरन्तर तऊ न पावत पार ॥
(सूर सारावली, सू० सा०, (वें० प्रे०) पृ० ६)

(ख) जब जब हरि माया ते दानव प्रकट भये हैं आय ।
तब तब धरि अवतार कृष्ण ने कीन्हीं असुर संहार ॥
(सूर सारावली, सू० सा०, (वें० प्रे०), पृ० २)

(ग) तुम अच्युत अविगत अविनासी। परमानन्द सदा सुख रासी।
तुम तनुधारि हरयो भुव भार, नमो नमो तुम्हें बारबार ॥
(सू० सा० १०।४२९७, पृ० १७०९)

अरूप, अनाम, अज, सच्चिदानन्द, व्यापक भगवान हैं परन्तु वे भी जब धर्म की हानि होती है, तब प्रभु 'विविध शरीर' धारण करके सज्जनो का दु ख दूर करते है।[1] इस प्रकार हिन्दी वैष्णव साहित्य में इष्टदेव निर्गुण ब्रह्म है, विष्णु है, एव नारायण है, यह बताया गया है, परन्तु साथ ही यह भी आभास मिलते हैं कि राम और कृष्ण निर्गुण ब्रह्म, विष्णु, अथवा नारायण के देहधारी अवतार है।

गौडीय वैष्णव साहित्य में कृष्ण को अवतार माना है, इसका आभास कही नही मिलता। कृष्ण नारायण के अशी है, यह पीछे बताया जा चुका है। परम-ईश्वर कृष्ण स्वय भगवान है। उनसे बडा तो क्या, उनके समान भी अन्य कोई नही है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव, ये सब सृष्टि आदि के ईश्वर है परन्तु ये तीनो ही कृष्ण के आज्ञाकारी दास हैं। कृष्ण अधीश्वर हैं।[2] ऐसी भावना सूर-तुलसी ने भी दर्शायी है।[3] परन्तु राम-कृष्ण 'श्रीपति', 'रमानिवास' एव 'हरि' के अवतार है, यह भावना भी प्रत्यक्ष होती है। परन्तु गौडीय भक्त इसका आभास प्राय कही भी नहीं देते कि कृष्ण अवतार है। भू-भार हरने के लिए विष्णु कृष्णावतार लेते है वे इसे नही मानते।[4] उनके कृष्ण तो स्वय ईश्वर परम तत्व है।

(घ) प्रकट ब्रह्म निकुज नायक भक्त हेत अवतार। परमानन्द दास,
(अष्ट० व० स०, फुटनोट पृ० ४१०)

(ङ) कलिमल दूर करन के काजै, तुम लीन्हीं जग में अवतार।
(सू० सा०, १५४१, पृ० १४)

१. (क) एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानद परधामा॥
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥
(रा च मा., बा. १३, पृ. ९)

(ख) जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहिं असुर अधम अभिमानी॥
... ...
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
(रा. च मा, बा, १२१, पृ ६४)

२. परम ईश्वर कृष्ण स्वय भगवान।
ताते बड तार सम केह नाहि आन॥
ब्रह्मा विष्णु हर एइ सृष्ट्यादि ईश्वर॥
तिने आज्ञाकारी कृष्णेर कृष्ण अधीश्वर॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २१, पृ. २७३)

३. (क) करै जो सेव तुम्हारी, सो मम सेव है।
विष्णु शिव ब्रह्म मम रूप सारी॥
(सू. सा, दशमस्कंध, वें. प्रे., पृ. ५९०)

(ख) जाकें बल विरचि हरि ईसा।
पालत सृजत हरत दससीसा॥ (रा च मा, सु. २१, पृ ३८२)

४. स्वयं भगवानेर कर्म्म नहे भार हरण।
(चै. च, आदिलीला, परि. ४, पृ २२)

वे अवतारी है।[1] हिन्दी के वैष्णव भक्त राम-कृष्ण को निर्गुण विष्णु-नारायण की देहधारी सगुण मूर्ति बताते हैं। परन्तु बगाली वैष्णव देहधारी अथवा विदेह का प्रश्न ही नही उठाते ज्ञात होते। कृष्ण का नाम, कृष्ण की देह और कृष्ण का स्वरूप सब समान है। उनके नाम, विग्रह, और स्वरूप तीनो एक ही रूप है। इन तीनो मे भेद नही है। सब ही चिदानद स्वरूप हैं। देह-देही और नाम-नामी का भेद कृष्ण में नही है। नाम, देह और स्वरूप का भेद तो जीव में है। कृष्ण के नाम में ही उनकी देह का विलास अवस्थित है, परन्तु इस देह मे प्राकृत अर्थात् पाचभौतिक इद्रियो का अश नहीं है। उनकी देह स्वप्रकाश से युक्त है। कृष्ण के नाम, गुण, लीला, सब कृष्ण के स्वरूप के समान ही चिदानदमय हैं।[2] तात्पर्य यह हुआ कि कृष्ण किसी के अवतार नही है। गोपवेशी कृष्ण गोलोक निवासी कृष्ण का स्वप्रकाशयुक्त देह विलास है, वे ब्रह्म, विष्णु अथवा नारायण किसी के भी अवतार नही है।[3]

यद्यपि हिन्दी में भी इस प्रकार की भावना मिलती है कि इष्टदेव निर्गुण ब्रह्म हैं, सर्वशक्तिमान ईश्वर है परन्तु साथ ही यह भी भावना मिलती है कि वे निर्गुण ब्रह्म अथवा एक अपार शक्ति के जिसे हरि, भगवान, श्रीपति, नारायण इत्यादि नाम से अभिहित किया है, अवतार भी है। परन्तु बगाली साहित्य मे इस भावना का अभाव-सा ही है। कृष्ण स्वय भगवान है। विष्णु उनके गुणावतार है। नारायण उनका अश है। तुलसीदास राम को चिदानद[4] देह वाले और 'विधि हर शभु' नचावन-हारे कहते तो हैं, परन्तु वही पर वे गगन

---

१. ईश्वर परम कृष्ण स्वय भगवान ।
सर्व्व अवतरी सर्वकारण प्रधान ।।
अनत वैकुठ आर अनत अवतार ।।
अनत ब्रह्माड इहा सवार आधार ।।
सच्चिदानद तनु व्रजेन्द्रनदन ।
सर्वैश्वर्य सर्व्वशक्ति सर्व्वरस पूर्ण ।।

(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४८)

२. कृष्ण नाम कृष्ण स्वरूप दुइत समान ।
नाम विग्रह स्वरूप तिन एकरूप ।
तिने भेद नाहि तिन चिदानद रूप ।।
देह देही नाम नामी कृष्णे नाहि भेद ।
जीवेर धर्म नाम देह स्वरूप विभेद ।।
अतएव कृष्णेर नाम देह विलास ।
प्राकृतेन्द्रिय ग्राह्य नहे हय स्वप्रकाश ।।
कृष्णनाम , कृष्णगुण कृष्णलीलावृद ।
कृष्णेर स्वरूप सम सव चिदानद ।।

(चै च , मध्यलीला, परि १७, पृ २३२)

३ देखो "इष्टदेव नारायण है।"

४. चिदानद मय देह तुम्हारी। (रा च. मा, अ १२७, पृ. २३३)

गिरा से देवताओ की—जिसमें ब्रह्मा-शिव भी सम्मिलित हैं, विष्णु नही—प्रार्थना के उत्तर में कहलाते हैं कि मैं परम शक्ति सहित अवतार लूगा।[1] बगाली साहित्य में कृष्ण 'अवतार' हैं यह शब्द प्राय नही आया है। हिन्दी में तो है। इन्ही अवतारी कृष्ण ने अन्य समस्त अवतार लिए। ये गोविंद देवकीनदन है, इन्होने काली का मर्दन किया, कस को मारा; इन्ही ने मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन और परशुराम के अवतार लिए। ये ही बुद्ध और कल्कि नारायण हैं।[2] चतुर्व्यूह इत्यादि भी कृष्ण के ही अवतार हैं।[3] उसके लिए तो सब ही सभव है जो अवतारी है।[4] सूरदास ने ब्रह्मा के मुख से कहलाया है

---

१. (क) जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ।
तुम्हहि लागि धरिहौं नर वेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा ।
लेहौं दिनकर वंस उदारा ॥
. . .
नारद वचन सत्य सब करिहौं ।
परम सक्ति समेत अवतरिहौं ॥ (रा.च.मा., वा. १८७, पृ. ९५)

(ख) आदि सनातन पर ब्रह्म प्रभु ।
घट घट अतरजामी ॥
सो तुम्हरें अवतरे आनि कैं ॥
सूरदास के स्वामी ॥ (सू.सा., १०।१०८६, पृ. २९०)

(ग) तिहि कुल मैं ईस्वर अवतरे, अस कला विभूति करि भरे ।
मच्छ-कच्छ अवतार विभावन, भूतन के भावन, मनभावन ॥
(नददास, दशम स्कध, अ. १, पृ. १९९)

२. हरे हरे गोविन्द हरे ।
कालिय-मर्दन, कंस-निसूदन, देवकि-नन्दन राम हरे ॥ ध्रु० ॥
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामन भृगुपति रक्ष-कुलारे ॥
श्रीवल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्दन श्री कसारे ॥
. .
दुखिते दया कुरु, देव देवकिसुत, दुर्मति परमानंद परिहारे ॥
(प क त, पृ. २९७४)

३. (क) देखो "इष्टदेव २" ।
(ख) वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध ॥ सर्व चतुर्व्यूह अंशी तुरीय विशुद्ध ॥
(चै. च, आदिलीला, परि. ५, पृ. ३४)

४. अथवा भक्तेर वाक्य मानि सत्य करि ।
सकल संभवे ताते जाते अवतारी ॥
अवतार अवतारी अभेद जे जाने ।
पूर्व्वे जैछे कृष्णकेहो काहो करि माने ॥

कि जो हरि करता है, सोई होता है। राम हरि कर्त्ता हैं। आदि-निरजन निराकार सृष्टि रचने के लिए आदि-पुरुष हुआ। इसी आदि-पुरुष से मच्छ, कच्छ, वाराह, नरसिंह, वासुदेव और बुद्ध हुए, फिर कल्कि भी होंगे। ये ही मन्वन्तर अवतार भी हुए।[1] पार्वती मोह को दूर करते समय शिव ने उनसे बताया कि राम ने अनेक जन्म लिए हैं। हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष को मारने के लिए उन्होंने नरहरि और वाराह का अवतार लिया, फिर जालधर जो रावण होकर जन्मा था, उसे मारने के लिए कौशल्या के घर जन्मे।[2]

इष्टदेव का स्वरूप—इष्टदेव राम और इष्टदेव कृष्ण का दार्शनिक रूप क्या है यह अब तक बताया जा चुका है। वे अद्वितीय, षडैश्वर्यपूर्ण, चिदानद, सच्चिदानद, सर्वाश्रय, सर्वव्यापक इत्यादि हैं। वे नेति हैं परन्तु उनका यह रूप भक्त को आकर्षित नही करता। यह रूप चिन्तन का आधार हो सकता है, प्रेम और उपासना करने का नही। सोलहवी शती तो प्रमुख रूप से भक्ति का युग है ही। सब वैष्णव भक्त इष्टदेव के इस रूप को आस्था की दृष्टि से देखते तो हैं परन्तु वे इस रूप से भिन्न ही स्वरूप को उपास्य इष्टदेव बताते है। सूरदास ने गोपी-उद्धव सवाद में तो इस निर्गुण ब्रह्म की और ब्रह्म ज्ञान की अच्छी हसी की है और सगुण देहधारी कृष्ण की ओर गोपियो की दृढ रति बताई है। कृष्णदास कहते है कि राधा कुरुक्षेत्र मे कृष्ण को देखने गई, परन्तु उनका नारायण, योगी राज रूप देख कर बडी सतप्त हुई, और चली आईं। भक्त को इष्टदेव का जो रूप प्रिय है, वह नराकार है। कृष्ण[3] के जितने खेल हैं उन सब मे नरलीला सर्वश्रेष्ठ है। नरवपु उनका स्वरूप है। ये कृष्ण द्विभुज विग्रह वाले है। यही उनका एक मात्र स्वरूप है। कृष्ण का गोप-वेशी वृन्दावन स्थित

केह कहे कृष्ण हय साक्षात् नारायण।
केह कहे कृष्ण हय साक्षात् वामन॥
केह कहे क्षीरोदकशायी अवतार।
असभव नहे सत्य वचन सबार॥
(चै च, आदिलीला, परि ५, पृ. ३८)

१ सूरसागर द्वितीय स्कध पृ १३६

२ राम चरित मानस, पृ ६५.

३. (क) कृष्णेर जतेक खेला, सर्व्वोत्तम नरलीला, नरवपु ताहार स्वरूप॥
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नव लीला हय अनुरूप॥
कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन॥
(चै च, मध्यलीला, परि २१, पृ २७५)

(ख) स्वरूप विग्रह कृष्णेर केवल द्विभुज।
नारायण रूपे सेइ तनु चतुर्भुज॥
(चै च, आदिलीला, परि ५, पृ ३४)

(ग) स्वयरूपे स्वय प्रकाश दुइ रूपे स्फूर्ति।
स्वयरूपे एक कृष्ण व्रजे गोपमूर्ति॥
(चै च, मध्यलीला, परि. २०, पृ २६२)

रूप ही एक मात्र सत्य है। यही रूप उनका स्वय रूप एव वास्तविक रूप है। गोपवेशी, वेणु-धारी, नवकिशोर नटवर अपने अनुरूप ही नवलीला करते है। इन इष्टदेव की देह चिदानद-मयी है, विकारो से रहित है, और इन्होने देवताओ के हित के लिए नर-शरीर धारण किया है।[१] तुलसीदास कहते है कि कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं, उस निर्गुण ब्रह्म का जिसे श्रुति अव्यक्त कहती है, परन्तु मुझे कोशल के भूप राम का सगुण स्वरूप ही भाता है।[२] इन नराकृति द्विभुज इष्टदेव राम का देह-धर्म चिदानद के अतिरिक्त और भी कुछ है या नही, यह प्राय कही भी तुलसीदास ने नही बताया है। इष्टदेव कृष्ण की देह का धर्म बाल्य और पौगड है। स्वय अवतारी कृष्ण का स्वरूप नित्य किशोर ही है।[३] ये कृष्ण आनद की निधि है, नदकुमार है, परम ब्रह्म है, जगमोहन लीला के लिए नराकृति धारण की है।[४] इष्टदेव राम कोशलपति दशरथ के पुत्र है। इष्टदेव कृष्ण नदकुमार, ब्रजेन्द्रनदन हैं, यह कई बार कहा गया है।[५] ये कृष्ण मोहन है, गोपियो के नाथ और गोपाल है। ये यशोदा

---

१. (क) चिदानद मय देह तुम्हारी ।
बिगत बिकार जान अधिकारी ॥

नर तनु धरेहु संत सुर काजा ।
कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥ (रा. च. मा, अ. १२७, पृ २३३)

(ख) भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ॥
(रा च मा, उ ७२, पृ ५२८)

२. कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव । अव्यक्त जेहि श्रुति गाव ।
मोहि भाव कोसल भूप । श्री राम सगुन सरूप ॥
(रा. च. मा., लं., ११३, पृ. ४७९)

३. (क) अंश शक्त्यावेश रूपे द्विविधावतार ।
बाल्य औ पौगड धर्म दुइत प्रकार ॥
किशोर स्वरूप कृष्ण स्वय अवतारी ॥
(चै च, आदिलीला, परि २, पृ. १६)

(ख) सिसु कुमार पौगड धरम पुनि वलित ललित लस ।
धरमी नित्य-किसोर नवल चित-चोर एकरस ॥
(नददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ १८३)

४. आनँद की निधि नंदकुमार ।
परम ब्रह्म भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार ।
... ...
चरण कमल मकरंद पान कों,
अलि आनद परमानंद दास ॥ (अष्ट व. स, फुटनोट, पृ. ४११)

५. "नंद सुत वलि जोर भागवते गाय"
"स्वयं भगवान कृष्ण ब्रजेन्द्र नंदन" (कृष्णदास की उपितया)
"नंद नंदन पद कमल छाडि कै"

के बाल और नदलाल है।[1] लोचनदास कहते हैं कि उन हरि का भजन मन दृढ करके करो जो व्रजेन्द्रनदन हैं, जो गोपियों के प्राण-धन हैं और भुवन-मोहन श्याम वर्ण हैं, उनका नाम मुख से बार बार लो। सूरदास कहते हैं कि सुर-नर-मुनि जिसका ध्यान करते हैं, वह ठाकुर व्रज में विहार करने वाला गोप है। यह रूप-रतन जो है, वह भक्तो का गूढ धन है जिसे कृष्ण ने अपनी लीला प्रकट करने के लिए प्रगट किया है। भगवन्ता का सार जो माधुर्य है उसे उन्होने व्रज में प्रचारित किया है, उन्ही का भजन करो। इन्ही से प्रीति करो।[2] ये इष्टदेव श्याम वर्ण के हैं। यह श्याम रग नील वर्ण सघन मेघ जैसा है। इस नील वर्ण कलेवर के सौन्दर्य का अन्त नही है।[3] यह श्याम वर्ण अत्यन्त मनोहर है और सुरग है। इसी की छवि

---

१. सब तजि भजिये नदकुमार। (सूर)
परमानद प्रभु तुम चिरजिवो,
नद गोप के लाल। (परमानद दास)

२ श्री कृष्ण कृपालु कृपा निधि, दीन बधु दयाल।
दामोदर बनवारी मोहन गोपी नाथ गुपाल॥
राधारमन विहारी, नटवर सुन्दर, जसुमति बाल।
माखन चोर गिरिधर मनहारी सुखकारी नदलाल॥

छीत स्वामी सोई अब प्रगठे कलि में वल्लभ लाल॥ (अष्ट व स, फुटनोट, पृ ४२१)

३ (क) भज भज हरि, मन दृढ करि, मुखे बोल तार नाम।
व्रजेन्द्रनदन गोपी-प्राण-धन, भुवन मोहन श्याम॥
(प क त, पद पृ ३०४३)

(ख) सुर नर मुनि जाको ध्यान धरत हैं शभु समाधि न टारी।
सोई प्रभु सूरदास को ठाकुर गोकुल गोप विहारी॥ (की र, पृ. ७३)

(ग) एइ रूप रतन, भक्तगणेर गूढ़ धन, प्रकट कैल नित्य लीला हैते॥

माधुर्य भगवन्ता सार, व्रजे कैल परचार॥
(चै च, मध्यलीला, परि २१, पृ. २७५, २७६)

(घ) देखौ री नँद-नदन आवत।

तन घन स्याम कमल-दल-लोचन, अग अग छवि पावत॥
(सू सा, १०।१२३५, पृ ४७९)

(ङ) कन्हैया हेरी दै।
सुभग सावरे गात की मैं, सोभा कहत लजाउँ॥
(सू सा, १०।१०६९, पृ. ४१६)

(च) पीत बसन चँदन तिलक, मोर-मुकुट कुँडल झलक।
स्याम-घन-सुरग छलक, यह छवि तन लिये॥
(सू सा, १०।१०७८, पृ ४१८)

(छ) प्रगटे मथुरा माझ हरी।

लिये हुए जो गाता है,उसकी शोभा कहते ही नही बनती। सूरदास कहते है,कि शोभा कहने में मै लज्जित होता हू। इष्टदेव राम भी नीलवर्ण है। यह नीलवर्ण भी घन के समान ही है।[1] अभिराम लोचन वाले राम जो तनु घन श्याम है, अपने चारो आयुध लिए हैं। वे शोभा के सिन्धु है। चैतन्य देव यवन के मत का खडन करते हुए कहते है कि तुम्हारा शास्त्र ईश्वर को निर्विशेष वताता है। मै उसका खडन करता हू। मै सविशेष ईश्वर की स्थापना करता हू। तुम्हारा शास्त्र कहता है कि ईश्वर एक है। मैं एक ही ईश्वर मानता हू। परन्तु वह सर्वैश्वर्य-पूर्ण श्याम कलेवर है।[2] कृपामय कृष्ण केशी और कस को मारने वाले है। सुन्दर तन, घन के समान सुन्दर है, परन्तु अधकार को दूर करता है। घनश्याम कह कर उनका यश

श्यामवर्ण वपु उरपर भृगुपद जटित कंचन शिरक्रीट खरी ॥

... ...

गोविन्द प्रभु गिरिधर जसुमतिसुत भक्तन हित आये नंदघरी ॥

(की. सं, भाग १, पृ. २५)

(ज) सो गोंविद तिहारे व्रज वालक ।
प्रगट भये घनश्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल कालक ॥

.. ..

परमानददास को ठाकुर वहोत पुन्य तप के फल पाये ॥

(की. स, भाग १, पृ २५)

१. (क) लोचन अभिराम, तनुधन स्यामं, निज आयुध भुज चारी ।
भूषन वनमाला, नयन विसाला, सोभासिन्धु खरारी ॥

(रा. च. मा, बा १९२, पृ. ९७)

तेहि अवसर आए दोऊ भाई। गए रहे देखन फुलवाई ॥

(ख) स्याम गौर मृदु वयस किसोरा। लोचन सुखद विस्व चित चोरा ॥

(रा च मा., वा २१५,पृ १०८)

२. (क) प्रभु कहे तोमा शास्त्र कहे निर्व्विशेष ।
ताहा खडि सविशेष स्थापियाछे शेष ॥
तव शास्त्रे कहे शेषे एकइ ईश्वर ।
सर्वैश्वर्यपूर्ण तिह श्याम कलेवर ॥

(चै च, मध्यलीला, परि. १८, पृ २४३)

(ख) व्रजेन्द्र-नंदन, गोपी-प्राण-धन,
भुवन-मोहन श्याम ॥

... ...

दाम लोचन, भावे अनुक्षण,
मिछाइ जनम गेल ॥ (प क. त, पद ३०४३)

घोषित है।[1] श्याम जलधर के से अग वाले कृष्ण की जय हो।[2]

इष्टदेव की सहचरी—इष्टदेव कृष्ण और इष्टदेव राम दोनो ही अपनी अपनी सहचरियो के साथ हैं। कृष्ण की सहचरी राधा हैं और राम की सीता। सीता का स्वरूप तुलसीदास ने निरूपण किया है। भौतिक रूप मे सीता जनक की पुत्री हैं। इन्ही जनक की पुत्री के लिए स्वयवर हुआ था।[3] सीता का वास्तविक रूप कुछ और ही है। वे वह आदि-शक्ति है जिससे विश्व की उत्पत्ति होती है। यह आदि-शक्ति छवि की निधि और ससार का मूल है। उनके भृकुटि-विलास मे ससार उत्पन्न होता है। ससार को उपजाने वाली आदि-शक्ति राम की माया है, यही सीता है।[4] राम मर्यादा के पालक हैं और जानकी जगदीश की माया है। यह माया सृजन करती है, पालन करती है, और सहार करती है।[5] यह आदि-

---

१ कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपा मय केशि मथन कसारि।

घन-तनु-सुन्दर घोर-तिमिर-हर घोषित-यश घनश्याम॥

मनहर मदनमोहन मधु-सूदन, गाओत गोकुल दास॥

(प क त, पद २९७५)

२ जय जय जलधर श्यामर अग।
हिलन कलपतरु ललित त्रिभग॥

तरुण, अरुण रुचि पद अरविंद।
नख मणि नीछनि दास गोविन्द॥ (प क त, पद १९)

३ तात जनकतनया यह सोई।
धनुष जग्य जेहि कारन होई॥

(रा च मा, बा २३१, पृ. ११५)

४ (क) बाम भाग सोभति अनुकूला।
आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला॥

भृकुटि बिलास जासु जग होई।
राम बाम दिसि सीता सोई॥

(रा च मा, बा १४८, पृ ७६)

(ख) आदिसक्ति जेहि जग उपजाया।
सोउ अवतरिही मोरि यह माया॥

(रा च मा, बा १५२, पृ ७८)

५ श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

(रा च मा, अ, १२६, पृ २३२)

शक्ति सीता राम की परम शक्ति है।[1] तुलसीदास सीता को परम शक्ति बताते हैं परन्तु कहीं कहीं वे उन्हें लक्ष्मी के समान, अथवा यों कहना चाहिए, लक्ष्मी ही बताते हैं। वे कहते हैं कि जनकपुरी की शोभा का वर्णन कोई नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें लक्ष्मी निवास करती हैं।[2] कुछ स्थलों पर ये सीता लक्ष्मी से भिन्न और उनसे श्रेष्ठ बतायी गई हैं। यह सीता जब वधू के रूप में सम्मुख दीखीं, तब लक्ष्मी-सहित विष्णु भी मोहित हो गए। ये सीता उमा, रमा और ब्रह्माणी द्वारा वंदित हैं।[3] चैतन्य देव सीता को ईश्वर की प्रियतमा और चिदानन्द मूर्ति वाली बताते हैं।[4]

कृष्णदास कविराज ने कृष्ण और चैतन्य के समान ही राधा तत्व का निरूपण किया है।[5] वे कहते हैं कि कृष्ण की तीनों शक्तियों में एक ह्लादिनी शक्ति है। इस शक्ति का जन्म कृष्ण के परमानदमय रूप से हुआ है।[6] राधा यही स्वरूप-शक्ति ह्लादिनी है और कृष्ण के प्रणय का विकार है।[7] ह्लादिनी शक्ति का सार प्रेम है, प्रेम का सार भाव है और भाव की पराकाष्ठा का नाम महाभाव है। राधा ठकुरानी महाभाव-स्वरूपा है और

---

१. नारद वचन सत्य सब करिहौं।
परम सक्ति समेत अवतरिहौं॥
(रा च मा., बा १८७, पृ. ९५)

२. बसै नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेषु॥
(रा. च मा. बा. २८९, पृ. १४२)

३. (क) हरि हित सहित रामु जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे॥ (रा. च मा, बा ३१७, पृ. १५४)
(ख) उमा, रमा, ब्रह्मानि बंदिता।
जगदम्बा संततमनिंदिता॥ (रा च. मा, उ २४, पृ. ५०३)

४ ईश्वर-प्रेयसी सीता चिदानद मूर्त्ति।
प्राकृत इन्द्रिये तारे देखिते नाहि शक्ति॥
(चै च, मध्यलीला, परि. ९, पृ १६३)

५. सक्षेपे कहिल एइ कृष्णेर स्वरूप।
एवे संक्षेपे कहि राधातत्वरूप॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८ पृ १४९)

६ सच्चित् आनंदमय कृष्णेर स्वरूप। अतएव स्वरूप शक्ति हय तिन रूप॥
आनदांशे ह्लादिनी, सदंशे सधिनी। चिदंशे सवित जारे ज्ञान करि मानि॥
(चै च, मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४९)

७ राधिका हवेन कृष्णेर प्रणय विकार।
स्वरूपशक्ति ह्लादिनी नाम जाहार॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ. २४)

सब गुणवान है।[1] वे प्रेम का साक्षात् स्वरूप हैं। उनकी देह प्रेम से ही प्रभावित है। वे कृष्ण की प्रेयसी है, यह समस्त ससार में विदित है।[2] राधा का काम कृष्ण की वाछा पूर्ण करना है, इसी की वे आराधना करती है अत उनका नाम राधिका हैं। यह बात पुराण भी बखानते हैं।[3] इन राधा का चित्त, इन्द्रिया और काया, सब ही कृष्ण-प्रेम मे भरी है और वे जो कृष्ण की निज शक्ति हैं, कृष्ण की क्रीडा मे सहायता देकर रस आस्वादन कराती है।[4] जिस प्रकार अवतारी कृष्ण अवतार धारण करते है, उसी प्रकार अशिनी राधा भी तीन गणो का विस्तार करती है। एक लक्ष्मीगण, दूसरा महिषीगण और तीसरा कातागण। लक्ष्मीगण उनका वैभव विलासाश है, महिषीगण प्रभाव अश है, कातागण जो व्रज देविया है यह आकार-स्वभाव भेद से राधा का ही काय-व्यूह रूप है। ये ही रस का कारण हैं। राधा इन्ही की सहायता से कृष्ण को रस का आस्वादन कराती है।[5] ये राधा गोविन्द को आनन्द देने वाली और गोविन्द मोहिनी हैं। गोविन्द की सर्वस्व है और समस्त काताओ की शिरोमणि हैं। ये

---

१ ह्लादिनीर सार प्रेम प्रेम सार भाव। भावेर परमकाष्ठा नाम महाभाव ॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुरानी। सर्व्व गुणखनि कृष्णकान्ता शिरोमणि ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४)

२ प्रेमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित। कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४९)

३ कृष्ण वाछा पूर्तिरूप करे आराधने। एहेत राधिका नाम पुराणे वाखाने ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २५)

४ (क) कृष्णप्रेमे भावित जार चित्तेन्द्रिय काय।
कृष्ण निज शक्ति राधा क्रीडार सहाय ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४)

(ख) कृष्णके कराय श्याम रस मधुपान।
निरतर पूर्ण करे कृष्णेर सर्व्वकाम ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १५०)

५ अवतारी कृष्ण जैछे करे अवतार।
अशिनी राधा हैते तिन गणेर विस्तार ॥

..

लक्ष्मीगण तार वैभव विलासाश रूप।
महिषीगण प्रभाय प्रकाश स्वरूप ॥
आकार स्वभाव भेदे व्रजदेवीगण।
कायव्यूह रूप तार रसेर कारण ॥

तार मध्ये व्रजे नाना भाव रस भेदे।
कृष्णके कराय रासादिक लीला स्वादे ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४)

राधा कृष्णमयी हैं, वे सब जगह कृष्ण को ही देखती हैं। राधा सर्वपूज्य परम देवता है, सभी की पालनकर्त्तृ, जगत माता है। कृष्ण स्वय जगत् मोहन हैं। राधा इन्हे भी मोहित करती है। अत वे सबसे श्रेष्ठ हैं। राधा पूर्ण शक्ति हैं, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान है। इन दोनो में उसी प्रकार कोई भेद नही है, जैसे मृगमद और उसकी गध मे और अग्नि और उसकी ज्वाला मे भिन्नता नही है। राधाकृष्ण एक ही स्वरूप हैं, केवल लीला रस के आस्वादन करने के लिए दो रूप धारण किए हैं।[1] ये कृष्ण के विशुद्ध प्रेम की आकार है। अनुपम गुणो से इनका कलेवर परिपूर्ण है। जिस राधा के गुणो और सौभाग्य की आकाक्षा सत्यभामा करती है, जिनसे व्रज-बालाये कलाये सीखती है, जिनके सौंदर्य की वाछा लक्ष्मी करती है, जिसके पातिव्रत धर्म की इच्छा अरुधती करती है और जिसके सद्गुणो का पार कृष्ण भी नही पाते हैं, उन राधा के गुणो का वर्णन कौन कर सकता है।[2]

हिन्दी के वैष्णव साहित्य मे भी कृष्ण-सहचरी राधा की भावना बहुत कुछ इसी प्रकार की है। ये राधा रूप की राशि, सुख की राशि, शील और गुणो की राशि है। जगनायक

---

१. गोविन्दानन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी।
गोविंद-सर्व्वस्व सर्व्व कांता-शिरोमणि॥

.. ...

कृष्णमयी कृष्ण जांर भितरे बाहिरे।
जांहा जाहा नेत्र पडे ताहा कृष्ण स्फुरे॥

... ..

अतएव सर्व्वपूज्या परम देवता।
सर्व्वपालिका सर्व्व जगतेर माता॥

... ...

जगत-मोहन कृष्ण तांहार मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठाकुराणी॥
राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्णशक्तिमान।
दुइ वस्तु भेद नाहि शास्त्रेर प्रमाण॥
मृगमद तार गध जैछे अविच्छेद।
अग्नि ज्वालाते जैछे कभु नाहि भेद॥
राधाकृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥

(चै. च, आदिलीला, परि ४, पृ २४–२५)

२. कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर। अनुपम गुणगणे पूर्ण कलेवर॥

.. ..

जाहार सौभाग्य गुण वाञ्छे सत्यभामा। जांर ठाजि कला विलास शिखे व्रजरामा।
जार सौन्दर्यादि गुण वाञ्छे लक्ष्मी पार्व्वती। जार पतिव्रता धर्म वाञ्छे अरुंधती।
जार सद्गुणगणेर कृष्ण ना पाय पार। तांर गुण गणिबे केमने जीव छार॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

जगदीश की प्रिय हैं और स्वय जगत् की माता और जग की रानी हैं। ये राधा वृंदावन में नित्य ही कृष्ण के साथ विहार करती है और गतिहीनो की गति है, भक्तो की स्वामिनी हैं, और मगल देने वाली हैं। राधा अशरण को शरण देने वाली, ससार के भय को दूर करने वाली हैं, यह वेद पुराण कहते हैं। जिह्वा तो एक है और उनकी शोभा अपार है, वह कैसे वर्णन की जाय। सूरदास कहते हैं कि मुझे कृष्ण की भक्ति दीजिए।[1] ये राधा समस्त गुणो से पूर्ण है, कृष्ण इनके अधीन हैं।[2] यह समस्त ससार इन राधा का धाम है और समस्त शक्तिया उनकी दासी है।[3] ये राधा आनन्द की निधि हैं।[4] कृष्णदास कविराज भी राधा को कृष्ण की वह ह्लादिनी शक्ति बताते हैं जो उनके आनन्द रूप में उद्भूत हैं। कृष्णदास राधा को महाभाव-स्वरूपा बताते हैं, रसिकदास भी राधा को महारस का अवतार बताते हैं।[5]

---

१ रूपरासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी।
कृष्न-चरन ते पावहिं स्यामा, जे तुव चरन उपासी॥
जग-नायक जगदीस-पियारी, जगत-जननि जग रानी॥
नित विहार गोपाललाल-सग, वृन्दावन रजधानी॥
अगतिनी की गति, भक्तनि की पति राधा मगलदानी॥
असरन-सरनी, भवभय-हरनी, वेद पुरान बखानी॥
रसना एक नहीं सत कोटिक, सोभा अमित अपार॥
कृष्न-भक्ति दीजै श्री राधे, सूर दास बलिहार॥
(सू सा १०।१०५५, पृ ६२४)

२ श्री राधिका सकल गुन पूरन,
जाके श्याम अधीन॥ (सू सा १०।१०६०, पृ ६२६)

३ (क) सब जग धाम, धाम पुनि जाको शेष धाम जाहि मानें।
नन्ददास सुख को सुखसागर प्रगटी है बरसानें॥
(नददास, की. स, पृ १८७)

(ख) शक्ति सबे दासी हैं जाकी सो याहूते अधिक सुहाई॥

नददास प्रभु पलना पोढ़े किलकत कुवर कन्हाई॥
(नददास, की स, पृ १८७)

४ चलो वृषभान गोप के द्वार।
जन्म लियो मोहन हित कारन आनद निधि सुकुमार।

हित हरिवश दूध दधि छिरकत माझ हरिद्रा डार॥
(की स, पृ १९०)

५ महारस पूरन प्रगट्यो आय।

रस की निधि ब्रजरसिक राय सों करो सकल दुख हानि॥
(की स, पृ १९१)

य राधा कृष्ण से अभिन्न हैं। पुरुषोत्तम ही राधाकृष्ण दो रूप बनाकर आए हैं।[1] राधाकृष्ण की जोडी है।[2] गोविन्ददास कहते हैं, 'सिन्धु सुता गिरि सुता सची रति' कोई भी इनके समान नही है। सूरदास कहते हैं, कि न कमला, न शची, न रति और न रमा, किसी की भी उपमा मेरे हृदय मे नही समाती।[3] गौडीय भक्तो की राधा परकीया हैं। परन्तु ब्रज के भक्तो की राधा स्वकीया है। जन्म होते ही वे कृष्ण की जोडी मान ली गयी। यशोदा ने रीतिपूर्वक सगाई मागी और फिर विवाह हुआ।

---

१. प्रकटे पुरुषोत्तम श्रीराधा द्वैविधि रूप बनाई।

.. ..

छीतस्वामी गिरिधर को चेरो जुग जुग यह सुख पाई।

(की. स, पृ १९८)

२. (क) चतुर्भुज प्रभु गिरिधर यह जोरी त्रिभुवन शोभा तोलि लई।

(की. स, पृ २००)

(ख) परमानंद वृषभाननदिनी जोरी नंद दुलार ॥

(की स, पृ १९९)

३. की सं., पृ १९० और १९२।

६. जीव

शक्तिमत कृष्ण की तीन शक्तिया है, अतरगा, वहिरगा और तटस्था। तटस्था शक्ति का दूसरा नाम जीव शक्ति है।[१] अद्वय ज्ञान तत्त्व कृष्ण स्वय भगवान हैं, जीव उनकी ही शक्ति है। इन कृष्ण का अवस्थान अतरग स्वरूप शक्ति में है। स्वाश और विभिन्नाश मे ये अपना विस्तार करते हैं और अनत ब्रह्माडो में विहार करते हैं। स्वाश का विस्तार चतुर्व्यूह अवतार स्वरूप में होता है। विभिन्नाश मे जो विस्तार होता है वह जीव है, जिसकी उनकी शक्ति में गणना की जाती है।[२] यह जीव कृष्ण की शक्ति तो है परन्तु कृष्ण नही है। दोनो में भेद है। गीता शास्त्र भी जीव को शक्ति कर के ही मानते है परन्तु इस जीव का कृष्ण से अभेद नही मानना चाहिए।[३] यह जो कहा जाता है कि जीव में 'आत्मबुद्धि' है अर्थात् 'मैं ब्रह्म हू' यह मिथ्या कथन है। तत्त्वमसि जो जीव के लिए कहा जाता है यह प्रादेशिक (आशिक) वाक्य है। जो 'प्रणव' को नही मानते वे ही इसे महावाक्य कहते हैं।[४] अधम जीव को कृष्ण के समान नही कहना चाहिए। षडैश्वर्यपूर्ण कृष्ण सूर्य के समान हैं और जीव उनकी एक किरण-कण है। जीव और ईश्वर तत्त्व कभी भी एक नही हैं। जलती अग्नि के समान कृष्ण

---

१. कृष्णेर अनत शक्ति ताते तिन प्रधान।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीव शक्ति, नाम ॥
अतरगा, बहिरगा तटस्था कहि जारे। इत्यादि

(चै च, मध्यलीला, परि. ८, पृ १४९)

२ अद्वय ज्ञानतत्व कृष्ण स्वय भगवान।
स्वरूप शक्तिरूपे तार हय अवस्थान ॥
स्वाश, विभिन्नाश रूपे हइया विस्तार।
अनत वैकुठ ब्रह्माडे करेन विहार ॥
स्वाश विस्तार चतुर्व्यूह अवतारगण।
विभिन्नाश जीव तार शक्तिते गणन ॥

(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २७९)

३. गीता शास्त्रे जीवरूप शक्ति करि माने।
हेन जीवे अभेद कर ईश्वरेर सने ॥

(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३२)

४ जीवेर देहे आत्मबुद्धि सेइ मिथ्या हय।
जगत् जे मिथ्या नहे नश्वर मात्र हय ॥

. .

तत्वमसि जीव हेतु प्रादेशिक वाक्य
प्रणव ना मानि तारे कहे महावाक्य ॥ (चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३३)

हैं और जीव एक स्फुलिंग कण मात्र है।[1] जीव और ईश्वर मे मायावश और मायाधीश का भेद है।[2] अर्थात् जीव माया के अधीन है और ईश्वर माया का अधीश्वर है। जीव ईश्वर से भिन्न है परन्तु वह ईश्वर की अंश-विभूति तो है। यह अंतर्यामी जीव गोविंद के प्रकाश से युक्त है। जिस प्रकार एक ही सूर्य अनत स्फटिको मे चमकता है उसी प्रकार एक गोविंद अनत जीवो में प्रकाशित है ।[3] कृष्ण के इस विभिन्नांश से विस्तारित जीव दो प्रकार के है। एक नित्य मुक्त और दूसरा नित्यबद्ध।[4]

नित्यमुक्त जीव प्रतिदिन कृष्ण चरणोन्मुख रहता है और कृष्ण-पार्षद कहला कर उनकी सेवा का सुख पाता है । नित्यबद्धजीव कृष्ण से विमुख रहता है और नित्यप्रति ससार के कामो मे ही लगा रहता है और नरकादि के दु ख भोगता है। इस नित्यबद्ध जीव को पिशाचिनी माया दु ख देती है। तीनो ताप उसे जलाकर मारते है। वह काम-क्रोधादि का दास हो जाता है और आवागमन में पडा रहता है। एक वार जन्म होता है, वार-वार मरता है। परन्तु इतने पर भी वह कृष्ण-भजन नही करता। माता के गर्भ में अनेक व्यथाये भोगता है, तव पिछले सैकडो जन्मो की कथा याद आती है। ऊपर पैर और नीचे शीश करके वधन में पडा रहता है। उस विपत् के समय में कृष्ण याद आते है परन्तु जन्म होते ही महामाया के वधन में पड जाता है, तव कृष्ण का भजन करना विस्मृत हो जाता है। भ्रमते भ्रमते यदि साधुसग मिल जाता है तव उसके उपदेश से कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है और

---

१. प्रभु कहे विष्णु विष्णु इहा ना कहिय।
जीवाधमे कृष्णज्ञान कभु ना करिह ॥
सन्यासी चित्कण जीव किरणकण सम।
षडैश्वर्यपूर्ण कृष्ण हय सूर्योपम ॥
जीव आर ईश्वरतत्त्व कभु नहे सम।
ज्वलदग्नि राशि जैछे स्फुलिंगेर कण ॥
(चै च, मध्यलीला, परि १८, पृ २४१)

२. मायाधीश मायावश ईश्वरे जीवे भेद।
(चै. च., मध्यलीला, परि ६, पृ. १३२)

३. आत्मा अंतर्यामी जारे योगशास्त्रे कय।
सेइ गोविंदेर अंश विभूति जे हय ॥
अनत स्फटिके जैछे एक सूर्य भासे।
तैछे जीवे गोविंदेर अंश परकाशे ॥
(चै च, मध्यलीला, परि. २, पृ. १२)

४. सेइ विभिन्नांश जीव दुइत प्रकार। एक नित्यमुक्त एकेर नित्य संसार ॥
नित्य मुक्त नित्य कृष्ण चरणे उन्मुख। कृष्ण पारिषद नाम भुंजे सेवा सुख ॥
नित्यवद्ध कृष्ण हैते नित्य वहिर्मुख। नित्य संसारी भुंजे नरकादि दुःख ॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ. २७९)

माया भागती है। उसी समय कर्म के बंधन भी छूटते हैं।[1] स्वाभाविकतया जीव कृष्ण का दास है, इसे वह भूल जाता है। इसी से माया उसका गला बांधती है। कृष्ण के भजन और गुरु-चरण-सेवन से यह माया जाल छूटता है और कृष्ण-चरण की प्राप्ति होती है। जीव कृष्ण की तटस्थता शक्ति का भेदाभेद प्रकाश है।[2]

हिंदी वैष्णव भक्तों ने भी प्राय इसी प्रकार के भाव जीव के लिए प्रस्तुत किए हैं। जीव ईश्वर की शक्ति है, ऐसा कथन स्पष्ट रूप मे तो नही किया गया है, परन्तु जीव ईश्वर का अंश है, उससे उद्भूत है, यह प्राय सर्वमान्य है। तुलसीदास राम के मुख से कहलाते हैं कि विविध प्रकार के चराचर जीव मेरी माया से संभूत हैं। वे सब मेरे उपजाए हैं और मुझे प्रिय हैं। समस्त तत्त्व, ब्रह्माड, देवता, माया, समस्त जीव, प्रकृति इत्यादि सब गोपाल

---

१. (क) सेइ दोषे मायापिशाची दंड करे तारे ॥
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे ॥
काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते जदि साधु वैद्य पाय ॥
तार उपदेश-मंत्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय तबे कृष्ण निकटे जाय ॥
(चै च., मध्यलीला, परि २२, प २७९)

(ख) एक बार जनमये आर बार मरे।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे ॥
थाकिया मायेर गर्भे पाय नाना वेथा।
तखन पडये मने शत जन्मेर कथा ॥
ऊर्ध्वपदे हेट माथे रहये बंधने।
विपद समय लखन कृष्ण पडे मने ॥
जन्म-मात्र पडे महामायार बंधने ॥
भजिते कृष्णेर पद ना पडये मने ॥
... .
कोन मते कृष्ण पद नहिल भजन। चौराशि लक्ष जोनिते पुन करये भ्रमण ॥
भ्रमिते भ्रमिते जदि देखे कृष्णदास। सेइ क्षणे हय तार कर्म-बंधन-नाश ॥
(प क त, पद २९९९)

२. (क) कृष्णेर नित्य दास जीव ताहा भुलि गेल।
एइ दोषे माया तार गलाय बांधिल ॥
ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय कृष्णेर चरण। (चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ. २८०)

(ख) जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास।
कृष्णेर तटस्थशक्ति भेदाभेद प्रकाश।
(चै. च, मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)

के अश हैं, यह सूरदास कहते ह ।[1] नददास ने स्पष्ट रूप से गौडीय मत के अनुरूप ही कथन किया है । व्यक्त अव्यक्त जो अनुपम विश्व है उसमें के सव भूतो के तुम विस्तार हो । तुम सव के परमेश्वर और स्वामी हो । समस्त विश्व तुम्हारे हाथ है । तुमसे हम सव उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं[2] जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग उत्पन्न होते है । मै तुम्हारा दास हू । मेरा जन्म तुम से है । जीव कर्म करके वार-वार जन्म पाता है । परतु फिर भी वह दुष्कर्म नही छोडता । इसी से उसका फिरना वद नही होता । स्थूल या दुवला, (अर्थात् पुष्ट या नष्ट) तो शरीर होता है, परम आत्मा को ये दोनो वाते नही होती । तनु तो मिथ्या और क्षणभगुर है । चेतन जीव सदा ही स्थिर है । जीव का दु ख सुख तो तनु के सग होता है । ज्ञानी जीव अपने को अलिप्त मानता है । जीव कर्मवधन मे पड कर अनेक शरीर धारण करता है । अज्ञानी उन देहो को देख कर भुलावे में पड जाता है । परतु ज्ञानी शरीर के भेदो को नही मानता, सव जीवो को एक रस मानता है । आतमा तो अजन्म और अविनाशी है, उसके लिए सवसे वडी फाँसी देह का मोह ही है ।[3]

---

१. (क) मम माया सभव ससारा ।
जीव चराचर विविध प्रकारा ॥
सव मम प्रिय सव मम उपजाये । (रा. च. मा , उ. ८६, पृ. ५३६)

(ख) येहि विधि जीव चराचर जेते ।
त्रिजग देव नर असुर समेते ॥
अखिल विस्व यह मोर उपाया ।
सव पर मोहि वरावर दाया ॥ रा च. मा., उ. ८७, पृ. ५३६

(ग) सकल तत्व ब्रह्माड देव पुनि माया सव विधि काल ॥
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सव हैं अंश गुपाल ॥
(सूर सारावली, सू. सा., वे प्रे., पृ. ३८)

२. (क) व्यक्त अव्यक्त जु विस्व अनूप, वेद वदत प्रभु तुम्हरौ रूप ।
तुम सव भूतनि कौ विस्तार, देह प्रान इन्द्री अहकार ।
(नददास, दशमस्कध, पृ. २४१)

(ख) तुम परमेस्वर सव के नाथ, विस्व समस्त तिहारे हाथ ।
तुम तैं हम सव उपजत ऐसैं, अगिनि तैं विस्फुलिंग गन जैसैं ॥
(नंददास, दशमस्कध, पृ. २०८)

(ग) अव कहत कि हौं तुम्हरौ चेरौ, तुमतैं प्रगट जनम यह मेरौ ॥
(नंदवास, दशमस्कंध, पृ. २६३)

३. जिय फरि कर्म जन्म वहु पावे ।
फिरत फिरत वहुतैं स्रम आवे ॥
अरु अजहु न कर्म परिहरे ।
जातैं याकौ फिरिवौ टरे ।
तन स्थूल अरु दूवर होइ ॥
परमातम कौ ये नहि दोइ ॥

इस प्रकार के बधनो में पडा जीव कृष्णदास या साधु को पा जाय तो उसके कष्ट मिट जाते हैं, यह कृष्णदास ने कहा है, ऐसा पीछे कहा जा चुका है। तुलसीदास भी ऐसा ही कहते हैं।[1] परतु गौडीय वैष्णव और हिन्दी वैष्णवो की जीव की भावना (concept) में अतर है। कृष्णदास स्पष्ट रूप से जीव को ईश्वर से भिन्न मानते हैं, उसमे ईश्वर मे अतर है। यद्यपि वह कृष्ण की बहिरगा शक्ति से उद्भूत है परतु वह स्वाश का विस्तार नही है, विभिन्नाश का है। अत ईश्वर जीव एक नही है यह सब पीछे कहा जा चुका है। परतु ऊपर दिए गए हिन्दी वैष्णव कवियो के उल्लेख जीव को वास्तविक रूप में ब्रह्म से भिन्न नही मानते। जीव और ईश्वर में वस्तुत कोई भेद नही है। जो भेद ज्ञात होता है वह मिथ्या है और मायाजनित है। दोनो का अतर केवल अज्ञानवश है। यदि जीव को एकरस ज्ञान की प्राप्ति हो जाय तब ईश्वर-जीव मे भेद ही न रह जाय। यदि जीव ईश्वर की ओर देखे तो उलट कर उसी निधि मे समा जायगा, जहा से आया था।[2] यह भेद अपने सच्चे स्वरूप की आत्मानुभूति से नष्ट हो जाता है। आत्मानुभूति-प्राप्त सत और अनत में कोई

तनु मिथ्या, छन भगुर जानौ।
चेतन जीव, सदा थिर मानौ॥
जिय कौं सुख-दुख तन सग होइ।
जौ विचरै तन कैं सग सोइ॥
देहऽभिमानी जीवहिं जानै।
ज्ञानी तन अलिप्त करि मानै॥

•

जीव कर्म करि बहु तन पावै। अज्ञानी तिहिं देखि भुलावै॥
ज्ञानी सदा एक रस जानै। तन के भेद भेद नहिं मानै॥
आत्म अजन्म सदा अविनासी। ताकौं देह-मोह बड फासी॥ (सू सा ५१४, पृ १५३-५४)

१ सद्गुर बैद बचन बिस्वासा। सजम यह न विषय कै आसा।
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
येहि बिधि भलेहि कुरोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
(रा च मा, उ १२२, पृ ५६३)

२. (क) ज्ञान अखड एक सीतावर।
मायावस्य जीव सचराचर॥
जौ सब के रह ग्यान एक रस।
ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस॥ (रा च मा, उ० ७८, पृ ५३१)

(ख) जौ मन कबहुक हरि कौं जाचै॥

•

जाइ समाइ सूर वा निधि मैं,
बहुरि न उलटि जग मैं नाचै॥

(सू सा २।३११, पृ ११८)

अतर नही है।[1] तुलसीदास फिर कहते है कि ईश्वर जीव मे कुछभेद नही है परंतु मायाकृत एक झूठा भेद ज्ञात होता है। इस अश के रूप जीव का स्वरूप पाचभौतिक शरीर नही है। ईश्वर के समान ही यह जीव नित्य है और जन्म मरण के बधन मे नही पडता है। जीव चेतन है, वह प्रत्येक घट मे है। घट उत्पन्न होते है और फिर नष्ट हो जाते है परतु चेतन जीव नित्य ही रहता है,–जिस प्रकार प्रत्येक घट में सूर्य का प्रकाश रहता है परतु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नही होता, वह नित्य ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न अछेद रूप जो है, वही सब घटो मे एक रूप से स्थित है। जो आत्मा इन्द्रियो को चेतन करती है, वह ईश्वर का ही रूप है।[2] हरि का स्वरूप सब घटो में उसी प्रकार है जैसे ऊख मे रस। खोई तो शरीर है, रस आत्मा है। परतु यह जीव अपना असली स्वरूप भूल जाता है और ससार मे उलझ जाता है। वह माया को,ईश्वर को,अपने को, किसी को भी नही जानता। माया उसे मोह लेती है। इस जीव का धर्म ही हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, अभिमान इत्यादि हो जाते है।[3] ब्रह्म का अशरूप जीव अपने आप ही माया के चक्कर मे पड जाता है। फिर उसकी दशा काच की कोठरी में स्थित श्वान की सी हो जाती है। चारो तरफ अपने

---

१. (क) आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥ (रा. च मा, उ. ११८, पृ ५५८)

(ख) जानेसु संत अनंत समाना। (रा च मा उ. १०९, पृ. ५५०)

२. (क) छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥ (रा च. मा, कि. ११, पृ ३६०)

(ख) चेतन घट-घट है या भाइ,
ज्यौं घट-घट रवि प्रभा लखाइ।
घट उपजै बहुरो नसि जाइ।
रवि नित रहै एकहीं भाइ॥ (सू सा ३।१३, पृ १३४)

(ग) अभिद अछेद रूप मम जान।
जो सब घट है एक समान॥
... ...
करत इन्द्रियनि चेतन जोइ।
मम स्वरूप जानौ तुम सोइ॥ (सू. सा ३।१३, पृ १३२)

३. (क) माया ईस न आपु कहुं, जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥
(रा. च. मा, अ १५, पृ. ३३०)

(ख) नाथ जीव तव माया मोहा।
सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥ (रा च मा, कि. ३, पृ. ३५४)

(ग) हरष विषाद ज्ञान अज्ञाना।
जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥ (रा च. मा, बा. ११६, पृ ६२)

को ही देखता है और भ्रमवश भूकता भूकता मर जाता है।[१] इस माया से पिंड तभी छूटता है जब ईश्वर की भक्ति होती है। यह भक्ति साधु-संगति और गुरु सेवा की कृपा से मिलती है।[२]

तुलसी और सूर ने स्पष्ट रूप में यह कहा है कि जीव वास्तव मे तो ब्रह्म है। वह जब ईश्वर से, जो अंशी है, अंश-रूप में अलग होता है तब से देह को ही अपना घर समझता है। मायावश अपना स्वरूप भूल जाता है और दारुण दुःख पाता है। उसका निवास तो आनंद के सिंधु में है। बिना जाने ही वह प्यासा मरता है। अपने हाथ से ही वह कर्म की डोरी में दृढ़ गाँठें देता है, उसी के कारण परवश है, और उसी के फलस्वरूप बार-बार जन्म लेता है। यदि देहजनित सब विकार त्याग दे तो अपना स्वरूप देख लेगा, वह स्वरूप जो निर्मल, निरामय और एकरस है, जिसे हर्ष शोक कुछ भी नही व्यापता[३] और जो देहवत नही है। अभिमानी जीव माया के वश है और माया ईश्वर के वश है। जीव परवश है और भगवान्

---

१ अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ।
जैसे स्वान, काँच मंदिर मे भ्रमि-भ्रमि भूकि पर्‌यौ।
... .
सूरदास नलिनी कौ सुवटा कहि कौनै पकर्‌यौ॥ (सू सा २१२६, पृ १२२)
..
२ तुलसीदास हरि-गुरु-करुना-बिनु, बिमल बिवेक न होई।
बिनु बिवेक संसार घोर निधि, पार न पावै कोई॥ (वि प, पद ११५)

३ जिय जबतें हरि तें बिलगान्यो।
तब तें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस सरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥
.
आनंदसिंधु मध्य तव वासा।
बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी।
तहं तू मगन भयो सुख मानी॥
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्हीं।
अपने करनि गांठि गहि दीन्हीं॥
तातें परबस पर्‌यो अभागे।
ताफल गर्भबास दुख आगे॥
..
देह जनित बिकार सब त्यागै।
तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै॥
.. ..
निर्मल निरामय एकरस तेहि हर्ष सोक न व्यापई। (वि प., पद १३६)

स्ववश है। जीव अनत हैं, ईश्वर एक है। यह भेद झूठा है और मायाजनित है। परतु झूठा होते हुए भी यह भेद विना हरि-कृपा के नही जाता। जीव तो ईश्वर का अश है। उसी प्रकार अविनाशी, चेतन, अमल और सहज आनदमय है। वह माया के वश में होकर वदर की तरह वधा फिरता है। इसी कारण उन दोनो में जड और चेतन की गाठ पड गई है। यद्यपि यह भेद-गाठ झूठी है, परतु छुटने मे कठिनाई उपस्थित करती है। यदि श्रद्धा धेनु हो, उसका धर्ममय दूध हो, उससे नवनीत वैराग्य निकले, उससे ज्ञानमय वुद्धि घृत निकले और उससे दीपक जलाया जाय, और फिर उस दीपक की प्रचड लौ 'सोऽहमस्मि' हो, तव जीव आत्म-वुद्धि वाला हो जाता है और ससार का मूल-भेद जोकि भ्रम है वह नष्ट होता है।[1]

जीव और ईश्वर में मायावश और मायाधीश का अतर कृष्णदास जी वताते[2] हैं, परतु यह अतर झूठा है, मायाजनित है यह वे नही कहते। तुलसीदास 'सोऽहमस्मि' में विश्वास करते हैं, ऐसा ज्ञात होता है। परतु 'तत्त्वमसि' को कृष्णदास ने चैतन्य देव के अनुसार प्रादेशिक वाक्य (आशिक सत्य)-मात्र माना है। वे प्रत्यक्ष रूप से कहते है कि जीव और ईश्वर तत्व कभी भी एक समान नही है। अग्नि राशि मे उद्भूत स्फुलिंग के समान जीव है और ईश्वर अग्नि राशि है। ये दोनो समान नही हैं[3]। नददास सिद्धात-पचाध्यायी मे ठीक

---

१. (क) मायावस्य जीव अभिमानी।
ईस वस्य माया गुनखानी॥
परवस जीव स्ववस भगवता।
जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुवाभेद जद्यपि कृत माया।
विनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥ (रा. च मा, उ. ७८, पृ. ५३१)

(ख) ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो मायावस भएउ गोसाईं।
बंध्यो कीर मरकट की नाईं॥
जड चेतनहि ग्रंथि परि गई।
जदपि मृषा छूटत कठिनई॥
... ... (रा. च. मा, उ. ११७, पृ ५५७)

(ग) सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा।
तव भव भूल भेद भ्रम नासा॥ (रा. च. मा, उ. ११८, पृ ५५८)

(घ) सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा।
वारि वीचि इव गावहि वेदा॥

२. मायाधीश मायावश ईश्वरे जीवे भेद। (चै.च., मध्यलीला, परि. ६, पृ १३२)

३. जीव आर ईश्वर तत्त्व कभू नहे सम।
ज्वलदग्नि राशि जैछे स्फुलिंगेर कण। (चै.च., मध्यलीला, परि १८, पृ. २४१)

इसी प्रकार का विचार प्रस्तुत करते हैं जैसा कृष्णदास कविराज। वे कहते हैं कि जो काल, और माया के अधीन हैं वे जीव हैं। वे विधि-निषेध एवं पाप-पुण्य में फंसे रहते हैं। ज्ञान, कर्म और विज्ञान का प्रकाशक जो परम ब्रह्म है वह जीव के समान कैसे कहा जा सकता है।[1]

इस भेद के अतिरिक्त अन्य सब बातें जिनसे जीव का संबंध है, दोनों ही साहित्यों में समान हैं। जीव अंश है, उसके प्रकाश से युक्त है, माया के वश दुःख भोगता है और साधु संगति से भक्ति पाकर दुःख से मुक्ति पाता है, इस भावना में कहीं भी अंतर नहीं है।[2]

---

१. काल करम माया अधीन ते जीउ बखाने।
विधि-निषेध अरु पाप पुन्य तिन में सब साने॥
परम धरम ब्रह्मन्य ग्यान-विग्यान-प्रकासी।
ते क्यों कहियै जीउ-सदृस श्रुति-सिखर-निवासी॥
(नंददास, सिद्धान्त पंचाध्यायी, पृ. १८४)

२. साधु-शास्त्र-कृपाय जदि कृष्णोन्मुख हय।
सेइ जीव निस्तारे माया ताहारे छाडय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २५९)

७. माया

माया की भावना के संबध में दोनो साहित्यो मे मूलत कोई भी भेद नही जान पडता है। वर्णन करने की शैली और भावना को उपस्थित करने मे विभिन्नता है परतु माया का स्वरूप, कार्य इत्यादि क्या है इसमें कोई विशेष मतभेद नही दिखाई पडता है। तुलसीदास और कृष्णदास ने माया के कार्य और भेद इत्यादि बताए है। सूरदास ने उल्लेख मात्र से कार्य बताया है परतु माया के दिए दु ख इत्यादि पर उन्होने अपेक्षाकृत अधिक कहा है।

माया इष्टदेव की है—कृष्णदास कविराज कहते हैं कि स्वय भगवान श्रीकृष्ण की तीन स्वाभाविक शक्तिया है। इनमें एक माया-शक्ति भी है। यह माया-शक्ति बहिरगा है और जगत् की कारण है। सूरदास कहते है कि मुझे सबसे बडी लज्जा तो इस बात की है कि लोग इस माया को तुम्हारी बताते है। तुलसीदास इस माया से तग आकर कहते हैं कि हे माधव! तुम्हारी यह माया ऐसी है कि उपाय करके मरने पर भी तुम्हारी कृपा बिना इससे छुट्टी नही मिलती। सूरदास कहते हैं कि हे हरि! तुम्हारा भजन नही किया जाता, तुम्हारी प्रबल माया मन को भ्रम में डाल देती है। नददास कृष्ण से कहलाते है कि यह माया मेरी है। मोहनलाल की माया समस्त ससार को मोहनेवाली है[1]। यद्यपि यह माया इष्टदेव की है परतु इष्टदेव इससे बिल्कुल स्वतत्र है। उनके ऊपर उसका रत्ती भर भी प्रभाव नही है। इष्टदेव तो मायाधीश है, तुरीय हैं।[2] यह माया इष्टदेव की दासी है, उनसे डरती

---

१. (क) कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति आर मायाशक्ति॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. २०, पृ २५९)
मायाशक्ति बहिरंगा जगत्-कारण।
तांहार वैभवानंत ब्रह्माडेर गण॥ (चै च, आदिलीला, परि. २, पृ १६)

(ख) इहि लाजनि मरिऐ सदा, सब कोउ कहत तुम्हारी (हो)।
सूर स्याम ईहि बरजि कै मेटौ अब कुल-गारी (हो)॥ (सू सा, १।४४, पृ. १६)

(ग) माधव! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया॥ (वि प, पद ११६)

(घ) हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥ (सू० सा० १।४५, पृ० १६)

(ङ) सकल विस्व अपबस करि, मो माया सोहति है।
(नददास, रास पचाध्यायी, अ ४, पृ १७५)

(च) माया छल माया दया, माया नेह कहंत।
माया मोहनलाल की, जिहिं मोहे सब जंत॥ (नददास, अ म, पृ ११२)

२. (क) मायाधीस ज्ञानगुन धाम्। (रा च. मा, बा ११७, पृ. ६३)

(ख) तुरीय कृष्णेर नाहि मायार संबध। (चै च, आदिलीला, परि. २, पृ. १३)

है,यद्यपि कृष्ण इस माया को साथ लेकर सृष्टि करते हैं। इसी का साथ लेकर शिव रूप मे सहार करते हैं परतु उन्हे यह स्पर्श भी नही करती। इष्टदेव राम की आज्ञा से और उनका वल प्राप्त करके माया ससार की रचना करती है परतु उनमे सदा भय खाती है। यह माया हरि के वश में है।[1]

माया क्या है—माया का वास्तविक स्वरूप क्या है, इसको तुलसीदास ने कुछ अधिक व्याख्या करके बताया है। सूरदास माया के दुष्ट कर्मों की गणना और उसकी विगर्हणा करते हैं, उसी में से माया के स्वरूप के बारे में कुछ विचार झलक जाते है। तुलसीदास तो माया का बडा व्यापक और विशद स्वरूप बताते है। वे कहते है कि जहा तक मन और इन्द्रिया पहुचती है,वह सब माया है।[2] मै और मेरा, तू और तेरा, यह सब भी माया है।[3] नददास कहते है कि माया छल है, माया दया है, और माया ही नेह है।[4] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि माया का वैभव अनत ब्रह्माडो मे है। यह माया निमित्त, और उपादान दो अशो वाली है।[5] तुलसीदास छल, कपट, मत्सर, ममता, मोह इत्यादि को माया

---

१. (क) निजांशे कलाय कृष्ण तमोगुण अगीकरि।
सहारार्थे माया सगे रुद्ररूप धरि॥
माया सगे विकारे रुद्र भिन्नाभिन्न रूप।
जीवतत्त्व हय तिंह कृष्णेर स्वरूप॥

शिव मायाशक्ति सगी तमोगुणावेश।
मायातीत गुणातीत विष्णु परमेश।

पालनार्थे स्वांश विष्णुरूपे अवतार।
सत्व गुण दृष्टात ताते गुण मायापार॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६७)

(ख) सुनु रावन ब्रह्माड निकाया।
पाइ जासु बल विरचति माया। (रा च मा, सु २१, पृ ३८२)
जीव चराचर बस कै राखे।
सो माया प्रभु सों भय भाखे॥ (रा च मा, बा २००, पृ १०१)

(ग) अगिनि दहे जाके भय नाहि।
सो हरि माया जा बस माहि॥ (सू सा ३।१३, पृ १३४)

२. गो गोचर जह लगि मन जाई।
सो सब माया जानेहु भाई॥ (रा च मा, अ १५, पृ ३३०)

३. मैं अरु मोर तोर तें माया।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया॥ (रा च मा, अ १५, पृ ३३०)

४ माया छल माया दया, माया नेह कहत।
माया मोहनलाल की जिहिं मोहे सब जत॥ (नददास, अ म, पृ ११२)

५. (क) माया लैछे दुइ अश निमित्त उपादान। (चै.च, आदिलीला, परि ६, पृ ४२)

का परिवार बताते हैं। वे माया के विद्या और अविद्या दो रूप बताते हैं।[1] अन्य कविगण माया के इस प्रकार नाम लेकर दो भेद तो नही बताते परन्तु वे बताते है कि विद्या, और अविद्या माया के ही कार्य हैं।

माया के कार्य—तुलसीदास कहते हैं कि यह विद्या और अविद्या माया दो विभिन्न कार्य करती है। एक तो (अर्थात् अविद्या) अत्यन्त दुष्ट है और अतिशय दु खदायी है, इसके वश में पड कर ही जीव भवकूप में पडता हैं। दूसरी ससार की रचना करती है, उसके वश मे तीनो गुण है अर्थात् यह माया त्रिगुणात्मिका है, परन्तु सृष्टि रचना यह प्रभु की प्रेरणा से ही करती हैं। उसमें अपना बल कुछ नही है।[2] सूरदास और कृष्णदास दोनो भी माया के ये ही कार्य बताते हैं। माया त्रिगुणात्मिका है। सत, रज और तम उसके गुण हैं। अड को चेतन करने के लिए माया ने भगवान की वदना की, तब अड में शक्ति आई और विराट सृष्टि उत्पन्न हुई।[3] कृष्णदास कविराज कहते है कि गोलोक के बाहर कारणाब्धि सागर है। माया इसके बाहर रहती है, अन्दर प्रवेश नही कर सकती। परम-तत्व सकर्षण रूप से इस कारणाब्धि मे शयन करते है। वे माया को देख कर आकृष्ट हुए और उसके सहारे सृष्टि रचना की। यह माया ससार का उपादान कारण मात्र है, निमित्त नही, जैसे घडे का निमित्त हेतु कुभकार होता है, दड इत्यादि नही, ये तो साधन मात्र है।

(ख) सेइ त मायार दुइविध अवस्थिति।
जगतेर उपादान प्रधान प्रकृति ॥ (चै च, आदिलीला, परि. ५, पृ. ३५)

(ग) मायार जे दुइ वृत्ति माया आर प्रधान।
माया निमित्त हेतु विश्वेर प्रकृति उपादान ॥
(चै च., मध्यलीला, परि. २०, पृ २६५)

१ तेहिकर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥ (रा च. मा., अ १५, पृ. ३३०)

२. एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा।
जा बस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचै जग गुन बस जाकें।
प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके। (रा. च. मा, ब. १५, पृ. ३३०)

३. (ख) माया कों त्रिगुनात्मक जानो। सत रज तम ताके गुन मानो ॥
तिन प्रथमहि महतत्व उपायो। तातै अहंकार प्रगटायो ॥
अहंकार कियो तीन प्रकार। सत तै मन सुर सातऽच्चार ॥
रजगुन तै इन्द्रिय विस्तारी। तमगुन ते तन्मात्रा सारी ॥
तिन तै पचतत्व उपजायो। इन सब कौ इक अंड बनायो ॥
... .
यह अडा चेतन नहि होइ। करहु कृपा सो चेतन होइ ॥
तामै सक्ति आपनी धरी। चच्छ्वादिक इन्द्रीय विस्तरी ॥
चौदह लोक भए ता माहि।...इत्यादि, (सू सा, ३।३९४, पृ. १३४)

(ख) लोक सृष्टि सिरजत यह माया... (नंददास, दशम स्कंध, अ. २८, पृ ३१९)

इसी प्रकार स्वय कृष्ण सकर्षण रूप में जगत् के कारण हैं। माया तो सहायता करती है।[१] कृष्णदास कविराज के कथनानुसार कृष्ण संहार-कार्य भी माया की सहायता से करते हैं।[२] ये तो कृष्ण ब्रह्म की सगिनी, सृष्टि की उपादान-कारण-स्वरूपा विद्या माया के कार्य है।

अविद्या माया का कार्य जीव को भुलावा देकर चक्कर में डालना और इष्टदेव से दूर रखना है। इस माया से सब भक्त परेशान हैं। सूरदास कहते हैं, कि हरि! तुम्हारा भजन करते ही नही बनता, तुम्हारी प्रबल माया मन को भरमा देती है।[३] यह माया कोटि कोटि नाच नचाती है। ससार के लाभ के लिए दर-दर नाना स्वाग बनाकर घुमाती है। हे प्रभु! तुम से कपट करवाती है और मेरी बुद्धि को चक्कर में डाल देती है।[४] यह माया अत्यन्त प्रबल है, किसी को नही छोडती।[५] कृष्णदास कविराज कहते है कि कृष्ण सूर्य के समान ह

---

१. सेइ त कारणार्णवे सेइ सकर्षण ।
आपनार एक अशे करेन शयन ॥
महत् सृष्टा पुरुष तिंहो जगत्-कारण ।
आद्य अवतार करे मायार वर्शन ॥
मायाशक्ति रहे कारणाब्धिर वाहिरे ।
कारण समुद्र माया परशिते नारे ॥
.. ..
घटेर निमित्त हेतु जैछे कुभकार ।
तैछे जगतेर कर्त्ता पुरुषावतार ॥
कृष्णकर्त्ता माया तांर करेन सहाय ।
घटेर कारण जेन वडावि उपाय ॥
... ...
एक अंगाभासे करे मायाते मिलन ।
माया हैंते जन्मे तवे ब्रह्माडेर गण ॥ (चै च, आदिलीला, परि ५, पृ ३५)

२. निजाशे कलाय कृष्ण तमोगुण अगीकरि ।
संहारार्थ माया सगे रुद्र रूप धरि ॥
माया सगे विकारे रुद्र भिन्नाभिन्न रूप। (चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २६७)

३ हरि तेरौ भजन कियौ न जाइ ।
कहा करौं तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ ॥ (सू सा, १।४५, पृ १६)

४ माया नटी लकुट कर लीन्हें कोटिक नाच नचावै ।
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वाग वनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू मेरी बुधि भरमावे ॥ (सू सा., १।४२, पृ १५)

५ (क) हरि तुव माया को न बिगोयौ ?
सौ जोजन मरजाद सिंधु की पल में राम बिलोयौ ॥
(सू सा, १।४३, पृ १५)
(ख) तुम्हरी माया महाप्रबल जिहिं सब जग बस कीन्ही ।
(सू सा, १।४४, पृ १५)

और माया अंधकार है ।[1] यह पिशाची माया जीव को त्रास देती है । उसके कारण वह काम-क्रोध का दास होकर उसकी लाठी खाता है ।[2] बलरामदास कहते हैं कि जन्म लेते ही सब जीव माया के बन्धन में पड जाते हैं और कृष्ण भजन याद ही नहीं रहता और ८४ लाख योनियों में भटकना पडता है ।[3]

प्रश्न यह उठता है कि इस प्रबल माया का वास्तविक स्वरूप क्या है । क्या यह सत्य है और इसकी स्वतंत्र स्थिति है ? अथवा यह केवल भ्रम-मात्र है ? तुलसीदास, सूरदास और कृष्णदास तीनों ही यह कहते हैं कि माया सृष्टि की रचना करती है परन्तु अपने स्वतंत्र बल से नहीं । कृष्ण या राम उसकी सहायता से सृष्टि रचते हैं । इसकी अपनी स्वतंत्र स्थिति है या नहीं, यह तो साफ-साफ कोई नहीं कहता । तुलसीदास कई बार कहते हैं कि माया की अपनी कोई शक्ति नहीं है । उसमें प्रभु का बल है ।[4] तुलसीदास स्पष्ट रूप से यह भी कहते हैं कि यह माया जड है परन्तु यह भगवान की सत्यता से ही सत्य भासती है ।[5] यह माया यद्यपि रघुवीर की दासी है परन्तु मिथ्या है ।[6] सूरदास भी माया को जड बताते हैं ।[7] परन्तु कृष्णदास कविराज ने माया को जड नहीं कहा और न मिथ्या ही कहा है । तुलसीदास

---

१. कृष्ण सूर्य सम माया हय अंधकार ।
(चै. च, मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

२. सेइ दोषे मायापिशाची दंड करे तारे ।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे ॥
काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय ।
(चै. च, मध्यलीला, परि २२, पृ. २७९)

३. जन्म-मात्र पड़े महामायार बंधने ।
भजिते कृष्णेर पद ना पडेये मने ॥
... ...
कौन मते कृष्ण-पद नहिल भजन ।
चौराशि लक्ष जोनिते पुन करये भ्रमण ॥ (प. क. त, पद २९९९)

४. (क) लव निमेष महुं भुवन निकाया ।
रचै जासु अनुसासन माया ॥ (रा च मा बा. २२५, पृ. ११२)
(ख) सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया ।
पाइ जासु बल बिरचति माया ॥ (रा. च. मा., सु २१, पृ ३८२)
(ग) एक रचै जग गुन बस जाकें ।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥ (रा. च मा, अ १५, पृ ३३०)

५ जासु सत्यता तें जड माया ।
भास सत्य इव मोह सहाया ॥ (रा च मा, बा. ११७, पृ. ६३)

६. सो दासी रघुबीर कै समुझे मिथ्या सोपि । (रा. च मा., उ. ७१, पृ ५२७)

७. जड़ स्वरूप सब माया जानौ ।
ऐसौ ज्ञान हृदै मैं आनौ ॥ (सू सा., ३।१३, पृ. १३४)

ने जैसे कहा है कि माया स्वत तो जड है परन्तु राम के आश्रय मे सत्य भासती है, वैसे कृष्णदास कही नही कहते । वे तो माया को कृष्ण की बहिरगा शक्ति बताते है । जिस प्रकार कृष्ण की दोनो अन्य शक्तिया अतरगा और तटस्था (जीव) सत्य हैं, उसी प्रकार बहिरगा भी है । कृष्ण की तीन स्वाभाविक शक्तिया हैं ।[1] वेदान्त की समीक्षा करते हुए चैतन्यदेव कहते है कि वेदात सूत्रो की विवर्त्तवादी व्याख्या गलत है, परिणामवादी व्याख्या ठीक है। मायावादी भाष्य तो सर्वनाशकारी है ।[2] एक स्थान पर कृष्णदास माया को जगत् का उपादान कारण बताते है और कहते हैं, कि जड-रुपा प्रकृति जगत् का कारण नही है, परन्तु वे माया को जड नही बताते ।[3]

---

१ कृष्णेर स्वाभाविक तिन शक्ति परिणति ।
चिच्छक्ति, जीवशक्ति आर मायाशक्ति ॥
(चै. च, मध्यलीला, परि २०, पृ २५९)

२ जीवेर निस्तार लागि सूत्र कैल व्यास ।
मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश ॥
परिणामवाद व्यासेर सूत्रेर सम्मत ।
अचिंत्य शक्ति ईश्वर जगद्रूपे परिणत ॥

. .

व्यास भ्रात बलि सेइ सूत्र दोष दिया ।
विवर्त्तवाद स्थापियाछे कल्पना करिया ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३२)

३. मायाद्वारे सृजेन तिंहो ब्रह्माडेर गण ।
जडरूपा प्रकृति नहे ब्रह्माड-कारण ॥
(चै च., मध्यलीला, परि. २०, पृ २६५)

८. भक्ति-भावना

वैष्णव धर्म की अपनी विशेषता 'भक्ति-भावना' ही है। भक्ति की भावना ही उसे अन्य धर्मों और मतो से विशेष रूप से पृथक् करती है। गौडीय वैष्णव समाज और व्रज का वैष्णव समाज दोनो ही भक्ति की महत्ता, आवश्यकता और उपादेयता को मुक्त कठ से स्वीकार करते हैं। व्रज मडल के वैष्णव कवि भक्ति की महत्ता पर तो बहुत कुछ कहते हैं, उसे ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ बताते हैं, परन्तु भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या या विवेचना बहुत कम करते हैं। तुलसीदास ने भक्ति के बारे में अपेक्षाकृत कुछ अधिक कहा है। कृष्णदास कविराज ने भक्ति की शास्त्रीय व्याख्या दी है और उसे एक स्वतत्र रस बताया है। यह समस्त व्याख्या चैतन्यदेव ने रूप और सनातन के आगे की थी। कृष्णदास ने वही अपनी रचना 'चैतन्य-चरितामृत' में दी है। यही कारण है कि उनकी यह सब व्याख्या 'भक्ति-सदर्भ', 'प्रीति-सदर्भ' और 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' के अनुरूप है। भक्ति को स्वतत्र रस मान कर मधुर भक्ति को श्रेय देना बगाल वैष्णव मत की अपनी विशेपता है। उनकी यह भक्ति-भावना ही उनके धर्म का मूल है।[1] यदाकदा हिन्दी के वैष्णव कवि प्रेम भक्ति को श्रेष्ठ बताते हैं परन्तु उनका झुकाव दास्य भक्ति की ओर अधिक जान पडता है। यो तो दोनो स्थानो के भक्तो के लिए भक्ति किसी भी रूप में वरेण्य है।

गौडीय वैष्णव मत में परकीया भाव की मधुर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना है। उनका कहना है इसी प्रेम भक्ति के द्वारा, जिसे रागानुगा भी कहा गया है, कृष्ण को व्रज में पाया जा सकता है। कृष्ण की भक्ति ही प्रेम रूप है।[2] हिन्दी वैष्णव समाज भक्ति को उसके समस्त रूपो में मान्यता देता है। किसी भी भाव से भजन करो इष्टदेव प्रसन्न ही होगे परतु दास्य भक्ति की ओर वे लोग अधिक झुकते हैं। तुलसीदास ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि सेवक और सेव्य भाव के बिना ससार से उद्धार नही हो सकता। अत इसी भाव से राम को भजो।[3] सूरदास का हृदय इस बात को सुनकर 'सिराता' है कि सब कोई उन्हें श्याम का

---

१. "The idea of the stages of distinct personal relationship of the deity and his parikars is a fundamental postulate with the Bengal School of Vaishnavism, because otherwise the relationship would be reduced to one of colourless identity, which cannot be posited in view of the theory of difference in non-difference accepted by the school" V F M P 286

२. (क) रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय व्रजे व्रजेन्द्रनंदन॥
(चै च, मध्यलीला, परि. ८, पृ १५३)

(ख) तत्त्व वस्तु कृष्ण, कृष्ण-भक्ति प्रेम रूप।
(चै. च., आदिलीला, परि. १, पृ १०)

३. सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त बिचारि॥ (रा.च मा., उ ११९, पृ ५६०)

गुलाम कहते है। यदि उनकी जूठन खाकर जीने को मिल जाय तो सूरदास को और बडा सुख हो जाय।[1] वैसे तो सूर कहते है 'जन ते प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हिये'। परतु ऊपर लिखे का यह निष्कर्ष नही है कि गौडीय मत केवल मधुर भक्ति को ही मानता है। भक्ति मात्र वरेण्य है, श्रेष्ठ है परतु मधुर भक्ति सर्वश्रेष्ठ है, इतना ही वे कहते है।

भक्ति क्या है—भक्ति इष्टदेव और भक्त का सम्बन्ध है। भक्त और उसके इष्टदेव के बीच में अगर कोई नाता है तो वह भक्ति ही है। भक्त भगवान् से इसी लिए भक्ति का वरदान मागता है क्योंकि उसमे ही भक्त का इष्टदेव से एकमात्र नाता जुडता है।[2] इसी भक्ति के नाते से इष्टदेव राम अत्यन्त शीघ्रता से द्रवित हो जाते हैं और भक्त पर कृपा करते है।[3] तुम्हारा हू कहते ही कृष्ण उसे अपनी शरण में ले लेते है और माया से मुक्त कर देते है फिर उसे अपने में लय कर लेते हैं।[4] कृष्णदास कविराज कहते हैं कि कृष्ण प्राप्ति के तीन साधन है। एक भक्ति, दूसरा ज्ञान और तीसरा योग। इन तीनों साधनो से इष्टदेव तीन स्वरूपो में भासते है। ज्ञान मार्ग से निर्विशेष ब्रह्म के रूप में भासते है। योग मार्ग से परमात्मन् के रूप में भासते हैं। परतु भक्ति से जो रागात्मिका और वैधी दो प्रकार की है स्वय भगवान् की प्राप्ति होती है।[5] अतएव भक्ति कृष्ण प्राप्ति का उपाय अर्थात् साधन

---

१ सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हियो।
सूरदास को और बडो सुख जूठन खाइ जियो॥ (सू सा १।१७१, पृ ५६)

२ (क) भगवान सम्बन्ध भक्ति अभिधेय ह्य।
प्रेम प्रयोजन वेदे तिन वस्तु कय॥
(चै. च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३३)

(ख) कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानौं एक भगति कर नाता॥ (रा च मा, अ ३५, पृ ३४५)

(ग) अपनी प्रभु भक्ति देहु, जासो तुम नाता। (सू सा, १।१२३, पृ ४१)

३ जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई।
सो मम भगति भगत सुखदाई। (रा च. मा, अ १६, पृ ३३०)

४. (क) कृष्ण तोमार हङ जदि बले एक बार।
मायाबध हैते कृष्ण तारे करे पार।
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८०)

(ख) शरण लआ करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण तारे करे तत्काले आत्मसम॥
(चै च, मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८४)

५ सेइ कृष्ण-प्राप्ति हेतु त्रिविध साधन।
ज्ञानयोग भक्ति तिनेर पृथक् लक्षण॥

तिन साधने भगवान् तिनस्वरूपे भासे।
ब्रह्म परमात्मा भगवत्त्वे प्रकाशे॥

है ।[1] इष्टदेव को शीघ्र ही प्रसन्न करने वाली भक्ति ही है, यह तुलसीदास कहते है । बिना हरि भजन के क्लेश दूर नही होते और न भव-भय नष्ट होता है । हरि की भक्ति के बिना सुख नही मिलता ।[2] अर्थात् भक्ति कृष्ण या राम की प्राप्ति का सुख पाने का और ससार के दु खो का नाश करने का साधन है, परतु क्या यह साध्य भी है ? तुलसीदास तो इस भक्ति को साध्य बताते है । जितने साधन है उन सब मे एक फल मागा जाता है, वह है रामचरण में रति । समस्त साधनो के फलस्वरूप, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कुछ नही चाहिये । भक्त को तो जन्म-जन्म सीताराम के चरणो मे रति चाहिये । इस प्रकार भक्ति साध्य भी है ।[3] यद्यपि अन्त में वह साधन ही है । कृष्णदास कविराज ने भक्ति को अभिधेय बताया है जो भगवान् और भक्त का सबध है और जिसका प्रयोजन केवल कृष्णप्रेम की प्राप्ति है, दारिद्रय नाश और भव नाश नही । यह कृष्ण प्राप्ति की उपाय भक्ति अभिधेय है, यह सब शास्त्र

ज्ञान मार्गे निर्व्विशेष ब्रह्म प्रकाशे ।
योगमार्गे अतर्यामी स्वरूपेते भासे ॥
रागभक्ति विधिभक्ति हय दुइ रूप ।
स्वयं भगवत्त्व प्रकाश दुइत स्वरूप ॥

(चै च, मध्यलीला, परि २४, पृ. २९६-२९७)

१. (क) अतएव भक्ति कृष्ण प्राप्तिर उपाय ।
अभिधेय बलि तारे सर्व्व शास्त्रे गाय ॥

(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ. २६०)

(ख) कृष्ण प्राप्ति सबध भक्ति प्राप्तिर साधन ।

(चै. च, मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

२. (क) जाते बेगि द्रवउँ मै भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥ (रा च मा., अ. १६, पृ ३३०)

(ख) बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा (रा च मा, उ ८९, पृ. ५३७)

(ग) सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।

(रा च. मा, उ. ८९, पृ ५३७)

(घ) बिनु हरि भजन न भवभय नासा ।

(रा च. मा, उ. ९०, पृ. ५३८)

३. (क) सबु करि मांगहि एकु फलु राम चरन रति होउ ।

(रा च मा, अ १२९, पृ. २३४)

(ख) अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउ निरबान ।
जनम जनम रति राम पद येह बरदानु न आन ॥

(रा च मा, अ. २०४, पृ. २६६)

(ग) तव पद पकज प्रीति निरंतर ।
सब साधन कर येह फल सुन्दर ॥

(रा च मा., उ. ४९, पृ. ५१५)

कहते है, परतु यह अन्य किमी काम के लिए नही है। धन प्राप्त होने मे मनुष्य सुख भोग फल पाता है, सुख भोग होने से दु ख अपने आप भाग जाता है। उमी प्रकार भक्ति-फल कृष्णप्रेम को उपजाता है, इम प्रेम के द्वारा कृष्ण का अनुभव होता है और भव स्वय नष्ट हो जाता है। जिम प्रकार धन की प्राप्ति स्वय दारिद्र्य नाश का फल नही देती उसी प्रकार कृष्णप्रेम का सीधा फल भवक्षय नही है। धन का मुख्य प्रयोजन जैसे भोग है उसी प्रकार प्रेम का मुख्य प्रयोजन कृष्ण सुख है।[1]

कृष्णदाम भक्ति को साध्य कदाचित् नही मानते। उन्होने कही भी ऐमा नही कहा। चैतन्य चरितामृत मध्य लीला के २२वें परिच्छेद मे एक वाक्य आया है 'नित्य सिद्धि कृष्ण प्रेम साध्य कभु नय' अर्थात् कृष्णप्रेम नित्य सिद्ध (eternally existing) है। यह साध्य नही है। यहा साध्य शब्द का अर्थ साधन का ध्येय (realisable) नही है। रूप गोस्वामी ने साध्य शब्द की व्याख्या इमीलिए 'नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्य हृदि साध्यता' कह कर दी है। अर्थात् नित्य सिद्ध कृष्ण भक्ति का प्राकट्य ही साध्य है। इसी प्रकार का अर्थ कृष्णदाम कविराज ने भी लिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति साध्य नही है, यह वे कही नही कहते परतु जिम प्रकार तुलमीदाम सब साधनो का फल रामचरणमें रति बताते है उस प्रकार कृष्णदाम नही कहते। वे कहते है वेद शास्त्र भक्ति को सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन बताते है। यह भक्ति कृष्ण प्राप्ति सबध है और प्राप्ति का साधन है, यह अभिधेय है और इसका प्रयोजन प्रेम है। यह पुरुषार्थ का सार है और प्रेम महाधन, कृष्ण माधुर्य, और कृष्ण सेवानद की प्राप्ति का कारण है। भक्ति के द्वारा कृष्ण की सेवा भी केवल कृष्ण प्रेम का आस्वादन करने के लिए की जाती है।[2] यह भक्ति परम

---

१. अतएव भक्ति कृष्णप्राप्तिर उपाय।
अभिधेय बलि तारे सर्व्वशास्त्रे गाय॥
धन पेले जैछे सुख भोग फल पाय।
सुख भोग हैते दुःख आपनि पलाय॥
तैछे भक्ति फल कृष्णे प्रेम उपजाय।
प्रेमे कृष्णास्वाद हैले भव नाश पाय॥
दारिद्रनाश भवक्षय प्रेम-फल नय।
भोग प्रेम सुख मुख्य प्रयोजन हय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

२. वेद शास्त्रे कहे सबध अभिधेय प्रयोजन।
कृष्ण प्राप्ति सबध भक्ति प्राप्तिर साधन॥
अभिधेय नाम भक्ति प्रेम प्रयोजन।
पुरुषार्थ शिरोमणि प्रेम महाधन॥
कृष्ण माधुर्य सेवानद प्राप्तिर कारण।
कृष्ण सेवा करे कृष्ण रस आस्वादन॥
(चै. च, मध्यलीला, परि २०, पृ. २६०)

पुरुषार्थ है।[1] यद्यपि भक्ति का प्रधान उद्देश्य कृष्ण प्रेम की प्राप्ति है, इसी से पूर्णानन्द मिलता है परन्तु जीव का उद्धार ससार से इसी भक्ति से होता है।[2] अत भक्ति साधन है।

भक्ति की महिमा—इष्टदेव और भक्त का सबध जो भक्ति है उसकी सर्वश्रेष्ठता में क्या सन्देह हो सकता है। वैष्णव मत मे इसकी बहुत महिमा गाई गई है। भक्ति के बिना कोई भी साधन फल नही देते, न सुख देते हैं।[3] अकेली भक्ति ही सब फलदात्री है। यह स्वतत्र है और अत्यन्त प्रबल है।[4] कर्मयोग और ज्ञान इसके अधीन है और इसका मुख देखते है। कर्मयोग और ज्ञान इत्यादि साधनो के फल यद्यपि अत्यन्त तुच्छ है फिर भी इन साधनो को अपने तुच्छ फलो की प्राप्ति के लिए भक्ति से ही बल मिलता है। ज्ञान और विज्ञान सब भक्ति के साधन हैं। जप, तप, नियम, योग, श्रुति मे वर्णित नाना शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थाटन, स्नान इत्यादि जितने धर्म बताये गये है इन सबका और वेद पुराण पढने सुनने का एकमात्र फल है भगवान के चरणो मे प्रीति। इस प्रकार ज्ञान इत्यादि सब बेकार है, अन्त में सब भक्ति के अधीन ही हो जाते है।[5] ज्ञान का पथ अत्यन्त कठिन है, इसके साधन और कठिन है। बडे बडे कष्ट उठाकर ही लोग उसे पाते है, परतु भक्तिहीन होने

---

१. प्रभु कहे भट्टाचार्य ना कर विस्मय।
भगवाने भक्ति परम पुरुषार्थ हय॥
(चै. च, मध्यलीला, परि ६, पृ १३३)

२. (क) मोक्षादि आनंद जांर नहे एक कण।
पूर्णानन्द प्राप्ति तांर चरण सेवन॥
तार सेवा बिना जीवे ना जाय ससार।
ताहार चरणे प्रीति पुरुषार्थ सार॥
(ख) . तार भक्त्ये हय जीवेर संसार तारण॥
(चै च, मध्यलीला, परि १८, पृ २४३)

३. (क) भक्ति बिना कोन साधन दिते नारे फल।
सब फल देय भक्ति स्वतत्र प्रबल॥
(चै. च, मध्यलीला, परि २४, पृ २९७)
(ख) बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा।
(रा. च मा, उ. ८९, पृ. ५३७)
(ग) सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।
(रा. च. मा., उ. ८९, पृ ५३७)

४. (क) सब फल देय भक्ति स्वतंत्र प्रबल।
(चै च, मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९७)
(ख) सो सुतंत्र अवलंब न आना। (रा च मा., उ. १६, पृ. ३३०)
(ग) भक्ति सुतत्र सकल सुख खानी। (रा च मा., उ ४५, पृ. ५१४)

५. (क) कृष्ण भक्ति हय अभिधेय प्रधान।
भक्ति मुख निरीक्षक कर्म योग ज्ञान॥

से वह ज्ञानी भी भगवान् को प्रिय नही। ज्ञानी समझता है कि उसने जीवनमुक्त-दशा पा ली है परतु यह उसका भ्रम है। भक्ति के बिना उसकी बुद्धि तक तो शुद्ध होती नही।[1] अत ज्ञान भक्ति के सामने तुच्छ है और बेकार भी है। जितने भी भक्त हैं उनकी भक्ति के कारण भगवान वश मे हो जाते है। भक्ति मे युक्त नीच मे नीच प्राणी भी भगवान् को प्रिय है।[2]

भक्तिहीन प्राणी को अन्य किसी भी साधन मे सुख नही मिलता। चारो प्रकार के वर्णाश्रम-धर्मी स्वकर्म का पालन करते हुए भी यदि कृष्ण को नही भजते तो वे रौरव नरक में ही पडते है। कृष्ण ने पूर्व आज्ञा दे रक्खी थी कि वेद वर्णित धर्म,कर्म और ज्ञान की साधना करनी चाहिये, परतु फिर भी आगे चलकर आज्ञा दी कि यदि भक्त में श्रद्धा हो तो उसे सब छोड छाड कर कृष्ण का भजन करना चाहिये। अकेली कृष्ण भक्ति से समस्त

एइ सब साधनेर अति तुच्छ फल।
कृष्णभक्ति विना ताहे दिते नारे बल ॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २७९)

(ख) तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना।
(रा च मा, अ १६, पृ. ३३०)

(ग) जप तप नियम जोग निज धर्मा।
श्रुति सभव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन।
जह लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका।
पढे सुने कर फल प्रभु एका ॥
तव पद पकज प्रीति निरतर।
सब साधन कर यह फल सुन्दर ॥
(रा च मा, उ ४९, पृ. ५१५)

१ (क) ज्ञान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहु टेका ॥
करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्तिहीन प्रिय मोहि न सोऊ ॥
(रा च मा, उ ४५, पृ ५१४)

(ख) ज्ञानी जीवन्मुक्त दशा पाइनु करि माने।
वस्तुत बुद्धि शुद्ध नहे कृष्ण भक्ति विने ॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८०)

२ (क) दास्य सख्य वात्सल्य शृगार चारि रस।
चारि भावे भक्त जत कृष्ण तार वश ॥
(चै च, आदिलीला, परि ३, पृ १७)

(ख) भगतिवत अति नीचौ प्रानी।
मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी ॥
(रा च मा, उ ८६, पृ ५३६)

कृत्य अपने आप होजाते है।[1] मुक्ति, भुक्ति, और सिद्धियो की कामना करने वाले कभी भी शाति नही पाते। केवल कृष्ण भक्ति से ही शाति मिलती है। भक्ति अनुपम सुखो की मूल है।[2] अविद्या का बधन कर्मके साधनो मे नही छूटता और भी दृढ हो जाता है। मोह मे पड-कर मनुष्य नाना प्रकार के पाप करते है। उन पापो का फल उन्हे मिलता है। भगवान् उन अशुभ कर्मो का फल देते हैं, इसलिए जो चतुर व्यक्ति है वे शुभाशुभ दायक कर्मो का त्याग करके भगवान् की भक्ति करते है। वे सब प्रकार मे अपने भक्त की रखवाली करते है। विधि धर्म (कर्म) छोडकर कृष्ण का भजन करने मे भक्त का मन निषिद्ध कर्मो और पापाचार की ओर कभी जाता ही नही। यदि अज्ञान के कारण कभी पापाचार हो भी जाय तो कृष्ण उसे शुद्ध कर लेते हैं। प्रायश्चित्त नही करवाते। भगवान् अपने भक्त की सर्वदा उसी प्रकार रखवाली करते हैं जिस प्रकार माता अपने बालक की करती है।[3]

---

१. (क) चारि वर्णाश्रमी जदि कृष्ण नाहि भजे।
स्वकर्म करिलेओ से रौरवे पड़ि मजे॥
(चै च., मध्यलीला, परि २२, पृ. २८०)

(ख) पूर्व आज्ञा वेदधर्म्म कर्म्म योग ज्ञान।
सब साधि अवशेषे आज्ञा बलवान॥
एइ आज्ञावले भक्तेर श्रद्धा जदि हय।
सर्व्व कर्म्म त्याग करि से कृष्ण भजय॥
(चै च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८२)

२. (क) कृष्ण-भक्त निष्काम अतएव शात।
भुक्ति-मुक्ति-सिद्धि-कामी सकलि अशात॥
(चै. च, मध्यलीला, परि १९, पृ. २५०)

(ख) भगति तात अनुपम सुख मूला। (रा. च मा, अ १६, पृ. ३३०)

३. (क) करहि मोह बस नर अघ नाना।
स्वारथ रत परलोक नसाना॥
काल रूप तिन्ह कहुं मै भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्म फलदाता॥
अस विचारि जे परम सयाने।
भजहि मोहि ससृति दुख जाने॥
त्यागहि कर्म सुभासुभ दायक।
भजहि मोहि सुर नर मुनि नायक॥
(रा च. मा, उ. ४१, पृ ५१२)

(ख) सुनि मुनि तोहि कहौं सह रोसा।
भजहि जे मोहि तजि सकल भरोसा।
करौं सदा तिन्ह कै रखवारी।
जिमि बालक राखै महतारी॥ (रा च. मा, अ. ४३, पृ ३५०)

इस प्रकार भक्ति में कर्मकाड और ज्ञान इत्यादि की कुछ भी आवश्यकता नही है। भगवान् की प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय भक्ति है। इसमे न योग साधन है, न यज्ञ है, न जप तप है, और न उपवास इत्यादि ही है। इसमें तनिक भी प्रयास नही करना पडता। यह तो अत्यन्त सुगम पथ है, जिससे राम मिलते हैं। यह पथ तो इतना सुगम है कि "कृष्ण मैं तुम्हारा हू" कहते ही कृष्ण भक्त का माया बध दूर कर देते है और अपने समान कर लेते है।[१]

भक्ति में ज्ञान और कर्म काड की अनावश्यकता तो ये लोग बताते हैं, परतु वैसे स्वतन्त्र रूप से ये निंद्य है, यह भावना भी नही है। अकेली भक्ति भगवान् की प्राप्ति करा देती है। यह ज्ञान और कर्म जो झझट की वस्तुयें हैं अनावश्यक हैं। तुलसीदास कहते हैं भक्ति और ज्ञान में कुछ भेद नही है क्योकि दोनो ही ससारमे उत्पन्न दुखो को दूर करते हैं। परतु ज्ञान अगम है। उसके प्रत्यह अनेक है, उनकी साधना कठिन है अत उनमें मन नही टिकता। ज्ञान का पथ कहने मे कठिन, समझने में कठिन और साधन करने में कठिन है। ज्ञान का पथ तो कृपाण की धार है। उसमें पडकर पार होना अत्यन्त कठिन है। जो निर्विघ्न इस पथका निर्वाह कर ले जाता है वह अत में कैवल्य पद प्राप्त करता है। यह कैवल्य परम पद अत्यन्त दुर्लभ है। इतनी कठिनाइयो के बाद जो परम पद प्राप्त होता है वह राम

(ग) विधिधर्म्म छाडि भजे कृष्णेर चरण।
निषिद्ध पापाचारे तार कभु नहे मन॥
अज्ञानेओ जदि हय पाप उपस्थित।
कृष्ण तारे शुद्ध करे ना करान प्रायश्चित॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८६)

१ (क) कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।
जोग न मख जप तप उपवासा॥
(रा च मा, उ ४६, पृ ५१४)

(ख) सुलभ सुखद मारग येह भाई।
भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥
(रा च मा, उ. ४६, पृ ५१४)

२. (क) भगति के साधन कहौं बखानी।
सुगम पथ मोहि पावहि प्रानी॥
(रा च मा., अ १६, पृ ३३१)

(ख) कृष्ण तोमार हइ जदि बले एकबार।
मायाबध हैते कृष्ण तारे करे पार॥
(चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ २८०)

(ग) शरण लआ करे कृष्णे आत्मसमर्पण।
कृष्ण तारे करे तत्काले आत्मसम॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८४)

भक्त को भजन करते अनायास ही प्राप्त हो जाता है।[1] कृष्णदास कविराज ज्ञान कर्म को त्याज्य बताते हैं। वे कई बार कहते हैं कि वेद शास्त्र इन दोनो को त्याज्य बताते है क्योकि कर्म से कृष्ण की ओर प्रेम नही होता।[2] चैतन्य देव कहते है कर्मी ज्ञानी तो भक्तिहीन ही है।[3] ज्ञान वैराग्य भक्ति के अग कभी भी नही हो सकते।[4] ज्ञान मोक्ष को देने वाला है यह वेद कहते है, परतु यह मोक्ष-सुख भक्ति को छोडकर रहता ही नहीं। योग, जप, दान तप, इत्यादि के रहते हुए भी राम उस पर उतनी कृपा नही करते जितनी उस पर करते हैं जो केवल प्रेम करता है। इसलिये जो चतुर हरि भक्त है वे मुक्ति का निरादर करके भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं।[5] ज्ञान मोक्ष देता है परतु वह तो भक्ति के अधीन है अत वह

---

१. (क) भगतिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥ (रा. च मा, उ ११५, पृ. ५५६)

(ख) ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका।
साधन कठिन न मन कहु टेका॥ (रा च मा, उ ४५, पृ ५१४)

(ग) कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक॥
(रा. च. मा, उ. ११८, पृ. ५५९)

(घ) ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जौं निर्बिघ्न पथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सत पुरान निगम आगम बद।
राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥
(रा. च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

२. कर्म्मनिन्दा कर्म्मत्याग सर्व्वशास्त्रे कहे।
कर्म्म हैते प्रेम भक्ति कृष्णे कभु नहे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६६)

३. प्रभु कहे कर्म्मी ज्ञानी दुइ भक्तिहीन।
(चै. च, मध्यलीला, परि ९, पृ. १६७)

४. ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अंग।
(चै. च., मध्यलीला, परि २२, पृ. २८६)

५. (क) ज्ञान मोच्छप्रद वेद बखाना। (रा. च मा., अर. १६, पृ. ३३०)

(ख) तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
अस बिचारि हरि भगत सयाने।
मुकुति निरादर भगति लुभाने॥ (रा.च. मा., उ. ११९, पृ. ५५९)

(ग) उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।
राम कृपा नहि करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम॥
(रा. च. मा, लं ११७, पृ ४८२)

अकेला मुक्ति नही दे सकता। भक्ति स्वतत्र है अत अकेली मुक्ति दे सकती है।[1] ज्ञान कर्म इत्यादि मे इतनी शक्ति ही नही है कि वे कृष्ण को वश में कर सकें। वे तो प्रेम से वश में होते हैं।[2] हरि का सुयश गाने से ससार के भार नष्ट हो जाते हैं और जीव उलट कर फिर इस ससार में नही नाचता अपनी निधि मे समा जाता है।[3]

माया के बधन से भक्ति ही छुडाती है। अन्य किसी में भी यह शक्ति नही है। ईश्वर की माया के उपजाये हुए दोष हो अथवा गुण कोई भी विना हरि भजन (भक्ति) किये जाते ही नही।[4] भक्ति करने से विना किसी प्रयास के समस्त दु खो की मूल जो अविद्या माया है वह नाश हो जाती है।[5] नित्य बद्ध जीव कृष्ण से बहिर्मुख हो जाता है। प्रति दिन प्रति क्षण ससार मे लिप्त रह कर नरकादि का दु ख भोगता है। इसी दोष के कारण माया पिशाची उसका गला बाधती है और आध्यात्मिक त्रयतापो से उसे जलाती रहती है। जीव काम क्रोध का दास हो कर उसकी मार सहता है। यदि भ्रमते भ्रमते साधु वैद्य की प्राप्ति हो जाती है तो उसके उपदेश मत्र से वह भागती है, साधु का उपदेश कृष्ण भक्ति उपजा देता है अत माया को भागना पडता है।[6] कृष्ण के भजन (भक्ति) और गुरु की

---

१ (क) केवल ज्ञान मुक्ति दिते नारे भक्ति विने।
कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय विना ज्ञाने॥
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २७९)

(ख) भक्ति विना मुक्ति नाहि भक्त्ये मुक्ति हय।
(चै च, मध्यलीला, परि. २४, पृ २९९)

२ (क) ज्ञाने कर्म्म योगे धर्म्मे नहे कृष्ण वश।
कृष्ण वश हेतु एक कृष्ण प्रेमरस॥
(चै च, मध्यलीला, परि. १७, पृ ८२)

३ (क) सूर हरि को सुजस गावत, जाहि मिटि भव-भार।
(सू सा, २१४, पृ ११६)

(ख) जाइ समाइ सूर वा निधि मे बहुरि जगत नहि नाचे।
(सू. सा, ११८१, पृ २७)

४ हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहि। रा च मा, उ १०४, पृ ५४६

५. भगति करत बिनु जतन प्रयासा।
ससृति मूल अविद्या नासा। (रा च. मा, उ ११९, पृ ५५९)

६. नित्यबद्ध कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख।
नित्य ससारी भुजे नरकादि दुःख॥
सेइ दोषे मायापिशाची दड करे तारे।
आध्यात्मिक तापत्रय तारे जारि मारे॥
काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते जबि साधु वैद्य पाय॥
तार उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय तवे कृष्ण निकटे जाय॥ (चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ. २७९)

सेवा से माया भागती है, उसका जाल छूटता है और कृष्ण मिलते हैं।[1] वह माया जो सारे ससार को दु ख देती है भक्त के पास फटकती भी नहीं।[2] (माया जनित) भ्रम सबसे बलवान है। यह भ्रम तभी जाता है जब भक्त भगवान को पहचान लेता है।[3] जीव को माया नचाती है और भक्ति छुडाती है।[4]

भक्ति का स्वरूप—जीव और भगवान का सबध भक्ति के द्वारा है। इस भक्ति का वास्तविक स्वरूप क्या है। यह भक्ति प्रेम रूप है।[5] विना प्रीति के भक्ति नहीं उत्पन्न होती। अत प्रीति इस भक्ति का एक आवश्यक अग है।[6] प्रेममयी भक्ति अहैतुकी है। इसका फल न तो मुक्ति की प्राप्ति है और न धन सम्पत्ति की प्राप्ति।[7] भक्ति तो इष्टदेव के प्रेम प्राप्ति के लिए है,[8] और उन्ही को सुख देने के लिए है। यह अपने सुख के लिए भी नही है वरन् कृष्ण को वशमें करनेके लिए है। यह कृष्ण के माधुर्य और सेवानद की प्राप्ति के लिए है अत कामनाहीन है।[9]जप, तप, और साधन इन सबका एकमात्र फल भक्ति है, और इष्टदेव के चरणो मे प्रीति है।[10]कामनाहीन होना भक्ति का प्रधान गुण है और वास्तविक

---

१. ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
मायाजाल छुटे पाय कृष्णेर चरण॥ (चै च., मध्यलीला, परि. २२, पृ. २८०)

२. हरि माया सब जग सतावै।
ताकौं माया-मोह न व्यापै॥ (सू. सा., ३।१३, पृ १३३)

३. भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कै भाइ।
जब भगत भगवंत चीन्हे भरम मन तैं जाइ॥ (सू. सा., १।७०, पृ. २३)

४. देखी भगति जो छोरैं ताही। (रा. च. मा., बा २०२, पृ. १२२)

५. तत्ववस्तु कृष्ण, कृष्णभक्ति प्रेमरूप। (चै.च., आदिलीला, परि २, पृ. १०)

६. जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहि प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई। (रा. च मा., उ ८९, पृ. ५३७)

७ एक भुक्ति कहे भोग अनत प्रकार।
सिद्ध अष्टादश मुक्ति पचविधाकार।
एइ जाहा नाहि सेइ भक्ति अहैतुकी।
जाहा हैते वश हय श्रीकृष्ण कौतुकी॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २४, पृ. २९४)

८ (क) सबु करि मांगहि एकु फलु रामचरन रति होउ।
(रा. च. मा, अ. १२९, पृ २३४)

(ख) अपनी प्रभु भक्ति देहु जासौं तुम नाता। (सू सा., १।१२४, पृ ४१)

(ग) कृष्ण प्राप्ति संबध भक्ति प्राप्तिर साधन।
(चै च, मध्यलीला, परि. २०, पृ. २६०)

९ कृष्णमाधुर्य सेवानद प्राप्तिर कारण।
कृष्णसेवा करे कृष्णरस आस्वादन॥ (चै.च., मध्यलीला, परि.२०, पृ २६०)

१०. देखो पीछे 'भक्ति क्या है'।

भक्ति यही है। रामचन्द्र स्वय कहते हैं "भजु मोहि, परिहरि आमभरोम मव।" यद्यपि भक्ति अहैतुकी है और कामनाहीन भक्ति का प्रतिपादन मिलता है परन्तु कामनायुक्त भक्ति की स्थिति भी बताई गई है। कृष्णदाम कविराज कहते है कामनायुक्त भक्ति भी अच्छी है। उसमे कृष्ण का 'रस' तो प्राप्त होता है और आगे चल कर काम छोड कर दास होने की अभिलाषा हो जाती है।[१] सूरदास कहते है कामी भक्त का भी क्रम क्रम करके उद्धार हो जाता है।[२] तुलसीदास कहते हैं सकाम भक्त को रामयश सुनकर सुख सम्पत्ति मिलती है, परन्तु विरक्त को राम भक्ति मिलती है।[३] भक्ति का असली स्वरूप अहैतुकी होना ही है।

भक्ति कर्म और ज्ञान से अलग है। कृष्णदाम कविराज कहते है ज्ञान वैराग्य भक्ति के अग नही हैं।[४] सूरदास कदाचित् ऐसा नही मानते वे कहते है भक्ति पथ का जो व्यक्ति अनुसरण करता है उसे अष्टाग योग करना चाहिए।[५] फिर वे और कहते है कि भक्ति पथ का जो अनुसरण करता है उसे सुत कलत्र से नाता छोड देना चाहिए। अर्थात् वैराग्य को ग्रहण करना चाहिए।[६] सूरदास आगे चल कर त्रिविध भक्ति का वर्णन करते है। कहते हैं एक भक्ति कर्म योग है। उसमे वर्णाश्रम धर्म को लेकर चलते हैं, अधर्म कभी नही करते। दूसरी भक्ति, भक्ति योग है। इसमें हरि का स्मरण और हरि से प्रीति करते है। तीसरी भक्ति ज्ञान योग है जिसमें सब को ब्रह्म जान कर सबका हित करते हैं।[७] इस विवरण से ज्ञात होता है कि सूरदास ज्ञान और कर्म को भक्ति का ही प्रकार मानते हैं। तुलसीदास भी कहते है कि हरि भक्ति पथ विरति और विवेक से सयुक्त है।[८] परन्तु ये दोनो ज्ञान, कर्म

---

१ चै च, पृ २८०।

२ सू सा, पृ १३७।

३ रा च मा, पृ ४९९।

४ ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अग। (चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८६)

५ भक्ति-पथ कौं जो अनुसरे।
सो अष्टाग जोग कौं करै॥ (सू सा, २१२१, पृ. १२१)

६ भक्ति पथ कौं जो अनुसरै।
सुत कलत्र सौं हित परिहरै॥ (सू. सा, २१२०, पृ १२०)

७ एकै कर्म-जोग कौं करै।
बरन-आसरम धर विस्तरै॥
अरु अधर्म कबहू नहिं करै।
ते नर याही विधि निस्तरै॥
हरि-पद-पकज प्रीति लगावैं।
ते हरि-पद कौं या विधि पावैं॥
एकै ज्ञान योग विस्तरै।
ब्रह्म जानि सबसौं हित करै। (सू सा, २११३ पृ १३७)

८ श्रुति समत हरि भगति पथ,
सजुत विरति बिबेक। (रा च मा, उ १००, पृ ५४४)

और वैराग्य को भक्ति का अग मानते हो ऐसी ध्वनि नही निकलती । सूरदास कहते है ज्ञान, ध्यान और स्मरण वस इतना ही है कि हरि का रूप देख कर नाम लो ।[1] अर्थात् ज्ञान का वास्तविक कार्य इतना ही है कि वह मन मे हरि का रूप जगा कर प्रीति उत्पन्न कर दे । तुलसीदास तो ज्ञान को भक्ति से भिन्न नही मानते । वे कहते है 'दोनो ही भव सभव खेद'को नष्ट करते है, परन्तु भक्ति का अग ज्ञान नही है । विरक्ति (वैराग्य) की ढाल और ज्ञान की तलवार से मोह इत्यादि को मार कर हरि भक्ति मिलती है । ज्ञान होने से मोह दूर होता है तव राम के चरणो मे अनुराग होता है । ज्ञानी सज्जन जब ज्ञान वैराग्य के नेत्र लेकर सुमति कुदाल से खोदते है तव भक्ति मणि मिलती है ।[2] अर्थात् ज्ञान वैराग्य इत्यादि भक्ति-प्राप्ति मे सहायक है । चैतन्य देव ने भक्ति-स्मृति-शास्त्र सब को बताया, उन्होने वैराग्य युक्त भक्ति करने को सिखाया, परन्तु शुष्क वैराग्य और ज्ञान का निषेध किया ।[3] अर्थात् वैराग्य और ज्ञान की भक्ति के लिए उपादेयता तो है परन्तु भक्ति, ज्ञान कर्म और वैराग्य से युक्त नही है ।

यह भक्ति मोक्ष वाछा से हीन है । मोक्ष की वाछा तो ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग मे है । भक्त को मोक्ष नही चाहिए । मोक्ष की वाछा भक्ति में नही है । यह तो वडा भारी "कैतव" (अज्ञान) है । इससे भक्ति अतर्धान हो जाती है ।[4] कैवल्य परम पद ज्ञान पथ को निर्विघ्न पार करने पर मिलता है, भक्ति से उससे कोई सम्बन्ध नही है । भक्त उस मुक्ति का निरादर

---

१. कह्यौ, यह ज्ञान, यह ध्यान, सुमिरन यहै,
निरखि हरि रूप मुख नाम लीजै । (सू सा, ४।११ पृ. १४६)

२. (क) विरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस विचारि ॥
(रा च मा., उ १२०, पृ ५६१)

(ख) होइ विवेकु मोह भ्रम भागा ।
तव रघुनाथ चरन अनुरागा ॥ (रा च मा, अ ९३, पृ २१८)

(ग) मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्राणी ।
पाव भगति मनि सव सुखखानी ॥ (रा च. मा, उ १२०, पृ ५६०)

३. वृन्दावने कृष्णसेवा वैष्णव आचार्य ।
भक्तिस्मृति-शास्त्र करि करिह प्रचार ॥
जुक्त वैराग्यस्थिति सव शिक्षाइल ।
शुष्क वैराग्य ज्ञान सव निषेधिल ॥ (चै. च, मध्यलीला, परि २४, पृ. २९२)

४ अज्ञान तमेर नाम कहिये कैतव ।
धर्म-अर्थ-काम-वाछा आदि एइ सव ॥
तार मध्ये मोक्ष वाछा कैतव प्रधान ।
जाहा हैते कृष्णभक्ति हय अंतर्धान ॥ (चै च, आदिलीला, परि. १, पृ ९)

करके भक्ति की ओर आकर्षित होता है।[1] इसका यह अर्थ नहीं है कि भक्ति मे मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति की वाछा से भक्ति तो हीन है परन्तु मुक्ति उसके पीछे भागती है।[2]

भक्ति की प्राप्ति—भक्ति परम पुरुषार्थ है। परन्तु अकेले भक्त के वश का यह पुरुषार्थ नही है। यह भक्ति जीव के मन में बड़ी कठिनाई से उत्पन्न होती है। उसे तो माया भ्रम में डाले रहती है। वह तभी भागती है जब इष्टदेव कृपा करते है। अर्थात भक्ति की प्राप्ति इष्टदेव की कृपा से ही होती है।[3]

भक्ति के प्रकार—हिन्दी के वैष्णव कवियो ने भक्ति का विभाजन करके उसके प्रकार इत्यादि की कोई क्रमवद्ध विवेचना नही की है। कुछ उल्लेख कही कही मिल जाते हैं। कृष्णदास कविराज ने भक्ति पर अच्छी विवेचना दी है। उसके प्रकारो पर भी क्रमवद्ध रूप से प्रकाश डाला है। यद्यपि इसे वे सूक्ष्म विवेचन ही बताते है, परन्तु हिन्दी में इतना भी नही है। तुलसीदास ने राम-लक्ष्मण सवाद और राम-शवरी मिलन के समय भक्ति की कुछ विवेचना अवश्य की है। कृष्णदास कविराज ने कई प्रकार से भक्ति के विभाजन किये है। प्रत्येक विभाजन का आधार अलग-अलग है। एक विभाजन भक्त की विभिन्न भावनाओ के आधार पर है, दूसरा इष्ट के प्रति रति भेद से उद्भूत है, तीसरा भक्ति की साधना के अनुरूप है, और चौथा कृष्ण के स्वरूप ज्ञान के कारण है। किसी किसी का हिन्दी में भी उल्लेख मिलता है।

१ **भक्त भेद से**—कृष्णदास कविराज ने भक्ति के चार प्रकार भक्त की विभिन्न भावनाओ के आधार पर बताये है। ये दास्य, सख्य, वात्सल्य और शृगार है। वे कहते है ये चारो भाव चार प्रकार के भक्तो के आधार हैं। वे सब अपने अपने भाव को श्रेष्ठ करके मानते है और उसी भाव से कृष्ण सुख का आस्वादन करते हैं।[4] सूरदास भी भक्ति की

---

१ अस विचारि हरि भगत सयाने।
मुकुति निरादर भगति लुभाने॥ (रा च मा, उ ११९, पृ ५५९)

२ (क) राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं।
अनइच्छत आवइ बरिआईं॥ (रा च मा, उ ११९, पृ ५५९)

(ख) कृष्णोन्मुखे सेइ मुक्ति हय विना ज्ञाने।
(चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २७९)

३ (क) कृष्ण तोमार हउ यदि बले एक बार।
मायाबध हैते कृष्ण तारे करे पार॥ (चै च, मध्यलीला, परि २०, पृ. २९)

(ख) महत्कृपा विना कोन कर्म्मे भक्ति नय।
(चै च, मध्य लीला, परि २२, पृ २८१)

(ग) सो जाने जेहि देहु जनाई (रा च. मा)

(घ) अब मो पै प्रभु कृपा करीजै।
भक्ति अनन्य आपुनी दीजै॥ (सू सा, ३।१३, पृ १३६)

४ दास्य सख्य वात्सल्य आर जे शृगार।
चारि भावे चतुर्विध भक्तइ आधार॥

भावना के अनुसार चार प्रकार की भक्ति बताते हैं। परन्तु उनके नाम भिन्न हैं। यह चार प्रकार की भक्ति सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी और शुद्धा है। यहा पर वे यह भी कह देते हैं कि भक्ति एक है परन्तु बहुत प्रकार की हो जाती है जैसे पानी मे कई रग मिला देने से वह कई रग का हो जाता है।[1] सतोगुणी भक्ति मे मुक्ति की वाछा होती है, रजोगुणी में धन कुटुम्ब की वाछा होती है, तमोगुणी मे वैरी नाश की वाछा होती है और शुद्धा भक्ति मे केवल इष्टदेव की चाह होती है। शुद्धाभक्ति में भक्त मुक्ति नही चाहता। मन, वचन, क्रम से इष्टदेव की सेवा करता है।[2] शुद्ध भक्ति का उल्लेख कृष्णदास ने भी किया है, यद्यपि सूर का सा पूरा विभाजन उन्होने नही दिया है। शुद्ध भक्ति अन्य सब कामनाओं को छोड कर केवल कृष्ण का अनुशीलन करती है। इससे कृष्ण के प्रति प्रेम उपजता है।[3]

२. रति भेद से—दूसरा विभाजन कृष्ण रति भेद से है। यह विभाजन केवल कृष्णदास ने किया है। इस विभाजन का मुख्य आधार वास्तव में भक्तो के भेद से है। भक्तो के विभिन्न रूपो के कारण ही कृष्ण के प्रति रति मे भी भेद है। कुछ भक्त जैसे नद, यशोदा, कृष्ण को पुत्र रूप से देखते है और स्नेह करते हैं। कुछ भक्त जैसे सखागण मित्र के रूप मे उन्हे स्नेह करते है। कुछ भक्त जैसे राधा और गोपिया केवल शृगार भाव से उन्हें स्नेह करती है। कुछ उनके दास है और कुछ वैराग्य भावना से उन्हे भजते हैं। इस प्रकार वात्सल्य, सख्य, मधुर, दास्य और शात ये पाच प्रकार की भक्तिया हुई।[4] मधुर भक्ति

निज निज भाव सबे श्रेष्ठ करि माने।
निज भावे करे कृष्ण सुख आस्वादने॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ५, पृ. २३)

१. माता भक्ति चारि परकार।
सत रज तम गुन सुद्धा सार॥
भक्ति एक पुनि बहुविधि होई।
ज्यो जल रंग मिलि रग सु होई॥ (सू. सा., ३।१३ पृ. १३३)

२. भक्ति सात्विकी, चाहत मुक्ति।
रजोगुनी, धन कुटुवऽनुरक्ति॥
तमो गुनी चाहै या भाइ।
मम वैरी क्यो हू मरि जाइ॥
सुद्धा भक्ति मोहि कौं चाहै।
मुक्तिहुं कौं सो नहिं अवगाहै॥
मन क्रम वच मम सेवा करै। (सू. सा., ३।१३ पृ. १३३)

३. अन्य वांछा अन्य पूजा छाडि ज्ञानकर्म।
आनुकूल्ये सर्व्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन॥
एइ शुद्ध भक्ति इहा हैते प्रेम हय।
पचरात्रे भागवते ए लक्षण कय॥ (चै. च., मध्यलीला, परि. २९, पृ. २५१)

४. भक्त भेदे रति भेद पंच परकार।
शांतिरतिदास्यरति सख्य रति आर॥

को प्रेम भक्ति भी कहा गया है। वैसे तो सभी भावों की भक्तिया अच्छी है परन्तु प्रेम भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। उसके विना जगत् का कल्याण नही है।[१] चैतन्य अवतार का कारण बताते समय कृष्णदास बार बार यही कहते है कि कृष्ण को प्रेम अत्यन्त अच्छा लगता है। उसी राधा प्रेम को अनुभव करने वे चैतन्य रूप में आये।[२] शृगार रस में सर्वाधिक माधुरी है अत मधुर भक्ति अर्थात् प्रेम भक्ति सर्वोत्तम है।[३] सूरदास, नददास और तुलसीदास ने भी प्रेम भक्ति का उल्लेख किया है परन्तु वह रति भेद से उद्भूत भक्तियो में से एक है, यह नही कहा। सूरदास कहते है प्रेम भक्ति के विना भक्ति नही मिलती। नददास कहते है भगवान् प्रेम से ही वश में होते है। तुलसीदास कहते है प्रेम भक्ति जल के विना मन का मैल नही जाता।[४]

३ साधन भेद से—तीसरा विभाजन भक्ति की साधना के अनुसार है। कृष्णदास ने साधन भक्ति के दो रूप बताये हैं, एक वैधी और दूसरी रागानुगा। सूर, तुलसी, तथा परमानददास इस प्रकार का उल्लेख तो नही देते परन्तु भक्ति के साधनो को नवधा भक्ति, दशधा भक्ति कह कर उल्लेख वे भी करते है।[५] कृष्णदास कहते है यह साधन

वात्सल्यरति मधुररति पच विभेद।
रतिभेदे कृष्णभक्ति रस पचभेद॥
शात दास्य सख्य वात्सल्य मधुर रस नाम।(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

१ दास्य सख्य वात्सल्य शृगार चारि रस।
चारि भावे भक्तजन कृष्ण तार वश॥
·
चिरकाल नाहि करि प्रेम भक्ति दान।
भक्ति विना जगतेर नाहि अवस्थान॥ (चै च., आदिलीला, परि. ३, पृ. १७)

२. चैतन्यचरितामृत, आदिलीला, चतुर्थ परिच्छेद।

३ तटस्थ हैया हृदि विचार जदि करि।
सब रस हैते शृगारे अधिक माधुरी॥
अतएव मधुर रस कहि तार नाम।
स्वकीया परकीया-भावे द्विविध सस्थान॥
··
प्रौढ़ निर्मल भाव प्रेम सर्वोत्तम।
कृष्णेर माधुर्य रस आस्वाद कारण॥ (चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २३)

४ (क) प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई।
नाथ कृपा करि दीजे सोई (सू० सा०, पृ०)
(ख) ऐसे प्रभु बस होत जिहि सुनहु प्रेम की बात।
(नवदास, दशम स्कंध, पृ. ३२६)
(ग) प्रेम भगति जल बिनु खगराई।
अभिअतर मल कबहु न जाई॥ (रा० च० मा०,)

५ (क) नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं। (रा. च. मा., उ. ३५, पृ. ३४५)
(ख) तातें दशधा भक्ति भली। (परमानददास)

भक्ति दो प्रकार की है, एक वैधी और एक रागानुगा। रागहीन जन शास्त्र की आज्ञा से जिस शास्त्रोक्त विधि से कृष्ण का भजन करते है उसे वैधी भक्ति कहते है।[१] इस वैधी भक्ति के ६४ अग है। ये ६४ अग ये है। एक साधु सग तो उसका सार है ही फिर अन्य गुरु पदाश्रय, गुरु दीक्षा, गुरु सेवन, सद्धर्म शिक्षा, पृच्छा, साधुमार्गानुगम, कृष्ण प्रीति, भोग त्याग, कृष्ण तीर्थवास, यावत् निर्वाह, प्रतिगृह, एकादश्योपवास धात्र्यश्वथ पूजन, गोपूजन, विप्र पूजन, वैष्णव पूजन, मेवा और नामापराध विसर्जन, अवैष्णव सग त्याग, वहुत शिष्य न करना, वहुग्रथ कलाभ्यास और व्याख्यान वर्जन, हानि लाभ में समभाव, शोकादि के वश मे न होना, अन्य देव तथा अन्य शास्त्र की निन्दा न करना, विष्णु वैष्णव की निन्दा न सुनना, किसी की निन्दा न करना, प्राणिमात्र को मनोवाक्य से दुख न देना, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वदन, परिचर्या, दास्य, सख्य, आत्म-निवेदन, मूर्ति के आगे नृत्य गीत, विज्ञप्ति और दडवत, अभ्युत्थान, अनुव्रज्या तीर्थ गृह गमन, परिक्रमा, स्तव पाठ, जप, सकीर्तन, धूपमाल्य गध ग्रहण तथा महाप्रसाद भोजन, रात्रि महोत्सव, श्री मूर्ति दर्शन, निज प्रिय वस्तु दान, ध्यान, इष्टदेव का सेवन, तुलसी अर्पण, वैष्णव सेवा, मथुरा सेवा, भागवत सेवा, समस्त चेष्टा कृष्णार्थ, उनकी कृपा की इच्छा, कृष्ण जन्म उत्सव में भाग लेना, सर्वदा शरणापत्ति, कार्तिक इत्यादि व्रत ये चौसठ अग है।[२] इनमे से साधु सग, नाम कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरा वास, श्री मूर्त्ति सेवन ये पाच अग सर्वश्रेष्ठ हैं।[३] तुलसीदास ने राम-शवरी मिलन में राम से जिस भक्ति का उल्लेख करवाया है वह साधन भक्ति है। वे कहते है, मै नवधा भक्ति कहता हू। तुम सावधान हो कर सुनो। यह नवधा भक्ति इस प्रकार है।[४] सतो की सेवा, मेरी कथा में रति, गुरु सेवा, इष्टदेव गुणगान, मत्र जाप, इष्टदेव मे दृढ विश्वास, वेद वर्णित भजन, छठा अग दम शील और वहुत से कर्मो से विरक्ति

---

१. एइत साधन भक्ति दुइत प्रकार।
एक वैधी भक्ति रागानुगा भक्ति आर॥
रागहीन जन भजे शास्त्रेर आज्ञाय।
वैधी भक्ति वलि तारे सर्वशास्त्र गाय॥ (चै.च., मध्यलीला, परि. २२, पृ.२८४)

२ चै. च., मध्यलीला, परि २२, पृ २८५

३ साधु सग नाम कीर्त्तन, भागवत श्रवण।
मथुरावास श्री मूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥
सकल साधन श्रेष्ठ एइ पंच अग। (चै. च, मध्यलीला, परि २२, पृ० २८५)

४. नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति सतन्ह कर सगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपटतजि गान॥
मत्र जाप मम दृढ विस्वासा।
पंचम भजनु सो वेद प्रकासा॥

और सद् धर्म में निरतर रति, सातवा अग जग को ईश्वरमय देखना और भगवान से अधिक करके सत को मानना, आठवा यथालाभ में सतोष और परदोष न देखना और नवा अग सबमे छल हीनता, भगवान मे भरोसा तथा हर्ष और दीनता (दुख) मे उदासीनता है। लक्ष्मण से भक्ति के बारे मे बताते हुए राम प्राय उन सब अगो का ही दूसरे शब्दो मे वर्णन करते है। उसमें विप्र के चरणो मे प्रीति, निज निज कर्मो और श्रुति की रीति मे अनुरक्ति, भगवान के गुण गान मे शरीर मे पुलक, ये और अग बताये है। इसके अलावा वे कहते है कि विप्रो के चरणो की प्रीति के फलस्वरूप 'स्रवनादिक नव भगति' दृढ होती है।[1]

परमानद दास दशवा भक्ति बताते हैं। इसमे वे श्रवण, कीर्त्तन, सुमरिन, पदसेवन, अर्चन, वदन, दासभाव, सखाभाव, आत्म-समर्पण, और प्रेम इतने अग बताते हैं।[2] सूरदास भी इसी प्रकार दशवा भक्ति बताते हैं।[3] ऊपर दिये अगो के अलावा कृष्णदास कविराज भी एक जगह 'दशविधाकार' भक्ति का उल्लेख करते है। भक्ति शब्द का अर्थ दशविधा-

---

छठ दम सील बिरति बहु कर्मा ।
निरत निरतर सज्जन धर्मा ॥
सातव सम मोहिमय जग देखा ।
मोतें सत अधिक करि लेखा ॥
आठव जथालाभ सतोषा ।
सपनेहु नहिं देखइ पर दोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना ।
मम भरोस हिअ हरष न दीना ॥ (रा च मा, उ. ३५-३६, पृ. ३४५-४६)

१ येहि कर फल पुनि विषय विरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
स्रवनादिक नव भगति दृढाहीं । (रा च. मा, अ १६, पृ ३३१)

२ तातें दसवा भक्ति भली ।
जिन जिन कीनी तिनके मनते नेकु न अनत चली ।
श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्त्तन करि शुकदेव ।
सुमरिन करि प्रह्लाद निर्भय भयो कमला करी पद सेव ।
प्रथु अरचन, सुफलक सुत वदन, दास भाव हनुमत ।
सखा भाव अर्जुन बस कीने श्री हरि श्री भगवत ।
बलि आत्म समर्पन करि हरि राखे अपने पास ।
अविरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानद दास ।
(अष्ट व सं, पृ. ५४३)

३ श्रवण कीर्त्तन स्मरण पाद रत, अरचन वदन दास ।
सख्य और आत्म निवेदन, प्रेम लक्षणा जास ॥
(सूर सारावली, सू सा, वै प्रे, पृ ५९)

कार है, उनमें एक साधन प्रेम-भक्ति है और अन्य नव प्रकार और है।[1] इसमे यह नही ज्ञात होता कि यह नव प्रकार क्या है।

तुलसी की नवधा भक्ति निरूपण में जो अग दिए है उनमे से कुछ कृष्णदास के चौंसठ अगों में भी दिए है। श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पाद सेवा, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य, आत्म-समर्पण ये अग कृष्णदास, तुलसी, सूर, परमानद, सब ने दिए हैं।

यह तो हुई वैधी भक्ति। कृष्ण दास कविराज इसे सबसे हीन प्रकार की भक्ति मानते हैं परन्तु बेकार नही मानते। भक्ति-हीनता से तो यह अच्छी ही है क्योंकि इसके साधन से कृष्ण-प्रेम ही उपजता है। कोई एक अग साधता है, कोई अनेक। इससे निष्ठा उपजती है और प्रेम उत्पन्न होता है।[2]

रागानुगा भक्ति के अधिकारी तो सभी है परन्तु गोपी-भाव की रागानुगा भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। राय रामानन्द और चैतन्यदेव के प्रश्नोत्तरो में यह बात सिद्ध की गई है। चैतन्यदेव ने रामानन्द से कहा कि तुम साध्य का निर्णय करो। अर्थात् वास्तविक साध्य क्या है,यह बताओ। रामानद ने कहा कि स्वधर्माचरण,विष्णु-भक्ति साध्य है,स्वधर्म त्याग साध्य है, ज्ञान-मिश्रा भक्ति साध्य है, ज्ञान-शून्य भक्ति साध्य है, प्रेम-भक्ति साध्य है, दास्य-प्रेम साध्य है, सख्य-प्रेम साध्य है, वात्सल्य-प्रेम साध्य है। इन सबको चैतन्यदेव ने बाह्य बता कर अधिक महत्व नही दिया। तब रामानद ने कहा, "काता भाव सर्व साध्य सार है"। कृष्ण की सम्पूर्ण रूप से प्राप्ति इसी प्रेम से होती है। कृष्ण मे रूप और माधुर्य की कमी नही है परन्तु यह माधुर्य व्रजदेवियो का साथ पाकर और बढ जाता है। राधा का प्रेम जो है वह साध्य-शिरोमणि है। चैतन्यदेव कहते है कि यही निश्चय रूप से 'साध्यावधि' है।[3] आगे चल कर रामानद कहते है कि राधाकृष्ण-लीला अत्यन्त गूढ है, दास्य वात्सल्यादि भक्तियो से यह दृष्टिगोचर नही होती। केवल सखियो को ही इसका अधिकार है। सखियो से ही इस लीला का विस्तार होता है।[4] सखियों के बिना इस लीला की पुष्टि नही होती। सखीभाव जिसमे

---

१. भक्ति शब्देर अर्थ हय दशविधाकार।
एक साधन प्रेमभक्ति नव प्रकार॥
(चै च, मध्यलीला, परि २४, पृ २९४)

२. साधुसग नामकीर्त्तन भागवत श्रवण।
मथुरावास श्रीमूर्त्तिर श्रद्धाय सेवन॥
सकल साधन श्रेष्ठ एइ पच अग।
कृष्ण प्रेम जन्माय एइ पाचेर अल्प संग॥
... ...
एक अंग साधे केह साधे बहु अंग।
निष्ठा हैते उपजय प्रेमेर तरंग॥ (चै च, मध्यलीला, परि २२, पृ २८५)

३. चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला, परि. ८, पृ. १४४-४६

४. राधाकृष्णलीला एइ अति गूढतर। दास्य वात्सल्यादि भावे ना हय गोचर॥
सबे एक सखिगणेर इहा अधिकार। सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥
(चै च., मध्यलीला, परि ८, प १५१)

होगा वही राधा कृष्ण की कुंज सेवा की साधना कर सकता है।[1] इस मधुर भक्ति की साधना का अन्य कोई भी उपाय नही है। गोपीभाव की रागानुगा भक्ति ही श्रेष्ठ है। इसी भाव से राधा-कृष्ण के चरणो की प्राप्ति होती है। गोपी-भाव के विना कृष्ण का ऐश्वर्य-ज्ञान मात्र होता है, और उस भाव से भजन करने पर भी व्रज-स्थित कृष्ण की प्राप्ति नही होती।[2]

गोपी-भाव के प्रेम से युक्त रागानुगा भक्ति एक दूसरे भाव मे भी श्रेष्ठ है। यह निष्काम प्रेम है, अत यह अहैतुकी भक्ति है। गोपी-भाव का प्रेम केवल कृष्ण को सुख देने के लिए है। इस प्रेम का सबसे बडा बल कृष्ण को सुख देना है। गोपी-प्रेम कृष्ण को सुख देने मात्र का संबंध है। अपने सुख के लिए गोपिया कुछ नही करती। वे अपने सुख-दु ख का कुछ भी विचार नही करती। कृष्ण को छोड कर अन्य सब का वे परित्याग कर देती है। उन्हें सुख पहुचाने के लिए उनसे शुद्ध प्रेम करती है।[3] कृष्ण के साथ लीला करने की भी उनकी इच्छा नही होती, वे तो कृष्ण और राधा की लीला करवाती है और उसी में सुख पाती है। गोपियो का यह प्रेम इसीलिए प्रकृत-काम नही है। उनकी क्रीडा मे काम क्रीडा से कुछ साम्य है अत उसे 'काम' नाम दे दिया जाता है। परन्तु वास्तव में गोपी-प्रेम काम नही है। उसका रूढ नाम 'भाव' है। अपनी इन्द्रियो को सुख देने की कामना जिस

---

१ सखी विना एइ लीला पुष्ट नाहि हय ॥
सखीलीला विस्तारिया सखी आस्वादय ॥
सखी विना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जेइ तारे करे अनुगति ॥
राधाकृष्ण-कुंजसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥ (चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १५२)

२ अतएव गोपीभाव करि अंगीकार। रात्रि दिन चिंते राधाकृष्णेर विहार ॥
सिद्ध देह चिंति करे ताहाञि सेवन। सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण ॥
गोपी अनुगति विना ऐश्वर्य ज्ञाने। भजि लेह नाहि पाय व्रजेन्द्रनंदने ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १५३)

३ (क) सर्व्व त्याग करि करे कृष्णेर भजन।
कृष्ण सुख हेतु करे प्रेमेर सेवन ॥ (चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २८)

(ख) कृष्ण-सुख तात्पर्य मात्र प्रेम महाबल ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २८)

(ग) कृष्ण-सुख लागि मात्र कृष्ण से सम्बन्ध
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २८)

(घ) आत्मसुख दु ख गोपी ना करे विचार।
कृष्णसुख हेतु करे सब व्यवहार ॥
कृष्णविना आर सब करि परित्याग।
कृष्णसुख हेतु करे शुद्ध अनुराग ॥
(चै च., आदिलीला, परि. ४, पृ २८)

प्रेम मे होती है वह प्रेम तो काम है, परन्तु जिस प्रेम मे कृष्ण को सुख देने की कामना है वह काम नही है।[1] गोपियो में अपनी इद्रियो को सुख देने की वाछा तो है ही नही। वे तो जो कृष्ण को सुख दे, ऐसा ही विहार करती है।[2]

नददास–भिन्न हिन्दी वैष्णव साहित्य मे इस रागानुगा भक्ति का जो गोपी-भाव से युक्त होती है कही भी उल्लेख नही है। यह प्रेम काम नही है, और कृष्ण की तुष्टि के लिए जितने काम किए जाते हैं वे व्यभिचार नही हैं, यह नददास ने 'सिद्धान्त पचाध्यायी' में एक स्थान पर कहा है।[3] बस इस कथन के अतिरिक्त और किसी प्रकार का उल्लेख या विवेचना वे नही करते।

४ कृष्ण के स्वरूप-ज्ञान से—कृष्ण के स्वरूप-ज्ञान से दो प्रकार की रतिया उत्पन्न होती है। कृष्ण का एक स्वरूप तो वह है जो द्वारिका या मथुरा में है, अर्थात् ऐश्वर्यवान कृष्ण। दूसरा स्वरूप, जो ब्रज में है, इस ऐश्वर्य से हीन है। ये दोनो स्वरूप भक्ति उपजाते है। ऐश्वर्यवान् कृष्ण का स्वरूप जिस भक्ति को उपजाता है वह 'ऐश्वर्यज्ञान-मिश्रा' भक्ति है और ऐश्वर्यहीन प्रेममय कृष्ण का स्वरूप जिस भक्ति को उपजाता है वह 'केवलाभक्ति' है।[4] ऐश्वर्य-ज्ञान-मिश्रा-भक्ति मे प्रीति का विस्तार नही हो पाता, वरन् सकोच ही होता

---

१. (क) सखीर स्वभाव एइ अकथ्य कथन।
कृष्णसह निज लीलाय नाहि सखीर मन॥
कृष्णसह राधिकार लीला जे कराय।
निज सुख हैते ताते कोटि सुख पाय॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

(ख) सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीडा-साम्ये तार कहि काम नाम॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

(ग) गोपीगणेर प्रेमेर रूढ भाव नाम।
शुद्ध निर्मल प्रेम कभु नहे काम॥
... ..
आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम॥
(चै. च., आदिलीला, परि. ४, पृ. २८)

२. निजेन्द्रिय सुख हेतु कामेर तात्पर्य। कृष्णसुखेर तात्पर्य गोपीभाववर्य॥
निजेन्द्रिय सुख वाछा नाहि गोपिकार। कृष्णे सुख दिते करे सगम विहार॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५२)

३ कृष्न तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा॥
फल विभिचार न होइ, होइ सुख परम अपारा॥
(नंददास, सिद्धातपंचाध्यायी, पृ. १८६)

४. पुन: कृष्णरति हय दुइ त प्रकार।
ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा केवला भेद आर॥
गोकुले केवलारति ऐश्वर्यज्ञानहीन।
पुरीद्वये वैकुण्ठाद्ये ऐश्वर्य प्रवीण॥ (चै.च., मध्यलीला, परि १९, पृ. २५२)

है, क्योकि इसमे कृष्ण के ऐश्वर्य ज्ञान की प्रधानता रहती है। यह भावना भय उत्पन्न करती है, प्रीति नही। शात और दास्य रस में तो ऐश्वर्य ज्ञान कभी कभी उद्दीप्त होता है परन्तु वात्सल्य, सख्य और मधुर रस मे यह सकोचन का ही काम करता है। वसुदेव और देवकी कृष्ण की ओर वात्सल्य भाव से उन्मुख है। परन्तु उनके उस ऐश्वर्य के ज्ञान के कारण ही भयभीत हो जाते है, जब कृष्ण उनकी चरण वदना करते हैं। इसी प्रकार अर्जुन अपने सखा कृष्ण का विराट रूप देखते ही भयभीत हो गए और उनसे अपनी धृष्टता की क्षमा मागी। कृष्णदास कविराज कहते है कि कृष्ण यदि रुक्मिणी से परिहास मात्र करते हैं तो वह यह सोच कर कि कृष्ण मुझे त्याग देगे डर जाती है। केवला-भक्ति ऐश्वर्य का आतक नही मानती। उसमें शुद्ध प्रेम होता है।[1]

इन सब प्रकार की भक्तियो का विवरण देकर कृष्णदास कविराज एक की दूसरेमें श्रेष्ठता बताते है। वे कहते हैं कि शात-भक्ति के दो गुण है,एक तो कृष्ण में निष्ठा और दूसरा तृष्णात्याग। वैसे तो ये दोनो गुण उसी प्रकार सब भक्तो में होते है जिस प्रकार आकाश का शब्द गुण समस्त भूतो मे व्याप्त रहता है। परन्तु भक्त-विशेष से अतर हो जाता है। शात-भक्ति का स्वभाव ही है कि वह कृष्ण के केवल परम ब्रह्मत्व, परमात्मत्व और ज्ञान-प्रवीणत्व को अनुभव करके कृष्ण में निष्ठा रखती है। उसमें कृष्ण के प्रति ममत्व की झलक भी नही होती। शात-भक्त मे केवल स्वरूपज्ञान ही होता है। दास्य-भक्ति मे ये दोनो गुण तो है परन्तु प्रभु के पूर्णैश्वर्य का ज्ञान और होता है। इस प्रकार के ज्ञान से भक्त में सभ्रम और गौरव की भावना उठ खडी होती है और उसके फलस्वरूप वह सेवा करके कृष्ण को निरतर सुख देता है। इस प्रकार दास्य-भक्ति में शात-भक्ति की अपेक्षा सेवन का गुण अधिक होता है। सख्य-भक्ति में शात के गुण और दास्य का सेवन तो होता ही है, विश्वासमय मित्रता भी होती है। सखागण कृष्ण को कन्धे पर चढ़ाते हैं और स्वय उनके कधे पर चढते है। सख्य भक्ति 'विश्रम्भ प्रधान' है और 'गौरव-सम्भ्रमहीन' है।

---

१ ऐश्वर्यज्ञानप्राधान्ये सकोचित प्रीति।
देखिले ना माने ऐश्वर्य केवलार रीति॥
शांतदास्यरसे ऐश्वर्य काहाओ उद्दीपन।
वात्सल्ये सख्ये मधुर रसे सकोचन॥
वसुदेव-देवकीर कृष्ण चरण वदिल।
ऐश्वर्यज्ञाने दुहार मने भय हैल॥
कृष्णेर विश्व रूप देखि अर्जुनेर हैल भय।
सखाभावे धार्ष्ट्य क्षमाय करिया विनय॥
.. . ..
कृष्ण जवि रुक्मिणीरे कैल परिहास।
कृष्ण छाडिवेन जानि रुक्मिणीर हैल त्रास॥
केवलार शुद्ध प्रेम ऐश्वर्य ना जाने॥
ऐश्वर्य देखिले निज सबंध ना माने॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, प. २५२-२५३)

इसमें कृष्ण के प्रति ममता अधिक होती है और उन्हें अपने समान समझने का ज्ञान भी होता है। वात्सल्य भक्ति में शांत के गुण और दास्य का सेवन जिसे इसमें पालन कहना चाहिए और सख्य का असंकोच और गौरवहीनता है। ममता का आधिक्य होता है। मधुर भक्ति में कृष्ण निष्ठा, अतिशय सेवा, सख्य का असंकोच, वात्सल्य का लालन, ममता ये सब हैं। परन्तु कांत-भाव से अपने शरीर में भी सेवा करते हैं, अतः मधुर भक्ति में पांच गुण हैं। इसलिए मधुर भक्ति में सब भावों का समाहार हो जाता है।[1]

कृष्णदास कविराज फिर कहते हैं कि साधन-भक्ति के द्वारा रति का उदय होता है, रति के गाढ़े होने पर उसका नाम प्रेम हो जाता है। प्रेमवृद्धि क्रम से स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव हो जाती है। ये सब कृष्ण भक्ति के रस के स्थायी भाव हैं। जब इनमें विभाव-अनुभाव मिल जाते हैं तब कृष्ण-भक्ति-रस अमृत के समान हो जाता है।[2] इस प्रकार भक्ति को रस की श्रेणी तक पहुंचा देने की भूमिका प्रारंभ होती है। भक्त के लिए तो शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रस, ये पांच रस प्रधान हैं। हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, वीभत्स और भय, ये सब रस गौण हैं। भक्त के मन में तो वे ही पांच रस स्थायी रूप से रहते हैं, अन्य रस कारण पाकर आ जाते हैं।[3]

---

१. चैतन्यचरितामृत पृ, २५४

२. साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ़ हैले तार प्रेम नाम कय॥
प्रेमवृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥
... . . .
एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव॥
स्थायी भावे मिलि जदि विभाव अनुभाव॥
सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति रस हय अमृत आस्वादने।

(चै. च, मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

३ शांत दास्य सख्य वात्सल्य मधुर रस नाम।
कृष्ण भक्ति रस मध्ये ए पंच प्रधान॥
हास्याद्भुत वीर करुण रौद्र वीभत्स भय।
पंचविध भक्ते गौण सप्तरस हय॥
पंचरस स्थायी व्यापि रहे भक्त मने।
सप्त गौण आगतुक पाइये कारणे॥

(चै. च., मध्यलीला, परि. १९, पृ. २५२)

९. भक्तिरस

चैतन्यदेव के समकालीन और परवर्ती वृंदावन-स्थित षट्-गोस्वामी गौडीय वैष्णव मत के व्यवस्थाकार थे। इन्होंने इस मत के सिद्धान्तो, विश्वासो और आचारो की विद्वत्ता-पूर्ण विशद व्याख्या की है। भक्ति-भावना को धार्मिक दृष्टि से एक स्वतंत्र रस मान कर रूप गोस्वामी ने सबसे पहले व्याख्या की। उन्होंने इस विषय पर 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' और 'उज्ज्वल-नील-मणि' दो ग्रंथ रचे। भक्ति को इन्होंने स्वतंत्र रस बताया है। चैतन्यदेव ने इस भक्ति रस का परिचय स्वय ही रूप गोस्वामी को कराया था। कृष्णदास कविराज ने उसे चैतन्यचरितामृत में सक्षिप्त रूप मे दिया है। हिन्दी वैष्णव साहित्य में भक्ति की इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नही पाई जाती।

कृष्णदास कविराज कहते हैं कि साधन भक्ति के द्वारा मन में कृष्ण रति का उदय होता है। यह रति गाढ हो कर प्रेम की सज्ञा धारण करती है। प्रेमवृद्धि को क्रम से स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव, इत्यादि नाम दिया जाता है।[1] ये सब कृष्ण-भक्ति-रस के स्थायी भाव है, इन स्थायी भावो को उपयुक्त सामग्री मिल जाय तो ये कृष्ण भक्तिरस का स्वरूप पा लेते हैं। यह सामग्री विभाव, अनुभाव और सात्विक व्यभिचारी है। स्थायी भाव में इनके मिल जाने से कृष्ण भक्ति-रस-अमृत का आस्वादन कराते है। विभाव के उद्दीपन और आलम्बन, दो रूप, जो क्रम से वशी-स्वरादि और कृष्णादि हैं, तथा स्मित, नृत्य, गीतादि अनुभाव, एव स्तम्भादि सात्विक अनुभाव और निर्व्वेद, हर्षादि, तेंतीस व्यभिचारी ये सब मिल कर यह रस अत्यन्त चमत्कारी हो जाता है।[2]

---

१. (क) साधन भक्ति हैते हय रतिर उदय।
रति गाढ हैले तार प्रेम नाम कय॥
प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥

. .

एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव।
स्थायी भावे मिलि जदि विभाव अनुभाव॥
सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
कृष्णभक्ति रस हय अमृत आस्वादने॥ (चै च, मध्यलीला,परि १९, पृ २५२)

(ख) प्रेमादिक स्थायी भाव सामग्री मिलने।
कृष्णभक्ति-रसरूपे पाय परिणामे॥
विभाव अनुभाव सात्विक व्यभिचारी।
स्थायी भाव रस हय मिलि एइ चारि॥ (चै च, मध्यलीला, परि.२३, पृ २९०)

२. द्विविध विभाव आलबन उद्दीपन।
वंशीस्वरादि उद्दीपन कृष्णादि आलंवन॥

यह भक्ति रस पाच प्रकार का है—शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य एव मधुर नामी शृगार रस। शृगार रस अन्य रसो से प्रवल है। शात और दास्य रस के योग और वियोग दो भेद हैं। सख्य और वात्सल्य के योगादिक अनेक विभेद है परन्तु 'रूढ' या 'अधिरूढ' भाव केवल मधुर रस (शृगार रस) मे ही है। महिषीगणो का भाव रूढ है, अधिरूढ भाव केवल गोपियो में है। यह अधिरूढ महाभाव दो प्रकार का है। सयोग में यह 'मादन' कहलाता है और वियोग में 'मोहन'। मादन अधिरूढ भाव के चुम्वनादि अनेक भेद ह। मोहन अधिरूढ भाव के 'उद्घूर्णा' और चित्र-जल्प दो भेद है। चित्र-जल्प के प्रजल्पादि नाम से दश अग हैं। उद्घूर्णा के विरह,चेष्टा और दिव्योन्माद दो अग है। विरह में अपने को कृष्ण समझ लेते हैं।[1]

कृष्णदास कविराज शृगार रस की और अधिक व्याख्या करते है। वे कहते है, कि "शृगार रस के सभोग और विप्रलम्भ दो प्रकार हैं। सम्भोग शृगार के अनत अग है जिनका पार नही मिलता। विप्रलम्भ शृगार के चार प्रकार पूर्वराग, मान, प्रवासाख्य और प्रेम वैचित्य हैं"।[2]

अनुभाव स्मित नृत्य गीतादि उद्भास्वर।
स्तम्भादि सात्विक अनुभावेर भितर॥
निर्व्वेद हर्षादि तेत्रिश व्यभिचारी॥
सव मिलि रस हय चमत्कार कारी॥ (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २९०)

१. पंचविधि रस शात, दास्य, सख्य, वात्सल्य।
मधुर नाम शृगार रस सावाते प्रावल्य॥
.. . ..
शान्तादि रसेर जोग वियोग दुइ भेद।
सख्य वात्सल्य जोगादिर अनेक विभेद॥
रूढ अधिरूढ भाव केवल मधुरे।
महिषीगणे रूढ़ अधिरूढ गोपिकानिकरे॥
अधिरूढ़ महाभाव दुइ त प्रकार।
संभोग मादन विरहे मोहन नाम तार॥
मादने चुम्वनादि हय अनत विभेद।
उद्घूर्णा चित्रजल्प मोहने दुइ भेद॥
चित्रजल्प दश अग प्रजल्पादि नाम।
भ्रमरगीता दश श्लोक तहोते प्रमाण॥
उद्घूर्णा विरह चेष्टा दिव्योन्माद नाम।
विरहे कृष्ण स्फुर्त्ति आपनाके कृष्ण ज्ञान॥ (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २९०)

२. सम्भोग विप्रलम्भ द्विविध शृंगार।
सम्भोग मनन्त अंग नाहि अंत तार॥
विप्रलम्भ चतुर्विध पूर्वराग मान।
प्रवासाख्य आर प्रेमवैचित्य आख्यान॥ (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २९०)

कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव—साधन भक्ति के द्वारा भक्त के हृदय में जिस रति का उदय होता है, गाढ़ी होने पर उसे ही प्रेम का नाम दिया जाता है। यही प्रेम, जो रति का प्रगाढ़ स्वरूप है, कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव है।[1] स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव इत्यादि प्रेम की वृद्धि के क्रमिक नाम हैं। ये सब भी कृष्ण-भक्ति-रस के स्थायी भाव है।[2] यह कृष्णरति दो प्रकार की है। एक तो ऐश्वर्य-ज्ञान मिश्र और दूसरी केवला। गोकुल में जो रति है वह केवला रति है और कृष्ण के ऐश्वर्य-ज्ञान से हीन है। मथुरा और द्वारिका दोनो पुरियो और वैकुंठ मे यह ऐश्वर्य-ज्ञान से पूर्ण है। ऐश्वर्य-ज्ञान की प्रधानता से प्रीति का सकोचन हो जाता है। केवला की ऐसी रीति है कि वह देख कर भी ऐश्वर्य को नही मानती।[3] शात और दास्य रस मे तो ऐश्वर्य ज्ञान उद्दीपन हो भी जाता है परन्तु वात्सल्य, सख्य और मधुर रस में तो यह ज्ञान सकोचन का ही काम करता है। उदाहरण के लिए वासुदेव, देवकी, और अर्जुन लिए जा सकते है। कृष्ण का विश्व-रूप देख कर तीनो ही डर गए। उनके वात्सल्य और सख्य को उद्दीपन नहीं मिला।[4]

इस कृष्ण रति का मन में उदय सहज भाव से नही होता है। बडे भाग्य से किसी जीवात्मा मे यदि श्रद्धा होती है, तब वह जीव साधु सग करता है। साधु सग होने से श्रवण कीर्तन होता है। यह श्रवण-कीर्तन रूप साधन-भक्ति समस्त अनर्थों को दूर कर देती है। अनर्थों से निवृत्ति मिल जाने पर भक्ति-निष्ठा उत्पन्न होती है। निष्ठा आ जाने से श्रवण-इत्यादि में अत्यधिक रुचि उपजती है। रुचि आसक्ति उत्पन्न करती है। आसक्ति होने से चित्त में रति का अकुर जन्म लेता है और यह रति गाढी हो कर प्रेम नाम धारण करती है जो कृष्ण-भक्ति-रस का स्थायी भाव है।[5]

---

१ कृष्णे रति गाढ हैले प्रेम अभिधान।
कृष्णभक्तिरसे सेइ स्थायी भाव नाम॥ (चै च, मध्य लीला, परि २३० पृ २८८)

२ प्रेम वृद्धि क्रमे नाम स्नेह मान प्रणय।
राग अनुराग भाव महाभाव हय॥

एइ सब कृष्ण भक्ति रस स्थायी भाव। (चै च, मध्यलीला, परि १९, पृ २५२)

३ पुनः कृष्णरति हय दुइ त प्रकार।
ऐश्वर्यज्ञान मिश्रा केवला भेद आर॥
गोकुले केवलारति ऐश्वर्यज्ञान हीन।
पुरीद्वये बैकुंठाद्ये ऐश्वर्य प्रवीण॥
ऐश्वर्यज्ञान प्राधान्ये सकोचित प्रीति।
देखिले ना माने ऐश्वर्य केवलार रीति॥
(चै च, मध्यलीला, परि १९, पृ २५२)

४ चै च, मध्यलीला, परि १९, पृ २५२

५ कोन भाग्ये कोन जीवे श्रद्धा जदि हय।
तबे सेइ जीव साधु सग करय॥

विभाव—विभाव के दो प्रकार हैं। एक आलंबन और दूसरा उद्दीपन। वंशी-स्वरादि उद्दीपन है और कृष्णादि आलंबन है।

१. आलम्बन विभाव—रस के आलंबन नायक और नायिका हुआ करते हैं। कृष्ण-भक्ति रस के आलंबन जो नायक और नायिका है वे व्रजेन्द्रनंदन कृष्ण और उनकी कांता राधा है।

(क) कृष्ण—व्रजेन्द्रनंदन कृष्ण नायक शिरोमणि हैं। ये कृष्ण धीर ललित नायक है। निरन्तर काम क्रीडा ही जिनका चरित्र है। ये कृष्ण रस के सदन हैं। रसमयी मूर्त्ति वाले साक्षात् शृंगार है। ये रात-दिन कुंज में राधा के संग क्रीडा करते हैं। इस क्रीडा रंग से उन्होंने अपना किशोर जीवन सफल किया। गोपवेश, वेणु धारण, और नव किशोर वयस्क यह इन कृष्ण का मधुर रूप है। मनुष्य, स्थावर, जंगम सब का चित्त ये अपनी ओर आकर्षित करते हैं। ये कृष्ण साक्षात् मन्मथ मदन है। विभिन्न भक्तों के हृदयो मे विभिन्न प्रकार के रस उमडते हैं। कृष्ण उन समस्त रसो के आश्रय हैं। कृष्ण रसराज शृंगारमय

साधु संग हैते हय श्रवण कीर्त्तन।
साधनभक्त्ये हय सर्व्वानर्थ निवर्त्तन॥
अनर्थ निवृत्ति हैले भक्ति निष्ठा हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये रुचि उपजय॥
रुचि हैते हय तवे आसक्ति प्रचुर।
आसक्ति हैते जन्मे चित्ते रतिर अंकुर॥
सेइ रति गाढ हैले धरे प्रेम नाम। (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २८८)
द्विविध विभाव आलंबन उद्दीपन।
वंशीस्वरादि उद्दीपन कृष्णादि आलंबन॥
(चै च., मध्यलीला, परि २३, पृ २९०)

नायक नायिका दुइ रसेर आलंबन।
सेइ दुइ श्रेष्ठ राधा व्रजेन्द्रनंदन॥ (चै च, मध्यलीला, परि २४, पृ २९२)

(क) व्रजेन्द्रनंदन कृष्ण नायक-शिरोमणि। (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २९१)

(ख) राय कहे कृष्ण हयेन धीर ललित।
निरंतर काम क्रीडा जाहार चरित॥ (चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १५१)

(ग) एइ मत पूर्वे कृष्ण रसेर सदन। (चै च, मध्यलीला, परि ४, पृ २६)

(घ) रसमय मूर्त्ति कृष्ण साक्षात् शृंगार।
(चै च, आदिलीला, परि. ४, पृ ३१)

(ङ) रात्रि दिन कुंजे क्रीडा करे राधासंगे।
कैशोर वयस सफल कैल क्रीडा रंगे॥ (चै च, मध्यलीला, परि ८, प १५१)
गोपवेश वेणुकर, नवकिशोर नटवर, नवलीला हय अनुरूप॥
कृष्णेर मधुर रूप शुन सनातन॥
(चै च, मध्यलीला, परि २१, पृ. २७५)

हैं, मूर्त्तिघर शृगार हैं अत सब आत्माओ को आकर्षित करते हैं। लक्ष्मी कातादि का मन हरण करते है। अपने माधुर्य से स्वय अपना ही मन हरण करते हैं।[1] कृष्ण के अनत गुण हैं जिसमें ६४ गुण प्रधान हैं।[2] कृष्णदास ने समस्त गुणो की सूची तो नहीं दी है, कुछ के नाम दिए हैं। कृष्ण के सत्‌चित रूप, पूर्णानद, ऐश्वर्य, माधुर्य, कारुण्य, स्वरूपपूर्णता, भक्तवात्सल्यता, वदान्यता, अलौकिक रूप रस सौरभादि भिन्न-भिन्न गुण भिन्न-भिन्न व्यक्तियो का मन हरण करते है। सौरभादि गुण मे सनकादिक ऋषि मोहित होते है। शुकदेव का मन लीला सुन कर आकर्षित होता है। अपने अग और रूप मे गोपियो का मन हरण करते हैं। रूप और गुण की चर्चा सुन कर रुक्मिणी मोहित हुई थी। वशी मे लक्ष्मी का और यथायोग्य भाव से जगत की युवतियो का मन हरते है। गुरु तुल्य स्त्री गण को वात्सल्य भाव मे आकर्षित करते है और अन्य पुरुषो को दास्य और सख्य भाव से। कृष्ण के गुण पक्षी, मृग, वृक्ष-लता, चेतन, अचेतन, सब को आकर्षित करके प्रेम में मत्त कर देते ह।[3]

---

१ पुरुष जोषित् किवा स्थावर जगम।
सर्व्वचित्ताकर्षक साक्षात् मन्मथ मदन॥
नाना भक्तेर रसामृत नानाविध हय।
सेइ सब रसामृतेर विषय आश्रय॥
शृगार रसराजमय मूर्त्तिघर।
अतएव आत्मा पर्यन्त सर्व्वचित्तहर॥
लक्ष्मी-कातादि अवतारेर हरे मन।
लक्ष्मी आदि नारीगणेर करे आकर्षण॥
आपन माधुर्ये हरे आपनार मन।
आपना आपनि चाहे करिते आलिगन॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४८-१४९)

२ अनत कृष्णेर गुण चौषट्टि प्रधान।. (चै च, मध्यलीला, परि २३, पृ २९१)

टिप्पणी —

भक्तिरसामृत सिधु (२।१।११) में रूप गोस्वामी ने ५० गुण दिए हैं। वे ये हैं — सुरम्याग, सर्व सल्लक्षणान्वित, रुचिर, तेजस्विन्, बलीयस्, वयोऽन्वित, विविधाद्भुत, भाषावित्, सत्यवाच्, प्रियवद, वावदूक, सुपण्डित, बुद्धिमत्, प्रतिभान्वित, विग्दध, चतुर, दक्ष, कृतज्ञ, सुदृढ़व्रत, देशकालसुपात्रज्ञ, शास्त्रचक्षुस्, स्थिर, शुचि, वशिन्, दान्त, क्षमाशील, गभीर, धृतिमत्, सम, वदान्य, धार्मिक, शूर, करुण, मान्यमानकृत, विनयिन्, दक्षिण, ह्रीमत्, शरणागत-पालक, सुखिन्, भक्त-सुहृत्, प्रेमवश्य, सर्वशुभंकर, प्रतापिन्, कीर्त्तिमत्, रक्तलोक, साधु-समाश्रय, नारीगणमनोहारिन्, सर्वाराध्य, समृद्धिमत, वरीयस्, और ईश्वर। इन में १४ गुण और सम्मिलित किए गए हैं —सदास्वरूप-सप्राप्त, सर्वज्ञ, नित्यनूतन, सच्चिदानन्द-साद्राग, सर्वसिद्धिनिषेवित, अविचित्य-महाशक्ति, कोटिब्रह्माड-विग्रह, अवतारावलि-बीज, हतारिगतिदायक, आत्माराम, जनाकर्षिन् लीला, प्रेम-प्रियाधिक्य, वेणु माधुर्य, और रूप माधुर्य।

३ चै च, मध्यलीला, परि २४, पृ २९५

(ख) कांतागण—कृष्ण की काताये तीन प्रकार की है।[१]

१ लक्ष्मीगण—लक्ष्मीगण उनके नारायण रूप की सहकारी है और उनकी अश-विभूति है। ये लक्ष्मीगण कृष्ण को वैभव विलासाश रूप है।[२] इन्हें व्रजलीला का सुख नही मिलता, यद्यपि ये वाछा करती है। कृष्ण तो गोप जाति के है, अत गोपिया उनकी प्रेयसी है। देवी अथवा अन्य स्त्री उनको अगीकार नही है। लक्ष्मी अपनी देवी-देह मे उन्हें पाना चाहती हैं, अत उन्हें कृष्ण-सग-सुख, एव रास विलास नही मिलता।[३]

२ महिषीगण—महिषीगण कृष्ण के द्वारिका वासी रूप की सहचरी है। ये महिषी गण उनका विम्व प्रतिविम्व रूप है और प्रभाव-प्रकाश स्वरूप है।[४]

३ वृजागनागण—कृष्ण की काताये व्रज देविया है। ये व्रज देविया राधा और उनकी सखिया गोपिया है।[५] आकार और स्वभाव भेद से व्रज देविया कृष्ण के रस का कारण हैं। बहुत-सी काताओ के विना रस का उल्लास नही होता। अत कातायें वहुत सी है।[६] मधुर

---

१ कृष्णकातागण देखि त्रिविध प्रकार।
लक्ष्मीगण एक नाम महिषीगण आर॥
व्रजांगना रूप आर कातागण सार। (चै च, आदिलीला, परि ४, पृ. २४)

२. देखो पादटिप्पणी ४

३. (क) तार स्पर्श नाहि जाय पतिव्रता-धर्म।
कौतुकेते लक्ष्मी चाहे कृष्णेर संगम॥ (चै च, मध्यलीला, परि ९, पृ १६०)

(ख) गोपजाति कृष्ण गोपी प्रेयसी ताहार।
देवी वा अन्य स्त्री कृष्ण ना करे अगीकार॥
लक्ष्मी चाहे सेइ देहे कृष्णेर सगम।
गोपीरागानुगता हैला ना कैल भजन॥
अन्य देहे ना पाइये रास विलास। (चै च, मध्यलीला, परि ९, पृ १६१)

४. लक्ष्मीगण हन तार अंश विभूति।
विम्व प्रतिविम्व रूप महिषीर तति॥
लक्ष्मीगण तार वैभव विलासाश रूप।
महिषीगण प्रभाव प्रकाश स्वरूप॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ. २४)

५. व्रजागना रूप आर कातागण सार।
श्री राधिका हैते कातागणेर विस्तार॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४)

६. आकार स्वभाव भेदे व्रजदेवीगण।
कायव्यूह रूप तांर रसेर कारण॥
वहु काता विना नहे रसेर उल्लास।
लीलार सहाय लागि वहुत प्रकाश॥
(चै च, आदिलीला, परि. ४, पृ २४)

रस का सस्थान स्वकीया और परकीया दोनो प्रकार की नायिकाओ में होता है, परन्तु परकीया भाव मे रस का अत्यत उल्लास होता है। अत रस की कारण कातायें परकीया ही है। यह परकीया भाव व्रज भिन्न और कही है भी नही। व्रज वधुएँ इस भाव की अवधि है । राधा इन व्रज वधुओं के बीच मे इस भाव की अत्यत अवधि है।[1] ये राधा गोपियो का विस्तार करके कृष्ण को रास आदि लीलाओ का आस्वादन कराती है। ये राधा मानो मूर्तिमान कृष्ण-क्रीडा है। ये कृष्णमयी है, मानो प्रेम-रस-मय कृष्ण का ही स्वरूप हैं। ये कृष्ण की वाछा पूर्ति-रूप है।[2] राधा प्रेम का स्वरूप हैं। उनकी देह प्रेम से प्रभावित है। वे कृष्ण की प्रेयसी है।[3] राधा कृष्ण की वाछा की पूर्ति करती है, यही उनका काम है। ललिता आदि सखिया उनका कायव्यूह रूप हैं।[4] सखियो के बिना लीला पुष्ट नही होती। सखिया ही इसका विस्तार करती है। सखिया ही इसका आस्वादन करती है। सखियो का ऐसा स्वभाव है, जो कहा नहीं जा सकता। ये तटस्थ भाव मे लीला का विस्तार करती है। उन्हे स्वय कृष्ण के साथ लीला करने की इच्छा नही होती। वे कृष्ण के सग राधा की लीला करवा के उसमें अत्यत आनन्द पाती है। राधा कृष्ण की प्रेमकल्प लता है, सखिया उनकी पल्लव और पुष्प है। जैसे लता को सीचने से पत्तो को ही अधिक सुख होता है, उसी प्रकार राधा को कृष्ण लीला मे सुख प्राप्त करा के गोपिया अधिक सुखी होती है। सखिया स्वय कृष्ण सुख नही चाहती। वे यत्न करके राधा-कृष्ण का मिलन कराती है। अपने अन्योन्य विशुद्ध प्रेम मे रस की पुष्टि करती हैं।[5]

काता शिरोमणि राधा अत्यत सुन्दरी है। कृष्ण-स्नेह रूपी उबटन लगा कर उन्होने देह को सुगधित और उज्ज्वल वर्ण वाला किया है। उनमें करुणा, तरुणाई और लावण्य इतना

---

१ अतएव मधुर रस कहि तार नाम ।
स्वकीया परकीया-भावे द्विविध सस्थान ॥
परकीयाभावे अति रसेर उल्लास ।
व्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास ॥
व्रजवधूगणेर एइ भाव निरवधि ।
तार मध्ये श्रीराधार भावेर अवधि ॥
(चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २३)

२ चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २४-२५

३ प्रेमेर स्वरूप देह प्रेमे विभावित ।
कृष्णेर प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४९)

४ सेइ महाभाव हय चिन्तामणिसार ।
कृष्णवाछा पूर्ण करे एइ कार्य तार ॥
महाभाव चिन्तामणि राधार स्वरूप ।
ललितादि सखि तार कयाव्यूह रूप ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४९)

५ चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १५१-५२

है, मानो उन्होने कारुण्यामृत, तारुण्यामृत और लावण्यामृत की धाराओ में स्नान किया हो। कृष्ण अनुराग रूपी अरुण वसन उन्होने धारण कर रक्खा है। प्रणय मान की काचली धारण कर रक्खी है। कृष्ण के प्रेम रस के मृगमद से शरीर चित्रित कर रक्खा है। प्रच्छन्न मान और वामता मानो उनका वेणी विन्यास है। धीराधीरा गुण का पटवास शरीर पर है। स्नेह रूपी ताबूल रस से अधर चर्चित हैं। प्रेम कौटिल्य का दोनो नेत्रो मे कज्जल है और जितने सात्विक सचारी भाव है, उन सबके आभूषण धारण किए है। सद्गुण रूपी पुष्पो की मालाओ से शरीर पूरित है। प्रेम वैचित्र्य रूपी रत्न हृदय पर शोभित है। कृष्ण-नाम-गुण और यश के वर्णाभूषण धारण किए है। ये राधा कृष्ण को मधुर रस का पान कराती हैं।[1]

यद्यपि ये व्रजागनायें परकीया है, परन्तु असली नही है। राधा के पातिव्रत धर्म की वाछा तो अरुन्धती करती है। राधा कृष्ण के विशुद्ध प्रेम की आकार हैं।[2] सखियो का प्रेम प्रकृत-काम नही है। यह तो शुद्ध निर्मल प्रेम है।[3] देह मे अवस्थित काम और प्रेम उसी प्रकार भिन्न स्वरूप है, जिस प्रकार धातुयें लोहा और सोना विभिन्न है। आत्मेन्द्रिय-प्रीति इच्छा तो काम है, परन्तु कृष्णेन्द्रिय-प्रीति इच्छा जो है, वह प्रेम है। काम का तात्पर्य केवल निज सभोग मात्र होता है। कृष्ण-सुखमात्र जव तात्पर्य हो तो वह प्रेम है। गोपिया लोकधर्म, वेद धर्म, देह धर्म, लज्जा, धैर्य, आर्य पथ और स्वजन सबका परित्याग करके कृष्ण का जो भजन करती है, और उनके प्रेम का सेवन करती है, वह केवल कृष्ण सुख के लिए। ये गोपिया अपने सुख-दुख की तो चिन्ता ही नही करती है। ये समस्त व्यवहार कृष्ण-सुख के ही लिए करती है। वे कृष्ण मे भी केवल कृष्ण को सुख देने के लिए ही अनुराग करती हैं। गोपिया यदि अपनी देह से भी प्रीति करती हैं तो केवल कृष्ण के लिए। वे यह सोच कर ही अपनी देह का मार्जन और शृगार करती है कि वह कृष्ण को समर्पित की हुई है और उसके दर्शन-स्पर्शन से सुख की प्राप्ति होती है। इन गोपियो के भाव का एक और स्वभाव है। बुद्धि द्वारा वह नही जाना जाता। गोपिया जब कृष्ण का दर्शन करती है, तब उन्हे सुख की वाछा न होते हुए भी अपार सुख होता है। वह सुख उन्हे इस कारण होता है कि गोपियो को देख कर कृष्ण को सुख होता है। वे यदि किसी भी प्रकार से कृष्ण-सुख का कारण होती हैं, तो उन्हे सुख होता है। उनका सुख कृष्ण से ही बढता है, अत गोपी-प्रेममे काम-दोष नही है। गोपी-प्रेम कृष्ण के माधुर्य की पुष्टि करता

---

१. चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ. १५०

२. (क) जार सौंदर्यादि गुण वाछे लक्ष्मी पार्व्वती।
जार पतिव्रता धर्म वाछे अरुन्धती ॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ. १५०)

(ख) कृष्णेर विशुद्ध प्रेम रत्नेर आकर।
अनुपम गुणगणे पूर्ण कलेवर ॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. ८, पृ. १५०)

३. गोपीगणेर प्रेमेर रूढभाव नाम।
शुद्ध निर्मल प्रेम कभ नहे काम ॥
(चै च., आदिलीला, परि. ४, पृ २८)

है। माधुर्य बढने से प्रेम सतुष्ट होता है। गोपियो का प्रेम काम गधहीन है। जिस प्रकार तप्त कचन निर्मल, उज्ज्वल और शुद्ध होता है, उसी प्रकार गोपी-प्रेम है। कृष्ण की सहायक गोपिया उनकी बाधव, प्रेयसी, प्रिया, शिष्या, सखी और दासी है। इन समस्त गोपियो में राधा उत्तम है। वे रूप, गुण, सौभाग्य और प्रेम मे सर्वाधिक हैं। राधा के साथ की हुई क्रीडा रस-वृद्धि का कारण है। अन्य सब गोपिया तो रस का उपकरण मात्र हैं। राधा कृष्ण की वल्लभा और उनकी प्राणधन है। उनके बिना गोपिया भी सुख का हेतु नही हो पाती।[1] गोपियो का प्रेम कम नही है।[2]

हिन्दी के भक्ति-साहित्य मे साहित्य रस की इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नही मिलती है। भक्ति रस है, उसका स्थायी भाव है, विभाव है, यह सब कही नही दिया है। विभाव के आलबन,-उद्दीपन जो है, उनकी शास्त्रीय ढग से व्यवस्थित व्याख्या का विवरण तो नही है, परन्तु कृष्ण गोपी, गोपी प्रेम, राधा इनके बारे में उक्तिया अवश्य प्राप्त हैं, जिनमें प्राय वही भावना परिलक्षित होती है, जो कृष्णदास की इन सबके बारे में है। कृष्णदास कविराज और अन्य गौडीय वैष्णव राधा और गोपियो को केवल परकीया रूप में ही देखते थे। कृष्ण गोलोक मे बैठे जब चैतन्य-अवतार लेने का विचार कर रहे थे, तब वे कहते है कि मुझे प्रिया की मान-जनित भर्त्सना जितनी अच्छी लगती है, उतनी वेद-स्तुति भी नही। मेरे प्रति गोपियो का जो उपपति भाव है, उस पर योगमाया अपना और अधिक प्रभाव डालेंगी। न तो मैं उसे जानूगा और न गोपिया ही जानेंगी। दोनो एक दूसरे के रूप-गुण से

---

१ चै च, आदिलीला, परि ४, पृ २८, २९, ३०

२ सहजे गोपीर प्रेम नहे प्राकृत काम।
कामक्रीडा-साम्ये तार कहि काम नाम॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ० १५२)

टिप्पणी —यद्यपि हिन्दी के भक्ति साहित्य में गोपियो के प्रेम की ऐसी व्याख्या और विवरण तो नहीं है, परन्तु वे भी गोपी भाव की भक्ति को सर्वश्रेष्ठ और काम-हीन मानते थे, ऐसी ध्वनि निकलती है। कुछ स्फुट उक्तिया इस सबध की मिल जाती है। वे नीचे दी जा रही हैं

(क) कृष्न-तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल विभिचार न होइ, होइ सुख परम अपारा॥
(नददास, सिद्धात-पचाध्यायी, पृ १८६)

(२) गरवादिक जे कहे काम के अग आहि ते।
सुद्ध प्रेम के अग नाहि, जानहि प्राकृत जे॥
(नन्ददास, सिद्धात-पचाध्यायी, पृ. १८९)

(३) जो कोउ भरता भाव हृदय धरि हरि पद ध्यावें।
नारि पुरुष कोइ होइ श्रुति ऋचा गति सो पावें॥
(सू. सा., वे. प्रे., पृ. ३६४)

एक दूसरे का मन हरण करेंगे। धर्म छोड कर राग मार्ग से दोनों का मिलन होगा।[1] यह पीछे बताया जा चुका है कि मधुर रस का स्वकीया और परकीया दोनो भावो में अवस्थान है। परकीया भाव श्रेष्ठ है क्योकि उसमें रस का अत्यधिक उल्लास है। गौडीय वैष्णव मत में राधा परकीया ही है। हिन्दी के भक्ति साहित्य में कुछ गोपिया तो परकीया है, परन्तु राधा स्वकीया ही है। सूरदास ने रास के प्रारम्भ में राधा का कृष्ण से गधर्व विवाह करवाया है।[2] राधा देवी-देवताओ से वर भी यही मागती है कि नन्द सुत उनके पति हो।[3] नन्ददास की रचना "श्याम सगाई" मे तो राधा और कृष्ण की सगाई करवाई गई है।

हिन्दी के भक्ति साहित्य मे राधा अनन्य पूर्वा स्वकीया नायिका है परन्तु गौडीय वैष्णव साहित्य में वे परकीया ही है। अन्य गोपियो को अवश्य ही कुछ को परकीया और कुछ को स्वकीया रूप मे हिन्दी भक्तो ने माना है। धर्म, कर्म, लोभ, लाज, सुत और पति त्याग कर कृष्ण के पास भागने वाली गोपिया भी है।[4]

गोपी प्रेम एकनिष्ठ प्रेम है। यह स्त्री-पुरुष का प्रेम होते हुए भी काम नही है। इस पर कृष्णदास ने बहुत जोर डाला है। हिन्दी भक्ति-साहित्य में नन्ददास की उक्ति इस प्रकार की मिलती है।[5] सूरदास भर्त्ता भाव की उपासना की महिमा गाते है। जो कोई भर्त्ता भाव से हरि पद का ध्यान करते है, वे श्रुति-ऋचा की गति पाते है।[6] नन्ददास गोपियो

---

१. मो विषये गोपीगण उपपति भावे।
योग माया करिवेन आपन प्रभावे ॥इत्यादि॥
(चै. च, आदिलीला, परि ४, पृ. २२)

२ जाकौं व्यास बरनत रास।
है गधर्ब विवाह चित दै सुनौ विविध विलास ॥
(सू सा, १०।१०७१, पृ ६२९)

३ नन्द-सुत पति देहु देवी पूजि मन की आस।
(सू सा, १०।१०७१, पृ. ६२९)

४ धर्म कर्म लोक लाज सुत पति तजि धाई।
चत्रभुज प्रभु गिरिवर मे जाचे री माई ॥ (अष्ट व स, पृ ४५४)

५ (क) कृष्न तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल बिभिचार न होइ, होइ सुख परम अपारा ॥
(नन्ददास, सिद्धात पचाध्यायी, पृ १८६)

(ख) गरवा,दिक जे कहे काम के अग आहि ते।
सुद्ध प्रेम के अग नाहि जानहि प्राकृत जे ॥
(नन्ददास, सिद्धात पंचाध्यायी, पृ १८९)

६ जो कोउ भरता-भाव हृदय धरि हरि-पद ध्यावै।
नारि पुरुष कोउ होइ श्रुति-ऋचा-गति सो पावै ॥
(सू. सा, १०।११७५, पृ ६६४)

को प्रथम काम-रस से युक्त बताते हैं, फिर वह काम रस शुद्ध प्रेम हो गया, यह भी कहते हैं।[1] कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दी के भक्ति साहित्य मे गोपी प्रेम सबधी ऐसी उक्तिया स्फुट रूप से तो मिलती है जो गौडीय भक्ति साहित्य की इस सबध की भावना मे समानता रखती हैं, परन्तु शास्त्रीय रूप मे ऐसी कोई व्याख्या नही है, जैसी कृष्णदास कविराज ने दी है।

नायिका भेद

गोपी—जगन्नाथ पुरी की रथ यात्रा के वर्णन में चैतन्यदेव स्वरूप दामोदर से गोपियो के मान के बारे में प्रश्न करते हैं। इसी प्रसग को कृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्य-चरितामृत में दिया है। यहा पर मान के विभिन्न रूप और उसके अनुसार नायिका भेद दिया गया है। वे कहते हैं, "गोपी मान नदी की शत धार के समान हैं।" नायिकाओ के स्वभाव और प्रेम-वृत्ति के बहुत से भेद हैं। सब तो कहे नही जा सकते। यहा कुछ भेदो का दिग्दर्शन किया जा रहा है। इन भेदो से मान के भी कई प्रकार हो जाते हैं।[2]

मान के अनुसार गोपियो के तीन भेद हैं।[3]

१ धीरा—यह नायिका कान्त को दूर देखकर प्रत्याख्यान करती है परतु पास आने पर आसन प्रदान करती है। उसके हृदय मे तो कोप रहता है, ऊपर से मधुर वचन कहती है। प्रिय के आलिंगन करने पर वह भी कर लेती है। सरल व्यवहार करती है और मान का भी पोषण करती है। परिहास वाक्यो मे भी प्रत्याखान करती है।[4]

---

१ तैसेंई गोपी प्रथम काम, अभिराम रसी रस।
पुनि पाछे निःसीम प्रेम, जिहि कृष्न भये बस॥

तैसेंई ब्रज की बाम, काम-रस उत्कट करि कैं।
सुद्ध प्रेम मय भई, लई गिरिधर उर धरि कैं॥
(नन्ददास, सिद्धातपचाध्यायी, पृ १९३)

२ प्रभु कहे कह ब्रजे मानेर प्रकार।
स्वरूप कहे गोपीमान नदी शत धार॥
नायिकार स्वभाव प्रेमवृत्ति बहु भेद।
सेइ भेदे नाना प्रकार मानेर उद्भेद॥
सम्यक् गोपिकार मान ना जाय कथन।
एक दुइ भेदे करि दिग्दरशन॥ (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ.२०४)

३ माने केह हय धीरा केहत अधीरा।
एइ तिन भेदे केह हय धीराधीरा॥ (चै च, मध्यलीला, परि. १४, पृ २०५)

४ धीरा कात दूरे देखि करे प्रत्युत्थान।
निकट आसिते करे आसन प्रदान॥
हृदये कोप मुखे कहे मधुर वचन।
प्रिय आलिंगिते तारे करे आलिंगन॥

२ अधीरा—यह नायिका मान करने पर निष्ठुर वाक्यो द्वारा प्रिय की भर्त्सना करती है। कान पकड कर ताडना करती है और माला से बाध देती है।[1]

३. धीराधीरा—यह मानिनी नायिका वक्र वचनो द्वारा उपहास करती है। कभी स्तुति करती है, कभी निंदा करती है और कभी उदासीन हो जाती है।[2]

आगे चलकर कृष्णदास कविराज ने नायिकाओ के तीन और भेद दिए है। वे कहते हैं, कि मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा ये नायिकाओ के तीन भेद है।[3] मुग्धा मान के वैदग्ध्य विभेद नही जानती। वह तो मान के समय मुख ढाक कर केवल रुदन करती है। कात के प्रिय वचन सुन कर प्रसन्न हो जाती है।[4] मध्या और प्रगल्भा के धीरादि भेद होते है।[5] इन सबके स्वभाव के अनुसार तीन भेद होते हैं। एक प्रखरा, दूसरी मृदु और तीसरी समा। ये अपने प्राखर्य, मार्दव, और साम्य-स्वभाव से कृष्ण को सतोष देती है।[6] कुछ गोपियाँ वामा है और कुछ दक्षिणा है।[7]

राधा–गोपियो के मध्य में श्रेष्ठ राधा ठकुरानी है। निर्मल उज्ज्वल रस और प्रेम रत्न की खान है। वे वयस से मध्यमा है, स्वभाव मे समा और गाढ प्रेम भाव से निरतर वामा है।[8]

सरल व्यवहारे करे मानेर पोषण।
किम्वा सोल्लुंठवाक्ये करे प्रिय निरसन ॥ (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०५)

१. अधीरा निष्ठुर वाक्ये करये भर्त्सन।
कर्णोत्पले ताडे करे मालाय बंधन ॥ (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ. २०५)

२. धीराधीरा वक्रवाक्ये करे उपहास।
कभु स्तुति, कभु निंदा कभु वा उदास ॥ (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०५)

३ मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा तिन नायिका भेद।
(चै च, मध्य लीला, परि १४, पृ २०५)

४. मुग्धा नाहि जाने मानेर वैदग्ध्य विभेद ॥
मुख आच्छादिया करे केवल रोदन।
कांत प्रियवाक्य शुनि हय परसन्न ॥ (चै. च, मध्य लीला, परि १४, पृ २०५)

५ मध्या प्रगल्भा धरे धीरादि विभेद। (चै. च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०५)

६. तार मध्ये सवार स्वभाव तिन भेद ॥
केह प्रखरा केह मृदु केह हय समा। स्व स्व भावे कृष्णेर वाडाय प्रेम सीमा ॥
प्राखर्य्य मार्द्दव साम्य स्वभाव निर्दोष। सेइ सेइ स्वभावे कृष्णे कराय सतोष ॥
(चै. च, मध्यलीला, परि १४, पृ. २०५)

७. वामा एक गोपीगण, दक्षिणा एक गण। (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०५)

८. गोपीगण मध्ये श्रेष्ठा राधा ठाकुरानी।
निर्म्मल उज्ज्वल रस प्रेमरत्न-खनि ॥
वयसे मध्यमा तिहों स्वभावेते समा।
गाढ़ प्रेमभाव तिहों निरंतर वामा ॥ (चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०५)

राधा के वामा स्वभाव के कारण उनके मन में निरतर मान उठा करता है। उनकी इस वामता से कृष्ण के आनद का सागर बढता है। राधा का प्रेम अधिरूढ महाभाव है। वह वैसा ही विशुद्ध और निर्मल है जैसा दशवाण स्वर्ण। यदि वे अचानक कृष्ण का दर्शन पा जाती है तो वे नाना प्रकार के भाव विभूषणो से भूषित हो जाती है। हर्षादि आठ सात्विक व्यभिचारी और महज प्रेम मे उद्भूत किलकिंचित, कुट्टमित, विलास, ललित, विव्वोक, मोट्टायित, और मौग्ध्य चकित इत्यादि जो वीस भाव है उन सबमे उनके अग भूपित है।[1]

राधा और गोपियो का इस प्रकार का नायिका भेद हिन्दी के भक्ति साहित्य में नही है। राधा-कृष्ण लीला में राधा और गोपियो के मान को दिखाने वाले पद इत्यादि तो है परतु इस प्रकार की शास्त्रीय व्याख्या नही है।

भाव—भावो की व्याख्या जो कृष्णदास ने दी है वह राधा-प्रसग से ही है। राधा के भावो का उदाहरण देकर उन भावो का विवरण उन्होने दिया है। ये राधा के भाव है जिनकी भूपा से राधा कृष्ण का मन हरण करती है।[2] रूप गोस्वामी ने 'उज्ज्वल नील-मणि' मे इन्हें अनुभाव के अन्तर्गत लिखा है।

१ किलकिंचित—राधा को देखकर कृष्ण यदि उन्हे स्पर्श करने की इच्छा करते है, और राह घाट पर रास्ता रोकते है, अथवा पुष्प उठाते है, अथवा सखी को आगे जाता देखकर राधा के गात पर हाथ रखते है, तब हर्षादि सचारी के मूल कारण से इन सब स्थानो पर 'किलकिंचित' भाव का उद्गम होता है।[3] (उ नी म, अनु ३९)

---

१. वामा स्वभावे मान उठे निरतर।
तार वाम्ये वाडे कृष्णेर आनन्द सागर॥

अधिरूढ महाभाव राधिकार प्रेम।
विशुद्ध निर्मल जैछे दशवाण हेम॥
कृष्णेर दर्शन जदि पाय आचम्विते॥
नानाभाव विभूषणे हय विभूषिते॥
अष्टसात्विक हर्षादि व्याभिचारी आर।
सहजप्रेम विंशति भाव अलकार॥
किलकिंचित कुट्टमित विलास ललित।
विव्वोक मोट्टायित आर मौग्ध्य चकित॥
एत भाव-भूषाय भूषित श्री राधार अग। (चै. च, मध्यलीला, परि. १४, पृ २०५)

२ किलकिंचितादि भावेर शुन विवरण।
जे भाव भूषाय राधा हरे कृष्णमन॥ (चै च., मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६)

३. राधा देखि कृष्ण जदि छुते करे मन।
दानघाटि पथे जबे वर्ज्जन गमन॥
जबे आसि माना करे पुष्प उठाइते।
सखी आगे चाहे जदि गाय हात दिते॥
एइ सब स्थाने किलकिंचित उद्गम। (चै. च., मध्यलीला, परि. १४, पृ २०६)

२ विलास—राधा चाहे घर बैठी रहे या वृन्दावन जाएँ, यदि अकस्मात् कृष्ण का दर्शन पा जाएँ तब उन्हे देखते ही उनके मन में नाना प्रकार के भावो का वैलक्षण उपस्थित हो जाता है। इन वैलक्षणो का नाम विलास है।[1] (उ. नी म, अनु २७)

३ ललित—लज्जा, हर्ष, अभिलाष, सम्भ्रम, वाम्य, भय ये सब भाव मिल कर राधा को चचल करते हैं। उस समय राधा यदि कृष्ण के सामने उपस्थित रहे, अग भग करके भ्रूकुचित करे और मुख, नेत्र इत्यादिके द्वारा नाना भाव प्रगट हो, उस कात भाव का नाम ललितालकार है।[2] (उ. नी. म., अनु ५१)

४ कुट्टमित—ललित भूषित राधा को कृष्ण देखें और दोनो एक दूसरे से मिलने के लिए उत्सुक हो और कृष्ण राधा से कुछ छेडछाड करें तो मन मे प्रसन्न होती हुई भी राधा उसका वर्जन करे और बाहर से वामता और क्रोध प्रदर्शित करें परतु मन मे सख्य भाव रक्खे। उनके इस भाव का नाम कुट्टमित है।[3] (उ नी म, अनु ४४)

महाभाव और सात भाव—कृष्णदास ने अन्य भावो की व्याख्या नही दी है। इसी स्थल पर उन्होने कहा है कि किलकिंचित भाव मे सात अन्य भाव मिल जाते है तब वह महाभाव हो जाता है। ये सात भाव गर्व, अभिलाष, भय, शुष्करुदित, क्रोध, असूया और मदस्मित है। इनकी विशेष व्याख्या नही दी गई है।

---

१. राधा वसि आछे किवा वृन्दावन जाय।
तांह आचम्बिते कृष्ण दरशन पाय॥
देखितेइ नाना भाव हय वैलक्षण।
से वैलक्षणेर नाम विलास-भूषण॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०६-२०७)

२. लज्जा हर्ष अभिलाष संभ्रम वाम्य भय।
एत भाव मिलि राधाय चंचल करय॥
कृष्ण आगे राधा जदि रहे दाडाइया।
तिन अंगभंगे रहे भ्रू नाचाइया॥
मुखे नेत्रे हय नाना भावेर उद्गार।
एइ कांताभावेर नाम ललितालंकार॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०७)

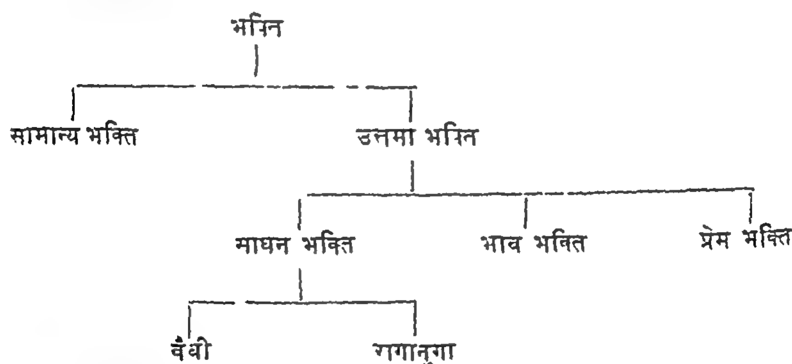
३. ललित भूषित राधा देखे जदि कृष्ण।
दुंहु ंहा मिलिवारे हयेन सतृष्ण॥
... ...
लोभे आसि कृष्ण करे कचुकाकर्षण।
अंतरे उल्लास राधा करे निवारण॥
वाहिरे वामता क्रोध भितरे सख्य माने।
कुट्टमित नाम एइ भाव-विभूषणे॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. १४, पृ. २०७)

अष्टसात्विक और हर्षादि व्यभिचारी—इन शब्दों का प्रयोग कृष्णदास ने दो स्थलों पर किया है[1] परन्तु ये क्या हैं, यह कहीं नहीं कहा। न तो अष्टसात्विकों के नाम गिनाए हैं और न हर्षादि व्यभिचारी के ही नाम गिनाए हैं।

१० रूप गोस्वामी की भक्ति भावना

कृष्णदास कविराज ने जो कुछ कहा है वह यद्यपि शास्त्रीय विवेचना और पद्धति का रूप तो लिए हैं परन्तु है प्रसंगानुसार ही। उनका ध्येय भक्ति की और भक्ति रस की व्याख्या या विवेचना करना नहीं है। उनके इन उल्लेखों की पृष्ठभूमि में चैतन्यदेव की वह भक्ति भावना है जिसको उन्होंने रूप गोस्वामी को संक्षेप में सुनाया था और जिसकी शास्त्रीय रूप से विशद व्याख्या, विवेचना और वर्गीकरण रूप गोस्वामी ने अपनी दो रचनाओं भक्ति-रसामृत-सिंधु और उज्ज्वल-नील-मणि में किया है। यहाँ पर संक्षेप में उन दोनों के वर्णित विषय को दे देना समीचीन होगा। उससे कृष्णदास द्वारा वर्णित यह भक्ति भावना अधिक स्पष्ट हो जायगी।

भक्ति—रूप गोस्वामी ने भक्ति का सामान्य विवरण देते हुए भक्ति के प्रकारों का वर्णन किया है।[2] इस विभाजन को नीचे दी गई तालिका में दिखाया जा सकता है —



भक्ति-मात्र सामान्य भक्ति है। उत्तमा भक्ति सामान्य भक्ति से भिन्न है। उत्तमा भक्ति इसकी तुलना में श्रेष्ठ है जैसा कि नाम से स्पष्ट है। उत्तमा भक्ति उत्कृष्टतम भक्ति है। यह भक्ति कृष्ण की उनके अनुकूल उपासना है (आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन)। उत्तमा भक्ति में अन्य किसी भी वस्तु की वाञ्छा नहीं होती। यह भोग वासना एवं मोक्ष-

---

१ (क) अष्ट सात्विक हर्षादि व्याभिचारी आर।
(चै च, मध्यलीला, परि १४, पृ २०६)
(ख) सात्विक व्याभिचारी भावेर मिलने।
(चै च, मध्यलीला, परि १९, पृ २५२)

२ आद्या सामान्य भक्त्याढ्या द्वितीया साधनाङ्किता।
भावाश्रिता तृतीयात्र तुर्या प्रेमनिरूपिका॥
(भ. र सि., पृ ११७)

वासना दोनो से ही स्वतंत्र है। उत्तमा भक्ति ज्ञान तथा कर्म से भी मुक्त है।[3] कर्म, ज्ञान, वैराग्य, यम, तथा शुचि इत्यादि भक्ति के अंग नही है, क्योंकि ये सब स्वतंत्र रूप से भक्ति उत्पन्न करने मे अशक्त है। भोग तथा मोक्ष भक्ति का ध्येय नही है। उत्तमा भक्ति के छः गुण है।[4]

प्रथम गुण—क्लेश दूर करने की शक्ति (क्लेशघ्नत्त्व)। भक्ति के द्वारा समस्त क्लेश दूर किए जा सकते है जो पापजनित है अथवा पाप-बीज जनित है, अथवा अविद्याजनित है।

द्वितीय गुण—शुभ एवं कल्याण करने की शक्ति (शुभदत्त्व)। इसके द्वारा सद्गुणो की एवं सुख की उत्पत्ति होती है।

तृतीय गुण—मोक्ष के प्रति उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति (मोक्ष-लघुता-कारित्व)।

चौथा गुण—प्राप्ति मे कठिनाई। अर्थात् ध्येय की प्राप्ति मे दुर्लभता (सुदुर्लभत्त्व)।

पाचवा गुण—सान्द्रानन्द की विशेषात्मता के प्रति तन्मयता। यह सान्द्रानन्द ब्रह्म की प्राप्ति के सुख मे कही अधिक श्रेष्ठ एवं उच्च है।

छठा गुण—श्रीकृष्ण को आकर्षित करके वश में रखने की शक्ति। (श्रीकृष्ण कर्षणत्त्व और कृष्ण-वशीकरण अथवा श्रीकृष्णा कर्षिणी शक्ति)।

भक्ति करने का अधिकार वैसे तो सबको ही प्राप्त है, परन्तु वास्तविक अधिकारी वह है जो कृष्ण पर स्वभाव से ही विश्वास एवं श्रद्धा रखता है (जातश्रद्ध है), जो न तो ससार मे अति आसक्त है, और न उससे अत्यत उदासीन है (नातिसक्तो न निर्विण्णु)।

उत्तमा भक्ति के प्रकार

उत्तमा भक्ति तीन प्रकार की होती है।[1] साधन भक्ति, भाव भक्ति तथा प्रेम भक्ति।

साधन भक्ति—इसमे बाह्य साधनो द्वारा भक्त इष्टदेव की ओर उन्मुख होता है।

---

३ अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥ (भ. र सि, पृ. १।९)

कृष्णदास ने शुद्ध भक्ति का परिचय देते हुए जो कहा है, उसमें ये सब शब्द आए है। भाव भी यही है। कदाचित् शुद्ध भक्ति से उनका तात्पर्य इस उत्तमा भक्ति से है। वे पंक्तियां ये है :—

अन्य वाञ्छा अन्य पूजा छाडि ज्ञान कर्म। आनुकूल्ये सर्व्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन ॥
भुक्ति मुक्ति आदि वाञ्छा जदि मने हय। साधन करिले प्रेम उत्पन्न ना हय ॥
(चै च, मध्यलीला, परि. १९, पृ २५१)

४ क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्री कृष्णाकर्षिणी च सा। (भ. र. सि., पृ. १।१२)

१ सा भक्ति साधन भाव. प्रेमा चेति त्रिधोदिता।
(भ. र. स., पृ. २।१)

साधन भक्ति-वृत्ति-साध्य है,[2] भाव-साध्य नही, यद्यपि यह भावभक्ति की ओर ले जाने की पहली सीढी है। साधन-भक्ति दो प्रकार की होती है, एक वैधी और दूसरी रागानुगा।

१ वैधी भक्ति—वैधी साधन भक्ति शास्त्रोक्त विधि के अनुसार की जाती है अत इसका नाम वैधी है। शास्त्र मे यहा अभिप्राय मुख्यत श्रीमद्भागवत् मे है। वैधी भक्ति की उद्भावना वैष्णव शास्त्रो में वर्णित उपासना विधियो मे होती है। इसमे भक्त राग की स्थिति तक नही पहुँचता।[3] वैधी भक्ति के चौंसठ अग है, जिनमे से कुछ उल्लेखनीय निम्न है —

१ गुरु पादाश्रय
२ गुरु से शिक्षा-दीक्षा
३ गुरु सेवा
४ साधु-अनुवर्तन
५ सद्धर्म-पृच्छा
६ कृष्ण हेतु से भोगादि त्याग
७ बहु-ग्रथ-कलाभ्यास-व्याख्यावाद, इन सबका विवर्जन
८ वैष्णव चिह्न धारण
९ हरि नामाक्षर धारण
१० दडवत् नति
११ अर्चना
१२ परिक्रमा
१३ जप
१४ गीत
१५ सकीर्तन
१६ नैवेद्य ग्रहण
१७ पादोदक ग्रहण
१८ एकादशी आदि व्रत, जन्माष्टमी आदि उत्सवो में भाग लेना।

श्रीकृष्णदास कविराज ने अपने चैतन्यचरितामृत मे पाच को विशेष महत्त्व दिया है। साधु सग, नाम कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरा वास और श्री मूर्त्ति का श्रद्धा पूर्वक सेवन।

२ रागानुगा भक्ति—रागानुगा भक्ति व्रजवासियो की भक्ति की अनुग है। अर्थात् रागानुगा भक्ति उन व्रजवासियो की रागात्मिका भक्ति का अनुकरण है, जो कृष्ण के समकक्ष थे। इसमें व्रज भाव की अनुभूति करने का लोभ मुख्य वस्तु है। यद्यपि इस भाव की अनुभूति करने की इच्छा के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है, यह इच्छा स्वा-

---

२ कृति साध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्य हृदि साध्यता॥ (भ र सि, पृ २१२)

३ यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्तिरुच्यते। (भ र सि, पृ २१५)

भाविक रूप से नही होती। ध्यान और स्मरण द्वारा कृष्ण और उनकी लीला की अनुभूति की जाती है। रागानुगा भक्ति कामानुगा और सवधानुगा दो प्रकार की होती है।[1]

भाव भक्ति—भाव भक्ति 'साधन परिपाकेन' है। अर्थात् साधन भक्ति से विकसित होती है। परन्तु यह 'कृष्णकृपया तद् भक्त-कृपया वा'' भी होती है। अर्थात् भाव-भक्ति की प्राप्ति कृष्ण की कृपा से या उनके भक्तो की कृपा से भी होती है। भाव भक्ति या तो 'साधनाभिनिवेशज' होती है या 'कृष्ण-प्रसादज' होती है या 'कृष्ण-भक्त प्रसादज' होती है।[1] यह भाव भक्ति आन्तरिक भाव के फलस्वरूप होती है। यह 'रस' की सीमा तक नही पहुचती। यह 'शुद्ध सत्व विशेष' है। यह प्रेममयी तो नही है परन्तु 'प्रेम सूर्यांशु-साम्य-भाक्' तो है ही अर्थात् प्रेम भक्ति उत्पन्न करती है। यह 'चित्त मासृण्य कृत' है और रुचि से उत्पन्न होती है।

प्रेम भक्ति—प्रेम भक्ति वास्तव मे 'भाव-भक्ति-परिपाक' है। भाव जब परिपक्व हो जाता है, 'सान्द्रात्मा' हो जाता है, तब भाव प्रेम मे बदल जाता है और चित्त नम (सम्यङमसृण स्वात) हो जाता है और चित्त में 'अनन्य ममता' उत्पन्न हो जाती है।[2] यह प्रेम भक्ति या तो वैधी भाव या रागानुगा भाव दोनो मे ही उत्पन्न हो जाती है परन्तु यह इष्टदेव के 'प्रसाद' से भी उत्पन्न हो जाती है। इष्टदेव का यह 'प्रसाद' अथवा कृपा 'केवल' हो सकता है अथवा 'माहात्म्य ज्ञान' से हो सकता है। प्रेम भक्ति का उदय इस प्रकार होता है—सर्वप्रथम श्रद्धा, इससे साधु-सग, इससे भजन-क्रिया, इससे अनर्थ-निवृत्ति, इससे निष्ठा, इससे रुचि, इससे आसक्ति, इससे भाव और इससे प्रेम का उदय होता है।

भक्तिरस

भक्ति रस का स्थायी भाव कृष्ण रति है। यह कृष्ण रति विभाव इत्यादि से परि-पुष्ट हो कर रस की श्रेणी पर पहुच जाती है।[3]

१ विभाव—विभावो के द्वारा ही कृष्णरति-स्थायी भाव 'रत्यास्वाद' का हेतु होता है। ये विभाव दो प्रकार के है। एक 'आलबन' और दूसरा 'उद्दीपन'।[4]

आलंबन—कृष्ण रति के आलम्बन विभाव 'विषय' रूप मे कृष्ण और आधार रूप से

---

१. विराजन्तीमभिव्यक्त व्रजवासिजनादिषु। रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते॥
रागानुगाविवेकार्थमादौ रागात्मिकोच्यते। इष्टे स्वारसिकी रागः परमाविष्टता भवेत्॥
तन्मयी या भवेद्भक्ति सात्र रागात्मिकोदिता। सा कामरूपा सबंधरूपा चेति भवेद्द्विधा॥
(भ- र सि, पू २।१३१-१३२)

१. साधनाभिनिवेशेन कृष्णतद्भक्तयोस्तथा।
प्रसादेनातिधन्याना भावो द्वेधाभिजायते। (भ. र सि., पू ३।५)

२. सम्यङ् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयाङ्कितः।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधै. प्रेमा निगद्यते॥ (भ र सि, पू ४।१)

३. एषा कृष्णरतिः स्थायी भावो भक्ति रसो भवेत्। (भ. र सि, द १।२)

४. तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वादनहेतव.।
ते द्विधालम्बना एके तथैवोद्दीपनाः परे॥ (भ. र सि, द. १।५-६)

कृष्ण-भक्त है। कृष्ण चाहे 'स्वय रूप' मे हो अथवा अन्य रूप मे, जैसे गोप बालक, आलबन है। कृष्ण भक्त चाहे साधक हो, चाहे सिद्ध दोनो ही प्रकार से आलबन है। कृष्ण का स्वय रूप आवृत्त और प्राकृत दोनो प्रकार का हो सकता है।

उद्दीपन—कृष्ण रूप के उद्दीपन विभाव उनके गुण, चेष्टा, प्रसाधन और कुछ अन्य वस्तुये है। कृष्ण के गुण कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के है। कृष्ण का प्रसाधन तीन प्रकार का है। वसन, आकल्प और मडन। वसन में वे कचुर, उष्णीय इत्यादि धारण करते है। आकल्प प्रसाधन मे केश बध, आलेप, माला, ताम्बूल इत्यादि है। मडन प्रसाधन में वे किरीट, कुडल, हार, वलय, नूपुर इत्यादि धारण करते है। अन्य वस्तुओ में स्मित अग, सौरभ, मुरली इत्यादि है।

२ अनुभाव—कृष्ण रति स्थायी भाव के अनुभाव नृत्य, विलुठित, गीत, क्रोशन, तनुमोचन, हुकार, जृम्भा, श्वास-भूमन, लोकानुपेक्षित लालास्राव, अट्टहास, घूर्णा और हिक्का है।[1]

३ सात्विक भाव—ये सात्विक वास्तव मे भाव नही है। ये तो भावो के बाह्य लक्षण मात्र है। प्राचीन काव्य शास्त्र में दिए गए आठ सात्विक भाव रूप गोस्वामी ने भी दिए है। वे स्तभ, स्वेद, रोमाच, स्वर भग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु,और प्रलय है। रूप गोस्वामी इन्हें स्निग्ध, दिग्ध और रुक्ष तीन विभागो में बाटते है।[2]

४ व्यभिचारी भाव—इन्हे सचारी भाव भी कहा है। ये सख्या में तैंतीस है। इनके नाम ये है निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व, शका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीडा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिंता, मति, धृति, हर्ष, औत्सुक्य, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध। ये सचारी भाव कभी तो कृष्ण रस से स्वतत्र होते है और कभी परतत्र।[3]

५ स्थायी भाव—स्थायी भाव के ९ प्रकार है रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, और निर्वेद। वैष्णव भक्ति रस का प्रमुख स्थायी भाव श्री कृष्ण विषयक रति है।

रूप गोस्वामी ने भक्ति रसो को मुख्य और गौण दो भागो मे बाटा है। शात, प्रीत, प्रेयस्, वात्सल्य और मधुर, ये पाच मुख्य भक्ति रस हैं। इन पाचो का जो परिचय उन्होंने दिया है उसका सक्षिप्त विवरण यहा दिया जा रहा है।[4]

(१) शात—शात भक्ति रस दो प्रकार का है, परोक्ष और साक्षात्कार। इस भक्ति का स्थायी भाव 'शुद्ध कृष्ण विषया रति' है जो सम और सान्द्र दो प्रकार की है। इसके आलबन नारायण, और आत्माराम भक्त और तापस हैं। उपनिषद् पाठ और साधु सग

१ भ र. सि, व २।-१२
२ भ र सि, द ३।१-२
३ भ र सि, व ४।३
४ भ र सि, व ५।२२
५ भ र सि, व ५

उद्दीपन है ।

(२) प्रीत–प्रीत भक्ति रस दो प्रकार का है । सभ्रम प्रीत जिसमे दासत्व की भावना है और गौरव प्रीत जिसमे लालनीयत्व है ।

(क) सभ्रम प्रीत का स्थायी भाव सभ्रम या आदर से उद्भूत प्रीत है । इसके आलबन विभाव कृष्ण और उनके दास है । ये दास अधिकृत, आश्रित और पार्षद होते हैं ।

(ख) गौरव प्रीत का स्थायी भाव कृष्ण मे हीन होने की भावना से उद्भूत प्रीत है । इसके आलबन विभाव कृष्ण और इनके लालनीय अन्य व्यक्ति जैसे प्रद्युम्न इत्यादि हैं ।

(३) प्रेयस्—इसका स्थायी भाव सख्य रति हैं । इसके आलबन कृष्ण और उनके वयस अनुकूल सखागण है । प्रेयस् विकसित हो कर प्रणय, प्रेम, स्नेह, और राग हो जा सकता हैं ।

(४) वात्सल्य—इसका स्थायी भाव वत्सल रति या अनुकपा की इच्छा है । इसके आलबन-विभाव कृष्ण और उनके गुरुजन है ।

(५) मधुर रस—इसका स्थायी भाव प्रियता या मधुरा रति है । इसके आलबन, कृष्ण और उनकी प्रिय गोपिया हैं ।

यह मधुर रस कई नामो से अभिहित किया गया है । यह शृगार, भक्ति रस और उज्ज्वल रस भी कहलाता है । इस मधुर रस का स्थायी भाव प्रियता अथवा मधुरा रति जो है वह एकपक्षी नही है । यह उभय-आनदप्रद है, 'मिथ सभोग' है ।[1] इस मधुर रस के आलबन विभाव कृष्ण और कृष्ण-वल्लभा गोपिया है ।

मधुर रस के आलबन कृष्ण 'नायक चूडामणि' है । इन नायक-कृष्ण के प्रेमी रूप मे २५ गुण है । कृष्ण के प्रेमी के रूप में दो स्वरूप है । एक तो 'पतिरूप' और दूसरा 'उपपति' रूप । उपपति रूप मे ही कृष्ण के प्रेम का सर्वश्रेष्ठ रूप दृष्टिगोचर होता है ।[2] उपपति भाव का प्रेम जो वर्जित है वह प्राकृत नायक के लिए है, कृष्ण के लिए नहीं । वे तो परकीया भाव की रति के लिए ही आए थे । नायक कृष्ण व्रज मे 'पूर्णतम' है, मथुरा मे 'पूर्णतर' है और द्वारिका मे 'पूर्ण' है ।

कृष्ण-वल्लभा गोपिया नायिकायें है । कृष्ण के पति और उपपति रूप मे ये नायिकायें भी 'स्वकीया' और 'परकीया' है । परकीया नायिकाये या तो 'कन्यका' है या 'प्रौढा' (विवाहिता) है । विवाहिता स्त्री से प्रेम करना यद्यपि लौकिक समाज मे वर्जित है परन्तु वैष्णव-रस शास्त्र मे यह सर्वश्रेष्ठ है । स्वकीया और परकीया दोनो ही मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा इन तीन विभागो मे बाटी गई है । मान करने की शक्ति के अनुसार मध्या और प्रगल्भा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा तीन रूप है । नायक के प्रेम करने के अनुसार ये उत्तमा, मध्यमा और कनिष्ठा तीन प्रकार की है । राधा वृन्दावनेश्वरी है और नायिका-शिरोमणि है ।

---

१. मियो हरेर्मृगाक्ष्याश्च संभोगस्यादि-कारणम् ।
मधुरापर-पर्याया प्रियताख्योदिता रति. ॥ (उ. नी.म., पृ. ५)

२. अत्रैव परमोत्कर्ष शृंगारस्य प्रतिष्ठित· । (उ. नी. म, ना. १७, पृ. १४)

पंचम अध्याय

पदावली

विनय, वंदनायें और लीलागान

वर्ण्य विषय—पदावली साहित्य अपने प्राप्त-रूप में सर्वथा धार्मिक साहित्य ही है। कवियो ने छोटे बडे पदो में जो विषय प्रस्तुत किया है, वह राम और कृष्ण का लीलागुण गान है। इष्टदेव राम से सबधित पद अपेक्षाकृत बहुत कम है। कृष्ण विषयक पद सख्या मे हजारो है। 'पदकल्पतरु' में, जिसमे बगाली भक्तो के कई हजार पद सगृहीत हैं, राम संबधी केवल एक पद है जिसमे उनकी वदना की गई है।[1] हिन्दी वैष्णव भक्तो मे तुलसीदास की रचनाओ में राम सबधी पद अधिक है, कुछ कृष्ण सबधी भी है। परन्तु हिन्दी वैष्णव भक्त भी कृष्ण की ओर अधिक उन्मुख हुए थे ऐसा ज्ञात होता है, क्योकि कृष्ण सबधी पद यहा भी अधिक मात्रा मे उपलब्ध है।

वर्ण्य-विषय में भिन्नता—समस्त पदावली साहित्य की प्रवृत्तियो मे मूलत भेद न होते हुए भी भेद है। कहने का तात्पर्य यह है कि पदावली साहित्य मे कवियो का उद्देश्य तो अपने इष्टदेव का लीलागान करना ही है। कौन सी लीला वे गा रहे हैं, यही भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इस भिन्नता का प्रमुख कारण दोनो भक्तो की भक्ति-भावना का अतर है। हिन्दी के वैष्णव भक्त कवि इष्टदेव के समस्त रूपो के उपासक ज्ञात होते है। उनके इष्टदेव मधुर-रस-सचारक कृष्ण है, तो असुर-निकदन कृष्ण भी है। उन्हें कृष्ण का ऐश्वर्य रूप, बाल रूप और मधुर रूप सब प्रिय है और वे उनके इन समस्त रूपो के अनुरूप उनका लीलागुण गान करते है। राम, जो मर्यादा पुरुषोत्तम है, पृथ्वी का भार हरने वाले है, तुलसी के इष्टदेव है, वे उनका गुणगान अपने पदो मे बडी तन्मयता से करते है। उन्होने राम के मधुर रूप को देखा अवश्य है परन्तु उसे उनके शील से ऐसा सयुक्त कर दिया है कि उसमे शृगारिकता नाम मात्र को भी नही रह गई है। वैसे भी राम का चरित्र ऐसा ही है कि उसमे मधुर भावनाओ को स्थान नही है। कृष्ण के उपासक कवियो को कदाचित् राम-लीला-गान इसीलिए नही रुचा। राम के सम्बन्ध मे भी यदि वे कुछ कह गए तो केवल इसीलिए कि वैष्णव-भक्ति में अपने इष्टदेव के अतिरिक्त अन्य देवो पर भी श्रद्धा-भक्ति रखना आवश्यक है। इसी भावना से प्रेरित होकर कृष्ण-भक्तो ने भी राम की वदना की है।

गौडीय वैष्णव समाज की भक्ति भावना में भगवान के ऐश्वर्य-रूप से प्रभावित भक्ति को हीनतर माना गया है। वे भगवान के उस माधुर्य रस की उपासना को सर्वश्रेष्ठ मानते है जो वृदावन मे प्रगट होता है।[2] अत पदावली साहित्य में कृष्ण का जो लीला-गुणगान है उसमें कुछ ही पद ऐसे है जो कृष्ण की वदना करते है। वह वदना भी हिन्दी पदो में प्राप्त वदना से कुछ भिन्न है, जैसा आगे दिखाया गया है। गौडीय वैष्णव पदावली का सबसे बडा सग्रह ग्रथ 'पदकल्पतरु' जिन पदो मे परिपूर्ण है वे सब राधा-कृष्ण-लीला के ही पद है। कुछ ही पद ऐसे है, जो वदनायें है। राधा-कृष्ण का रूप वर्णन भी जो है वह भी मधुर भाव

१. प क त, पद २४०७

२ देखो, पीछे दिए "आध्यात्मिक विचार"

का ही है। यहा पर पदकल्पतरु के चारो खडो की वह सूची दी जा रही है जिनके अंतर्गत पद सगृहीत है। उससे यह भिन्नता अधिक स्पष्ट हो जायगी।

पदकल्पतरु – प्रथम खड

पहली शाखा—इसमे ११ पल्लव है।

पल्लव	विषय
प्रथम	मगलाचरण
द्वितीय	श्रीरावार पूर्व्वराग
तृतीय	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
चतुर्थ	श्री रावार पूर्व्वराग
	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
पचम	वय सधि
षष्ठ	श्री रावार पूर्व्वराग
सप्तम	" " "
अष्टम	श्री कृष्णेर पूर्व्वराग
नवम	सक्षिप्त सभोग रसोद्‌गार
दशम	प्रकारातर रसोद्‌गार
एकादश	" "

दूसरी शाखा—इसमें २४ पल्लव है।

पल्लव	विषय
प्रथम, द्वितीय	रूपानुराग
तृतीय	रूपाभिसार
चतुर्थ	वसत कालोचित वासकसज्जादि वर्णन
पचम	हिमकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
षष्ठ	वर्षाकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
सप्तम	सर्वकालोचित अभिसारिकादि वर्णन
अष्टम, नवम, दशम	खडिता-धीरा-मध्या
एकादश	खडिता-अधीरा-मध्या
द्वादश	खडिता-धीराधीरा-मध्या
त्रयोदश, चतुर्दश, पचदश	कलहातरिता
षोडश, सप्तदश	दुर्जय-मान
अष्टादश	प्रकारातर मान
ऊनविंश, विंश	विविध मान
एकविंश	प्रकारातर मान

पल्लव	विषय
द्वाविंश	कारणाभास मान
त्रयोविंश	अकारण मान
चतुर्विंश	सकीर्ण सभोग रसोद्‌गार

पदकल्पतरु—द्वितीय खड

इस खड मे केवल तृतीय शाखा है जिसमे ३१ पल्लव है।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
प्रथम, द्वितीय, तृतीय	स्वय दौत्य	अष्टादश	श्रीकृष्ण जन्मलीला
चतुर्थ	स्वय दौत्य सभोग		
पचम	रसालस	ऊनविंश	कौमारोचित वात्सल्य
षष्ठ	रसोद्‌गार		
सप्तम	अभिसारानुराग	विंश	प्रकारातर वात्सल्यरस
अष्टम	अनुराग औ	एकविंश	सख्य रस, गोष्ठलीला
	कुडे मिलन	द्वाविंश	प्रकारान्तर सख्य वात्सल्य
नवम	प्रेम वैचित्य		
दशम	रूपानुराग	त्रयोविंश	गोवर्धन लीला
एकादश	आक्षेपानुराग	चतुर्विंश	शरत्कालीय महारास
द्वादश	अभिसारानुराग	पचविंश	गोष्ठ विहार औ दान लीला
त्रयोदश	अभिसारोत्कठा		
चतुर्दश	रूपोल्लास	षट् विंश	नौका विलास
पचदश	सर्व्वकालोचित	सप्तविंश	वसत लीला
	नित्यरास	अष्टविंश	स्नान यात्रा
षोडश	रास रसोद्‌गार	ऊनविंश	रथ यात्रा
सप्तदश	श्री अद्वैतादिर जन्म लीला	त्रिंश	झूलन यात्रा
		एकत्रिंश	अभिषेक लीला

पदकल्पतरु—तृतीय खड

इसमे चतुर्थ शाखा का प्रथम भाग है जिसमे २९ पल्लव है।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
प्रथम	अदूर प्रवास	पचम	अर्धवाह्य दशाय प्रलाप
द्वितीय	सुदूर प्रवास (भावी विरह)	षष्ठ	दिव्योन्माद
तृतीय	सुदूर प्रवास (भवन् विरह)		
		सप्तम	स्वप्नरसोद्‌गार
चतुर्थ	सुदूर प्रवास (भूत विरह)	अष्टम	वसतादि समयोचित विरह

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
नवम	द्वादश मासिक विरह	पोडश मे एक-विश तक	गौर लीला
दशम	नानाविध विरह	द्वाविश	नित्यानद गुण-वर्णन
एकादश	विरहेर दशदशा	त्रयोविश	नित्यानन्द-गौर-रूप-वर्णन
द्वादश	भावोल्लास	चतुर्विश	अद्वैत-चन्द्रमहिमा वर्णन
त्रयोदश	समृद्धिमान् सभोगेर रसोद्गार	पचविश	श्री गौर-चन्द्रेर भक्त-वृदेर चरित्र वर्णन
चतुर्दश	प्रकारातर समृद्धिमान सभोग	षड्विश	विद्यापति चडीदास ठाकुरेर मिलन-वर्णन
पचदश	समृद्धिमान् सभोगेर रसोद्गार		

पदकल्पतरु—चतुर्थ खड

इसमें तृतीय खड की द्वितीय शाखा है और २७ से लेकर ३६ तक पल्लव हैं।

पल्लव	विषय	पल्लव	विषय
सप्तविंश	दशावतार वर्णन	द्वात्रिंश	प्रकारातर अष्ट-कालीय लीला
अष्टविंश	श्रीकृष्णेर रूप वर्णन	त्रयस्त्रिंश	" " "
ऊनत्रिंश	श्री राधार रूप वर्णन	चतुस्त्रिंश	नाम-सकीर्त्तन
		पचत्रिंश	निज इष्टदेव ओ-भक्त गणेर वियोगे विलाप
त्रिंश	अष्टकालीय नित्य-लीला	षट्त्रिंश	प्रार्थना
एकत्रिंश	प्रकारातर अष्टकालीय नित्य-लीला		

पदकल्पतरु वैष्णवदास द्वारा सगृहीत एक वृहद् पद-सग्रह है जिसमें डेढ सौ से अधिक पदकर्ताओ के पद सगृहीत हैं। पीछे दी अनुक्रमणिका से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि पदों की अधिकाश सख्या राधाकृष्ण विषयक शृगार रस से सबधित हैं। श्रीमती अपर्णा देवी ने वगीय साहित्य सम्मेलन की पदावली साहित्य शाखा के सभानेत्रीपद से जो कहा है, वह ठीक ही है। वे कहती हैं, "वैष्णव आचार्यों ने रस (भक्ति) के पाच मुख्य विभाग किए हैं, शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एव मधुर। पदावली में शात एव दास्य रस के पदो की सख्या नितात कम हैं। सख्य एव वात्सल्य रस के पदो की सख्या भी अधिक नही है। मधुर अथवा

उज्ज्वल रस के पदो की सख्या ही अधिक है।"[1]

गौडीय वैष्णव पदावली रूप गोस्वामी की दी हुई भक्ति भावना और उनके भक्ति-रस शास्त्र के अनुसार ही रची गई है। समस्त पदावली साधारण रूप से चार विभागो में बाटी जा सकती है।

१ (क) वे पद जो कृष्ण और उनके अवतारो (चैतन्य) की प्रार्थनायें और वदनायें हैं।

(ख) वे पद जो अन्य सतो एव गुरुओ की वदनाये हैं।

२. कृष्ण के गोचारण अथवा बाल लीला सबधी पद और चैतन्यदेव की बाल्य-लीला सबधी पद।

३ कृष्ण और चैतन्यदेव के जन्मोत्सव और बचपन सबधी पद।

४ राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला सबधी पद और चैतन्य-गदाधर-लीला सबधी पद।

अतिम विभाजन मे जो पद आते हैं वे शृगार रस के पद हैं। वैष्णव आचार्यो के मतानुसार शृगार के जो विभाजन किए गए हैं, उन्ही के अनुरूप राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला सबधी पदो का पुनर्विभाजन किया जा सकता है। शृगार के दो विभाग है :—

१ सभोग

२ विप्रलभ

१ सभोग शृगार के संक्षिप्त, सकीर्ण, सपन्न और समृद्धिमान ये चार प्रकार हैं।

२ विप्रलभ शृगार के पूर्व राग, मान, प्रेम, वैचित्य, और प्रवास ये चार प्रकार हैं। इन सबका सक्षिप्त विवरण यो है।

पूर्वराग—यह प्रेम का प्रारभ है। यह दर्शन या श्रवण से उत्पन्न हो जाता है। दर्शन साक्षात् दर्शन, चित्रपट दर्शन अथवा स्वप्न दर्शन हो सकता है। श्रवण (रूप या गुण-वर्णन-श्रवण) सखी से, दूती से या भट्ट से किया जा सकता है।

मान—यह सहेतु और निर्हेतु दो प्रकार का होता है। निर्हेतु मान अकारण या कारणाभास द्वारा हो सकता है।

प्रेम वैचित्य—यह अनुराग है। इसके तीन स्वरूप हैं—

(क) रूपानुराग—रूप की ओर आकर्षण और अनुराग होना।

(ख) आक्षेपानुराग—नायिका का प्रेमाधिक्य में कृष्ण को, वशी को, ग्वालो को, सखियो को, एव अपने को दोष देना।

(ग) रसोद्‌गार—पिछले आनद का स्मरण।

प्रवास—अदूर और दूर दो प्रकार का है। अदूर प्रवास कालीय दमन, गोचारण,

---

१. वैष्णव-आचार्य-गण रस के पंच मुख्य भागे विभक्त करियाछेन, यथा शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर। पदावलीर मध्ये शांत एवं दास्य रसेर पदेर संख्या नितांतइ कम। सख्य एवं वात्सल्य रसेर पदेर संख्या ओ अधिक नाइ। मधुर वा उज्ज्वल रसेर पदेर संख्याइ प्रचुर।

(बगीय साहित्य सम्मेलन का इक्कीसवां अधिवेशन, सन् १९३८.)

नदमोक्ष, कार्यानुरोध और रास के समय अन्तर्ध्यान होने के समय होना है। दूर प्रवास भावी (होने वाला), भवन् (वर्तमान) और भूत तीन प्रकार का है।

राधाकृष्ण प्रेम लीला सबधी पद ऊपर दिए शृगार रस के विभाजनों के अनुरूप ही हैं। प्रत्येक रस और शृगार रस के समस्त विभाजनों के अनुरूप राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद ना है ही, चैतन्यदेव पर भी उसी प्रकार के पद हैं। राधा-कृष्ण लीला सबधी पदों का गान करने से पहले चैतन्यदेव का वैसा ही पद पहले गाया जाता है। यह प्रारभिक गान "गौर-चन्द्रिका" कहलाता है। पदों के विभाजित सग्रहों या प्रारभिक पद "तदुचित गौरचन्द्र" करके दिए हैं।

हिन्दी का पदावली साहित्य न तो उस प्रकार रचा गया है और न उस प्रकार के विभाजनों में सगृहीत है। भक्तों ने अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के लिए वदनाये की हैं, मन को सुख देने के लिए लीला गाई है और मन को प्रबोध देने के लिए वैराग्य सूचक और ससार की निस्सारता सूचक पद बनाए हैं। शृगार रस के पदों की सख्या भी कम नहीं है परन्तु उनकी प्रधानता दृष्टिगोचर नहीं होती। वैसे हिन्दी की पदावली का भी गौडीय पदावली के विभाजनों के समान ही विभाजन किया जा सकता है। इसमें भी राम-कृष्ण प्रार्थना सबधी, गुरु सबधी, कृष्ण बाल-लीला सबधी, कृष्ण-वल्लभ-जन्म सबधी और कृष्ण-राधा-लीला सबधी पद पाए जाते हैं। यहा पर दोनों पदावली साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विनय—कृष्ण और राम संबंधी

नाम-स्मरण—इष्टदेव का नाम-स्मरण करके वदना करना विनय भक्ति की पहली सीढी है। जीव ससार में राम अथवा कृष्ण का नाम स्मरण करने ही आता है परन्तु वह माया के झगडे मे पड कर सब भूल जाता है। परन्तु नाम-स्मरण ही एक ऐसी वस्तु है जो जीव को भागवतोन्मुख करती है। भक्त कहता है कि —हरि का स्मरण करो और हरि के चरण कमलो को अपने हृदय मे प्रतिष्ठित करो।[1] सब लोग मिल कर हरि का स्मरण करो। हरि स्मरण से ही सब सुख होते हैं।[2] जो फल गोपाल के स्मरण से होता है वह जप, तप और तीर्थ करने से भी नही होता। हरि का स्मरण करो, फिर ससार में नही आना पडेगा।[3] रे मन! हरि-हरि, स्मरण कर। हरि नाम के समान और कुछ भी नही है, इस पर विश्वास कर।[4] प्रात समय उठकर हरि का नाम लो, सुख और आनन्द से दिन बीतेगा। चक्रपाणि कृष्ण करुणा के सागर है, सब विघ्नो का नाश करते है।[5] कृष्ण नाम का स्मरण ऐसा है कि कलि के पापो का हरण करके तार देता है। ओ मूढ मन! सदा राम जप, बराबर राम जप। इसे सब सुख-सौभाग्य की खान समझ। इसी के बल से श्वपच और भील सब हरिलोक को गए। तू भी राम जप।[6] राम नाम में रमो, राम राम रटो, ओ जीहा राम राम

---

१. हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारविंद उर धरौ। (सूरदास, सू. सा, १।२२४, पृ. ७३)

२. हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ।
हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ। (सूरदास, सू सा, २१५, पृ ११६)

३. जो सुख होत गुपालहिं गाऐं।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाऐं।
.. .. ..
सूरदास हरि कौ सुमिरन करि, बहुरि न भव जल आवै॥
(सूरदास, सू. सा., २१६, पृ. ११६)

४. रे मन, सुमिरि हरि हरि हरि!
सत जज्ञ नाहिंन नाम सम परतीति करि करि करि।
(सूरदास, सू सा, १।३०६, पृ. १००)

५. प्रात समैं उठि हरि नाम लीजै, आनंद सौं सुख में दिन जाई।
चक्रपानि करुना को सागर विघ्न विनासत जादोराई॥ (रा क द्रु, पृ. १४२)

६ सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु मूढ मन बारबारं।
सकल सौभाग्य सुख खानि जिय जानि सठ! मानि बिस्वास वद वेद सारं॥
... ...
श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरि लोकगत नाम बल विपुल मति मलिन परसी।
त्यागी सब आस सत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दास तुलसी॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ४६)

रटो। ओ मन! तू राम नाम नेह रूपी मेह का पपीहा हो जा।[१] ओ मन! तू अनुराग सहित राम नाम जप। इस कलियुग मे वैराग्य, योग, यज्ञ, तप, त्यागकुछ भी नहीं है।[२] भाई रे! राम कहता चल, राम कहता चल,[३] नही तो भव की वेगार में पड जायगा, छूटने में अत्यन्त कठिनाई होगी। मन! गोपाल-लाल का स्मरण कर, सब जजाल मिट जायेंगे।[४] माधव का मगलमय नाम उचार। उनका सब कुछ मगलमय है। मुनि उनका ही ध्यान धरते हैं, जिससे अनुदिन मगल होता है।[५] गोविंद-गोपाल को भज। अधम-उधारण नदलाल को भज।[६] गोविन्द माधव गिरिधारी को भज, —वे गिरधारी जो केलि-कला-रग से मन हरने वाले हैं।[७] ओ मन! राधा मदन गोपाल का भजन कर। प्रभुनदन दीन दयाल हैं।[८] हरि कह, हरि कह, देर मत कर, सब जगह विपद बढी है। मुख भर कर हरि का नाम न लेगा तो तरेगा कैसे! अपने दोष से ही मरेगा।[९] मन दृढ करके हरि को भजो। मुख से उनका नाम लो।

---

१ राम राम रमु, राम राम रटु, राम राम जपु जीहा।
राम-नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा॥ (तुलसीदास, वि प, पद ६५)

२ राम नाम जपु जिय सदा सानुराग, रे।
कलि न विराग जोग जाग तप त्याग, रे॥ (तुलसीदास, वि प, पद ६७)

३ राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे।
नाहि तो भव वेगारि मह परिहौ छूटत अति कठिनाई रे।
(तुलसीदास, वि. प, पद १८९)

४ सुमिर मन गोपाल लाल सुन्दर अति रूप जाल।
मिटि हैं जजाल सकल निरखत सग गोप बाल।
(छीतस्वामी, रा क द्रु, भाग २, पृ ८२)

५ मगल माधव नाम उचार।
मगल वदन कमल कर मगल···· ·
अनुदिन मगल ध्यान धरत मुनि मगल मति परमानंददास।
(रा क द्रु, भाग २, पृ ७१)

६. भज गोविन्द, गोविन्द गोपाला।
अधम-उधारण नदलाला॥ (प क. त, पद २९६९)

७ भज गोविन्द माधव गिरिधारि।
गिरिवर-धारि गोवर्धनधारि
केलि-कला-रस-मनोहारि॥ (प क. त, पद २९७०)

८ भज मन राधा मदनगोपाल।
नद-नदन पहु दीन-दयाल॥ (प. क. त, पद २९७३)

९. वद वद हरि, छद ना करिह, विपदे वेढल देश।

वदन भरिया, हरि ना वलिला, शमन तरिवे किसे।
दास लोचन, कहिया फारक, मरिछ आपन दोषे। (प. क त, पद ३०३६)

व्रजेन्द्रनन्दन गोपियो के प्राणधन है और भुवन मोहन है।[१] ओ मन! नंदकुमार को भज। भाई, ठीक से देख लो और कोई गति है ही नही। उनकी लीला गान और नाम गान मे मत्त हो। उनके चरणो को पाकर कृतार्थ हो जाओगे।[२] रे मन! नद-नदन के अभय देने वाले चरणारविंदो का भजन करो।[३] गोविंददास इन पदो से श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वदन, पाद-सेवन, दास्य, पूजन, सख्य, आत्मनिवेदन इत्यादि नवधा भक्ति की अभिलाषा करते है।[४] सूर और तुलसी इन चरणो की बडी महिमा गाते है। तुलसीदास कहते है, कि हे हरि! तुम कब अपने चरण दिखाओगे, वे चरण कलि के समस्त मल को शमन करने वाले और समस्त मगल करने वाले है। सूर कहते है, कि—मै श्री हरि के उन चरणो की वदना करता हू जिनकी कृपा से पगु पर्वत लाघ जाता है और अधे को सब कुछ दीखता है, बहरा सुन लेता है, गूगा बोलता है और रक सिर पर छत्र रख कर चल सकता है, मै तुम्हारे चरण-कमलो की वदना करता हू, वे पद-पद्म सदा ही शिव के धन है और लक्ष्मी के हृदय मे निवास करते है। उन पद-पद्मो ने पिता के त्रास से प्रह्लाद की रक्षा की, जिनके स्पर्श से सुरसुरी का जल ऐसा पवित्र हो गया कि उससे पाप कट जाता है। उन चरणो ने बहुत से पतितो को तारा। वे ही मेरे तापो का हरण करने वाले है।[५] रे मन! नद-नदन के चरणो का भजन कर। वे चरण कमल से भी सुन्दर है और सब सुख के देने वाले है। सनकादिक और शंकर उन चरणो का ध्यान करते है। शेष, सरस्वती, नारद और सब सत उन चरणो की शरण की इच्छा करते है। उन चरणो की धूल सुदुर्लभ है। वे लक्ष्मी का भी हित करते है। मन में ध्यान करने से पाप दूर करते है, उन चरणो का स्मरण करके न जाने कितने पापी तर गए। सूर कहते है, कि—इन चरणारविंदो का भजन करो, जीवन-मरण मिट जायगा।[७] परमानददास कहते है, कि मै जगदीश के उन चरण-कमलो की वदना करता

---

१. भज भज हरि, मन दृढ करि, मुखे बोल तार नाम।
व्रजेन्द्र नंदन, गोपी प्राणधन, भुवन-मोहन श्याम।
. . . . . .
दास लोचन, भावे अनुक्षण, गिछाइ जनम गेल। (प क. त, पद ३०४३)

२. भज मन नंद-कुमार।
भाविया देखइ भाइ गति नाहि आर।
. . . . . .
तार लीला-नाम गाने सदा हओ मत्त। (प क त, पद ३०३३)

३. भजहु रे मन, नंद नंदन, अभय-चरणारविंद रे।
. . . . .
श्रवण कीर्तन, स्मरण वदन, पाद-सेवन-दासि
पूजन सखिजन, आत्म-निवेदन, गोविन्द दास अभिलाषि।
(प. क. त, पद ३०३२)

४. वि प, पद २१८
५ सू सा १।१
६ सू सा. १।९४
७ सू सा. १।३०८

हू जो गोधन के साथ दौड़ते हैं और जिन धूल भरे चरणों को गोपियाँ हृदय में लगाती हैं। परमानंददास प्रेम-पीयूष से भरे उन्हीं चरणों का गान करते हैं जो शंभु, चतुरानन और कमला के मन में हैं, वेद-भागवत जिनका गान करते हैं और जो त्रिलोक को पावन करने वाले हैं।[1] जिस प्रकार हरि-चरणों की महिमा अपार है, उसी प्रकार हरि-नाम की भी महिमा अपार है। इस नाम का भरोसा इतना भारी है कि जो प्रेम से नाम लेता है वह सब सुखों का अधिकारी हो जाता है। इस संसार में हरि नाम का ही आधार है। इस कलि-काल में और कुछ विधि-व्यौहार है ही नहीं। हरि का यश गाने से भवभार मिट जाता है। राम नाम के अंक अद्भुत हैं। धर्म-अंकुर के ये पवित्र दो दल हैं, इनसे जन्म-मरण कट जाते हैं। अज्ञान-हरण करने के लिए ये रवि-शशि हैं। हे मन! अब तुम नाम ग्रहण करो, इनसे तुम काल-अग्नि से बचोगे। सदा सर्वदा सुख सागर में रहोगे। नाम को भज लो तो भवसागर पार हो जाओगे।[2] तुलसीदास कहते हैं, कि—राम नाम गति है, राम नाम मति है, जो राम नाम के अनुरागी हैं वे बड़े बड़भागी हैं। राम नाम तो कल्पवृक्ष है जो चार फल देता है। राम नाम प्रेम और परमार्थ का सार है। राम के नाम का स्नेहपूर्वक स्मरण करो, यह निस्सबल का सबल, असहाय का सखा, अभागे का भाग्य, गुणहीन का गुण, गरीब का गाहक, दीन के लिए दयालु, अकुलीन के कुल, पंगु के हाथ-पैर, भूखे के लिए मा-बाप, निराधार का आधार, भवसागर का सेतु और सुख का हेतु है।[4]

दीनता-वर्णन—हरि का नाम स्मरण करते और महिमा गाते-गाते भक्त को अपनी दीनता स्मरण हो आती है। उसे अपने दोष स्पष्ट रूप से देख पड़ने लगते हैं और वह व्याकुल होकर उन सबका निवेदन अपने इष्टदेव के सम्मुख करता है। उन दोषों का निराकरण तो कोई कर ही नहीं सकता। भक्त के प्राण व्याकुल हो उठते हैं, यह सोच कर कि इतने दोषों और पापों का भार लादे हुए गति कैसी होगी। इतने महान् भगवान वही गति है। अतः भक्त अपनी तुच्छता और दीनता को याद करता है। सूरदास ने दीनतासूचक विनय पद अधिक बनाए हैं। वे कहते हैं, कि—हे प्रभु! मैं तो सब पतितों का टीका हूँ, शिरोमणि हूँ। और तो चार दिन के पतित हैं, मैं तो जन्म का ही पतित हूँ। माधव! मुझसे अधिक पापी और कोई नहीं है। मैं घातक, कुटिल, चवाई, कपटी, महाक्रूर, संतापी, लंपट, धूर्त,

---

१ चरन कमल वंदौं जगदीस जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए।

जे पद कमल शंभु चतुरानन हृदै कमल अंतर राखे,
जे पद कमल रमा उर भूषन वेद भागवत मुनि भाखे।
जे पद कमल लोक त्रै पावन बलिराजा के पीठ धरे,
सो पद कमल दास परमानंद गावत प्रेम पीयूष भरे।

(परमानन्ददास, अष्ट. व सं, पृ ५८७)

२. सू सा १।९०, १।९१, १।१७६, २।२४७
३ वि प, पद ६५, ६७
४ वि प, पद ६९

दमडी का पूत, और विषयो का जाप करने वाला हू। अभक्ष भक्ष कर और अपान पान करके भी इच्छा नही भरी। वधिक और अजामिल तो पापी हैं, सूर तो विकारो का सागर है। हे हरि, मैं तो पतितो का राजा हू। मेरी समता करने वाला कोई दूसरा नही है। मेरा देश तो महामोह है, आशा मेरा सिंहासन है, दभ का छत्र सिर पर तना है, अपयश मेरा नकीव है, काम-क्रोध मेरे मन्त्री हैं, तृष्णा दासी है, अनाचार सेवक है, मनोरथ घोडे है, गर्व हाथी, असत और कुमति रथ के सूत है। इन सब सेनाओ को लेकर मैं पाप करता रहता हू। हरि! मैं सब पतितो का राजा हू। मैंने इन्द्रियरूपी तलवार और काम कुमति मन्त्री की सहायता से पाप का गढ दृढ किया है। हे गुसाईं! मुझ-सा पतित और कोई नही है। मुझसे आज भी अवगुण नही छूटते। मैं अब तक बहुत पच चुका। जन्म-जन्मातर से भ्रमण कर रहा हू। प्रभु! मेरा जैसा कुटिल, खल और कामी कौन है? जिसने शरीर दिया, मैं उसे ही भूल गया। ग्रामीण शूकर के समान मैं द्रोह भर कर विषयो की ओर दौडता हू। सत्सग करने के लिए तो मन में आलस्य होता है, विषयी के साथ विश्राम मिलता है। हरि के चरणो को छोड कर हरिविमुख व्यक्तियो की रात-दिन गुलामी करता हू। मैं परम पापी, अधम, अपराधी और सब पतितो मे नामी हू।[१] प्रभु जू! मैं तो बडा अधर्मी हू। कामी, विषयी, कुकर्मी, कुटिल, क्रोधी इत्यादि सब ही तो मैं हू।[२] भक्त कहता है, कि—ऐसा कौन सा काम है जो मैंने नही किया। जब से मैंने जन्म लिया और जीव नाम पाया, तब से अवगुण ही करता आया हू। तुम्हें छोड कर और सब ही किया।[३] फिर भक्त कहता है, कि—आप मेरी क्या गति करोगे। मैं तो कुटिल, कुचील, 'कुदरशन' हू। कुल-कुटुब के हेतु दिन माया में बीतते हैं। तुलसीदास कहते है कि—मेरा मन त्रिविध तापो मे जलता रहता है और पागलपन करता फिरता है। कभी योग में रत है, तो कभी भोग मे, कभी मोहवश द्रोह करता है, कभी अत्यन्त दीन हो जाता है, कभी अभिमानी राजा बन जाता है। मेरे मोहजनित मल लिपटा हुआ है, किसी भी प्रकार नही छूटता, वरन् जन्म-जन्म के अभ्यास से और अधिक लगता जाता है। मेरे नेत्र परस्त्री को देख कर मलिन हो गए हैं। मन विषय-सुख मे लग कर

---

१. सू० सा०, १।१३८, १३९, १४०, १४१, १४४, १४७, १४८.

२. सूर सागर, पद १।१८६ में सूर ने अपने अवगुणो की एक लम्बी सूची दी है। वे यों हैं —

अपत, उतार, अभागी, कामी, विषयी, निपट कुकर्मी, घाती, कुटिल, ढीठ, अति-क्रोधी, कपटी, कुमति, बडो दुष्ट, अन्याई, बटपारी, ठग, चोर, उचक्का, गाठिकटा, लठ-वासी, चचल, चपल, चबाइ, चौपटा, चुगुल, ज्वारि, निर्दय, अपराधी, झूठा, खोटा, लोभी, लौंद, मुकरवा, झगरू, लंपट, धूत, पूत दमरी को, कृपन, सूम, लंगर, गुमानी, [illegible], महा-मसखरा, रूखा, मचला, निर्धिन, नीच कुलज, दुर्बुद्धि, भोंदू, नित का रोने वाला, बात बनाने वाला, महा कठोर, खाद्य अखाद्य भक्षी, शून्य हृदय, दोष देने वाला, बडा कृतघ्नी, निकम्मा, महामत्त, बुद्धि बल से हीन, मूकू, निंदा करने वाला, निगोडा भोंडा, कायर, कलहकारी, कुष्ठी, रोगी इत्यादि।

३. सू सा., १।१२४

मलिन हो गया है। हृदय जो है वह वासना से मलिन हो गया है। हे माधव ! मुझसे नीच और कोई नही है। यद्यपि मछली और पतगे हीनमति कहे जाते हैं परन्तु मैं उनकी बराबरी का भी नही हू। वे बेचारे तो रूप (लौ का) और आहार (काटे में लगा) देख कर उसे पावक और लोहा नही समझ पाते परन्तु मै तो सामने विपत्ति देख कर भी नही सभलता। मै तो महामोह रूपी सरिता मे सर्वदा बहता फिरता हू। तुम्हारे चरण छोड कर, जो नौका के समान है, बारबार फेन ग्रहण करता हू।[1] मेरा मन, वेष और वचन से साधु ज्ञात होता है पर अघो और अवगुणो का कोष है। कुसग मे मुझे प्यार है, साधु-सग से क्रोध उपजता है। माधव ! मेरे समान हीन, मलीन, दीन और विषयलीन इस ससार में और कोई नही है। गोविंददास कविराज कहते है, कि—मैं प्रेम रत्नमणि को पाकर हार गया और विषय रूपी विषय-विष को सर्वदा ही खाता रहता हू। इस दारुण विषय-विष में सदा मत्त हू और मुख में ज्वलत अगारे भर रक्खे हैं। सत्सग छोड कर असत् से प्रेम किया है, इसीलिए कर्म बधन की फास लगती है।[2] वल्लभदास कहते है—मैं विषम-विषय के कारण माया-जाल मे पडा हू। हरि की कथा भी नही सुनी, साधु-सग भी नही किया, मैंने स्वय अपने को खा लिया। सतत कुमति और सग दोष से ऐसा करता रहा।[3] नरोत्तमदास कहते है—हे गोविंद ! हे गोपीनाथ ! मै काम-क्रोध इत्यादि छ गुणो को लेकर इधर-उधर मारा-मारा फिरता हू और नाना प्रकार के विषयो में भ्रमता रहता हू। माया का दास हो कर अनेको इच्छाए करता हू। तुम्हारा स्मरण दूर चला गया है।[4] लोचनदास कहते है कि—हे चैतन्य-निताई ! मेरे समान पापी त्रिभुवन में और कोई नही है। मै अत्यन्त मूढमति माया का 'नफर' हू। पापो के कारण मेरा शरीर जर्जर है। जितने म्लेच्छ, अधम और अना-

---

१ वि. प, पद ८१, ८२, ९२, ११४, १५९

२ (क) अधने जतन करि धन तेयागिलु ।
प्रेम-रतन-मणि हेलाय हाराइलुं ॥
विषय-विषम-विष सतत खाइलु ।
गौर-कीर्त्तन-रसे मगन ना हेलु ॥ (प क. त., पद २९८६)

(ख) दारुण विषय-विषे, सतत मजियां रैलुं,
मुखे दिलु ज्वलत अगार ॥ (प क. त., पद २९८७)

(ग) सत्सग छाडिया कैलु असते विलास ।
ते कारणे करम-बधन लागे फास ॥ (प. क. त, पद २९८६)

३ गौराग पातकी उद्धार करुणाय ।

. . . .

साधु-सग ना करिलु, आपना आपनि खाइलु, सतत कुमतिग संग दोखे ॥
(प क. त, पद ३००२)

४ हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे ।
काम क्रोध छय गुणे, लैया फिरे नाना स्थाने, विषय भुजाय नाना मते ।
हइया मायार दास, करि नाना अभिलाष, तोमार स्मरण गेल दूरे ।
(प क. त, पद ३०२३)

चारी हैं, उन सबमे अधिक मेरा पाप है।[१] वल्लभदास कहते हैं कि—इस ब्रह्माड में जितने रेणु-कण हैं, उन सबसे भी अधिक मेरे पाप है।[२]

इष्टदेव की महत्ता—अपने पाप, व अपनी हीनता देखकर, जिन्हे भक्तो ने खोल कर अपने इष्टदेवो के समुख रख दिया है, वे भयभीत हो उठते है। उनके आकुल प्राण शाति खोजते हैं, एव उद्धार चाहते है, परन्तु क्या करें जिससे उनका उद्धार हो जाय! क्या करें, कहा जाय, कौन उनकी सुनेगा! तुलसीदास कहते है, कि—मै कहा जाऊ; देव! दुःखित दीन को कहा स्थान है ![३] सूरदास कहते है, कि—किसके द्वार पर जाकर सिर नाऊ।[४] परमानददास कहते है, कि—किसके द्वार पर घुस कर सिर नाऊ।[५] कौन करुण-जन है, जिससे जाकर निवेदन करू! कब मेरा उद्धार होगा, ऐसा वल्लभदास कहते है।[६] वासुदेव घोप कहते है कि—ओ मेरे गौराग, मेरा अपना कोई नही है।[७] उद्धार के लिए व्याकुल भक्त की आतुर दृष्टि के सम्मुख प्रतिविम्बित हो उठते है भगवान्। उनको छोड कर भक्त का और कौन बल है![८] भगवान् के बिना, जो कृपानिधि है, दूसरे की पीर कौन जानता है![९] नरहरिदास कहते है, कि—गौराग अवतार को छोड कर ऐसा कौन जन है जो पतित जनो का उद्धार करे।[१०] हरि बिना मेरा कौन है।[११] पापो के भार मे लदा हुआ जीव अपनी

---

१. एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाई॥
मुञि अति मूढ़-मति मायार नफर।
एइ सब पापे मोर तनु जर जर॥
म्लेच्छ अधम जत छिल अनाचारी।
ता सभा हइते बुझि मोर पाप भारी॥ (प. क. त, पद ३००३)

२. (क) कहा जाउ, कासों कहौं, को सुनै दीन की?
त्रिभुवन तुहीं गति सब अगहीन की। (तुलसीदास, वि प, पद १७९)
(ख) कहां जाउं कासो कहौं और ठौर न मेरो। (तुलसीदास, वि प, पद १४९)

३. जाउं कहां ठौर है कहा देव! दुखित दीन को?
(तुलसीदास, वि प, पद २७४)

४ काकै द्वार जाइ सिर नाऊं, पर हथ कहा बिकाउं।
(सूरदास सू. सा. १।१६४, पृ. ५४)

५. तुम तजि कौन नृपति पै जाउ। काके द्वार पैठि सिर नाउं।
(अष्ट छ स, पृ ६७८)

६. के हेन करुण जन, तारे करों निवेदन,
उद्धार पाइव कत काले॥ (प क त, पद ३००२)

७ आरे मोर गौराग सोना।
पाइयाछि तोमारे कत करिया कामना।
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना। (प क. त, पद ३००८)

८ तुम्हरो नाम तजि प्रभु जगदीसर, सु तो कहौ मेरे और कहा बल?
(सूरदास, सू सा. १।२०४ पृ. ६७)

९. तुम बिनु और न कोउ कृपानिधि, पावै पीर पराई।
(सूरदास, सू सा १।१९५ पृ ६४)

१०. प. क. त, पद २९९४

११. तोमा बिने के आछे आमार। (प क. त, पद २९८८)

ओर देख कर फिर भगवान् की ओर देखता है। तब वह देख पाता है कि उसका भी भगवान् से कुछ तो सबध है ही। सब पाप-ताप से दूर भक्त-वत्सल, असीम शक्तिशाली और दयालु भगवान् जीव से तात्त्विक रूप मे भिन्न हैं, परन्तु पावक और पापी, सबल और निर्बल, नाथ और अनाथ का सबध तो है ही। वे महान् भगवान् या तो भक्तवत्सल न होते और यदि हैं तो जीव को जो उनकी भक्ति करता है, एव स्मरण करता है, भूल कैसे सकते हैं और अपनेको उससे विलग कैसे मान सकते है। भक्त कहता है कि—(क) प्रभु तुम अजित, अनादि, लोकपति हो, मैं अजान और मतिहीन हू।[1] कृपानिधि, तुम तो परम पवित्र हो, तुम्हारा नाम ही पावन है, मैं तो पतित हू। तुम्हारा यह विरद सुन कर मन में धीरज आया है। (ख) मैं तो पतित हू, तुम पतितो का उद्धार करने वाले हो। (ग) तुम दयालु हो, मैं दीन हू, तुम दानी हो, मैं भिखारी हू। मै प्रसिद्ध पातकी हू, तुम पाप-पुज का हरण करने वाले हो। नाथ! तुम अनाथ के स्वामी हो, मेरे समान अनाथ कौन है! मेरे समान आर्त व्यक्ति नही है, और तुम जैसा दु खहारी कोई नही है। तुम ब्रह्म हो, मैं जीव हू, तुम ठाकुर हो, मैं दास हू। तुम्हारे और मेरे बीच में अनेक नाते हैं। जो अच्छा लगे, उसे मान लो। (घ) भक्त फिर कहता है, कि—मै भयो से ग्रस्त हू, तुम समस्त भयो का हरण करने वाले हो। राम! तुम सुखधाम हो, श्रम का भजन करने वाले हो, मैं तीन तापो के श्रम से पीडित हू। (ङ) मै अधम चाडाल हू, तुम दया के ठाकुर हो। (च) जीव और इष्टदेव का यह

---

१ (क) तुम प्रभु अजित अनादि लोकपति हौं अजान मतिहीन।
(सूरदास, सू. सा. १।१८१, पृ ५९)

(ख) परम पुनीत-पवित्र कृपानिधि, पावन नाम कहायौ।
सूर पतित जब सुन्यौ विरद यह, तब धीरज मन आयौ ॥
(सूरदास, सू सा १।१२५, पृ ४२)

(ग) सूर पतित, तुम पतित उधारन, विरद कि लाज धरे।
(सूरदास, सू सा १।१९८, पृ ६५)

(घ) तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुजहारी ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो ॥
ब्रह्म तू हौं जीव तुही ठाकुर हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥
तोहिं मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यो तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै ॥ (तुलसीदास, वि प, पद ७९)

(ङ) हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कौन कृपा बिसराई ॥
तुम सुखधाम राम स्रम भंजन, हौं अति दुखित त्रिविध स्रम पाई ॥
(तुलसीदास, वि प, पद २४२)

(च) अधम चडाल आमि, दयार ठाकुर तुमि
शुनियाछि वैष्णवेर मुखे। (प क त., पद ३०१९)

नाता जीव को बहुत बडा भरोसा देता है। उसकी व्याकुल अतरात्मा उन इष्टदेव की ओर, चाहे वह राम हो, चाहे कृष्ण हो, चाहे गौराग हो, देखती है और उसकी महानता का अनुभव करती है। वही तो भक्त का आलबन है, जो शक्ति, दया और सौंदर्य से मडित हो कर उसके हृदय में निरतर निवास करता है। भक्तो में सूर ने कृष्ण की भक्त-वत्सलता का बहुत गान किया है।

सूरदास कहते हैं, कि—वासुदेव की बडी बडाई है। वे बिना बदला पाए उपकार करते है, बिना स्वार्थ के मित्रता करते है। भक्त के लिए कौन ऐसा करता है, जैसा जगदीश ने किया। उन्होने प्रह्लाद की रक्षा की, क्योकि उसने हठ-पूर्वक उन्हे भजा था। जन के हित के लिए 'यदुराई' ने क्या नही किया ? दया के वश जो बात पहले कह दी थी, उसके कारण गोकुल में (जन्म लिया) गाय चराई। ऐसे भक्तवत्सल है कि नर-केहरी का शरीर धारण किया। दीनबधु हरि ऐसे है, कि जो कोई जहा स्मरण करता है, वे वही उठ कर दौडते है। सूरदास कहते है, कि—प्रभु भक्तवत्सल है। तुम जाति, कुल, नाम, राजा, रक, कुछ भी तो नही देख पाते।[1] कौन ऐसा है जो भगवान् की शरण मे गया और उबरा नही। जब जब सतो पर विपदा पडी, उन्होने सुदर्शन चक्र सभाला।[2] हरि जैसा मित्र तो देखा ही नही, विपत्ति में स्मरण करते ही आकर खडे होते है।[3] तुम स्वय पार्थ के सारथी हुए। निगम भी तो तुम्हारा नाम भक्तवत्सल करके गा गए है।[4] प्रभो ! तुम्हारा वचन और भरोसा ही सच्चा है। दु शासन ने जब द्रौपदी को पकडा, तब उसका वस्त्र बढाया। तुम भक्तवत्सल हो, मै तुम्हारी शरण आया हू।[5] जहा-जहा भक्तो पर 'भीर' पडी, वहा-वहा सहायक होते हो। परमानद के प्रभु भक्त-वत्सल हरि है।[6] अकारण ही हित करने वाला (राम को छोड

१ सू सा, १।३, ५, ७, ११

२ सरन गए को को न उबारयौ।
जब जब भीर पडी सतन कौं, चक्र सुदरसन तहा सभारयौ।
(सूरदास, सू सा १।१४, पृ. ५)

३ हरि सौं मीत न देख्यौ कोई।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई।
(सूरदास, सू सा १।१०, पृ ४)

४. पारथ के सारथि हरि आप भए है।
भगत-बछल नाम निगम गाइ गए है। (सूरदास, सू सा. १।२३, पृ ८)

५. प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साचौ।
.. ...
दुस्सासन जब गह्यौ द्रौपदी तब तिहिं बसन बढायौ।
सूरदास प्रभु भक्तबछल है सरन सरन हौ आयौ।
(सूरदास, सू सा १।३२, पृ ११)

६ जागे जग जीवन जन नायक।
. ...
जहां जहा भीर परी भक्तन को तहं तह होत सहायक।
परमानंद प्रभु भक्त-बछल हरि जिन के मन बच कायक। (परमानंद दास)

कर) और कौन है ? उनका विरद ही 'गरीब निवाज' है, फिर किस अन्य को जोहा जाय ![1] श्री रघुवीर की तो यह बान ही है, कि वे नीच से भी स्नेह और प्रीति करते हैं।[2] दूसरे पर दयालु हो, ऐसा दूसरा देवता और कौन है ! शीलनिधान, सुजान-शिरोमणि, शरणागत को प्रिय मानने वाला, और प्रणतपाल और कौन है ![3] रघुपति विपद नाश करने वाले हैं। अत्यत कृपालु, प्रणत-प्रतिपालक, पतित पावन हैं। क्रूर, कुटिल, कुलहीन, दीन और अत्यत मलिन यवन, इन सबको नाम-स्मरण करते ही अपने भवन भेज दिया। गज, पिंगला, अजामिल इत्यादि खलो की गिनती कहा तक की जाय ! प्रभु ने किसे गति नही दी ?[4] तुलसीदास कहते हैं, कि—हरि के समान आपदा हरने वाला और कौन है ! सहज में ही कृपा करने वाला और दुःसह दुखसागर मे तारने वाला भी अन्य कोई नहीं है। गज अपना बल देख कर भगवान् की शरण में गया। उसके दीन वचन सुन कर वे गरुड को भी त्याग कर दौड पडे। द्रौपदी पर जब दुःशासन अत्याचार करने लगा तब उसके 'हा हरि, रक्षा करो' कहने पर वस्त्र बढाए।[5] कृष्णदास कहते हैं, कि—नित्यानद और चैतन्य दोनो बडे अवतार है, इनके बराबर दयालु और दाता और कोई नही है। म्लेच्छ, चाडाल, निदक, पाखडी इत्यादि जितने थे सब का करुणा से भर कर उद्धार किया।[6] वल्लभदास कहते हैं, कि— हे गौराग ! तुम्हारा नाम ही पतित-पावन है। कलियुग में

---

१ अकारन को हितु और को है ?
विरद गरीब-निवाज कौन को भौंह जासु जन जोहै ?
(तुलसीदास, वि. प, पद २३०)

२ श्री रघुवीर की यह बानि।
नीचहू सो करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि।
(तुलसीदास, वि, प., पद २१५)

३. देव ! दूसरो कौन दीन को दयालु ?
सील-निधान, सुजान सिरोमनि, सरनागत-प्रिय, प्रनतपालु।
(तुलसीदास, वि० प, पद १५४)

४. रघुपति विपति-दवन।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन।
क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन।
सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन।
गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ?
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन।
(तुलसीदास, वि. प., पद २१३)

५ वि. प, पद २१३

६. निताइ चैतन्य दोहेँ बड अवतार।
एमन दयाल दाता ना हइबे आर॥
म्लेच्छ चडाल निंदुक पाखडादि जत।
करुणाय उद्धार करिला कत कत॥ (प क. त, पद २९९१)

जितने पातकी जीव थे, तुमने सब को अपना धाम दिया ।[1] नरोत्तमदास कहते हैं, कि—त्रिभुवन में तुम्हारे इसी यश की ख्याति है कि इस संसार में जो अधम दुर्गत जन हैं उन सबके लिए तुम्हारे मन में करुणा है ।[2]

भक्तवत्सल भगवान् भक्त के परम आश्रय हैं । वे भक्त के सबसे बड़े रक्षक हैं क्योंकि वे असीम शक्तिशाली हैं । त्रिताप, माया और सांसारिक दुःखों से पीड़ित भक्त उनकी शक्ति के ही भरोसे जीवित रहता है और रक्षा पाता है । आज से नहीं, अनादि काल से वे भक्तों की रक्षा करके भक्तों को अपनी महान् शक्ति का परिचय देते आ रहे हैं । जिन भृगु ऋषि को शिव और विरंचि भी मारने दौड़े, उनके चरणों को अपने हृदय पर रख कर सुखदाई वचन कहे । हिरण्यकश्यप की सत्ता पूर्व से लेकर पश्चिम तक फैली थी । उसके पुत्र प्रह्लाद पर विपत्ति पड़ी, सबने धीरज छोड़ दिया, परन्तु हरि ने खंभे से प्रकट हो कर उसे छुड़ाया । ग्राह ने गज को ग्रस लिया और पाताल ले चला, काल के डर से मुख में नाम आ गया । गरुड़ त्याग कर वे दौड़े और उसे बचाया । इन्द्र के दान को जब ग्वालों ने स्वयं बलि समझ कर ले लिया, तब कृष्ण ने ही गोवर्धन उठाया और इन्द्र के कोप से रक्षा की । जब-जब दीनों पर विपत्ति पड़ी तब-तब तुमने रक्षा की । ठकुरायत तो गिरिधर की ही सच्ची है । ब्रह्म-रुद्र जिस काल से डरते हैं, वह काल उनके भ्रू-भंग से डरता है । हाथ में धनुष-बाण लेकर रावण का संहार किया, और लंका में विभीषण की दुहाई फेरी । जिस दुर्योधन के सौ योद्धा भाई थे उसने भी हार मान ली । इन्द्र ने जब कोप करके जल वर्षाया, तब लीला में ही गोवर्धन धारण किया । श्याम तीन लोक के तापनिवारणकर्त्ता और सेवक को सुख देने वाले हैं । ऐसा तो इस संसार में कोई नहीं है, जो यम-यातना दूर करे ।[3] उन रामचन्द्र की

---

१. गौरांग पतित-पावन तुया नाम ।
कलि-जीवे जत, आछिल कृत-पातकी,
देओलि सबे निज ठाम ॥ (प. क. त., पद ३००९)

२. अधम दुर्गत जने, केवल करुणा मने,
त्रिभुवने ए जश खेयाति ॥ (प. क. त., पद ३०२२)

३. (क) भृगु को चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई ।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई ॥
(सूरदास, सू. सा. १।३, पृ. १)

(ख) हिरनकस्यप बढ्यौ उदय अरु अस्त लौं, हठी प्रहलाद चित चरन लायौ ।
भीर के परे तें धीर सबहिंनि तजो खंभ तें प्रकट ह्वै जन छुड़ायौ ॥
ग्रस्यो गज ग्राहि ले चल्यो पाताल कौं काल कैं त्रास मुख नाम आयौ ।
(सूरदास, सू. सा. १।५, पृ. २)

(ग) जब जब दीननि कठिन परी । जानत हौं करुनामय जन कौं तब तब सुगम करी ।
... .
ब्रह्म-बान तें गर्भ उबार्यौ, टेरत जरी जरी ।
बिपति काल पांडव-बधु बन मैं राखी स्याम ढरी ।
... . .
तब तब रच्छा करी भगत पर जब जब बिपति परी ।
(सूरदास, सू. सा. १।१६, पृ. ६)

जय हो, जिन्होने ऋषि के यज्ञ की रक्षा की, अहल्या का शाप से उद्धार किया, शिव का धनुप तोड कर राजाओ का घमड दूर किया और परशुराम का मस्तक नत कर दिया । उन रामचन्द्र की जय हो जिन्होने खर-दूषण, और त्रिशिरा को उनकी चौदह हजार सेना सहित मारा और मरीच का सहार किया । ऐसे राम की जय हो जिन्होने अजेय लका को जीता और रावण का वशसहित नाश करके लोकपालो को अभय किया और खेल मे ही समुद्र पर पुल बाध लिया ।[1] सुन्दर धनुप, तरकस, बाण, शक्ति, तलवार और श्रेष्ठ कवच धारण करने वाले, धर्म की धुरी उठाने मे धीर, रघुकुल में वीर और अपने भुजदडो के प्रचड प्रताप से लीलापूर्वक ही पृथ्वी के भारी भार को उतारने वाले राम की जय हो ।[2] माधव ! तुमने वह भुजा कहा छिपा कर रक्खी है, जिन भुजाओ से गिरि उठाया, रावण का सिर फोडा, बलि को बाधा, हिरण्यकश्यप का हृदय फाडा, प्रह्लाद को वर दिया, अर्जुन का रथ हाका, महाभारत में लीला की और कस को मारा ।[3]

(घ) ठकुरायत गिरिधर की साची ।

ब्रह्म-वज्र डर डरत काल कँ, काल डरत भ्रू-भग की आंची ।।
(सूरदास, सू सा १११८, पृ ६)

(ङ) गहि सारग रन रावन जीत्यो, लक विभीषन फिरी दुहाई ।
मानी हार विमुख दुरजोधन, जाके जोधा हे सौ भाई ।।
(सूरदास, सू सा ११२४, पृ ८)

(च) कीन्हों कोप इन्द्र बरषा रितु, लीला लाल गोवर्द्धन धारी ।

तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ।।
(सूरदास, सू सा ११३०, पृ ११)

(छ) ऐसो सूर नाहिं कोउ दूजो, दूरि करै जम-दायो ।
(सूरदास सू सा ११६७, पृ २२)

१ जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जन शाल, शापवश मुनि वधू-पापहारी ।
भजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी ।।

जयति खर-त्रिशिर-दूषण चतुर्दश-सहस-सुभट-मारीच सहारकर्त्ता ।
गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिन्धु, चरित-निरुपाधि, त्रिविधार्तिहर्त्ता ।।

जयति पायोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु, काल-मन-अगम लई ललकि लका ।
सकुल सानुज सदल दलित दशकठ रण, लोक-लोकप किए रहित शका ।।
(तुलसीदास, वि प, पद ४३)

२ जयति शुभग शारग सु-निखग-सायक-सक्ति-चारु-चर्मासि-वरवर्म-धारी ।
धर्मधुर धीर रघुवीर भुजवल-अतुल हेलया दलित भूभार भारी ।।
(तुलसीदास, वि प, पद ४४)

३ ते भुज माधों कहा दुराये ।
ते भुज प्रकट करहु कि न नरहरि, जन कलियुग मँह बहुत सताए ।।

मदन-गोपाल और राम तो एक ही है। पहले अपनी भुजा से सागर बाधा था अब रास नचाया। तब रावण को मारकर सब असुर सहारे, अब गोवर्धन धारण किया है।[1] वे भगवान समस्त सौन्दर्य के धाम है, समस्त ससार ही उनकी मूर्त्ति है, वे विराट् स्वरूप है, बडे चतुर हैं, गुप्त गुण वाले है और बडे महिमावान् और उदार है। वे अजेय है, उनकी महिमा अपार है, वे अत्यन्त दुर्गम है, स्वर्ग और मोक्ष के स्वामी है और ससाररूपी वृक्ष को उखाडने के लिए कुठार-रूप है। वे देवताओ के शत्रुओ के सहारकर्ता, पृथ्वी का भार हरण करने के लिए अवतार धारण करने वाले है।[2] श्रीराम वर देने वाले देवताओ के भी स्वामी है। वाणी के अधिष्ठाता, सर्वव्यापक, निर्मल, महान्, बलवान् और मुक्ति के स्वामी है। महामाया, महत्त्व, शब्द, गुण, देवता, व्योम, मरुदग्नि, अमलाम्ब, पृथ्वी, आत्मा, काल, परमाणु, शक्ति इत्यादि सब उनका ही रूप है। वे गूढ गभीर ज्ञानवल्लभ, बडी महिमा के भडार, और भयकर ससार से तार देने वाले है।[3] तुम तो इतने शक्तिशाली हो, भगवन्, कि वे भी तुम्हारी कृपा की इच्छा रखते है जिनके वश मे सर्वदा अनेक आज्ञाकारी गण और अनुचर है। तुम्हारे कहने से पवन बहता है, रवि-शशि भ्रमण करते हैं, और फनपति शीश नही

जिहि भुज गिरि मंदिर उत्पाट्यो, जिहि भुज बल रावन सिर तोरे।
जिहि भुजबल बलि बधन कीनो, अपने काज सकुचि भए थोरे॥
जिहि भुज हिरन्यकसिपु उर फार्‌यो, जिहि भुज प्रह्लादहि वर दीनो।
जिहि भुज अर्जुन के हय हाके, जिहि भुज लीला भारथ कीनो॥
जिहि भुज गोवर्धन राख्यो जिहि भुज कमला घर आनी।
जिहि भुज कसादिक रिपु मारे, परमानन्द प्रभु सारग पानी।
(परमानन्ददास, अष्ट. व. स, पृ. ६५३, फुटनोट)

१ मदन गोपाल हमारे राम।

. . .

अपनी भुजा जिन जलनिधि बाध्यो, रास नचायो कोटिक काम।
दसशिर हति सब असुर सहारे, गोवर्द्धन धार्‌यो कर वाम॥
(परमानन्ददास, रा. क द्रु, भाग २, पृ ७१७)

२. अखिल लावन्य गृह विश्वविग्रह परम प्रौढ गुन गूढ महिमा उदारं।
दुर्द्धर्ष दुस्तर दुर्ग स्वर्ग-अपवर्ग-पति भग्न-ससार-पादप-कुठार॥

. . .

दुष्ट-विबुधारि सघात-महिभार-अपहरन, अवतार कारन अनूप।
(तुलसीदास, वि प., पद ५०)

३ विस्व निस्यात, विस्वेस, विस्वायतन, विस्व मरजाद, व्यालादगामी।
ब्रह्म वरदेश, वागीस, व्यापक, विमल, विपुल, बलवान निर्वान स्वामी॥

. . . .

ध्येय ग्यानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-ससार-पर्पार दाता॥
(तुलसीदास वि, प, पद ५४)

डुलाते! अग्नि अपनी दाह करने की शक्ति नहीं छोड पाता, सिंधु अपना जल नहीं बढा पाता, शिव विरंचि इन्द्र सब चाव से तुम्हारे चरणों की सेवा करते हैं। जो तुम करने को कहते हो, अत्यन्त आतुर होकर करते हैं। यदि कृपालु रघुपति की कृपा मिल जाय तब कोई क्या कर सकता है। कोई भी करोडो उपाय कर के मर जाय, भक्त का तो बाल भी बाका नहीं हो सकता। प्रह्लाद की कथा वेद-विदित है। गज का उद्धार किया। भगवान् ने विभीषण को गद्दी पर बिठाया। ध्रुव को अविचल पद दिया। दुर्योधन ने क्या नहीं किया परंतु अपने अभिमान से ही वह नष्ट हो गया और प्रभुकी सहायता से पाडवो को विजय मिली। किसके दो शिर हैं जो भक्त की सीमा में भी पैर रख सके। रघुवीर के बाहुबल से मैं सदा अभय हू। कभी नही डरता। जिसे मनमोहन अंगीकार कर ले उसका बाल तक तो शिर से खसकेगा नही, चाहे सारा ससार वैरी हो जाय! प्रभु के बल से ही तो प्रह्लाद तनिक भी नहीं डरे, हिरण्यकश्यप हार कर रह गया और उत्तानपाद का पुत्र आज भी राज कर रहा है। द्रुपद-सुता की लाज रक्खी और दुर्योधन का मान भग किया।[1] गोविंद हरे! तुम कालीय-मर्दन,

---

१. (क) तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी।
जिन कें बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी।
बहत पवन, भरमत ससि-दिनकर, फनपति सिर न डुलावै।
दाहक गुन तजि सकत न पावक, सिंधु न सलिल बढावै।
सिव-विरंचि सुरपति-समेत सब, सेवत प्रभु पद चाए।
जो कछु करन कहत सोई सोइ कीजत अति अकुलाए॥
(सूरदास, सू सा, १।१६३, पृ ५३)

(ख) जोपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै?
होइ न बाको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥
वेद बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति पथ पाउँ धरै?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अविचल कबहुँ न टरै॥
अबरीष की साप सुरति करि अजहु महामुनि ग्लानि गरै॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस, पाडु-तनय बरिआई बरै॥
.. ..
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै?
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल, सदा अभय काहू न डरै॥
(तुलसीदास, वि प, पद १३७)

(ग) जाकौं मनमोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै।
हिरनकसिपु-परहार थक्यौ, प्रहलाद न नेंकु डरै॥
अजहू लगि उत्तानपाद-सुत, अविचल राज करै।
राखी लाज द्रुपद-तनया की, कुरुपति चीर हरै।
दुरजोधन कौ मान भग करि, बसन-प्रवाह भरै॥
(सूरदास, सू सा. १।३७. पृ १३)

कस-निसूदन, देवकीनंदन, राम हो। तुम ही मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन, और भृगुपति कुल के रक्षक हो। तुम्ही श्री बलराम, बुद्ध, कल्कि, नारायण, जनार्दन देव और कसारि हो। तुम केशव, माधव, यादव, यदुपति और दैत्यदलन हो।[1] कमलेश कृष्ण केशि-राक्षस का नाश करने वाले और कसारि है। हे केशव! तुम काली का नाश करने वाले हो। तुम चाणूर का नाश करने वाले हो। तुम दैत्यदलन हो! तुम मधुसूदन हो।[2]

अतीव शक्तिशालिनी माया जीव के लिए सबसे बडी दुःखदात्री है। इस ससार मे ऐसा कौन है जिसे उसने तग न किया हो। वह नर, सुर, असुर सबको नाच नचा लेती है। वह माया भी केवल कृष्ण और राम के काटे से कटती है! उनकी चरण-शरण में जाने वाला ही नीद भर सो सकता है।[3] उनकी माया महाप्रबल है जिसने सब जग को वश में कर रक्खा है,[4] तुम्हारा यश कैसे गाया जाय। माया नटी कोटि-कोटि नाच नचाती है। लोभ में डाल कर दर दर लिए फिरती है और नाना प्रकार के स्वाग करवाती है। तुम्हारे प्रति कपट करवाती है और बुद्धि को भी भ्रम मे डाल देती है। तुम्हारी कृपा बिना कौन मेरा दुःख दूर

---

१. हरे हरे गोविन्द हरे।
कालिय-मर्द्दन, कंस-निसूदन, देवकि-नन्दन राम हरे।
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामन भृगुपति रक्षकुलारे।
श्री बल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्द्दन श्री कसारे॥
केशव माधव, यादव-यदुपति, दैत्य-दलन दुख-भजन शौरे।
(परमानन्ददास, प. क, पद २९७४)

२. कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपामय, केशि-मथन कंसारि।
केशव कालिदमन करुणामय कालिन्दि-कूल-विहारी।
... ...
चैद्योद्धारी चक्रि चानूर-हर, चक्र-पाणि चित-चोर।
... .
मनहर मदनमोहन मधुसूदन, गाओत गोकुलदास।
(गोकुलदास, प क. त, पद २९७५)

३. इहि राजस को कौन बिगोयौ।
हिरनकसिपु, हिरनाच्छ आदि दै, रावन कुम्भकरन कुल खोयौ।
कंस, केसि, चानूर, महाबल करि निरजीव, जमुन-जल बोयौ।
जज्ञ-समय सिसुपाल सुजोधा, अनायास लै जोति समोयौ।
ब्रह्मा-महादेव-सुर-सुरपति, नाचत फिरत महा रस भोयौ।
सूरदास जो चरन-सरन रह्यौ, सो जन निपट नींद भरि सोयौ।
(सूरदास, सू सा. १५४, पृ.१८)

४. (गोपाल) तुम्हारी माया महाप्रबल,
जिहिं सब जग बस कीन्हौ हो।
(सूरदास, सू सा, १४४, पृ. १५)

कर सकता है।[1] हे माधव ! तुम्हारी यह माया ऐसी है कि कितने ही उपाय करके मरने पर भी मैं इससे उद्धार तब तक नहीं पा सकता, जब तक तुम दया न करोगे।[2] मैं सब प्रकार से कठिन हूँ, तुम मृदुल हो परन्तु मेरे मन में दृढ़ विचार है कि यह मोह की शृंखला तुम्हारे छुटाने से ही छूटेगी।[3] कमलाकान्त अत्यंत शक्तिशाली और परम सामर्थ्यवान हैं। वे जिस पर दया करते हैं, वह लकड़ी घास का बेचने वाला हो, तो भी उसके सिर पर छत्र रख सकते हैं। विद्या के स्वामी अविद्या के सामने पूर्ण समर्थ हैं, जो चाहे सो करें। खाली को भर सकते हैं, भरे को खाली कर सकते हैं और चाहते ही फिर भर सकते हैं। वे अविनाशी सिद्ध पुरुष हैं, किसी से डरते नहीं।[4] जीव एक बार जन्म लेता है, बार बार मरता है। जन्म लेते ही महा माया के बंधन में पड़ जाता है और कृष्ण-भजन मन में ही नहीं आता। कृष्ण का भजन करने से क्लेश दूर हो जाता है।[5] सूरदास कहते हैं कि—ऐसा जन्म बार बार

---

१ विनती सुनौ दीन की चित दै कैसें तुव गुन गावै ?
माया नटी लकुटि कर लीन्हे, कोटिक नाच नचावै ॥
दर-दर लोभ लागि लिये डोलति नाना स्वांग बनावै ।
तुम सौं कपट करावति प्रभु जू, मेरी बुधि भरमावै ॥

सूरदास प्रभु तुम्हरो कृपा बिनु,को मो दुख बिसरावै।(सूरदास, सू सा १४२,पृ ४५)

२ माधव ! अस तुम्हारि यह माया।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥
(तुलसीदास, वि प, पद ११६)

३ सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि दृढ़ विचार जिय मोरे।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृंखला, छुटिहि तुम्हारे छोरे ॥
(तुलसीदास, वि प, पद ११४)

४ जापर कमलाकांत ढरै ।
लकरी घास को बेचन हारो ता सिर छत्र धरै ।
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कछु चाहे, सोइ करै।
रीतै भरै भरे पुनि ढोरैं जो चाहे तौ फेरि भरैं ।
सिद्ध पुरुष अविनाशी समरथ काहू ते न डरै ।
परमानन्द सदा यह सम्पति मनमें कबहु ढरै ॥
(परमानन्ददास, अष्ट व स फुटनोट पृ ६०७)

५ एक बार जनमये आर बार मरे ।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे ॥

जन्म-मात्र पड़े महामायार बन्धने ।
भजिते कृष्णेर पद ना पड़ये मने ॥
..
कृष्णेर भजन-तत्त्व करे उपदेश ।
भजये श्रीकृष्ण पद दूरे जाय क्लेश ॥ (बलरामदास, प क० त, पद २९९९)

नही मिल सकता, हरि का भजन करके उस पार उतर चलो। हे मन! तुम नाम ग्रहण कर लो, इससे तुम काल-अग्नि से बच जाओगे और सर्वदा सुख के समार में रहोगे। कोई मार नही सकेगा, न कोई विघ्न ग्रसेगा और यम भी अपने किनारे नही चढा सकेगा। सूरदास कहते है कि—इस अवसर पर प्रभु का भजन करके भवसागर से उतर चलो।[1] तुलसीदास कहते हैं कि—रसना! राम नाम क्यो नही गाती। सब वाद-विवाद छोड दे, स्वाद छोड दे और हरि का भजन कर। इस प्रकार मैं भव से तर जाऊँगा और तुझे यश मिलेगा।[2]

भक्तो का दुख दूर करने के लिए परम शक्तिशाली भगवान् असुरो का सहार करते है परन्तु वे क्रूर या निर्दयी नही हैं। वे अत्यत दयालु है, भक्तो का कष्ट निवारण करने के लिए जिन दुष्टो को वे मारते है, उन्हे भी अपनी गति देते हैं, अत उन्हें निर्दयी या क्रूर कैसे कहा जाय।[3] रे मन! कृपालु रामचन्द्र का भजन कर जो दारुण भव-भय का हरण करने वाले है। दीनो का उद्धार करने वाले रघुवर करुणाभवन है, सताप का शमन करने वाले और पाप का नाश करने वाले है। मै उन करुणानिधान रघुपति की वदना करता हूँ जिनसे भव छूट जाता है और ज्ञान आता है। तुम दयालु हो, मैं दीन हूँ, तुम दानी हो और मैं भिखारी

---

१. (क) नहिं अस जनम बारम्बार।

... ...

सूर हरि कौ भजन करि-करि उतरि पल्ले-पार।

(सूरदास, सू. सा. १८८, पृ. २८)

(ख) अब तुम नाम गहौ मन नागर।

जातैं काल अगिनि तैं बाचौ सदा रहौ सुख-सागर।

मारि न सकै, बिघन नहिं ग्रासै, जम न चढ़ावै कागर॥

... ...

सूरदास प्रभु इहिं औसर भजि उतार चलौ भवसागर॥

(सूरदास, सू. सा. १९१, पृ. २९)

२. काहे न रसना रामहिं गावहि।

... ...

वाद-विवाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि।

तुलसिदास भव तरहि तिहू पुर तू पुनीत जस पावहि॥

(तुलसीदास, वि. प, पद २३७)

३. (क) करनी करुना-सिन्धु की, मुख कहत न आवै।

कपट हेत परसै बको, जननी-गति पावै॥

(सूरदास, सू. सा ११४, पृ. २)

(ख) ऐसी कौन प्रभु की रीति।

बिरद हेतु पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति।

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।

मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ।

(तुलसीदास, वि. प, पद २१४)

हूँ। दीन-बन्धु, सुख-सिन्धु, कृपाकर कारुणिक रघुराई ! सुनो ! मेरा मन त्रिविध ज्वर मे जलता है और पागलपन करता फिरता है। तुम्हारी कृपा बिना अब रोग जायगा नही। रघुराया ! कुछ ऐसा समझ पडता है, दयालु, कि तुम्हारी कृपा के बिना मोह माया नही छूटती है। उन करुणामय स्वामी की बराबर वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा मे पगु गिरि का लघन करता है और अन्धे को सब कुछ दिखता है। दीन-दयालु, परम करुणामय, नाथ अनाथो के ही सगी है। तुमने कभी तो गहरु नही किया। तुम तो स्वभाव से ही सुलभ और स्मरण के वश मे हो। गो,गोपी और गोपो के कारण तुमने गिरि उठाया। केशी,काली, कस और जरासध का वध किया और गुरु-पुत्र को ला दिया। सभा में द्रोपदी का वस्त्र खीचा गया, तब वस्त्र बढाया। श्याम ! तुम सर्वज्ञ हो, कृपानिधि हो और तुम्हारा हृदय करुणा से

---

१. (क) श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरण-भवभय-दारुण।
(तुलसीदास, वि प, पद ४५)

(ख) दीन उद्धरन रघुवर्य करुनाभवन समन सताप पापौघ-हारी।
विमल-विज्ञान-विग्रह अनुग्रह-रूप भूपवर विबुध-नर्मद खरारी॥
(तुलसीदास, वि प, पद ५९)

(ग) बन्दौं रघुपति करुनानिधान।
जाते छूटै भव भेद ज्ञान॥
(तुलसीदास, वि प, पद ७९)

(घ) तू दयालु दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
(तुलसीदास, वि प, पद ७९)

(ङ) दीनबन्धु, सुखसिन्धु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिविध ज्वर, करत फिरत बौराई॥
.. ..
तुलसिदास भवरोग रामपद-प्रेमहीन नहिं जाई॥
(तुलसीदास, वि प, पद ८१)

(च) अस कछु समुझि परत, रघुराया।
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित, मोह न छूटै माया॥
(तुलसीदास, वि प, पद १२३)

(छ) चरन-कमल बन्दौं हरि राइ।
जाकी कृपा पगु गिरि लघै, अन्धे कौ सब कछु दरसाइ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रक चलै सिर छत्र धराइ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तिहि पाइ॥
(सूरदास, सू सा. १।१, पृ. १)

(ज) नाथ अनाथनि ही के सगी।
दीनदयाल, परम करुनामय, जन-हित हरि बहुरगी।
(सूरदास, सू सा १।२१, पृ ७)

मृदुल है। नंद-नंदन! मैं किसकी शरण जाऊँ? और कोई आश्रय नहीं।[1] दीनदयालु! ऐसा ही कुछ करो जिससे जन क्षण भर के लिए भी चरणों का त्याग न करे। तुम करुणासागर हो, भक्त-रसाल हो। हे समर्थ, सर्वज्ञ, कृपानिधि, अशरणशरण और जगजाल के हरण करने वाले कृपानिधान! सुनो, सूर की यह गति है कि किससे कहे।[2] राम! वह कृपा तुमने कहा बिसारी जिसके कारण तुम दीनों का दुःख सुन कर अपना लाभ त्याग कर दौड़ते हो। नागराज ने अपना बल विचार कर मन में हार मान ली और तुम्हारे चरणों में चित्त दिया, उसकी आर्त्त-वाणी सुन कर गरुड़ त्यागकर चल पड़े। त्रासित प्रह्लाद की प्रतिज्ञा रक्खी। नृसिंह का शरीर धारण करके राक्षस का नाश किया, श्रुति इसकी साक्षी है।[3] संसार के अधम और दुर्गति में पड़े हुए व्यक्तियों के लिए तुम्हारे मन में केवल करुणा ही रहती है, यह तुम्हारी ख्याति और यश त्रिभुवन में फैली है   हे गोविन्द! गोपीनाथ! कृपा करके अपने पास

---

१. कबहूँ तुम नाहिं न गहरु कियौ।
सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तनि अभै दियौ।
गाइ-गोप-गोपीजन-कारन, गिरि कर-कमल लियौ॥
अघ अरिष्ट केसी, काली मथि, दावानलहिं पियौ।
कंस-बंस बधि जरासंध हति, गुरु-सुत आनि दियौ॥
करषत सभा द्रुपद-तनया कौ, अम्बर अछय कियौ॥
सूर स्याम सरवज्ञ कृपानिधि, करुना-मृदुल-हियौ।
काकी सरन जाउँ नँद-नंदन, नाहिंन और बियौ॥
(सूरदास, सू. सा १।१२१, पृ. ४०)

२. सोइ कछु कीजै दीनदयाल।
जातैं जन छन चरन न छाँडै, करुना-सागर, भक्त-रसाल॥
... ...
सुनि समरथ सरवज्ञ कृपानिधि, असरन-सरन, हरन जग-जाल।
कृपानिधान, सूर की यह गति, कासौं कहै कृपन इहि काल॥
(सूरदास, सू सा १।१२७, पृ ४२)

३. कृपा सो धौं कहा बिसारी राम?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख, धावत हौ तजि धाम॥
नागराज निज बल बिचारि हिय, हारि चरन चित दीन।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलम्ब न कीन॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन, प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु, दनुज हन्यो श्रुति साखी॥
(तुलसीदास, वि प, पद ९३)

४. राधाकृष्ण निवेदन एइ जन करे।
.. . ..
अधम दुर्गत जने, केवल करुणा-मने, त्रिभुवने ए जश-खेयाति।
(नरोत्तमदास, प. क. त, पद ३०२२)

रक्खो । दैव-माया ने तुम्हारी कृपा-डोर से छुडा कर मुझे भव-कूप में डाल दिया है । यदि तुम्ही फिर से कृपा करोगे, और मेरे केश पकड कर व्रजपुर में रक्खोगे, तभी मेरा भला होगा ।[१] इस प्रकार भक्तगण भगवान की दयालुता से अभिभूत होकर करुणासिन्धु, कृपासागर, कृपा-सिन्धु, करुणासागर, दयालु इत्यादि कह कर उनकी बार-बार वदना करते हैं । अपने उद्धार के लिए उन भगवान से याचना करते है जो भक्तो का दुःख दूर करने के लिए सर्वदा तत्पर रहते हैं । उनके भगवान की यही महत्ता है ।

परम कृपालु भगवान भक्त की भावना और प्रेम देख कर ही रीझ उठते है । उन्हें जप, तप, कठिन व्रत इत्यादि नही चाहिए । वे इतने गुण-ग्राहक है कि केवल प्रीति से वश में होते हैं । वह प्रीति भी चाहे जिसकी हो । धनी, निर्धनी, बडा, छोटा, सब उनके प्रीति-पात्र हैं । वे किसी का कुल, जन्म, कुछ भी नही मानते ।[२] वे तो केवल सबकी प्रीति मानते है ।

---

१ हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे ।

. .. .

दैव-माया-बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे, भव-कूपे दिले फेलाइया ॥
पुन जदि कृपा करि, ए जनार केशे धरि, टानिया तोलह ब्रज-भूमे ।
तवे से देखिये भाल, नहे बोल फुराइल, कहे दीन दास नरोत्तमे ॥
(नरोत्तमदास, प. क त, पद ३०२३)

२ (क) काहू के कुल तन न विचारत ।
अविगत की गति कहि न परति है, व्याध अजामिल तारत ।
कौन जाति अरु पाति विदुर की, ताही कैं पग धारत ॥
(सूरदास, सू. सा. १।१२, पृ ४)

(ख) गोविंद प्रीति सबनि की मानत ।
जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा, अन्तर की गति जानत ॥
(सूरदास, सू, सा १।१३, पृ. ५)

(ग) जन की और कौन पति राखै ?
जाति-पाति कुल-कानि न मानत, वेद-पुराननि साखै ।
(सूरदास, सू सा १।१५, . ५)

(घ) ऐसी कौन प्रभु की रीति ।.
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पांवरनि पर प्रीति ।
(तुलसीदास, वि. प., पद २१४)

(ङ) ऐसी हरि करत दास पर प्रीती ।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीती ।
(तुलसीदास, वि. प, पद ९८)

(च) रघुबर ! रावरि यहै बडाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ।

.. .. .

ऐसी प्रीति और किस प्रभु की है जो अपने विरद के लिए नीचो पर प्रीति करता है। प्रभु अपने दास पर ऐसी प्रीति करते है कि वे अपनी प्रभुता भूल कर जन के वश में हो जाते है यह उनकी रीति है। रघुवर! आपकी यही वडाई है। आप धनी का निरादर करके गरीव का आदर करते है और उन पर कृपा करते है। इस दरवार में सर्वदा ही यह रीति चली आई है कि दीन का आदर होता है। राम प्रीति की रीति भली भाति जानते है। वे वडे की वडाई और छोटे की छोटाई दूर करते है।

पश्चात्ताप—दीन, दुखी, और पथभ्रष्ट जीव जव इतने महान् इष्टदेव को देखता है तव उसके पश्चात्ताप की सीमा नही रहती। वह तो कर्म-वधन में पडा भटक रहा है। उसके दुख का निवारणकर्त्ता तो सामने ही उपस्थित है परतु उसे उससे कोई लाभ नही। कारण भगवान नही है, वह स्वय ही है। भगवान तो असीम शक्तिशाली, भक्तवत्सल और गुणग्राहक है, परतु वे क्या करें जव जीव उधर देखता ही नही। वे तो अकारण दया करते है परतु जीव विमुखता करता ही जाता है। भक्त के प्राण जो शाति चाहते है अपनी इस अधमता पर पश्चात्ताप से भर उठते है। भक्त कहता है कि मै ऐसे वहुत से जन्मो में वौराया रहा, हरि के कमल-चरण त्याग कर उनसे विमुख रहा, फिर भी मन मे सतोप नही आया। जव जव इस ससार में प्रगट हुआ, अनेक शरीर धारण किए। काम, क्रोध, मद और लोभ के वश अत्यन्त भारी पाप किए।[1] जन्मो के समूह इसी प्रकार गिरा गए। रघुनाथ से प्रभु को छोडकर मेरे ऐसे अधम व्यक्ति दूसरो के चरणो का सेवन करते फिरते है। जो जड जीव है, कुटिल और खल है और केवल कलियुग के मल में सने हुए है, उनकी ही प्रशसा करके मन सूखता है और मैं उन्हे हरि से अधिक करके मानता हू। सुख के लिए कोटि उपाय निरतर किए पर पैर कभी न दुखे और रास्ते की कीचड जैसा मन मलिन रहा।[2] ऐसा करते करते अनेक जन्म वीत गए, परतु मन को सतोप

यहि दरवार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई।
(तुलसीदास, वि प, पद १६५)

(छ) राम की रीति आप नीके जनियत है।
वडे की वड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै॥ (तुलसीदास, वि प, पद १८३)

१. ऐसेंहि जनम वहुत वौरायो।
विमुख भयो हरि-चरन कमल तजि-मन संतोप न आयो॥
जव जव प्रगट भयो जल थल मे तव तव वहु वपु धारे।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोहवस अतिहि किए अघ भारे॥ (सूरदास, सू सा १।२७, पृ ९)

२. ऐसेहि जन्म समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन विराने॥
जे जड जीव कुटिल कायर खल, केवल कलिमल-साने।
सूखत वदन प्रसंसत तिन्ह कह, हरि तें अधिक करि माने॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पांय पिराने।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यो कबहुं न हृदय थिराने॥ (तुलसीदास, वि प, पद २३५)

नही आया। दिन-प्रतिदिन दुराशा बढ़ती ही गई और मैं सब लोको में भ्रमण कर आया। मैं काम, क्रोध, मद और लोभ की अग्नि मे जलता रहा और शाति पाने के लिए स्वर्ग, रसातल, भूतल सब जगह घूम आया, परतु वह अग्नि कही भी न बुझी।[1] यह जन्म भी व्यर्थ में ही नष्ट हो गया। हरि का स्मरण और गुरु सेवा नही की और न जाकर मधुवन मे ही निवास किया। इस वार मनुष्य-देह पाकर भी कुछ उपाय नही किया। थोडी सी जूठन की लालच में श्वान की तरह भटकता फिरा। विमल-यश गाकर गिरिवर को कभी नही रिझाया।[2] हे अधम, तूने नर-जन्म पाकर क्या किया। कूकर शूकर के समान उदर भरा और प्रभु का नाम नही लिया। कानो से श्रीभागवत नही सुनी और गुरु गोविंद को नही चीन्हा। हृदय में भाव-भक्ति कुछ भी नही उपजी और मन विषयो में लगा रहा। झूठे सुख को अपनाकर के माना, पापो के मेरु को बढा कर अत में बलहीन हो गया। चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करके फिर उसी में मन दिया। सूरदास कहते हैं कि भगवान के भजन बिना, हे अधम, तू 'अजलिजल' के समान क्षीण होता जाता है।[3] जन्म यो ही जा रहा है, कुछ भी तो नही बन पडा। अत्यन्त दुर्लभ शरीर पाकर भी कपट त्यागकर रामका भजन मन, वचन और काया से नही किया। राम के सेवक साधुओ की सेवा नही की। श्री रामचन्द्र के गुण न तो पुलकित चित्त से सुने, और न मुदित मन से कहे। अब जब जरा ने आकर अग शिथिल कर दिए तब मणि-हीन सर्प के समान व्याकुल होता हू और शिर धुन कर पछताता हू। इस

---

१. ऐसें करत अनेक जन्म गए मन सतोष न पायौ।
दिन-दिन अधिक दुरासा लाग्यौ, सकल लोक भ्रमि आयौ॥
सुनि-सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल, तहां-तहा उठि धायौ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-अगिनितें कहू न जरत बुझायौ॥ (सूरदास, सू सा १।१५४, पृ ५१)

२. जनम तौ बादिहिं गयौ सिराइ।
हरि-सुमरिन नहिं गुरु की सेवा, मधुबन बस्यौ न जाइ॥
अब की बार मनुष्य-देह धरि कियौ न कछू उपाइ।
भटकत फिर्‌यौ स्वान की नाईं नैकु जूठ कैं चाइ॥
कबहु न रिझए लाल गिरिधरन, विमल-विमल जस गाइ॥
(सूरदास, सू सा १।१५५, पृ ५१)

३. नर तैं जनम पाइ कह कीनौ।
उदर भर्‌यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ॥
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि गुरु गोबिंद नहिं चीनौ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी मन विषया मैं दीनौ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ।
अघ कौ मेरु बढाइ अधम तू, अत भयौ बल हीनौ॥
लाख चौरासी जोनि भरमि कैं फिरि वाहीं मन दीनौ।
सूरदास भगवत-भजन बिनु ज्यौं अजलि-जल छीनौ॥
(सूरदास, सू. सा १।६५, पृ २२)

दु सह विपत्ति मे कोई तो मित्र नही दीखता ।[1] मनुष्य-तनु पाकर मैंने कौन सा लाभ पाया। स्वप्न में भी काया, वचन और मन से दूसरे के काम में नहीं आया। इस ससार में भय, निद्रा, मैथुन, और अहकार की प्रवृत्ति सबमे समान रूप से है। देव-दुर्लभ शरीर धारण करके हरि का भजन नही किया और न अभिमान छोडा।[2] आखिर यह दिन सब कैसे बीत गए? यह दिन सब विषयो के लिए चले गए। तीनोपन उसी प्रकार बीत गए, शीश पर के केश श्वेत हो गए, आखें अधी हो गयी, कानो से सुना नही जाता, पैर थक गए, परतु मूर्ख जीव गगोदक का त्याग करके कूप जल पीता है और हरि का त्याग करके प्रेत पूजता है। राम नाम मुख से लेने में कुछ भी तो खर्च नही लगता।[3] मैंने न तो गोपाल का भजन किया, न उनकी रसाल लीला में मन लगाया, न सुबोधिनी सुनी और न साधु-सग किया। कभी घडी, आधी घडी को भी तो रसना ने चाव से कृष्ण नाम नही रटा। लाज भी तो नही आती कि मनुष्य तनु पाकर मैंने क्या कमाया। श्रीनाथ की छबीली छवि भी नही देखी और न उन के द्वार पर शीश नवाया। मनुष्य जन्म पाकर पाप कमाया।[1] भक्त सोचता है कि जब इस ससार

---

१. कछु ह्वै न आय गयो जनम जाय।
अति दुरलभ तन पाइ कपट तजि, भजे न राम मन वचन काय॥
... ...
सेये नहि सीतापति-सेवक साधु सुमति भले भगति भाय।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय॥
अब सोचत मनि बिनु भुजंग ज्यो बिकल अग दले जरा धाय।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय॥
(तुलसीदास, वि. प., पद ८३)

२. लाभ कहा मानुष तनु पाए।
काय बचन मन सपनेहुं कबहुक घटत न काज पराए॥
... ...
भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाए।
सुर-दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गंवाए॥
(तुलसीदास, वि. प, पद २०१)

३. सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनों पन ऐसें हीं खोए केस भए सिर सेत॥
आखिनि अंध, स्रवन नहि सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगा-जल तजि पियत कूप-जल हरि तजि पूजत प्रेत॥
... ...
सूरदास कछु खरच न लागत, राम नाम मुख लेत॥ (सूरदास, सू.सा १।२९६, पृ ९७)
... ...

४. (क) गायो न गोपाल मन लायो न रसाल लीला सुनी
न सुबोधिनी न साधु संग पायो है।
सेव्यो नहि स्वाद करि घरी आधी घरी हरि
कबहु न कृष्ण नाम रसना रटायो है॥

में आकर नर जन्म पाया, और विषय-वासना में ही लगा रहा तो इस संसार में जन्म ही वृथा लिया। हरि की भक्ति नही की, जननी को बोझ डाल कर मारा ही। यह काया हरि के काम नही आई। भाव-भक्ति और हरि-यश जहा सुनाया जाता है, वहा जाते अलसाती है। लोभातुर हो कर काम के लिए उठ कर दौड़ती है। जहा हरि के चरण कमल हैं, वहा किसी तरह भी नही झुकती। श्याम के अग स्पर्श किए बिना मैं चारो ओर भटकता हू और भगवानका भजन करके मैंने विषय रूपी परम विष खाया है।[२] कितने दिन हरि-स्मरण के बिना खो दिए पर-निन्दा करते करते न जाने कितने जन्म बिता दिए।[3] यह जन्म 'ऊआबाई' करते ही बिता दिया। यदुपति के चरण-कमलों की वदना नही की, देखता ही रह गया।[४] दोनो में से एक भी तो न हुआ। न तो हरि का भजन किया और न गृह-सुख ही पाया। अब पछताने से क्या होता है, बहुत देर हो गई।[५] मन, तूने भक्ति का स्वाद नहीं

रसिक कहे बार बार लाजहू न आवे तोहि मनुष्य जन्म पाय
मूढ़ कहा तू कमायी है। (रसिक दास, की र., पृ ३७५)

(ख) गायो न गोपाल मन लायो न निवार लाज,
पायो न प्रसाद साधु मडली में जायके।
... ...
श्री नाथ जी को देख के छक्यो न छबीली
छवि सिघपोर पूर्यो नाहि शीशहु नवायके।
कहे हरिदास तोहि लाजहु न आई अज मानस।
जनम पाय के कमायो कहा आयके। (हरिदास, की र, पृ ३७५)

२ काया हरि के काम न आई।
भाव-भक्ति जहं हरि-जस सुनयित, तहा जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ, तहा सुनत उठि धाई।
चरन-कमल सुन्दर जह हरि के क्यौं हु न जाति नवाई॥
जब लगि स्याम-अंग नहि परसत, अंधे ज्यों भरमाई।
सूरदास भगवत-भजन तजि, विषय परम विष खाई॥
(सूरदास, सू सा. १।२९५, पृ ९७)

३ किते दिन हरि-सुमिरन बिन खोए।
पर निंदा रसना के रस करि, केतिक जनम बिगोए॥. . .. .
सूरदास, सू सा १।५२

४. जनम गवायौ ऊआबाई।
भजे न चरन-कमल जदुपति के रह्यौ बिलोकत छाई॥
(सूरदास, सू. सा. १।३२८, पृ १०८)

५ द्वै मैं एकौ तौ न भई।
ना हरि भज्यौ, न गृह सुख पायौ, वृथा बिहाइ गई॥
... ...
होत कहा अबके पछिताएँ बहुत बेर बितई। (सूरदास, सू. सा. १।२९९, पृ. ९८)

या। नदसुवन लाडले ब्रजराज को हृदय में नही धारण किया। स्त्री, पुत्र और सपत्ति मन भरमाता रहा। गिरिधर लाल के गुण और प्रेम का गान घडी भर भी नही किया। षयो और इद्रिय-परायणता में जन्म गवाया। हरिदास कहते हैं कि ओ मूढ ! अत समय में छताता है।[1] कृष्ण की कथा, कृष्ण के नाम और कृष्ण की भक्ति के विना दिन बीते जाते हैं। प्राणी क्यो जीते है जो कृष्ण की बात मुख से नही करते।[2] हरि ! हरि ! मैंने व्यर्थ में जीवन गवाया। मनुष्य का जन्म पाकर राधा-कृष्ण को नही भजा। जान सुनकर भी विप ाया। गोलोक का प्रेम-धन जो हरि नाम सकीर्त्तन है उसमें रति नही हुई। ससार-दावानल नित्यप्रति हृदय जलता है परतु उसे जुडाने का उपाय नही किया।[3] मैंने काच के भ्रम में ाणिक हार दिया, अब उसका शोक हो रहा है। सुख के लिए यह घर बाधा परतु दु:ख ही या। जलती आग देखकर भी पतग के समान उसमें स्वेच्छा से पड कर मरा।[4] जान सुन र भी मन कृष्ण-पद का भजन नही करता। पुन: पुन गर्भ की यत्रणा पाता है। जीव ार बार जन्म लेता है और बार बार मरता है। फिर भी भजन नही करता।[5]

. मन तें भक्ति स्वाद नाहीं पायो।

. ...

नंदसुवन ब्रजराज लाडिलो सो उर में नाहीं लायो।
सुतदारा सुपने की सपत्ति तिनके संग भरमायो॥
गिरिधर लाल रंगीले के गुन प्रेम घरी नहिं गायो॥
इद्रिय विषय परायण डोले मूरख जन्म गंवायो॥
कहे हरिदास, मूढ मति बौरे अंत समय पछतायो॥ (हरिदास, की. र., पृ २६०)

. कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन कृष्ण भक्ति बिन दिवस जात।
ते प्राणी काहे को जीवत नहिं मुख वदत कृष्ण की बात॥
(परमानंददास, रा क द्रु., भाग २, पृ १७०)

. हरि हरि विफले जनम गोयाइनुं।
मनुष्य-जनम पाञ, राधाकृष्ण ना भजिया, जानिया शुनिया विष खाइनुं।
गोलोकेर प्रेम धन, हरि नाम संकीर्त्तन, रति ना हइल केने ताय।
संसार-दावानले, निरवधि हिया ज्वले, जुडाइते ना कैलुं उपाय॥
(नरोत्तमदास, प. क त, पद २९८८)

. काचेर भरमे, माणिक हाराय्या, एखन हइछे शोक।
सुखेर लागिया, ए घर बांधिलुं, करिलुं दु:खेर तरे।
ज्वलंत आनल, देखिया पतंग, इच्छाये पुड़िया मरे॥ (अनंतदास, प क. त, पद २९९५)

. (क) जान्या शुन्या कृष्ण-पद ना करे भावना।
पुनः पुन पाय सेइ गर्भेर यंत्रणा॥
एक बार जनमये आर बार मरे।
तथापिओ हरि-पद भजन ना करे॥ (बलरामदास, प. क. त, पद २९९९)

(ख) दान लोचन, भावे अनुक्षण, मिछाइ जनम गेल।
हरि ना भजिलूं विषये मजिलुं, हृदये रहल शेल॥
(लोचनदास. प.क त, पद ३०४२)

भय प्रदर्शन—पश्चात्ताप मे भरा जीव अपने को बार बार प्रेरित करता है कि वह ससार से अलग होकर भगवान से प्रेम करे। यदि ऐसा न करेगा तो उसकी क्या दशा होगी। भक्त भयभीत होकर मन को डाट फटकार कर हरि की ओर उन्मुख करता है। भक्त कहता है कि तूने क्यो गोविंद का नाम भुला दिया। अब भी चेत और हरि का भजन कर, तेरे सिर के ऊपर भारी काल फिर रहा है। वे स्त्री, पुत्र और धन कुछ भी काम नही आएगें जिनके लिए तूने अपना सब कुछ नष्ट कर दिया है। सूरदास कहते हैं, "भगवान के भजन बिना पछता कर और आसू गिरा कर रह जाओगे। काल बली से तो सारा ससार कापता है, ब्रह्मा इत्यादि भी रोते हैं फिर मुझ अधम की कौन सी गति होगी जो उदर भर कर सो रहता है।[१] रे मन! तू विषयो में लगना छोड दे। तू सेमर का सुगा क्यो होता है, अत में कपट खुल ही जायगा। कनक और कामिनी को ग्रहण करता है, इससे हाथ में केवल पछताना रह जायगा। अभिमान त्याग कर राम कह, नही तो ज्वाला में जलना पडेगा। हरि के सुमरिन बिना जोगी के बदर के समान नाचना पडेगा।[२] गोपाल का भजन कर लो, नही तो काल व्याल तुम्हे ग्रसेगा। यदि तुम हरि का व्रत मन में नही लोगे, तो ऐसा कौन त्राता है जो कुठाव पर तुम्हारा हाथ पकडेगा।[३] अत समय के साथी तो घनश्याम ही है। माता-पिता, बधु-पुत्र सब तब तक के ही साथी हैं जब तक जिसका काम है। यह कोमल चाम भी तभी तक है, जब तक मास, रक्त और अस्थिया शरीर में हैं। यह ससार भी तभी तक सगा है जबतक इसका मतलब है। इतना जानते हुए भी मूर्ख मन इसी ससार में घर बनाए हुए है। सूरदास कहते हैं कि ससार का दु ख छोडकर वृन्दावन में निवास क्यो नही करता।[४]" ओ मूढ

---

१. किते दिन हरि-सुमिरन बिनु खोए।

काल बली तें सब जग कांप्यो, ब्रह्मादिक हू रोए॥
सूर अधम की कहो कौन गति, उदर भरे, परि सोए॥ (सूरदास, सू सा. १५३, पृ १८)

२. रे मन, छाडि विषय को रचिबो।
कत तू सुवा होत सेमर को, अतहिं कपट न बचिबो॥
अतर गहत कनक-कामिनि कों, हाथ रहैगो पचिबो॥
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबो॥
सत गुरु कह्यौ, कहौं तोसों हौं, राम-रतन धन सचिबो।
सूरदास-प्रभु-हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिबो॥
(सूरदास, सू सा १५९, पृ २०)

३. जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगो।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावं पकरैगो॥
(सूरदास, सू सा १७५, पृ २५)

४. अत के दिन कौं है घनस्याम।
माता-पिता-बधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौं काम॥
आमिष-रुधिर-अस्थि अग जौलौ तौलौं कोमल चाम।
तौ लगि यह ससार सगो है जौ लगि लेहि न नाम॥

मन, मेरी शिक्षा सुन। हरि विमुखता से कभी भी किसीने सुख नही पाया, यह तो तू समझ ले। बिना भगवान के भजे हुए विपत्ति नही छुटती। अत सब आशाओ का परित्याग करके राम का चेरा हो जा।[1] राम से प्रियतम की प्रीति भुलाकर जीवन व्यर्थ ही जाता है। जिस सुखको तू सुख मान रहा है, देख तू, उसमे कितना सुख है! मोह में फसा हुआ फटे आकाश को सीने में अर्थात असभव साधन में क्यो लगा हुआ है? प्रभु का सुयश गा कर अमृत का पान क्यो नही करता?[2] सुन मन! मै तुझ से बार बार हितकारी, प्रिय और पुनीत वचन कहता हू, उसे समझ कर सुगम पथ क्यो नही ग्रहण करता! विषयो को देख, ये क्या है! ये तो भार है जो कभी सिर पर, कभी कधे पर लिए फिरना है। इसे ठीक से समझ ले, व्यर्थ में सासत सहन करता है। सोच कर देख ले कि मृगजल मथ कर किसने घी पाया है। उसी प्रभु की शरण मे जा जिससे सब प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है।[3] हरि नाम लेने मे आलस्य क्यो करता है? काल शर-सधान किए फिरता है, वह बेर-कुबेर कुछ नही समझता, सर्वदा कधे पर चढा रहता है। हीरे-जवाहर होने से और हाथी बधे रहने से क्या होता है! जब वह (काल) आता है तब कुछ वश नही चलता।[4] रे मन! नदनदन के अभय दाता चरणारविंदो का भजन कर। इस धन, यौवन, पुत्र और परिजन किसी का भी विश्वास नही है। कमल-पत्र पर के जल-बिंदु के समान यह जीवन ढलमल है। हरि-पदो का भजन नित्यप्रति कर। सोच कर देख कि और कोई गति ही नही है। धन, जन, पुत्र आदि अपने कोई नही हैं, इसलिए हरि-नाम को सार कर ले। उनकी लीला का गान कर ले और उसी में मत्त हो जा, उन चरणो

इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीं धाम।
छांड़ि न करत सूर स ग भव-डर वृन्दावन सों ठाम॥
(सूरदास, सू. सा. ११७६, पृ २५)

१. सुनु मन मूढ सिखावन मेरो।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सवेरो॥
... .
छूटै न विपति भजे बिनु रघुपति, स्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छांडि करि होहि राम कर चेरो॥
(तुलसीदास, वि प, पद ८७)

२ वि. प, पद १३२

३. वि प, पद १३३

४. हरि के नाम को आलस कत करत है रे, काल फिरत सर सांधे।
बेर कुबेर न जानत चढ़्यौ रहत है कांधे॥
हीरा बहुत जवाहर सांचे कहा भयो हस्ती दर बांधे।
कहे हरिदास महल में बनिता बनि ठाडी भई,
एकौ न चलत जब आवत अंध की आंधे॥
(हरिदास, रा. क. द्रु, भाग १, पृ. २०७)

के धन को पाकर तू कृतार्थ हो जायगा।[1] मेरा-मेरा करके रात दिन मरता है, यम-दूत भी रग देखते हैं। सुन्दर नगरों में एव प्रति घर में, यम का स्थान है। किसी भी दड, दिवस या वर्ष में आकर वह 'हन' देगा। दारा, पुत्र, वधू सब नीम के समान तीते हैं। मुख भर हरि नही कहेगा तो कैसे तरेगा।[2] ओ मन! तू क्यो गर्व करता है? इस भवसागर से तैरने के लिए हरि-नाम को सार कर। तू इस अनित्य देह को धारण किए है। अपना अपना करके मरता है। पीछे से शमन हो या न हो, इसका भय है। मेरे प्राण रात दिन रोते है। पीछे मे व्रज-प्राप्ति नही होगी।[3] सत-समागम छोड कर तू असतो का सग करता है। तू हरि विमुखो का सग छोड दे, जिसके सग से कुमति उपजती है और भजन में भग पडता है। वे हरि-विमुख जन सर्वदा असत् पथ की ओर ले जाते है और कामिनी का सग करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। यम के दूत दूर से खडे रग देखा करते हैं। अत उस हरि-नाम का जो परम मधु का

---

१ (क) भजहु रे मन, नद नदन, अभय चरणारविंद रे।

•

ए धन जौवन, पुत्र परिजन, इथे कि आछे परतीत रे।
कमल-दल-जल, जीवन ढलमल, भजहु हरि-पद नीत रे॥

(गोविंददास, प क त, पद ३०३२)

(ख) भज मन नद-कुमार।
भाविया देखह भाइ गति नाहि आर॥
धन जन पुत्र आदि केवा आपनार।
अतये करह मन हरि-नाम सार॥

• •

तांर लीला-नाम गाने सदा हओ मत्त।
से चरण-धन पावे हइबे कृतार्थ॥

(आत्माराम, प क. त., पद ३०३३)

२ वद वद हरि, छद ना करिह, विपदे वेढल देश।
मोर मोर करि, रात्रि दिने मरि. यम-दूते देखे रग॥
सुन्दर नगरे, प्रति घरे घरे, विषम जमेर थाना।
दड जे दिवस, वत्सर गणिछे, कोन दिने दिबे हाना॥
दारा पुत्र वधू, यतन करिछ, सकलि निमेर तिता।
मरण-समये, हाते गले बांधि, मुखे ज्वालि दिबे चिता॥
वदन भरिया, हरि ना वलिला, शमन तरिबे किसे॥

(लोचनदास, प क त, पद ३०३६)

३. अनित्य ए देह धरि, आपन आपन करि मरि, पाछे आछे शमनेर भय।
नरोत्तम दास मने, प्राण कांदे रात्रि दिने, पाछे व्रज-प्राप्ति नाहि हय॥

(नरोत्तमदास, प क. त., पद ३०१९)

सार है पान कर। तू हरि के चरण-कमलो में भृग के समान मत्त रह।[1]

उद्धार की प्रार्थना—भक्त इस प्रकार अपने मन को समझा बुझा कर उसे भगवान की ओर प्रेरित करता है और भगवान से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करता है। इस असीम दुर्गति मे पड़े हुए जीव का उद्धार एकमात्र भगवान से ही सभव है। भक्त कहता है कि नाथ! अव की मुझे उवार लो। मै ससार-सागर में मग्न हू, तुम कृपा-सिधु हो। इस भवसागर का जल जो है वह तो अत्यत गभीर माया है और उसमें लोभ की लहरें और तरगें उठ रही हैं। अनग रूपी ग्राह पकड कर अगाध जल मे लिए जाता है। इन्द्रिया-रूपी मछली शरीर को काटे लेती हैं और पाप की गठरी शिर पर है। मोह-रूपी सिवार में उलझ कर पैर इधर उधर भी नही होने पाता। क्रोध, दभ, गुमान और तृष्णा की वायु झकझोरती है। स्त्री-पुत्र जो है वे नाम-नौका की ओर नही देखने देते। हे करुणामय, सुनो! मै थक कर वेहाल हो गया हू। मुझे हाथ पकड कर इस भवसागर से निकाल लो।[2] नाथ! अव मुझे शरण में रख लो। अहभाव में पड कर मैंने तुम्हें भुला दिया। विना तुम्हारी आराधना के कर्म, धर्म, तीर्थ सव अकारथ हो गए। अभय दान देकर मेरे शीश पर हाथ रखो।[3] अव तुम मुझ डूवते हुए को क्यो नही उवारते? दीन वधु,

१. (क) तेज मन हरि-विमुखनके सग।
जाको सर्गाहि कुमति उपजर्ताहि, भजनहि पडत विभंग॥
सतत असत-पय लेइ जो जायत, उपजत कामिनि-संग॥
शमन-दूत परमायु परीखत, दूर्राहि नेहारत रंग।
अतये से हरि-नाम सार परम मधु, पान करहु छोड़ि ढंग।
कह माधो हरि-चरण सरोरुहे, माति रहु जनु भृंग॥ (माधो, प. क. त., पद ३०३५)
(ख) तजौ मन, हरि-विमुखनि को संग।
जिनके सग कुमति उपजत है, परत भजन मे भृग॥ (सूरदास, सू. सा. १।३३२ पृ. ११०)

२. अव कै नाथ, मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अवुनिधि मे, कृपासिधु मुरारि।
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कौं, गहे ग्राह अनंग॥
मीन इन्द्री तर्नाहि काटत, मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार॥
क्रोध-दंभ-गुमान-तृष्ना, पवन अति झकझोर।
नर्हि चितवन देत सुत-तिय, नाम नौका ओर॥
थक्यौ वीच विहाल, विह्वल, सुनो करुनामूल।
स्याम भुज गहि काढि लीजै, सूर ब्रज कै कूल॥ (सूरदास, सू सा. १।९९, पृ. ३१)

३. अव मोहि सरन राखियै नाथ।
कृपा धरी जो गुरुजन पठए, वह्यो जात गह्यो हाथ।
अहंभाव तै तुम विसराए इतनेहि छूट्यौ साथ॥
... ...

करुणानिधि स्वामी ! जन के दु खो को दूर करो। दुख-हरन मुरारि! मेरे ऊपर करुणा क्यो नही करते ? तुम तो त्रिविध तापो को दूर करने वाले हो। मैं इस कलिकाल जनित मल से युक्त हू। इस पर भी तुम सम्हाल नही करोगे, तो मैं जिऊगा किस तरह ! तुम तो सब प्रकार से सामर्थ्यवान् हो, मैं सब प्रकार से दीन हू, यह जान कर मेरे ऊपर करुणा करो।[1] हे रघुवीर गुसाईं ! मेरी यही विनती है और यही आशा और विश्वास भी है कि तुम जीव की (मेरी) जडताई हरोगे। मेरे टेढे कर्म मुझे यहा से ले जायेंगे, वहा मुझे तुम उसी प्रकार नही छोडोगे, जिस प्रकार कछुआ अपने अडे को।[2] हे अतर्यामी करुणाकर ! तुम जानते हो कि मैं अपराध-सिंधु हू। मैं इस भवव्याल से ग्रसित हू। हे गरुडगामी ! तुम्हारी शरण आया हू।[3] यद्यपि मेरे अवगुण अपार है, मैं इस ससार के ही योग्य हू परन्तु हे करुणानिधान ! अपने गुण विचार कर मेरे ऊपर दया करो।[4] मैं कहा जाऊ, किससे कहू, मेरा तो ठिकाना ही कही और नही है। मेरे दुर्दिन, दुर्दशा, दु ख और दूषण प्रतिदिन ही बढते जायेंगे, जब तक तुम मेरी ओर नही देखोगे।[5] राम तुम ! सुखधाम और श्रमभजन हो। मैं तीनो तापो से

कर्म, धर्म तीरथ बिनु राधन, ह्वै गए सकल अकाय।
अभय-दान दै, अपनो कर धरि, सूरदास के माय ॥ (सूरदास, सू सा ११२०८, पृ ६९)

१ कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि।
त्रिविध-ताप-सदेह-सोक सशय भयहारि ॥
यह कलिकाल-जनित मल मतिमद मलिनमन।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सभार, केहि भाति जियै जन ?
सब प्रकार समरथ प्रभो ! मैं सब विधि दीन।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करम-विहीन ॥ (तुलसीदास, वि प, पद १०९)

२ यह विनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरो जीव जड़ताईं ॥

. . . .

कुटिल करम लै जाय मोहिं जह जह अपनी बरिआईं।
तहं तह जिनि छिन छोह छाडिए कमठ-अड की नाईं ॥
(तुलसीदास, वि प, पद १०३)

३ मैं अपराध-सिंधु करुनाकर जानत अतरजामी ॥
तुलसिदास भवव्याल-ग्रसित तव सरन-उरग-रिपु-गामी ॥
(तुलसीदास, वि. प, पद ११७,)

४ जद्यपि मम अवगुन अपार ससार-जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन विचारि करुना-निधान करु दाया ॥
(तुलसीदास, वि प, पद ११८)

५ कहा जाउ कासों कहौं और ठौर न मेरो ?
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन ॥
जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबस बिभूषन ॥ (तुलसीदास, वि प, पद १४९)

अत्यत दु खित हू । यह मन में जान कर मुझे अपनी शरण मे रख लो ।[1] अहो दीन दयालु हरि ! मेरी ओर कब देखोगे ? मैं कलि-काल से ग्रसित हू । मै अत्यत विपरीत साधन करता रहता हू, तुम्हारे बिना कौन निकाले ! तुम्हारे बिना और कहू किससे ! मेरा दु ख हरो और मुझे निहाल करो ।[2] हे हरि ! अब मुझे भूलने से नही बनेगा । तुम विपत्ति-विदारक हो और सुख मे घने मित्र हो । अब मैं तुम्हारे अधीन हू, तुम बिना कौन सुने ? मेरी विनती सुनो, मै तुम्हारी शरण हू ।[3] हे हरि ! मैंने व्यर्थ ही अपना जन्म गवाया । हे प्रभु नदसुत, तुम्हारी हा हा खाता हू, वृषभान सुता के साथ इस बार मेरे ऊपर करुणा करो । मुझे अपने चरणो (के पास) से ठेलो मत । तुम्हारे बिना मेरा कौन है ![4] हे चैतन्य-निताई ! इस बार मेरे ऊपर करुणा करो । मेरे बराबर पापी ससार में और कोई नही है ।[5] ओ मेरे गौराग ! जिसे मैं अपना कह सकू, ऐसा मेरे कोई नही है । तुम मुझे अपना करके अपने चरणो में रख लो । हे गोविंद, गोकुल[6]चन्द्र, परम आनद कद ! तुम गोपियो के प्रिय हो । मेरा तुमसे यही निवेदन है कि तुम मुझे अपने प्रिय चरणो की सेवा

---

१. तुम सुखधाम राम स्रमभंजन, हौं अति दुखित त्रिविध स्रम पाई ।
यह जिय जानि दास तुलसी कह राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥
(तुलसीदास, वि. प., पद. २४२)

२. अहो हरि दीन के जु दयाल ।
कब देखोगे दिशा हमार ग्रसितहूं कलिकाल ॥
... ...
करत अति विपरीत साधन चलत चाल कुचाल ।
काढवेकु नाहि समरथ तुम बिना नद लाल ॥
तुम बिन और को सुं कहीये एही हमारो हाल ।
हंसो कहाजु हरो आरत रसिक करो निहाल ॥ (रसिकदास, की. र., पृ. ३७०)

३. अब हरि भूले ना ही बने ।
विपत विदारन तुम हो गिरिधर सुख में मित्र घने ॥
अब में अधीन कछु नाहीं जानत तुम बिन कौन सुने ।
इतनी विनती सुनो प्रिय मेरी, ब्रजपति तुम सरने ॥ (ब्रजपति, की र., पृ. २७३)

४. हरि हरि विफले जनम गोयाइलुं ।
... ...
हाहा, प्रभु-नंद सुत, वृषभानु-सुता, यूय, करुणा करह एइ बार ।
नरोत्तम दास कय, ना ठेलिह रागापाय, तोमा बिने के आछे आमार ॥
(नरोत्तमदास, प. क. त, पद २९८८)

५. एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई ।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ । (लोचनदास, प. क त, पद ३००३)

६. आरे मोर गौराग सोना ।
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना ॥
... .
राखिह चरण-तले करिया आपना ॥ (वासुदेव घोष, प. क त, पद ३००८)

में रख लो। मैं बडा अधम जन हू। मेरे ऊपर कृपा करो और अपना दास बनाकर वृन्दावन में रख लो। हे गोविंद, गोपीनाथ! कृपा करके अपने पास रख लो। बड़ी कठिनाई से मैं ब्रजपुर तक पहुच पाया था। माया ने फिर भवकूप मे डाल दिया है, तुम मेरा उद्धार करो और ब्रज भूमि में पहुचा दो।[1]

वदना—पदावली-साहित्य मे वदना अथवा विनती के पद सूरदास ने अपेक्षाकृत अधिक बनाए है। उन्होने वदना पदो में अपने इष्टदेव की सपूर्ण-रूप से स्तुति की है और उन्हे एकान्त रूप से भजा है। बगला वैष्णव कवि नरोत्तमदास ने भी प्रार्थना पद अधिक बनाए है। नरोत्तमदास के प्रार्थना पदो के सबध मे श्री जगद्बन्धु भद्र का मत उल्लेखनीय है। वे 'गौर-पद-तरगिणी' की भूमिका में उनका परिचय देते हुए कहते है कि "ठाकुर महाशयेर प्रार्थनार न्याय प्राणस्पर्शी, हृदयद्रवकारी, चित्त उन्मत्तकारी, प्रार्थनार जगतेर कोन भाषाय ओ कोन धर्म आछे कि ना सदेह।" अर्थात् ठाकुर महाशय के प्रार्थना पदो के समान प्राणस्पर्शी, हृदय को द्रवित करने वाली और चित्त उन्मत्त करने वाली प्रार्थना ससार की किसी भाषा, किसी धर्म में है, इसमें सदेह है।

भगवान के माहात्म्य को हृदय में धारण कर उनकी स्तुति करना, नतमस्तक हो विनय करना तथा उनको प्रणाम करना वदन-भक्ति है। वदना सबधी पदो में प्राय यही भावना पाई जाती है। भक्त कहता है कि मैं हरि के चरण कमलो की वन्दना करता हूँ। उन चरणो की कृपा से पगु पर्वत को लाघता है और अन्धे को सब कुछ दीखता है। बहरा सुनता और रक छत्र धारण करके चलता है। हे स्वामी! तुम करुणामय हो, मैं बार-बार चरणो की वन्दना करता हूँ।[2] मै जगदीश के उन चरण कमलो की वन्दना करता हूँ, जो गायो के पीछे दौडते

---

१ (क) प्राणेश्वर निवेदन एइ जन करे।
गोविन्द गोकुल चन्द्र, परम आनन्द-कन्द, गोपी-कुल-प्रिय-देह हरे।
तुया प्रिय पद-सेवा, एइ धन मोरे दिवा, तुमि प्रभु करुणार निधि॥
. . . . . .
मो बड अधम जने, कर कृपा-निरक्षणे, दास करि राख वृन्दावने॥
(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२१)

(ख) हे गोविन्द, गोपीनाथ, कृपा करि राख निज पथे।
. . .
अनेक दु:खेर परे, लैयाछिला व्रज-पुरे, कृपा-डोर गलाय बाधिया।
दैव-माया-बलात्कारे, खसाइया सेइ डोरे, भव कूपे दिले फेलाइया॥
पुन जदि कृपा करि, ए जनार केशे धरि, टानिया तोलह व्रज-भूमे॥
(नरोत्तमदास, प. क. त, पद ३०२३)

२ चरन कमल बन्दौं हरि-राइ।
जाकी कृपा पगु गिरि लघै, अन्धे कौ सब कछु दरसाइ॥
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रक चलै सिर छत्र धराइ॥

थे। जिन धूल से भरे पदों को गोपियों ने हृदय से लगा रक्खा है, और शम्भु एवं चतुरानन ने हृदय-कमल मे स्थिर कर रक्खा है। जो पद-कमल रमा के हृदय के भूषण हैं और जो तीन लोक-पावनकर्त्ता है, उन चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ।[1] मैं करुणानिधान रघुपति की वन्दना करता हूँ जिनकी कृपा मे संसारी भेद-बुद्धि छूट जाय। उनके चरण-कमल का ब्रह्मा और महेश सेवन करते हैं। तीन लोको के तिलक गुणधाम राम शांति के धाम है।[2] हे राजीवलोचन राम, आप जानकी के जीवन, संसार के जीवन, और संसार के हितकारक है। संसार के पिता, माता, गुरु, हितू और मित्र है, सबके ऊपर कृपालु हैं, किसी पर भी टेढ़े नहीं है। आप दुःख दूर करने वाले, अतुल दानी, भक्त प्रतिपाल, कृपालु और पतित पावन है। समस्त संसार मे वंदित, एवं समस्त देव सेवित हैं।[3] माधव का नाम ही मंगलमय है। उनका मुख और हाथ

सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार वन्दौं तिहिं पाइ ॥
(सूरदास, सू सा १।१, पृ. १)

१. (क) चरन कमल वन्दौं जगदीस जे गोधन संग धाए।
जे पद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए ॥
... ...
जे पद कमल शम्भु चतुरानन हृदै कमल अन्तर राखे।
जे पद कमल रमा उर भूषन वेद भागवत मुनि भाखे ॥
जे पद कमल लोक त्रै पावन बलिराजा के पीठ धरे।
सो पद कमल दास परमानन्द गावत प्रेम पीयूष भरे ॥
(परमानन्द, अष्ट. व. स, पृ. ५८७)

(ख) वन्दौं चरन-सरोज तिहारे।
सुन्दर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रानपियारे।
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु सुता उर ते नहिं टारे ॥
... ...
सूरदास तेई पद-पंकज, त्रिविध-ताप-दुख-हरन हमारे ॥
(सूरदास, सू. सा, १।९४, पृ ३०)

२ वन्दौं रघुपति करुनानिधान।
जाते छूटै भव भेद ज्ञान।
रघुबंस-कुमुद सुख-प्रद निसेस।
सेवित पदपंकज अज महेस ॥
... ...
त्रैलोक्य तिलक गुनगहन राम।
कह तुलसिदास विश्राम धाम ॥ (तुलसीदास, वि प, पद ६४)

३ जानकी-जीवन, जगजीवन, जगत हित,
जगदीस, रघुनाथ, राजीवलोचन राम। (तुलसीदास, वि. प, पद ७७)

सब मगलमय है। भक्तो का ससार सदा मगलमय रहता है। वसुदेव के कुमार मगल शरीर वाले है, उनका दर्शन, पूजन और भजन सब मगलमय है।[1] हे गोविन्द हरे! आपही कालीय मर्दन, कस निसूदन, देवकीनन्दन, राम है। आप मत्स्य, कच्छ, शूकर, नरहरि, वामन, भृगुपति, बुद्ध, कल्कि इत्यादि रूपो मे अवतरित होते है। आप कसारि जनार्दन देव है। आप दैत्य-दलन-कर्त्ता, केशव, माधव, यादव, यदुपति सब कुछ है। आप गोकुल के चन्द्र हैं, आपका वाहन गरुड है और आप गज का दुख मोचन करने वाले मुरारि, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, प्रभु और परब्रह्म है। हे देव, देवकी-सुत! दुखी पर दया करके दुर्मति की रक्षा करो।[2] भगवान का यश गाकर भक्तो ने उनकी जय जयकार की है और उनके वेष,

---

१. मगल माधव नाम उचार।
मगल वदन कमल कर वदन मगल मगल जन को सदा ससार॥
देखत मगल पूजत मगल गावत मगल चरित उदार।
मगल श्रवण कथा रस मगल, मगल तनु वसुदेव कुमार॥
(परमानददास, रा क द्रु, भाग २, पृ ७१)

२ (क) हरे हरे गोविंद हरे।
कालिय मर्दन, कस निसूदन, देवकि नदन राम हरे।
मत्स्य कच्छवर, शूकर नरहरि, वामन भृगुपति रक्ष कुलारे।
श्री वल बौद्ध, कल्कि नारायण, देव जनार्दन श्री कसारे॥
केशव माधव, यादव यदुपति, दैत्य-दलन दुख-भजन शौरे।
गोलक-गोकुल-चद्र गदाधर, गरुड-ध्वज गज-मोचन मुरारे॥
श्री पुरुषोत्तम, परमेश्वर प्रभु, परम ब्रह्म परमेष्ठि अधारे।
दुखिते दया कुरु, देव देवकिसुत, दुर्म्मति परमानद परिहारे॥
(परमानद सेन, प क त, पद २९७४)

(ख) कृष्ण कृष्ण कमलेश कृपामय, केशि-मथन कसारि।
केशव कालि-दमन करुणामय, कालिन्दि-कूल-विहारी॥
गोपी-नाथ गोपीपति-नदन, गोविंद गिरि-वर-धारी।
गोकुल-चन्द्र गोपाल गहन, वर-गोपीगण-मन-हारी॥
घन-तनु-सुन्दर घोर तिमिर हर, घोषित-जश घनश्याम।
चम्पक-गोरि-चीत-हर चचल, चतुर चतुर्भुज नाम।
चैद्योद्धारी चक्रि चानूर हर, चक्र-पाणि चित-चोर॥
श्रीपति श्रीधर, श्री वत्स-लाच्छन श्री मुख-चन्द्र चकोर॥
जग-जीवन जगन्नाथ जनार्दन, जदुपति जलधर-श्याम।
जशोदा-नदन जगत्-दुर्लभ, घन-जलद-जलद रुचि-धाम॥
अच्युतोपेन्द्र-अधोक्षज-अतिवल-अजिताद्भुत-अवतारी।
अमल-कमल-आंखि अखिल-भुवन-पति अनुपम-अतनु-विहारी॥

मुरली इत्यादि की भी वन्दना की है।[1]

आश्वासन—भगवान की वन्दना कर लेने के वाद भक्त को एक प्रकार का विश्वास सा हो जाता है। वह अपने दु खी, श्रात और विकल मन को आश्वासन देता है कि उसे अब कोई डर नही है। उसके इष्टदेव सर्वशक्तिमान और दयालु है। वे भक्त का दु ख अवश्य दूर करेंगे। गोपाल का किया हुआ ही सब होता है। यदि कोई अन्य व्यक्ति समस्त कृतित्व अपने पुरुषार्थ से हुआ मानता है, तो वह व्यर्थ अभिमान करता है। साधन, मंत्र, उद्यम, वल ये सब व्यर्थ है। जिसके राम धनी हैं, उसे कौन सी कमी है। वे तो इच्छाओं के स्वामी हैं, मनोरथ पूर्ण करने वाले है, सुखनिधान है।[2] भक्त को अत्यत आनन्द है। अर्थ, धर्म इत्यादि सब कुछ

त्रिभुवन-तिलक त्रिताप-विमोचन, तनु-जित-तरुण-तमाल।
दैत्य-दलन दामोदर देवकि-नदन दीनदयाल॥
नंद-नंदन नयनानद-नागर निति नव-नीरद-काति।
पीताम्वर परमानद प्रेमद-पुरुषोत्तम पद नख विधुपाति॥
वंशी-वदन वनमालि वलानुज, भुवन-मोहन भुव-भव-भय-नाश॥
मनहर मदनमोहन मधु-सूदन गाओत गोकुल दास॥

(गोकुलदास, प. क. त., पद २९७५)

(ग) नंद-नदन जगत-वंदन, श्रीकृष्णभानु-नदिनी।
आगम जाको पार ना पाओये, सुर-मुनिगण वदिनी॥

(माधो, प क. त., पद २९६८)

१. (क) जय राधे कृष्ण गोविन्द।
मधुर सुगोकुल नंद छवीले, श्री वृ दावनचन्द॥
मुरली-धर मधुसूदन माधव, गोपीनाथ मुकुद।
केलि-कला-निधि कुज-विहारी, गिरि-धर आनंद-कद॥
व्रज-नागर व्रज-राजके नंदन, व्रज-जन नयनानंद॥

(गोपालदास, प. क. त, पद २९६७)

(ख) जयति जयति श्री हरिदासवर्य धरने,
वारि वृष्टि निवारि घोष आरति टार, देव पति अभिमान भग करने।
जयति पट पीत, दामिनि रुचिर वर, मृदुल अग सावल सजल जलद वरने।

(कुभनदास, अष्ट च सं, पृ. ६५३)

२. (क) करी गोपाल की सब होइ।
जो अपनो पुरुषारथ मानत, अति झूठो है सोइ।
साधन मंत्र, जंत्र, उद्यम, वल, ये सब डारौ धोइ॥

(सूरदास, सू. सा. १।२६२, पृ. ८४)

(ख) कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज धनी॥

(सूरदास, सू. सा. १।३९, पृ.१४)

उन्हे प्राप्त है। हरि के जन की ठकुराई बहुत अधिक है। वह निर्भीक होकर राज्य करता है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, समस्त सिद्धिया उसकी दासी होती है। उसे माया और काल कुछ भी नही व्यापता। श्यामसुन्दर की जो सेवा करता है, उसकी गति तो दीन कभी नही होती। जो भगवान की चरण-शरण लेता है, वह तो नींद भर कर सोता है। ओ मन, भली प्रकार गोपाल का भजन कर ले। उनका भजन करने पर कौन नही उबरता![1] मेरे अनेक पाप हैं, शारदा उनकी गणना करने बैठ जायें, तो भी अनेक युगो मे भी पार नही लगेगा, परन्तु भगवान पतितपावन है, मुझे यही भरोसा है।[2] सब प्रपच छोड कर भगवान के चरणकमलो में शीश झुकाओ और अभय हो जाओ। उन्होंने अनेक खल अपनाए है। यदि कृपालु रघुपति की दया बनी रहे, तो और का वैर क्या कर सकता है! भक्त का बाल बाका भी नही हो सकता, चाहे कोई कोटि उपाय कर डाले। रघुवीर के बाहुबल से सर्वदा अभय मिलता है, कोई किसी से नही डरता।[3] राधा-कृष्ण के चरणो मे तनमन लगा रहे और वासना दूर रहे तो भक्त को

(ग) हरि के जन की अति ठकुराई।

माया, काल कछू नहि व्यापै, यह रस-रीति जो जानै।

(सूरदास, सू सा. १४०, पृ १४)

१. (क) माधो जू, मन माया वस कीन्हो।

सूर स्यामसुन्दर जो सेवै, क्यों होवै गति दीन।

(सूरदास, सू सा १४६, पृ १६)

(ख) ईहि राजस को को न विगोयो?

सूरदास जो चरन-सरन रह्यो, सो जन निपट नींद भरि सोयो॥

(सूरदास, सू सा १५४, पृ. १८)

(ग) नीकें गाइ गुपालहि मन रे।

गाए सूर कौन नहि उबर्यो, हरि परिपालन पन रे!

(सूरदास, सू सा, १६६, पृ २२)

२ (क) मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहि पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै॥

(तुलसीदास, वि प, पद ९२)

(ख) तुलसिदास परिहरि प्रपच सब नाउ राम पद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥

(तुलसीदास, वि प, पद ८४)

३ जोपै कृपा रघुपति, कृपालु की बैर और के कहा सरै?
होइ न बाको बार भगत को, जो कोउ कोटि उपाय करै॥
तुलसिदास रघुवीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरे। (तुलसीदास, वि प., पद १३७)

कोई भय नही है क्योकि उनने तन-मन उन्हे सौप दिया है।[1] इस प्रकार इष्ट देव की शक्ति मे विश्वास रख कर भक्त मन को आश्वासन देते है। हिन्दी वैष्णव साहित्य मे इस प्रकार के पद अधिक है और वगाली मे अपेक्षाकृत कम।

मनोराज्य—मन को इस प्रकार आश्वस्त करके भक्तगण स्वस्थ हो जाते है। अब वे मन मे अपने जीवन के लिए सुन्दर कल्पनाये करते है। भगवान के अपना लेने पर वे क्या करेंगे, कैसे रहेगे, कहा रहेगे, इन सबकी अपनी इच्छानुकल कामना करते हैं, और अपना मत स्थिर करते है। वगाली भक्त मुख्यतया वृन्दावन में जाकर रहने की कामना करते है। दूसरी कामना जो कुछ बगाली भक्त करते हैं, वह सखी-भाव से कृष्ण-राधा की सेवा करना है। वे कहते हैं कि हे हरि! ऐसी दशा कब होगी जब इस भव-ससार को छोड कर व्रजभूमि को जायेंगे। सुखमय वृन्दावन का कब दर्शन पायेगे? वहा की धूल को कब शरीर मे लगायेगे? कब यमुनाके तीर पर जाकर अत्यत प्रसन्न होकर पडे रहेगे? कब गोवर्द्धन पर्वत देखेंगे और कब राधा-कुण्ड पर निवास करेगे? वही पर भ्रमण करते करते देह का पात कब होगा?[2] वहा के कृष्ण के विहार-स्थल देखेगे। उस वृन्दावन को वे अपना घर बनाने को वे अन्य सब कुछ

---

१. राधा-कृष्ण-दुहु पाय, तनु मन रहु ताय,
आर दूरे रहुक वासना।
नरोत्तम दास कय, आर मोर नाहि भय,
तनु मन सौंपिलुं आपना॥

(नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०२०)

२. (क) हरि हरि आर कि एमन दशा हब।
ए भव ससार तेजि, परम आनंदे मंजि, आर कबे व्रज-भूमे जाव।
सुखमय वृंदावन, कबे पाव दरशन, से धूल लागिबे कबे गाय॥
... ...
कबे जमुनार तीरे, परश करिब नीरे, कबे खाव कर-पुटे तुलि।
... ...
वशी-वट-छाया पाञा, परम आनद हैया, पडिया रहिव कबे ताय।
कबे गोवर्धन गिरि, देखिब नयान भरि, राधा-कुंडे कबे हबे वास॥
भ्रमिते भ्रमिते कबे, ए देह-पतन हबे, आशा करे नरोत्तमदास॥

(नरोत्तमदास, प क त, पद ३०४८)

(ख) हरि हरि आर कबे पालटिबे दशा।
ए सब करिया वामे, जाव वृंदावन-धामे, एइ मने करयाछि भरसा॥
... .
जमुनार जल जेन, अमृत समान हेन, कबे खाव उदर पूरिया।
राधा-कुंड-जले स्नान, करि कुतूहले नाम, श्याम-कुंडे रहिब पडिया॥
भ्रमिब दादश वने, रास-केलि जेइ स्थाने, प्रेमावेशे गडागडि दिया॥

(नरोत्तमदास, प. क. त, पद ३०४९)

छोडने पर उद्यत हैं। सब भोग-विलास त्याग कर वहा रहने की अदम्य भावना उनके मन में है। वे सुन्दर वस्त्र त्याग कर कोपीन धारण करके वहा जाने को तत्पर है। वे सोचते हैं कि शयन सुख देने वाले विचित्र पलग को त्याग कर ब्रज की भूमि में शरीर धूसरित करेंगे। षट् रस भोजन को त्याग कर ब्रज में मधुकरी माग कर खायेंगे। सुवर्ण की झारी का जल त्याग कर यमुना जल पियेंगे।[1] भक्त उस दिन को सुदिन बताते हैं जिस दिन वृन्दावन में जाकर दिवस का अन्त आने पर फल-मल खाकर उदासीन भाव से भ्रमते रहेंगे।[2] स्त्री, पुत्र, भोग इत्यादि दारुण जजाल सबसे विरक्त होकर शुद्ध भागवत वैष्णव जन का आश्रय लेकर कोपीन धारण करके ब्रजवासी हो जायेंगे और भिक्षा माग कर खायेंगे। ससार के समस्त सुखो के ऊपर आग डाल कर छोड देंगे। जातिकुल का समस्त अभिमान भी त्याग देंगे। हमारी यह आशा कब फलेगी ?[3] इसी प्रकार की भावना तुलसीदास ने चित्रकूट के सबध में की है। वे भी चित्रकूट जाकर उस भूमि का दर्शन करना चाहते है जो राम के चरणों से अकित है। वहा के वनो को जो रामचन्द्र के विहार के स्थल हैं, देखना चाहते हैं। सब पाखडो का नाश

---

१. (क) करंग कोपीन लैया, छिडा काया, गाय दिया, तेयागिब सकल विषय।
हरि-अनुराग हवे, ब्रजेर निकुजे कबे, जाइया करिब निजालय॥
(नरोत्तमदास, प. क त, पद ३०५०)

(ख) हरि हरि कबे हब वृदावन-वासी।
निरखिब नयाने युगल-रूप-राशि॥
तेजिया शयन-सुख विचित्र पालग।
कबे ब्रजेर धुलाये धूसर हबे अग।
षड्-रस-भोजन दूरे परिहरि।
कबे ब्रजे मागिया खाइब माधुकुरी॥
कनक झाडिर जल दूरे परिहरि।
कबे जमुनार जल खाब कर पूरि॥ (नरोत्तमदास, प. क. त., पद ३०५१)

२ हरि हरि कबे मोर हइबे सुदिन।
फल मूल वृदावने, खाबा दिवा-अवसाने, भूमिब हइया उदासीन।
(नरोत्तमदास, प क प, पद ३०५०)

३ हरि हरि आमार एमन कबे हबे।
विषय-दारुण-विष-जजाल छुटिबे॥
दारा-सुख-भोगे मुनि हइबे विरकत।
शरण लइब वैष्णव भागवत॥
करंग कोपलि हाते गलाय कांथा दिया।
माधुकुरी मागि खाब ब्रजवासी हैया॥
ससार-सुखे मुखे आनल ज्वालिया।
थुयु करिया कबे जाइब छाडिया।
जाति-कुल-अभिमान सकल छाडिब।
गोपालदासेर आशा कत दिवसे फलिब

(गोपालदास, प. क त, पद ३०५४)

करने वाले शैल-शृंग को देखने के लिए मनमे कहते है और पवित्र पयस्विनी का जल पीना चाहते है।[1] सूरदास भी एक पद में वृन्दावन में ही निवास करने की भावना व्यक्त करते है। वे कहते है कि अब तो मैने मन में यही सोच लिया है कि इस वृन्दावन को जो राधाकृष्ण की राजधानी है, नही छोड़ूगा। परमानन्द की इच्छा भी ब्रज मे निवास करने और यमुना-जल पीने की है, यही वरदान वे कृष्ण से मागते है।[2]

बगाली भक्तो का जो दूसरा मनोराज्य है, वह उनकी बडी प्रिय कल्पना ज्ञात होती है। उस प्रकार की भावना हिंदी विनय पदो में नही मिलती है। पद कल्पतरु में ये प्रार्थना पद "अथसेवनोचित लालसामयी प्रार्थना यथा" कर के दिए हुए है। प्राय अधिकाश पद नरोत्तमदास की रचना है। वे कहते है, "हे हरि! मेरा वह दिन भी होगा जब मैं दोनो (राधाकृष्ण) के अगो का स्पर्श करूगा, दोनो के अगो को देखूगा और दोनो की सेवा करूगा। मैं ललिता-विशाखा के सग दोनो की सुखपूर्वक सेवा करूगा। नाना प्रकार के फूलो से माला गूथ कर उनके गले में पहनाऊगा। स्वर्ण सम्पुट में करके कर्पूर और पान दोनो के लिए उपस्थित करूगा।[3] कालिन्दी के तट पर जो केलिकदम्ब के वन है, वहा रत्नजटित वेदी पर उन्हें बैठाऊगा। श्याम और गौरी के अग पर चोया-चदन लगाऊगा। चवर डुलाकर उनका मुखचन्द्र देखूगा।[4] फिर गोवर्धन गिरि के निर्जन स्थान में राधा-कृष्ण को शयन कराऊगा।[5] ललिता-विशाखा की आज्ञा से उनके चरणारविन्दो की

---

१. अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि, लोपित मगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु।
... ...
सैल सृंग भवभगहेतु लखु, दलन कपट-पाखड-दंभ-दलु।
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु।
(तुलसीदास, वि. प, पद २४)

२. (क) अब तो यहै बात मन मानी।
छाड़ौं नाहिं स्याम-स्यामा की बृंदावन रजधानी॥
(सूरदास, सू सा., १८७, पृ. २८)

(ख) यह मांगो यशोदानंद नंदन।
... ...
ब्रज बसिबो, जमुना जल पीऊं, श्री वल्लभकुल को दास यही पन।
(अष्ट. व स, पृ. ५८१, फुटनोट)

(ग) श्री यमुनाजी यह प्रसाद हो पाउं।
तिहारे निकट रहों निशवासर राम कृष्ण गुन गाउं॥
मज्जन करों विमल जल पावन चिंता कलह बहाउं॥
(परमानंददास, की र, पृ ८)

३ प.क त, पद ३०५९
४ प.क त, पद ३०६०
५. प क त, पद ३०६३

सेवा करूंगा।[१] हे हरि! मेरा वह सुदिन कब होगा, जब मैं केलि-कौतुक (राग) का सेवन करूंगा? दोनों (राधा-कृष्ण) को लेकर तथा ललिता-विशाखा इत्यादि सखियों सहित मंडली बनाऊंगा? राधा-कृष्ण एक दूसरे को पकड़ कर जो नृत्य करेंगे, उसे मैं देखूंगा?"[२] इस प्रकार की कल्पना करते करते भक्त स्वयं ही सखी-रूप में जन्म लेने की कल्पना करने लगा है। वह कहता है—"हे हरि! मेरी यह दशा कब होगी। मैं वृषभान की नगरी में कब किसी अहीर के घर में कन्या होकर जन्म लूंगा?[३] पुरुष की देह छोड़ कर प्रकृति का रूप होऊंगा? (कृष्ण के) चूड़ा को बांधूंगा और नवीन गुंजा से युक्त नाना प्रकार के फूलों की माला उन्हें पहनाऊंगा? सखियों के साथ उन्हें पीत वस्त्र पहनाऊंगा?[४] राधा को नीलाम्बर में सजाऊंगा और रत्नों को लाकर विचित्र वेणी बांध दूंगा और उसमें मालती फूल गूंथ दूंगा? उस रूप माधुरी को देखूं यही मन में अभिलाषा है।"[५] नरोत्तमदास राधा से प्रार्थना करते हैं, कि "मुझे अपनी सेवा में रखो। मैं तुम्हारी सखियों सहित तुम्हारी सेवा करूंगा। मैं समस्त शृंगार सामग्री लाकर ललिता को दूंगा। ललिता सखी की आज्ञा से तुम दोनों को बयार करूंगा और तुम्हारी सेज बिछाऊंगा। तुम दोनों के सो जाने पर मैं जागता रहूंगा।" बलरामदास ने भी यही अभिलाषायें प्रगट की हैं।[६] उस कुसुमित वृंदावन

---

१ प० क० त०, पद ३०६०

२ प० क० त०, पद ३०६२

३ हरि हरि आर कि एमन दशा हब।
कबे वृषभानु-पुरे, आहीर-गोपेर घरे, तनया हइया जनमिब।
(नरोत्तमदास, प० क० त०, पद ३०६५)

४ हरि हरि आर कि एमन दशा हब।
छाडिया पुरुष-देह प्रकृति हइब॥
टानिया बांधिब चूडा, नव-गुंजा ताहे बेड़ा,
नाना फुले गांथि दिब हार।
पीत-वसन अंगे, पराइब सखी संगे, वदने ताम्बुल दिब आर॥
दुहुं-रूप मनोहारी, देखिब नयान भरि, नीलाम्बरे राइके साजाइया।
नवरत्न जाद आनि, बांधिब विचित्र वेणी, ताहे फूल मालती गांथिया॥
सेना रूप-माधुरी, देखिब नयान भरि, एइ करि मने अभिलाष॥
(नरोत्तमदास, प० क० त०, पद ३०६६)

५ प० क० त०, पद संख्या ३०६७, ३०६८, ३०६९, ३०७०

६ जागिया कामिनि जामिनि-शेष।
जागब सखि सभे करब निदेश॥
ललिता विशाखा घुमायब सखि संगे।
सबहुं चरण सम्बाहब रंगे॥
हरि हरि कबहुं श्री चरण सम्बाई।
कनक-मंजरि मुख हेरब जागाई।

में जहा शिखिगण नृत्य करते है और कोकिला तथा भृग झकार करते है, मनोहर निकुज के पास आकर सखियो के साथ मनोहर गान करने की अभिलाषा नरोत्तमदास करते है।[1]

सूर, तुलसी आदि हिन्दी के वैष्णव कवियों के मनोराज्य की भावना कुछ दूसरे प्रकार की है। तुलसीदास कहते है, "मैं अब राम सीता के चरण त्याग कर कहीं नही जाऊगा। प्रभु के चरणो से विमुख हो कर अन्य कही भी सुख नही मिलता। तनु और मन को मैं यही शिक्षा दूंगा। कानो से और किसी की कथा नही सुनूगा और रसना से अन्य किसी का भी भजन नही करूगा और किसी की ओर नेत्र उठा कर नही देखूगा। केवल भगवान की ओर शिर झुकाऊगा। अपने नाथ से प्रेम और नाता कर के अन्य सब नाते और प्रेम दूर कर दूगा। मेरा समस्त भार अब से उसी पर होगा, जिसका मैं दास कहलाऊगा। कभी न कभी तो मैं इस प्रकार से रहूगा ही। श्री राम की कृपा से सतो का सा स्वभाव प्राप्त होगा। जो कुछ मिलेगा, उसी से सतोष करूगा, किसी से कुछ नही चाहूगा। मन-कर्म-वचन से निरतर परहित करने का नियम निबाहूगा। घमड त्याग कर मन को समदर्शी बनाकर दूसरो के गुण ही बखानूगा, अवगुण नही। देहजनित चिताओ का त्याग कर के समबुद्धि से दुःख और सुख को सहन करूगा। इस पथ पर रह कर अविचल हरि-भक्ति को प्राप्त करूगा।"[2] सूरदास कहते हैं, "भगवान! ऐसा कब करोगे कि मेरा चित्त निरन्तर तुम्हारे चरणो में रहे, रसना तुम्हारे रसाल चरित को गाती रहे। सजल नेत्र हो, प्रेम से तन पुलकित हो, गले मे आचल और हाथ मे माला हो।" सूरदास उस सरोवर मे जाना चाहते है जिसमे कमल बिना रवि के आए ही खिलते है, उज्ज्वल पख वाले हस शरीर मल कर नहाते है, अनगिने फल और मुक्ति रूपी मुक्ता चुन चुन कर खाते है और अत्यन्त प्रसन्न रहते है।[3] परमानददास उस देश को जाना चाहते है जहा नदनदन से भेट होगी। उनके मुख कमल को निरख कर वे

घूमल सखि गणे जागब शयने।
कर्पुर ताम्बुल देयब वदने॥
विरचिब सिंदुर काजर वेश।
वसन पिधायब बाधब केश॥
तनु अनुलेप चदन गध।
पुनहि परायब काचलि-बध।
आरति करब हेरब मुख-चंद।
टूटब चिरदिन विरहक धद॥
शयन-निकुजे गयाख आगोरि।
हेरब सखिगणे सानद भोरि।
बलराम हेरब दुहुं-मुख-चद।
भागय कब दिठि श्रवणक दंद॥ (बलराम, प क त, पद ३०७१)

१. प. क त, पद ३०७४.
२ वि प, पद १०४, १७२.
३. सू सा १।१८९, ३४०.

अपना विरह-ताप मिटायेंगे, उस मुख की रूप-सुधा को नेत्रपुट से पियेंगे, समस्त अग को स्पर्श कर सकेंगे, रास इत्यादि लीलाओं का सुख पायेंगे और भक्तो के झुड के साथ रस-निधि को देखेंगे।[1]

---

१ जाइये वह देश जहा नदनदन भेंटिये।
निरखिये मुख कमल काति विरह ताप भेंटिये॥
सुन्दर मुख रूप सुधा लोचन पुट पीजिये॥

•

नख शिख मृदु अग अग कोमल कर परसिये।
अरु अनन्य भाव सो भजि मन क्रम वच सरसिये।
रास हास भुव विलास लीला सुख पाइये।
भक्तन के यूथ सहित रस निधि अवगाहिये॥

(परमानददास, रा क द्रु, भाग २, पृ ७५)

विनय—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल सम्बन्धी

पीछे कई वार कहा जा चुका है कि चैतन्यदेव को गौडीय वैष्णव समाज मे वही पद प्राप्त है जो कृष्ण को। उन्हे गुरु या धर्म-सस्थापक के रूप में कोई नही देखता। उनके सबध की विनय-पदावली मे प्राय वह समस्त भावनाए पाई जाती है जो कृष्ण-विनय-पदावली मे। हिन्दी के विनय-पदावली-साहित्य मे वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ दोनो के ही सबध में ऐसे पद पाए जाते है जिनमे और चैतन्यदेव सबधी पदो में उक्तिसाम्य है। व्रज का वैष्णव समाज उन्हे तत्त्व रूपसे कृष्ण मानता हो ऐसा तो ज्ञात नही होता। अत वल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के सबध मे जो कुछ कहा गया है वह अनुयायी भक्तों का भावभरा उच्छ्वास है। नीचे इन तीनो से सबधित पदो का तुलनात्मक अध्ययन दिया जा रहा है।

वंदना—वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ और चैतन्यदेव के भक्तो ने इन तीनो की जो वदना की है, वह उन्ही के द्वारा की गई कृष्ण और राम की वदनाओ से भावना और भक्ति के उच्छ्वास में समान ही है। भक्त वल्लभ-विट्ठल से कहते है "हम तुम्हें नमस्कार करते है और तुम्हारी जय मनाते है। तुमने इस युग में अखड अवतार लेकर लीला की है और आसुरी जीवो की मोह से रक्षा की है। निगम हाथ जोड कर स्तुति करते है और नेति नेति कहते है। सनक, शुक और व्यास भी आपका पार नही पाते है। शेष, अज, रुद्र और तेंतीस कोटि देवता आपका ध्यान करते है और मुनिगण रात्रि दिन रटते है।[1] हम तुम्हारे चरणो का भजन करते है। तुम लोगो ने भव पतितो के उद्धार के लिए और ताप-मोह दूर करने के लिए अवतार लिया है।[2] तुम्हारे चरण-कमलो की हम जय मनाते है। तुम परमानद,

---

१. (क) नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
अखड अवतार जुगधार लीलाकरी आसुरी जीव सब मोह पामी॥
निगम करजोर के करत स्तुति सदा सनक शुक व्यास नहीं पारपामी।
शेष अज रुद्र सुर तेंतीस ध्यावत सदा रटत हे मुनि सकल दीवस जामी॥
(कृष्णदास, की र., पृ ३६५)

(ख) जयति चतुरानन स्तुति करत विमल जस ईश स्तुति करत स्वर्गवासी।
श्री वल्लभ तनय प्रगट भव तरन वर गिर शिखर तरनीजा तट निवासी॥
जयति नेति नेति निगम रटत देव गंधर्व सतत मुनि जन चाहत दुर आसी॥
(गोविंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४९)

२. (क) भजीए श्री वल्लभवर चरन।
सकल पतित उद्धारन कारन,
प्रकट कीयो अवतरन।
.. ..
आशरो करि रहे जेजन,
मिटे जनम और मरन। (हरिदास, की र., पृ. ३६९)

और साकार शरद-शशिमुख हो, एवं कमल समान नेत्र वाले हो।[1] तुमको हम नमस्कार करते हैं। तुम पुरुषोत्तम हो तुम लोगों ने भक्तों के लिए शरीर धारण किया है। तुम सकल गुणनिधान हो और सब तरह से समर्थ हो।"[2]

चैतन्यदेव की वंदना करते हुए उनके भक्त कहते हैं —"हे सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर! तुम्हारी जय हो। करुणासागर गौर चन्द्र! तुम्हारी जय हो। भक्तों के वचन सत्य करने वाले! तुम्हारी जय हो। महा अवतारी महाप्रभु, तुम्हारी जय हो।[3] उन विश्वम्भर के चरणों में मेरा नमस्कार है, जो नवघन जैसे हैं और पीताम्बर जिनका वस्त्र है। उन शची-नंदन के चरणों में मेरा नमस्कार है, शिखि-पुच्छ जैसे नव गुंजा जिनका भूषण है। गंगादास के उन शिष्य के चरणों में मेरा नमस्कार है जिनके हृदय पर वनमाला है और हाथ में दधि-ओदन है। जगन्नाथ के उन पुत्र के चरणों में मेरा नमस्कार है, जिनका रूप करोड़ों चन्द्रमा

(ख) भजो श्रीवल्लभसुत के चरणं।
नंदकुमार भजन सुखदायक पतितन पावन करण॥
(नंददास, की स, भाग बीजो, पृ १४९)

(ग) भज श्री विट्ठल विमल सुचरण।
ताप शोक भय मोह माया लपटो विपति सब टरन दुख दुरि हरण॥
(चतुर्भुजदास, की स, भाग बीजो, पृ १४८)।

१ (क) जय श्री वल्लभ चरन कमल शिर नाइये।
परम आनंद साकार शशी शरद मुख मधुर बानी भक्त जनन संग गाइये॥
(व्रजपति, की र., पृ ३६६)

(ख) जयति नाथ विट्ठल नवल चारु लोचन कमल
अमल रस ताहि को सर्वव्यापी। (हरिदास, की स., भाग बीजो, पृ १४८)

२ (क) श्रीमद् वल्लभ नमो नमो।
विमल बाहु जिन द्विज वपु धार्यो पुरुषोत्तम जय नमो नमो।
आगम अगम निगम सब जानत सब विधि समरथ नमो नमो॥
सकल कला संपूरण गुणनिधि आदि अंत जय नमो नमो॥
(कृष्णदास, की. र, पृ २८६)

(ख) श्री विट्ठल प्रभु नमो नमो॥
भक्त हेत प्रकटे पुरुषोत्तम गोपिनाथानुज नमो नमो॥
.. ..
प्रेम समुद्र सकल गुण पूरण, राज शिरोमणि नमो नमो॥
(भगवान, की स, भाग बीजो, पृ १४८)

३ जय जय सर्व प्राणनाथ विश्वम्भर।
जय जय गौरचन्द्र करुणासागर॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी।
जय जय महाप्रभु महाअवतारि॥ (वृंदावनदास, गौ. प. त, १।२।६४)

के समान है।[1] उन शची-जगन्नाथ नदन की जय हो, त्रिभुवन जिनके चरणो की वदना करता है।[2] कीर्त्तन-रसमय, आगम को भी अगोचर, केवल आनद की निधि, अखिल लोकमति, एव भक्तो के प्राणपति गौर की जय हो।[3] मेरे गौराग गोस्वामी! तुम्हारे विना तो दीन पर दया करने वाला कोई नही है।[4] तुम तो पतितो को दृढ कर उन्हे करुणापूर्ण दृष्टि से देखते हो और ससार से पार कर देते हो। भवभय-भजन और पाप का निवारण करने वाला तुम्हारा अवतार धन्य है।[5] गौराग चन्द्र के चरणो का भजन करो। इन तीनो लोको मे भी दया का ठाकुर और कोई भी नही है। गौराग पतित पावन है। स्वर्ण के घन है और करुणा के अवतार है। इस भव-पारावार मे वे हरि नाम रूपी मत्र मे पार कर देते है।[6]" वृन्दावनदास गौराग की वदना करते हुए कहते है—"हे आदि हेतु और सव के पिता! तुम्हारी जय हो। वेद धर्म

---

१. विश्वम्भर चरणे आमार नमस्कार ।
नवघन पीताम्बर वसन जांहार ॥
शचीर नंदनपाये मोर नमस्कार ।
नवगुंजा शिखि-पुच्छ भूषण जाहार ॥
गगादासशिष्यपाये मोर नमस्कार ।
वनमाला करे दधि ओदन जांहार ॥
जगन्नाथपुत्रपाये मोर नमस्कार ।
कोटि-चन्द्र जिनि रूप वदन जांहार ॥
(वृ दावनदास, गौ प त, १।२।६३)

२. जय जय जगन्नाथ शचीर नंदन ।
त्रिभुवने करे जार चरण वंदन ॥
(वासुदेवघोप, गौ प. त., १।२।३)

३. कीर्त्तन रसमय, आगम अगोचर, केवल आनंदकद ।
अखिल लोकगति, भकत प्राणपति, जय गौर नित्यानंद चद ॥
(रामानद, गौ. प त., १।२।३७)

४. आरे मोर आरे मोर गौराग गोसाञि ।
दीने दया तोमा विने करे नाइ ॥ (वल्लभदास, प. क त, ३००१)

५. हेरि पतित गण, करुणावलोकन, जगभरि करल अपार ।
भव-भय-भजन, दुरित-निवारण, धन्य श्रीचैतन्य अवतार ॥
(रामानद, गौ प त, १।२।३७)

६. भज गोराचादेर चरण ।
ए तिन भुवने भाइ, दयार ठाकुर नाइ, गोरा वड पतित पावन ॥
हेम जलद किय, प्रम सरोवर, करुणा सिधु अवतार ॥
. .. ..
भव तरिवारे हरि-नाम-मंत्र भेला करि आपनि गौरांग करे पार ।
(परमानद, गौ. प. त, १।२।४०)

और साव् जन के प्राण, मव के मूल स्थान , तुम्हारी जय हो । पतितपावन दीनबधु, तुम्हारी जय हो । तुम कृपा सिंधु और परम शरणस्थल हो । सर्व सत्यमय कलेवर धारी, तुम्हारी जय हो । इच्छामय महामहेश्वर तुम्हारी जय हो ।"[१]

२. **चैतन्य एव वल्लभ की महत्ता**—चैतन्य और वल्लभ की वदना कर चुकने पर उनके भक्तो को उनके महत्त्व का भी अनुभव होता है । वे केवल गुरुमात्र नही है, न केवल धर्मप्रचारक है, वे कृष्ण के, ब्रह्म के, अथवा राम के अवतार भी है । कही कही पर तो भक्तो ने उन्हे स्वय ही ब्रह्म, परमेश्वर आदि बताया है । इन सब भावनाओ की सक्षिप्त विवेचना यहा दी जा रही है ।

(क) **चैतन्य, वल्लभ एव विट्ठल ब्रह्म या ईश्वर या परमेश्वर है** —भक्तो ने कई बार इस बात को कहा है कि वल्लभ और चैतन्य ईश्वर है । वह ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम है, समस्त कला और गुण निधान है और उसने नदसुत के रूप में पहले भी जन्म लिया था, तब तो वह भू भार हरने आया था । अब वह भक्ति प्रचार कार्य के लिए आया है ।[२] वल्लभाचार्य के रूप में वह ब्रह्म अवतरित हुआ है जो पूर्ण ब्रह्म है, परमानद पुरुष है और सनातन है, एव सब को सुख देने वाला है ।[३] चैतन्यदेव के ब्रह्मत्व अथवा ईश्वरत्व के सबध में स्पष्ट कथन करने वाले पद कुछ कम है । प्राय अधिकाश उक्तिया उन्हें ईश्वर ब्रह्म मान कर

---

१. गौ प त., १।२।६५, ६६

२. (क) प्रकट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार ।
तबही प्रकट भये बसुदेव कें तुम हर्यो सकल भू भार ॥
(रामदास, की स, भाग बीजो, पृ २०७)

(ख) माधव मासे भर वैशाखे, श्री वल्लभ हरि जन्म लिया ।
श्री लक्ष्मण नदना, त्रिभुवन वदना, भक्ति मार्ग जिन प्रगट किया ॥
(गोपालदास, की. स, भाग बीजो, पृ २१०)

३ (क) श्री लक्ष्मण गृह बजत बधाई ।
पूरण ब्रह्म प्रगटे पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुख दाई ।
(नददास, की र, पृ २७१)

(ख) पुरुष परमानद पूरण भक्त हित वपु धारियो ।
नाम सुमरत भये पावन सकल खल कलि के जिया ॥
कृष्णदास प्रभु की गाय लीला मन मनोरथ कर लिया ॥
(कृष्णदास, की र, पृ. २७५)

(ग) सुखद स्वरूप श्री विट्ठलेश राय ।
वेद वदत पूरण पुरुषोत्तम श्री वल्लभ गृह प्रकटे आय ॥
(छीत स्वामी, की स, भाग बीजो, पृ १२२)

(घ) श्री वल्लभ गृह मगलचार ।
पूरण पुरुषोत्तम प्रकटे हैं श्री विट्ठल अवतार ॥
(सगुणदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२३)

उनकी वैसी वदना-मात्र तक सीमित है। कवि कहते है, "शचीनदन, जगन्नाथ है। त्रिभुवन उनकी चरण-वदना करता है।[1] वह ईश्वर जिसने सतयुग, त्रेता और द्वापर मे ध्यान, यज्ञ, पूजा इत्यादि का प्रकाश किया था और फिर गोकुल मे अवतरित हुआ था, अब गौर-हरि हो कर आया है।[2] उन शचीनदन की वदना करता हू, जिनका ध्यान योगी-यति करते है, देवी-देवता चरणो की वदना करते है और जो ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहलाते है।[3]" चैतन्य को सब का आदि हेतु, सब का जनक और सब का अत बता कर भी ब्रह्म होने की भावना बताई गई है।[4] वे स्वय ईश्वर है, परन्तु दैन्य भाव का प्रकाशन करके रोते है।[5] वे तो विष्णु है, महाविष्णु है, पद-प्रभु है। उनकी पद-नख-काति से ब्रह्माड की स्थिति है।[6]

गौर-चैतन्य और वल्लभ विष्णु है—चैतन्य और वल्लभाचार्य 'विष्णु' है इसका उल्लेख बहुत थोडे से पदो मे मिलता है। चैतन्य के विष्णुत्व के बारे में वृन्दावनदास कहते है कि "चैतन्यदेव क्षीरसिधु में शयन कर रहे थे, अद्वैत की प्रीति के कारण वे आए।[7] शिव विरचि जिन्हें ध्यान करके भी नही पाते, सहस्र मुखो से शेष जिनका गुण गाते है और लक्ष्मी जिसकी चरण वदना करती है वे अब नदियो में विलास करते है।[8] वल्लभ के रूप मे गरुड-

---

१. जय जय जगन्नाथ शचीर नदन।
त्रिभुवने करे जार चरण वदन॥
(वासुदेवघोष, गौ प, त, १।२।३)

२. सत्य त्रेता द्वापर, सत्ययुगेर ईश्वर, ध्यान यज्ञ पूजा प्रकाशिला।
सेइ वृदावन चाद, भरि नटवर छाद, से जुगे गोपीरे प्रेम दिला॥
सेजन गोकुलनाथ, कश केशी कैला पात, जारे कहे यशोदा कुमार।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौर हरि पातकीर करिते उद्धार।
(माधवदास, गौ प त, १।।२।२६)

३. ब्रह्म आत्म भगवान, जारे सर्व्वशास्त्र गान, देव-देवीर चरणवंदन।
योगी यति सदा ध्याय, तबु जारे नाहि पाय, वदो सेइ शचीर नदन॥
(गौ. प त, १।२।६१)

४. जय आदि हेतु जय जनक सवार (वृदावनदास, गौ. प. त., १।२।६५)

५. निदारुण दारुण ससार।
. . . . .
आपने ईश्वर हैया, दैन्य भाव प्रकाशिया रोदन करिया आर्त्तनादे॥
(नरहरिदास, गौ प त., १।३।९)

६. गौर गोविन्दगण, शुन हे रसिक जन, विष्णु, महाविष्णु पद पहुं।
जांर पदनखद्युति, परम ब्रह्मेर स्थिति, सुर-मुनि प्राणेर गण तुहुं॥
(वृदावनदास, गौ प त, १।३।११)

७. क्षीरनिधि-जलमाझे, आछिला शयन शेजे, नित्यानद गदाधर संगे।
अद्वैत पिरीति वशे, आइला कीर्त्तन रसे, हरि भकित विलाइते रगे॥
(वृंदावनदास, गौ प त, १।३।५२)

८. शिव विरिचि जारे ध्याने नाहि पाय।
सहस्र आनने शेष जार गुण गाय॥

गामी प्रगट हुए है। उनका उद्देश्य दीनो पर करुणा करने का है।"[3]

चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल कृष्ण हैं—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल सबधी पदो में भक्तो ने उन्हें कृष्ण भी बताया है। इस प्रकार के पदो की सख्या कुछ अधिक तो नही है परन्तु जो भी है वह नगण्य नही है। वल्लभ के लिए भक्तगण बार बार कहते हैं कि वे कृष्ण है। वल्लभ अवतार का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि "वे गोकुलपति हैं, फिर से गोकुल में प्रगट हुए है।[४] कमल दल के नेत्र वाले और मधुर वाणी वाले भक्तो के प्राणाधार, सब सुखदायक श्री गोकुल नाथ है।[५] पहले वे नदनदन कहलाते थे, अब वे द्विजवर के रूप में है। नदनदन जो है, श्री लक्ष्मण-सुत वे ही है। वे जगत्-वदन है, स्मरण करते ही तीनो ताप हरते है।[२]" कोई उन्हें कुछ कहे, परन्तु भक्तजन उन्हें कृष्ण मानने का ही निश्चय किए हुए है।[3] उन व्रजेश के गुणो को कौन कह सकता है? दीन हो कर चरणो में शीश नवाते है। उनकी शरण में तो जाने पर भाग्य का पार नही मिलता। उन आनद-निधि व्रजराज के चरणाम्बुज का स्मरण करके भव मे निस्तार मिल जाता है।[४]

जार पादपद्म लक्ष्मी करये सेवन।
अपरूप ऐवे नवद्वीपेर विलास।
हेरिया मुगध मेल वृदावन दास॥ (वृदावनदास, गौ प त, १।३।५३)

१ नमो श्रीवल्लभाधीश स्वामी।

. .

देख के दीन पर अतुल करुणाकरी,
भाग्यनिधि प्रकट भये गरुडागामी॥ (कृष्णदास, की. र, पृ. ३६५)

२ वरनों श्री वल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रकटे फिर गोकुल सकल विश्व आधार॥
(कुभनदास, की स, भाग बीजो, पृ २०६)

३ कमल दल नेना मधुरे बेना, भक्तन प्राण आधार वहा।
श्री गोकुलनाथा सकल सुख दाता, शोभा परम उदार वहा॥
(कृष्णदास, की र, पृ २७५)

४ गोविंद प्रभु नंदनदन, श्री लक्ष्मण सुत जगत वदन
सुमरत त्रय ताप हरत चरण रेणु पाउ। (गोविंद स्वामी, की र, पृ २८२)

५ कोउ कहे विप्र कोउ विविध पडित कहे,
कोउ कहे अश कोउ आत्मारामी।
स्वकीय जन एक निर्धार निश्चे कीये।
वस्तुत कृष्ण जो बचे वामी॥ (कृष्णदास, की र, पृ ३६५)

६ (क) कोन गुण कहि शके अखिल ब्रज ईश के,
दीन व्हे चरनतर शीश नामी।
शरन वल्लभ गही भाग्य को पार नहीं
भजो कृष्णदास प्रभु अतरजामी॥ (कृष्णदास, की र, पृ ३६५)

चैतन्यदेव के लिए भी भक्तो ने बहुत कुछ ऐसा ही कहा है। वे कहते है, "वे ही गोकुल नाथ जिन्होंने कस और केशी का नाश किया था और जो यशोदाकुमार कहलाते थे, नवद्वीप में आए है और वे गौर-हरि है।[1] व्रजेन्द्रनदन जो थे, वे ही शची-सुत हुए हैं।[2] नदनदन, गोपी-जन-वल्लभ, राधानायक, नागर श्याम शची-नदन है, नदिया के पुरन्दर है, और सुर-मुनिगण के मन मोहन है।"[3]

विट्ठल नाथ के लिए भी इसी प्रकार की उक्तिया मिलती है। वे कृष्ण है। पहले भी गोकुल में थे, अब भी है। वे पूर्ण ब्रह्म कृष्ण है। उनमें और कृष्ण मे कुछ अतर नही है।[4]

चैतन्य और वल्लभ अवतार है—कुछ पदो में ऐसी भी भावना मिलती है जहा

(ख) श्रीमद वृंदावनविधु प्रकटे आनद निधि व्रजराज।...
गोविंद प्रभु वल्लभपद अंबुज सुमरत भव निस्तार॥
(गोविंद स्वामी, की. स, भाग बीजो, पृ. २०८)

१. सेजन गोकुल नाथ, कंश केशी कैला पात, जारे कहे जशोदाकुमार।
नवद्वीपे अवतरि, सेइ हैल गौर हरि. . . .
(माधवदास, गौ प त, १।२।२६)

२. व्रजेन्द्र नंदन जेइ, शची सुत हैल सेइ. . .
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।१८)

३. जय नदनंदन, गोपीजन वल्लभ, राधानायक नागर श्याम।
सो शचीनदन, नदीया पुरदर, सुर-मुनि-गण मनोमोहन धाम॥
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।१)

४. (क) सदा व्रज ही में करत विहार।
तब कै गोप भेख वपु धार्यो अब द्विजवर अवतार॥
तब गोकुल में नंद सुवन अब वल्लभ राजकुमार॥
(चतुर्भुजदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४०)

(ख) तुमसे तुम ही वल्लभ नद।
. . . .
श्री गिरिधरन प्रकटित लक्ष्मणकुल पुरुषोत्तम व्रज चंद।
(माणिकचन्द, की. स., भाग बीजो, पृ. १४२)

(ग) जयति रुक्मिणी नाथ. . .
जयति सफल तीरथ फलित नाम स्मरण मात्र वास व्रज नित्य गोकुल विहारी।
नंददासनि नाथ पिता गिरिधर आदि प्रकट अवतार गिरिराजधारी॥
(नन्ददास, की. सं, भाग बीजो, पृ. १३९)

(घ) कलि में एक बडो आधार।
श्री वल्लभ गृह श्री विट्ठल प्रभु आन लियो अवतार॥
पूरण ब्रह्म श्री कृष्ण विराजत खेलत आंगन द्वार॥
(माधवदास, की. सं, भाग बीजो, पृ. १३६)

चैतन्यदेव और वल्लभ को अवतार, कृष्ण-अवतार, राम या ब्रह्म का अवतार भी बताया है। इन अवतारो के लेने का कारण और कृष्ण-अवतार मे भिन्नतायें भी बताई गयी हैं। भक्त गण कहते हैं कि "पुरुषोत्तम वल्लभ के रूप मे प्रकट हुए हैं। गोकुलपति फिर से गोकुल आए हैं। इन पूर्ण पुरुषोत्तम ने भक्तो के हित के लिए शरीर धारण किया है। उस पूर्ण ब्रह्म ने कलियुग मे केशव का अवतार लिया है।"[1] इस प्रकार वे ब्रह्म का अखड

---

१ (क) नमो श्री वल्लभधीश स्वामी।
अखड अवतार जुगवार लीला करी आसुरी जीव सब मोह पामी॥
(कृष्णदास, की र, पृ ३६५)

(ख) श्रीमद वल्लभ नमो नमो।
विमल बाहु जिन द्विज वपु धार्यो, पुरुषोत्तम जय नमो नमो॥
(कृष्णदास, की र, पृ २८६)

(ग) श्री वल्लभ सुखकारी। पुरुषोत्तम लीला अवतारी॥
काल अकाल ते न्यारे। रस निधि प्रेम भक्ति प्रतिपारे॥
(गोविंद स्वामी, की. र, पृ. २७२)

(घ) लग्न महूरत माधो मासे। शुभ दिन सत श्री वल्लभ प्रकाशे॥
पुरुषोत्तमदास अवतार मनोहर। उदयो कोटि किरन ले दिवाकर॥
(कृष्णदास, की स, भाग बीजो, पृ २१६)

(ङ) लक्ष्मण घर बाजत आज बधाई।
पूरण ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम श्री वल्लभ सुखदाई॥
(नन्ददास, भाग २, परिशिष्ट, पृ. ३७९)

(च) प्रकटे कृष्णानन द्विजरूप।
माधव मास कृष्ण एकादसी, आये अग्नि स्वरूप॥
(अज्ञात, की स, भाग बीजो, पृ. २०६)

(छ) बरनों श्रीवल्लभ अवतार।
गोकुल पति प्रकट फिर गोकुल सकल विश्व आधार॥
(कुभनदास, की. सं, भाग बीजो, पृ २०६)

(ज) जय श्रीवल्लभ वर अवतार।
प्रकट भये पूरण पुरुषोत्तम सकल श्रुतिन के सार।
तब ही प्रकट भये वसुदेव कें तुम हर्यो सकल भू भार॥
(रामदास, की. सं, भाग बीजो, पृ. २०७)

(झ) भये श्री वल्लभराय रघुपति श्रीयदुपति शामलघन।
(की. र., पृ. २७३)

(ञ) पुरुष परमानंद पूरण भक्तहित वपु धारियो। (की र., पृ २७५)

(ट) गोपालदास अनत लीला प्रकट श्री वल्लभ भया।
पूरण ब्रह्म सनातन माधो। कलि केशव अवतार वहा। (की र, पृ. २७४)

अवतार हैं।[1]

चैतन्यदेव के सबध में इसी प्रकार के कथन मिलते हैं। वे अवतार हैं, करुणा-अवतार हैं। ये वे प्रभु हैं जिनके चरणो की समाधि शकर और चतुरानन लगाते हैं। ब्रज भूमि को शून्य करके अब वे नदिया में आए हैं। द्वापर युग में श्याम नाम था, कलियुग मे चैतन्य नाम है। वैकुठ-नायक हरि द्विजकुलमें अवतीर्ण हुए हैं और उन्होने सकीर्त्तनका प्रचार किया है। कोई कहता है,—इन्होने पूर्व काल में रावण का वध किया था अर्थात् वे राम थे, वे जानकी-वल्लभ थे, नदलाल थे। चैतन्य अवतार हैं और ब्रह्म के अवतार है जिन्हे गौडीय वैष्णव समाज में भगवान कहते हैं। इस भावना का दर्शन उन पदो में होता है जिनमें चैतन्य को

---

१. (क) बोहोरि कृष्ण श्रीगोकुल प्रकटे श्रीविट्ठलनाथ हमारे।

. . . .

माणिकचंद प्रभु को शिव सोजत गावत वेद पुकारे॥

(माणिकचद, की. सं., भाग बीजो, पृ. ११६)

(ख) जय श्रीवल्लभ राज कुमार।

. . . .

छीत स्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रकट कृष्ण अवतार।

(छीतस्वामी, की. सं, भाग बीजो, पृ. ११७)

(ग) सुखद स्वरूप श्रीविट्ठलेश राय।
वेद वदत पूरण पुरुषोत्तम श्री वल्लभ गृह प्रकटे आय।

(छीतस्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२२)

(घ) प्रकटे श्रीविट्ठलेश लाल गोपाल।
कलियुग जीव उद्धारण कारण सत जनन प्रतिपाल॥
द्विज कुल मडन तिलक तैलंग श्रीवल्लभ कुल जो अति रसाल।
कुंभनदास प्रभु गोवर्धनधर नित्य उठ नेह करत ब्रजबाल॥

(कुंभनदास, की. सं, भाग बीजो, पृ. १३८)

(ङ) प्रकटे रसिक विट्ठल राय।
भक्तहित अवतार लियो बोहोरि ब्रज में आय।
शिव ब्रह्मादिक ध्यान धरत हैं निगम जाकों गाय॥

(की. सं, भाग बीजो, पृ १५३)

(च) चहुंयुग वेद वचन प्रतिपार्यो।
धर्म ग्लानि भई जब ही जब, तब तब तुम वपु धार्यो॥
सत्युग श्वेत वाराह रूप धर हिरण्याक्ष उर फार्यो॥
त्रेता रामरूप दशरथ गृह रावण कुल संहार्यो॥
द्वापर ब्रज यदुकुल तें राख्यो सुरपति पायन पार्यो॥

(माणिकचन्द, की. सं, भाग बीजो, पृ. ११६)

पूर्व काल मे कृष्ण, राम, शूकर, मत्स्य इत्यादि सब बताया है । गौराग भी अगट अवतार है।[1]

---

१ (क) कलि तिमिराकुल, अखिल लोक देखि, वदन चाद परकाश ।
लोचने प्रेम सुधारस रविखये, जगजनतापविनाश ।
गौर करुणा-सिंधु अवतार ॥
(गोविंददास, गौ. प. त., १।२।२०)

(ख) जा कर चरण समाधिये शकर, चतुरानन करु आश ।
सो पहु पतित कोरे करि कादये, कि कहव गोविन्ददास ।
(गोविंददास, गौ प. त, १।२।२१)

(ग) व्रज भूम करि शून्य, नदीयाय अवतीर्ण, एतेक तोमार चतुराल ।
दु ख दिया निरतर . . (नरहरि, गौ प. त., १।२।२८)

(घ) द्वापर जुगे ते श्याम, कलिते चैतन्य नाम, गर्गवाक्य भागवते लिखि ।
चिते करि अनुमान, श्याम हैल गौराग....(नरहरि,गौ प त, १।२।२९)

(ङ) वैकुठ-नायक हरि, द्विजकुले अवतरि, सकीर्तन करिला प्रचार ।
धन्य सुरधुनीतीरे, धन्य नवद्वीप पुरे सागोपाग करिला विहार ॥
(वृ दावनदास, गौ प त, १।२।३१)

(च) केह बले पूरवे रावण वधिला ।
गोलोकेर विभव लीला प्रकाश करिला ॥
(वासुदेव घोष, गौ प त, १।२।३)

(छ) त्रेताय धरिल तनु द्वापरेर वाशी ।
कलिजुगे दडधारी हइला सन्यासी ॥
(वलरामदास, गौ प त, १।२।४७)

(ज) जय जय जगन्नाथ शचीर नंदन ।
त्रिभुवने करे जार चरण वदन ॥
नीलाचले शख-चक्र-गदा-पद्मधर ।
नदीया नगरे दड-कमडलु-कर ॥
केह बले पूरवे रावण वधिला ।
गोलोकेर विभव लीला प्रकाश करिला ॥
श्री राधार भावे एवे गोरा अवतार । . .
(वासुदेव घोष, गौ. प. त, १।२।३)

(झ) श्री कृष्ण चैतन्य गोरा शचीर दुलाल ।
एइ जे पूरवे छिल गोकुलेर गोपाल ।
केह कहे जानकीवल्लभ छिल राम ।
केल बले नंदलाल नवघन श्याम ॥
(गोविंददास, गौ. प. त, १।२।१७)

चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल को कृष्ण , ब्रह्म, राम इत्यादि वता कर उनकी महत्ता का स्थापन आगे चल कर उसी प्रकार से किया गया है जिस प्रकार राम और कृष्ण का। वह उनकी शक्तिमत्ता, भक्त-वत्सलता, गुण-ग्राहकता और दयालुता में निहित है। उन दोनो के इन गुणो का गान किया गया है, यद्यपि इनकी शक्तिमत्ता अन्य किसी प्रकार की ही है। वे निशाचर-हता करके नही वताए गए है। उनकी शक्तिमत्ता तो अधकार में पडे हुए व्यक्तियो को ससार-सागर मे पार करने में निहित है। चैतन्य को अवश्य जगाई-मधाई का उद्धारकर्त्ता वताकर कृष्ण के कस-विनाश से समानता वताई गई है । उन सब भावनाओ से सबधित कुछ पद यहा दिए जा रहे है।[1]

(ज) जय जय सर्व प्राण नाथ विश्वम्भर। जय जय गौर चन्द्र करुणासागर ॥
जय जय भकत-वचन-सत्यकारी। जय जय महाप्रभु महा अवतारि ॥
....
तुमि विष्णु, तुमि कृष्ण, तुमि नारायण ।
तुमि मत्स्य, तुमि कूर्म तुमि सनातन ॥
तुमि से वराह प्रभु तुमि से वामन ।
तुमि कर जुगे जुगे देवेर पालन ॥
तुमि रक्ष-कुलहंता जानकी-जीवन ।
तुमि प्रभु वरदाता अहल्या-मोचन ॥
तुमि से प्रह्लाद लागि हैला अवतार ।
हिरण्य वधिया नरसिंह नाम जार ॥
(वृंदावनदास, गौ प. त., १।२।६४)

१. (क) श्रीवल्लभ चाहे सोई करे।
जो उनके पद दृढ़ करी पकरे महारस सिंधु भरे।
.... ।
श्री वल्लभ के पदरज भजके भव सागर ते तरे॥
(पद्मनाभ, की र., पृ. ३७३)

(ख) निताइं चैतन्य दोहें वड़ अवतार ।
ए मन दयाल दाता ना हइवे आर ॥
म्लेच्छ चंडाल निंदुक पाखण्डादि जत ।
करुणाय उद्धार करिला कत कत ॥
(कृष्णदास, प क त, पद २९९१)

(ग) अशेष पापेर पापी जगाइ माधाइ ।
ता सभारे उद्धारिला तोमरा दुटि भाइ ॥
(लोचनदास, प. क. त, पद ३००३)

(घ) पतित उद्धारणा कलिमल तारणा ।
श्री वल्लभ परम उदार यहां ।

रूप और सौंदर्य—चैतन्य और वल्लभ के रूप-सौंदर्य के वर्णन में कृष्ण के रूप और परिधान के वर्णन की ही झलक है। 'यदु' भणिता से युक्त जो पद 'पदकल्पतरु' में पाया जाता है, उसका साराश यहा दिया जा रहा है। उसमें चैतन्य के रूप का वर्णन है। "गौराग के रूप की छटा देखो। वह छटा हरिद्रा, हरिताल, स्वर्ण, कमल दल, अथवा स्थिर बिजली है। उनके कुचित कुतल राशि पर मालती और मल्लिका की वेणी है, भाल पर ऊर्ध्व तिलक है। नेत्र-

---

दीन दयाला परम कृपाला ।
सब जीवन को कियो उद्धार वहा ॥
उद्धार जीवन को कियो प्रभु कर कृपा करुणामया ॥
जात देख वहे कली में चित्त में उपजी दया ॥ (की र, पृ २७५)

(ङ) प्रकटे श्री वल्लभ सुखधाम।
श्री लक्ष्मण नन्दन दु ख निकन्दन भक्तन पूरण काम ॥
(विट्ठल गिरिधर, की स, भाग बीजो, पृ २६५)

(च) नमो श्री वल्लभाधीश स्वामी।
. . . .
देख के दीन पर अतुल करुणा करी भाग्य निधि प्रगट भये गरुडागामी ॥
(कृष्णदास, की र, पृ. ३६५)

(छ) हरि हरि बड दुख रहल मरमे।
. . . . . .
दीन हीन जत छिल, हरि नामे उद्धारिल, तार साक्षी जगाइ माधाइ।
. . . . .
एमन दयालु दाता, आर न हइबे कोथा, पाइया हेलाय हाराइलुं ॥
(गोविन्ददास, प क. त, पद २९८७)

(ज) के आछे एमन हेन, उद्धारे पतित जन, पर दु खे दु खित हइया ।
चिताय आकुल-मन, नरहरि अनुक्षण, प्रेम-सिन्धुर उद्देश ना पाइया ॥
(नरहरि, प. क. त, पद २९९४)

(झ) गौराग पतित-पावन तुया नाम ।
कलि-जीवे जत, आछिल कृत-पातकी, देओलि सबे निज ठाम ॥
(वल्लभदास, प. क त, पद ३००९)

(घ) देख देख अपरूप गौर चरित ।
सो गोकुलपति, अब परकाशल, पुन किये वामनरीत ।
निरखि प्रताप, प्रताप रुद्रबली, तनु मन सरवस देल ॥
जगाइ माधाइ आदि असुरगणे, चरण प्रवले निज केल ॥
(बलरामदास, गौ प. त, पद १।३।६६)

(ट) जे जन शरण आये ते तारे।
दीनदयाल प्रगट पुरुषोत्तम श्री विट्ठलनाथ लला रे।

वाण कान तक है, भ्रू तने हुए धनुप के समान है। उन्हे देख कर करोडो कामदेव मूर्छित हो जाते है। उनके हेम-वर्ण गड-स्थल पर श्रुति-मूल मे हिलते हुए कुडल दोलायमान है। मोती के समान दत-पंक्ति है। सिंह की सी उनकी गर्दन है और हाथी जैसे स्कंध है। कठ मे मणिहार है और दोनो हाथो मे स्वर्ण के अर्गल है। रक्त-कमल के समान करतल है। चन्द्र के समान नख झिलमिल करते है। उनके प्रशस्त हृदय पर मालती की माला है और सूक्ष्म यज्ञोपवीत है। नाभि सरोवर पर सर्प जैसी रोमावली है अथवा मनोहर काम दंड है। सिंह जैसी उनकी कटि में स्वर्ण की किंकणी है। स्वर्ण-रंभा जैसे उरु है और पदो में मंजीर है। वे पद-तल रक्त कमल के समान है और स्वर्ण चम्पक की कली जैसी उनकी उंगलिया है।"[1]

वल्लभ के रूप के लिए उनके भक्तगण भी इसी प्रकार का परंपरागत वर्णन करते है। श्री वल्लभ के सुन्दर विशाल नयन है, कमल जैसा रंग है। भुजा मृणाल जैसी है।[2] मुख चन्द्रमा के समान है।[3] नेत्र कमल के समान है। सौभाग्य-सूचक भाल शोभित है। भुजदंड प्रबल है। चरण-युगल कमल के समान है। नख संसार में प्रकाश फैलाने वाले है।

जितनी रवि छाया की कणिका तितने दोष हमारे ॥
तुमारे चरण प्रताप तेज तें तेऊ तत छिन टारे ॥
माला कंठ तिलक माथें धर शंख चक्र वपु धारे।
माणिक चंद प्रभु के गुण ऐसे महापतित निस्तारे ॥
(माणिकचंद, की. सं., भाग बीजो, पृ. १२०)

(ठ) प्रकट भये संतन हित कारण सकल कला वृंदावन चंद ॥
परम उदार कृपाल कृपानिधि रसिक शिरोमणि आनंद कंद।
कृष्णदास बल बल प्रताप की यशगावत मुनि नौतन छंद ॥
(कृष्णदास, की सं., भाग बीजो, पृ. १३२)

(ड) व्रज में श्री विट्ठलनाथ विराजें।
जिनको परम मनोहर श्री मुख देखत ही अघ भाजें ॥
जिनके पद प्रताप तेजतें सेवक जन सब गाजें।
छीतस्वामी गिरिधरन श्रीविट्ठल प्रगट भक्त हित काजें ॥
(छीत स्वामी, की. सं., भाग बीजो, पृ. १३४)

(ढ) श्री विट्ठलनाथ अनाथ के तारण।
श्रीवल्लभ गृह प्रकट रूप यह धर्यो भक्तहित कारण।
दीनबन्धु कृपासिन्धु सहजही भक्ति विस्तारण ॥
(चतुर्भुजदास, की. सं., भाग बीजो, पृ. १४७)

१ प. क. त., २४०८

२. की. र., पृ. २७२

३. मुख बिधु लावण्य अमृत इकटक पीवत नाही अघंये।
(रसिकदास, की. र., पृ. २७८)

युगल गडस्थलो पर इतनी आभा है कि करोडो सूर्य न्योछावर किए जा सकते हैं। मुखारविंद पर कुचित केश-भ्रमर शोभित हैं।[१]

वल्लभाचार्य के रूप-सौंदर्य के वर्णन-सबधी विनयपदो मे भी इसी प्रकार का वर्णन है। गौराग के रूप-वर्णन मे इस परम्परागत वर्णन के साथ कुछ अन्य प्रकार के वर्णन भी है। एक तो उनकी भाव-दशा का द्योतक सौंदर्य वर्णन और दूसरा नागरी भाव का वर्णन अर्थात् 'रमणी मोहन' गौराग का रूप वर्णन। यह वर्णन वल्लभ के सबध मे नही पाया जाता। भाव-दशा का वर्णन करने मे उनके छलछलाते नेत्र, मृदु हास्य, गद्गद् अतर इत्यादि का वर्णन है।[२] दूसरे प्रकार के वर्णन मे, वैसे तो गौर के सर्वांग का ही वर्णन है परन्तु अत में या बीच मे उन्हें रमणी-मोहन या कामदेव का कोडा कह दिया गया है। नीचे इसी प्रकार के पद दिए जा रहे हैं।[३] कुछ पद इस प्रकार के भी पाए जाते है, जिनमे गौर के रूप सौंदर्य

---

१. की स, भाग बीजो पृ २१३

२ चम्पक, शोण कुसुम, कनकाचल, जितल गौर-तनु-लावणी रे।
उन्नत गीम, सीम नाहि अनुभव, जग-मन-मोहन भाडनि रे।

•

विपुल पुलक कुल आकुल कलेवर, गर गर अन्तर प्रेम भरे।
लहु लहु हासनि गद गद भाषणि, कत मदाकिनी नयने झरे।
(गोविन्ददास, की प, पृ १३)

३ (क) मरमे लागिल गोरा ना जाय पासरा।
नयाने अजन हैया लागि रैल पारा॥
जलेर भितरे डुबि सेया देखि गोरा।
त्रिभुवनमय गोराचाद हैल पारा॥
तेजि वलि गोरारूप अमिया पायार।
डुबिल तरुणीर मन ना जाने सातार॥ (वासुदेव घोष, की प, पृ ९)

(ख) लाखवाण काचन जिनि।
प्रेमे अग ढर ढर, मुनि जाड निछनि॥
कि छार शरद कोटि शशी।
जगत करिल आलो गोरा-मुखेर हासि॥
भाड गजे मदन धानुकि।
कुलवती उनमत कैले वुटि आखि॥
मदन विजइ दोले माला।
इथे कि पराणे वाचे कामिनी अवला॥ (ज्ञानदास, की. प, पृ १२)

(ग) मलु मलु सइ ! देखिया गौर ठाम।
वधिते युवती, गढल कि विधि कामेर उपरे काम॥
चापा नागेश्वर, मल्लिका सुन्दर, विनोद केशेर साज।
ओ रूप देखिते, जुवती उमती, छाडल धैरज लाज॥
(बलरामदास, की प, पृ १६)

और प्रसाधन की कृष्ण से भिन्नता दिखाई देती है।[१]

दीनता प्रदर्शन और पश्चात्ताप—दीनता-प्रदर्शन करने वाले और पश्चात्ताप प्रकट करने वाले पद कुछ थोडे ही मे प्राप्त है। विट्ठल-वल्लभ मे सबधित इस भावना के प्रदर्शक पद प्राय नही ही है। चैतन्यदेव के कुछ भक्तो ने अपने इष्टदेवता की महानता को देख कर जो छुद्रत्व अनुभव किया है और उनकी भक्ति न करने का उन्हें जो पश्चात्ताप है, उसका उन्होने प्रकटीकरण किया है। प्राय उन सबने जिनके इस प्रकार के पद प्राप्त है यह भाव प्रकट किया है कि इस ससार में चैतन्यदेव का करुणावतार हुआ है। उनके सकीर्तन से ससार भर गया है, परन्तु हम अभागे लोग अपनी ही करनी से उस सुख एव उस करुणा से वचित रह गए है। अपने कर्म-दोष से हम स्वय ही डूब गए है। गौर-गोविंद की लीला सुन कर शिला भी द्रवीभूत हो जाती है, परन्तु हम लोगो का चित्त उस ओर उन्मुख नही हुआ। उनकी करुणा से कितनो का भला हुआ परन्तु हमारा ही कुछ नही हुआ। स्वर्गीय प्रेम-धन हमने नही पाया, इसका वडा 'शेल' विधा रह गया।[२]

---

१. (क) पूरवे वाधिल चूडा एवे केशहीन ।
नटवरवेश छाडि परिला कौपिन ।
गाभी-दोहन भाड छिल वाम करे ।
करंग धरिला गोरा सेइ अनुसारे ॥
त्रेताय धरिल धनु द्वापरेते वाशी ।
कलिजुगे दडधारी हइला सन्यासी ॥
(वलरामदास, गौ. प. त., १।२।४७)

(ख) हरि हरि ! ए वड विस्मय लागे मने ।
जिनि नव जलधर, पूर्व्वे जांर कलेवर, से एंवे गौराग भेल केने ॥
शिखिपुच्छ गुंजावेडा, मनोहर जांर चूडा, से मस्तक केशशून्य देखि ।
जांर वाका चाहनिते, मोहे राधिकार चिते, एवे प्रेमे छल छल आखि ॥
सदा गोपी सगे रहे, नाना रगे कथा कहे, एवे नारीनाम ना शुनये ।
भुजजुगे वंशीधरि, आकर्षये व्रजनारी, सेइ भुजे दंड केन लये ।
पिगल पाटेर धुति, शोभा करे जार कटि, ताहे केन अरुण वसन ॥
ना पाइया भावेर ओर, वलरामदास भोर, विषाद भावये मने मन ॥
(वलरामदास, गौ प. त., १।२।५१)

२. (क) निताइ चैतन्य दोहें वड अवतार ।
एमन दयाल दाता ना हइवे आर ॥
म्लेच्छ चडाल निदुक पाषंडादि जत ।
करुणाय उद्धार करिला कत कत ॥
हेन अवतारे मोर किछुइ ना हैल ।
हाय रे दारुण प्राण कि सुखे रहिल ॥
(कृष्णदास, प. क त, पद २११९)

उद्धार की प्रार्थना—अपनी हीनता को देखने से पहले भक्तों ने अपनी भक्ति के पात्र चैतन्य और वल्लभ की महानता को जो अनुभव किया था, उसी के कारण वे अपने उद्धार के लिए उनसे प्रार्थना करते हैं। उद्धार की इन प्रार्थनाओं में उस प्रकार की आकुल भावना प्रायः कम ही दिखाई देती है जैसी राम-कृष्ण से की गई प्रार्थनाओं में थी। गौडीय वैष्णव भक्त तो मुख्यतया चैतन्यदेव की कृपा और सान्निध्य की ही याचना करते हैं। वे कहते हैं, "हे गौराग देव, दया करके मुझे अपने चरणों में स्थान दो। करुणा करके एक बार मुझे देखो, अपना जन मान कर मुझे देखो। मैं तुम्हारे चरण पकडता हू, मेरा उद्धार करो। तुम्हारे बिना और है कौन! इस बार मेरे ऊपर करुणा करो। मेरे समान पातकी इस ससार में और कोई नही है। यदि तुम ही मेरे ऊपर दया नही करोगे, तो कौन करेगा! तुम मेरे ऊपर कृपा करना मत छोडना। अपना करके रखना। मैंने तुम्हारे लिए सब कुछ त्याग दिया है। तुम्हारे चरण अत्यत शीतल हैं। मुझ तापित जन को स्थान दो।"[1] वृ दावनदास कहते हैं, "हे कृपासिंधु, सर्व्वदेव नाथ। तुम मेरी रक्षा करो। मुझ पातकी पर शुभ दृष्टिपात

(ख) हरि हरि बड दुख रहल मरमे।
गौर-कीर्तन-रसे, जग-जन मातल, वचित मो हेन अधमे।

.. . .

हेन प्रभुर श्री चरणे, रति ना जन्मिल केने, ना भजिलाम हेन अवतार।
दारुण विषय-विषे, सतत मजिया रैलु, मुखे दिलु, ज्वलत अगार॥
(गोविन्ददास, प क त, पद २९८७)

(ग) निदारुण दारुण ससार।
शुनिया वैष्णव-मुखे, देखि आखि-परतेखे, ना भजिलाम गोरा-अवतार॥
(नरहरिदास, प क त, पद २९९४)

(घ) बड़ शेल मरमे रहिल।

. .

व्रजेन्द्र-नन्दन हरि, नवद्वीपे अवतरि, जगत भरिया प्रेम दिल॥
मुञि से पामर-मति, विशेषे कठिन अति, तेजि मोरे करुणा नहिल॥
(नरोत्तमदास, प. क त., पद २९९६)

१. (क) जय रे जय रे मोर गौराग राय।

. ..

करुणा करिया, स्वचरणे राख, ए मोर पापिष्ट मति।
तोमार चरणे, भरसा केवल, ना देखि आर उपाय॥
मोर दुष्टमने राख श्री-चरणे, एइ मागो तुया पाय॥
(वशीदास, गौ प त, पद १।२।८)

(ख) करुणानयन-कोणे एक बार देख।
आपन जनेर जन करि मोरे लिख॥
पाय धरि, दया करि, तारे हेन नाइ।

करो। स्वतत्र विहारी कृपासिंधु ! मेरी रक्षा करो। श्रीकृष्ण चैतन्य दीन बंधु ! मेरी रक्षा करो। श्री गौर सुन्दर महाप्रभु ! मेरी रक्षा करो। ऐसी कृपा करो कि फिर न छोड दो।"[1]

वल्लभाचार्य से भी भक्तो ने अपने उद्धार के लिए प्रार्थनायें की है। उन्होंने केवल उनकी कृपा की ही याचना नही की है, वे उनके सहारे से कर्मो से भी छुटकारा चाहते है। वे अपने को पापी बताकर उद्धार चाहते है। पापी बताने की भावना चैतन्य के भक्तो मे भी एक दो स्थानो पर पाई जाती है।[2] वल्लभ से जो उद्धार की प्रार्थनायें की गई है वे नीचे दी

परिहार पतित देखिये सब ठाइ ॥
दयामय कया कय हेन केवा आछे ।....
मुञि पापी निवेदिया कय पहुँ पाछे ॥
(वल्लभदास, गौ. प. त., १।२।४४)

(ग) एइ बार करुणा कर चैतन्य निताइ ।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ ॥
.. .. ..
लोचन बले मुञि अधमे दया नैल केने ।
तुमि ना करिले दया के करिबे आने ॥
(लोचनादास, प. क त., पद ३००३)

(घ) गौरांग तुमि मोरे दया न छाडिह ।
आपन करिया रागा चरणे राखिह ॥
तोमार चरण लागि सब तेयोगिलुं ।
शीतल चरण पाञा शरण लइलुं ॥
.. .. ..
वासुदेव घोषे बले चरणे धरिया ।
कृपा करि राख मोरे पद-छाया दिया ॥
(वासुदेव घोष, प. क. त., पद ३००७)

(ङ) आरे मोर गौरांग सोना ।.... .. ..
आपना बलिया मोर नाहि कोन जना ।
राखिह चरण-तले करिया आपना ॥
.. .. ..
कमल जिनिया तोमार, शीतल चरण ।
वासुघोषे देह छाया ए तापित जन ॥ (वासुदेव घोष, प. क त., पद ३००८)

१. गौ. प. त., १।२।६६

२. (क) गौरांग पातकी उद्धार करुणाय ।
साधु-मुखे शुनि आमि, पतित-पावन तुमि, उद्धारिया लेह निज पाय ॥
ओक शोकमय हय, विषम-विषम भय, पड़िया रहिलुं माया-जाले ॥
के हेन करुण जन, तारे करों निवेदन, उद्धार पाइब कत काले ।
(वल्लभदास, प. क त, पद ३००२)

जा रही है। भक्तगण वल्लभ से याचना करते हैं कि हमें उबारो, हम ससार-सागर में फसे हैं, हम भले बुरे जैसे भी हैं, तुम्हारे ही हैं।[1] विट्ठलनाथ से उद्धार की प्रार्थना बहुत कम

(ख) एइ बार करुणा कर चैतन्य निताई।
मो समान पातकी आर त्रिभुवने नाइ॥
मुञि अति मूढ-मति मायार नफर।
एइ सब पापे मार तनु जर जर॥ (लोचनदास, प क त, पद ३००३)

१ (क) श्री वल्लभ अब की बेर उगारो।
सब पतितन में विख्यात पतितहु, पावन नाम तिहारो।
ओर पतित नाही मेरे सम, अजमिल कौन विचारो।
भाज्यो नरक नाम सुनि मेरो, यम ने दीयो हड़तालो।
कृपासिन्धु करुणानिधी केशव, अब न करोगे उबारो।
सूर अधम को कहु ठोर नाही, बिना शरनजु तुमारो॥
(सूरदास, की र, पृ ३८४)

(ख) श्री वल्लभ लीजे मोहि उबारी।
या कलिकाल कराल विषम ले, लागत है डर भारी।
तृष्णा तरग उठत भव सिन्धु ते, डारत किते उछारी।
कर्म भवर मद मत्सर मोकु, दावे देत पतारी।
काम क्रोध और मोह लोभ जल जन्तु रहे मुखफारी॥
चरणाबुज नौका नहि सूझत, बीच अविद्या पहारी॥
(रसिकदास, की र, पृ ३८४)

(ग) श्री वल्लभ लीजे मोहे बुलाय।
बहोत दिना बीते बिन देखे, ताते जीय अकुलाय॥
(गोविन्ददास, की र, पृ ३८४)

(घ) श्री वल्लभ भले बुरे तो तेरे।
तुमही हमारी लाज बढ़ाई विनती सुनो प्रभु मेरे॥
. . .
सब त्यज तुम शरणागत आयो, दृढ़ कर चरण गहेरे॥
(सूरदास, की र, पृ ३८५, ३८६)

(ङ) श्री वल्लभ अब तो भयो तिहारो।
जन्म जन्म को हों अपराधी यम लिखिही लिखि हार्यो।
अपनेहु सुकृत नही कीनो, भयो पाप भण्डारो॥
तुम सों कहा कहों करुणानिधि, सकुच होत जिय भारो॥
वैश्वानर सब सुख के दाता सुनत मन धीरज धारे।
रसिकदास ज बडी ठोर के कहा अन्य रिपु विचारे॥
(रसिकदास, की र, पृ ३८५)

की गई है।[1]

आश्वासन तथा अनन्याश्रयता—यद्यपि अपनी दशा और हीनता को देख कर भक्तों के प्राण व्याकुल अवश्य हुए हैं, परन्तु उन्हें इस बात का विश्वास है कि वल्लभ, विट्ठल और चैतन्य का भरोसा बड़ा भारी है क्योंकि उनके समान दयालु और कौन है! वे अकारण ही दीन पर दया करते हैं। चैतन्यदेव ने तो इसीलिए अवतार लिया है।[2] श्री गौरांग की अमृत वाणी सुन कर न जाने कितने लोग प्रेम की तरंगों में डूबते उतराने लगते हैं। रे मन! क्यों अनुताप करता है, प्रभु के प्रताप रूपी मंत्र का जाप कर।[3] जो कोई उनके पतित-पावन चरणों की शरण ले लेता है, वह उनकी सुखदात्री लीला देख पाता है। उस मुख-चन्द्र को देखते ही समस्त अंधकार दूर हो जाता है और सब कर्म छूट जाते हैं।[4] गोरा-चांद के चरणों का भजन करो। वे ही हरि नाम का मंत्र देकर संसार सागर से पार करेंगे।[5]

इसी प्रकार वल्लभाचार्य के लिए भी भक्तगण कहते हैं। वे कहते हैं, "हमें श्री वल्लभ

---

१. तुमारे चरण कमल के शरण ।
राखो सदा सर्वदा जन को, विट्ठलेश गिरिधरण।
(भगवानदास, की. सं., भाग बीजो, पृ १२०)

२. कलि कवलित, कलुष जड़ित, देखिया जीवेर दु:ख ।
करल उदय, हइया सदय, छाड़िया गोकुलसुख ॥
देख गौर गुणेर नाहि सीमा ।
दीन हीन पाआ, विलाय जाचिआ, विरिंचि-वांछित प्रेमा ॥
जाति ना विचारे, आचंडाले तारे, करुणासागर गोरा ॥
(गोविन्ददास, गौ प. त., १।२।२३)

३. श्री मुखवचन श्रवण अनुषंगी ।
अनुभवि कत भेलि प्रेमतरंगी ॥
रे मन काहे करसि अनुताप ।
पहुंक प्रताप मंत्र करु जाप ॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त, १।२।१४)

४ पतितपावन, प्रभुर चरण, शरण लइल जे ।
इह परलोके सुखेर से लीला, देखिते पाओल मे ॥
शुन शुन शुन सुजन भाइ, भागल सकल धंद ।
मनेर आंधार, सब दूरे गेल, भाबिते से मुखचन्द ॥
(गोविन्ददास, गौ. प त, १।२।२५)

५ भज गोराचांदेर चरण।

.. .. ..

भव तरिबारे हरि-नाम-मंत्र भेला करि, आपनि गौरांग करे पार।
(परमानन्द दास, गौ प. त, १।२।४०)

का भरोसा है। हम किसी और को न तो जानते है,न मानते है। हमें इन्ही का सरा आसरा है[१] हमें इन चरणों का दृढ भरोसा है। वल्लभ के नख-चन्द्र की छटा बिना ससार में सब अंधेरा है। इस कलियुग में और तो कोई साधन ही नही है।[२] श्री वल्लभ का ही भरोसा रखना चाहिए, सब काम क्षण मे पूरे हो जायेंगे। इनके गुणो का गान करो। रात-दिन भक्तो का साथ करो और असमर्पित मत खाओ। श्रीवल्लभ के पद-रज बिना और सब तत्व व्यर्थ है।[३] हम वल्लभजी के दास है। हमारा मन किसी और की आशा नही करता।[४] विट्ठल का भरोसा बडा भारी है, हम उनके है।"[५]

मनोराज्य—अपने अपने इष्टदेवो की वदना करके और उनकी महत्ता के अनुभव से उद्भूत आश्वासन प्राप्त करके वे लोग अपने मनोरथ व्यक्त करते है। वे अपने अपने लिए एक विशेप जीवन की कामना करते हं जिसमें वे उनकी कृपा प्राप्त करते रहेंगे और सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे।

---

१. मोही श्री वल्लभ जी को भरोंसो।
अन्य देव को जानु न मानु इनको आशरो खरोसो ॥.
(रसिक, की र., पृ ३७६)

२. भरोंसो दृढ इन चरनन केरो।
श्री वल्लभ नख चन्द्र छटा विन सब जग माझ अंधेरो।
साधन ओर नहि या कलि में जासु होत निवेरो ॥ .
(सूरदास, की, र., पृ ३७६)

३. भरोंसो श्री वल्लभ जी को राखो।
सधरे काज सरेंगे छिनमे इन ही के गुण भाखो।
निशदिन सग करो भक्तन को असमर्पित नहीं चाखो ॥
वल्लभ श्री वल्लभ पद रज विन ओर तत्त्व सब नाखो ॥
(वल्लभ, की. र., पृ ३७६)

४. हो श्री वल्लभ जू को दास।
मन न धरत काहू की आस ॥
(रसिकदास, की र, पृ. २२४)

५. (क) हमारे श्री विट्ठलनाथ धनी।
भवसागर ते काढ़े कृपानिधी, राखे शरन अपनी ॥
रसना रटत रहत निशिवासर, शेष सहस्र फनी ॥
छीत स्वामि गिरिधरन श्री विट्ठल त्रिभुवन मुकुट मनी ॥
(छीतस्वामी, की. र. पृ ३७६)

(ख) हम तो श्री विट्ठलनाथ उपासी।
सदा सेवु श्री वल्लभनन्दन कहा करु जाय काशी।
इन कुं छांड़ ओरकु धावे सो कहीए असुरासी ॥
(छीतस्वामी, की. र., पृ ३७६)

चैतन्यदेव के भक्त इस बात की कामना करते हैं कि वे कब उनका दर्शन कर पायेंगे और कब वह दिन होगा, जब वे गौराग के सकीर्तन को सुन कर आनद से दिन व्यतीत करेंगे। गौराग का नाम लेकर उनका शरीर पुलकित हो उठेगा और नाचना न जानते हुए भी नाच उठेंगे और गाना न जानते हुए भी गायेंगे। ससार उनके लिए तुच्छ हो उठेगा। उस चद्र-मुख को देख कर प्रेमानद पायेंगे और ये दो नेत्र सफल होंगे।[1]

वल्लभाचार्य के भक्त अपने इष्टदेव की दया चाहते हैं। वे उनका गुण गाना चाहते हैं। द्वार पर खडे होकर गुण गाने का निश्चय करके जन्म सफल करना चाहते हैं और उनकी एकमात्र चाहना उनकी दया की प्राप्ति है जो भक्तों के जीवन का फल है। सोना, ग्राम, आभूषण, सुख सपत्ति, उन्हे कुछ नही सुहाता। उन्हे वल्लभ की जूठ चाहिए। वे उनके कमल-मुख की शोभा देख कर दोनो नेत्र शीतल करेंगे। उनकी कृपा दृष्टि से खिच कर उनके पास जायेंगे और चरण-स्पर्श करके प्रसन्न होंगे। यदि वे अपना समझ कर बोल दे, तब तो फूले नही समायेंगे। और सब भूल कर चरणो की सेवा करेंगे। भाल, कठ और उर पर चरण-रेणु

---

१. (क) हरि हरि ऐछे कि होयब हामार।
सहचर-संगे रगे पहुँ गौरक, हेरब नदिया विहार।
सुरधुनि-तीरे नटन-रसे पहु मोर, कीर्तन करब विलास।
सो किये हाम नयन भरि हेरब, पूरब चिर-अभिलाष॥
(रामानन्द, प. क त., पद ३०५७)

(ख) चन्द्रशेखर दास, एइ मने अभिलाष, आर कि एमन दशा हब।
गोरा-पारिषद संगे, संकीर्तन-रस-रगे, आनन्दे दिवस गोडाइब॥
(चन्द्रशेखरदास, प. क. त., पद ३०३०)

(ग) गौराग बलिते हबे पुलक-शरीर। हरि हरि बलिते नयने बबे नीर॥
कबे मोरे निताइ चाँद करुणा करिबे।
(नरोत्तमदास, प क त., पद ३०४६)

(घ) नाचिते ना जानि तमु, नाचिये गौरांग बलि, गाइते ना जानि तमु गाइ।
सुखे वा दु खेते थाकि, गौराग बलिया डाकि, निरन्तर एइ मति चाइ॥
(हरिदास, प क. त, पद ३०१४)

(ङ) कबे मोर निताइचांद करुणा करिबे।
संसार-वासना मोर कबे तुच्छ हबे॥
विषय छाडिया कबे शुद्ध हबे मन।
कबे हाम हेरब श्री वृन्दावन॥
(नरोत्तमदास, प क. त., पद ३०४६)

(च) रामानन्द आनन्दे कि हेरब,
सफल करब दु नयान॥
(परमानन्द, प. क. त, पद ३०५७)

लगायेंगे एव रूप-सुधा का पान करते नही अघायेंगे ।[1]

विट्ठलनाथ के चरणो में मन लगाने की इच्छा सगुणदास करते हैं ।[2]

---

१. (क) तुव गुण गाऊ लाड लडाऊं ।
ठाढो निशदिन द्वार वहा ॥
द्वार ठाडो करू विनती चित्त चरणन में धरु ।
ये ही निश्चय जान जिय में अपनो जन्म सुफल करु ॥
चाहना नहि ओर मेरे जीवन को फल प्रभु दया ॥
(कृष्णदास, की र, पृ २७५)

(ख) श्री वल्लभ मुख कमल की हो वल वल जाउ ।
शोभा निधि निरख निरख नयन युग सिराउ ॥
करुणाकर चितवत इत तव हों ढिग आउ ।
चरण कमल युगल परसि मन में सचु पाउ ॥
अपनों कर बोलत तव न कहु समाउ ।
आनन्द निधि उमगहिये गुण गण हों गाउ ॥
सेवो निश दिवस चरण ओर फल भुलाउ ।
चरणरेणु नयन भालकठ उर लगाउ ॥
रूप सुधा अचवत दृग नेक नाही अघाउ ॥
रसिक सुखद वल्लभ को जन्म जन्म दास कहाउ ॥
(रसिक, की स, भाग चोजो, पृ २२३)

२ श्री विट्ठल के चरण-कमल पर सदा रहे मन मेरो ।
शीतल सुभग सदा सुख दायक भवसागर को बेरो ।
रसना रटत रहों निसवासर प्रभु पावन यश तेरो ॥
सगुणदास इतनी मागत हें भृत्य भृत्य को चेरो ॥
(सगुणदास, की र., पृ. ३६०)

गुरु-वंदना

गौडीय वैष्णव समाज में चैतन्यदेव के बाद केवल दो व्यक्तियों का अधिक महत्व-पूर्ण स्थान है, एक तो नित्यानंद प्रभु और दूसरे अद्वैत आचार्य। नित्यानंद प्रभु को वे लोग संकर्षण बलराम का अवतार मानते हैं। इस हिसाब से उन्हें अनेक पदकर्त्ताओं ने चैतन्यदेव का बड़ा भाई भी बताया है।[1] संकर्षण बलराम का अवतार होने पर भी वे चैतन्यदेव के स्नेही भक्त हैं और कदाचित् पदकर्त्ता भक्तों की दृष्टि में वे इसीलिए अधिक महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं, क्योंकि उनकी प्रशस्तियों में यह बात कई बार कही गई है कि वे चैतन्य के स्नेह को बांटते हैं, मनुष्यों में उनकी भक्ति करने को कहते हैं[2] और उन्हें 'भैया, भैया' कह कर बार बार बुलाते हैं[3] और उन्हें देख कर पुलकित होते हैं। कुछ पदकर्त्ता तो उनके समकालीन ही थे अतः उन्होंने नित्यानंद प्रभु की चैतन्य-भक्ति के बारे में जो कुछ कहा है, वह उनका आंखों देखा है अतः उन पदों का ऐतिहासिक महत्व भी है। परन्तु पद-कर्त्ताओं ने ऐतिहासिकता के लिए ऐसा नहीं लिखा है।। चैतन्य का अनन्य-स्नेही होना उनकी दृष्टि में बड़ी भारी बात है, इसीलिए उनकी प्रशस्ति का यह एक बड़ा भारी अंग बन गया है।[4]

---

१. (क) अशेष पापेर पापी जगाइ मधाइ।
ता सभारे उद्धारिला तोमरा दुटि भाइ॥ (लोचन, प. क. त., पद ३००३)
(ख) चैतन्य-अग्रज पद्मावतीर कोडर, (नरहरि, गौ. प. त., ६।१।६६)

२. चंडाल पतित जीवेर घरे घरे जाञा।
हरिनाम महामंत्र दिछे बिलाइया॥
जारे देखे तारे कहे दंते तृण धरि।
आमारे किनिया लह बल गौरहरि॥ (लोचन, गौ. प. त., ६।१।२५)

३. दिग नेहारिया जाय, डाके पहुं गोराराय, अवनी पडये मूरछिया॥
.. . ..
मेघ-गभीरनादे, पुनः भाया बलि डाके, पद भरे कंपित धरणी॥
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., ६।१।३१)

४. (क) गौर पिरीति रसे, कटिर वसन खसे, अवतार अति अनुपाम।
नाचत गाओत, हरि हरि बोलत, अविरत गौर गोपाल॥
(ज्ञानदास, गौ. प. त., ६।१।३३)
(ख) आरे मोर आरे मोर नित्यानन्द राय।
आपे नाचे आपे गाय चैतन्य बोलाय॥
लम्फे लम्फे जाय निताइ गौराग आवेशे।। (ज्ञानदास, गौ. प. त., ६।१।३७)
(ग) ओ चांद वदने सदा बोले गोरा गोरा।
बुक मुख बाहिया नयने बहे लोरा॥ (नरहरि, गौ. प. त., ६।१।६६)

अद्वैत आचार्य का महत्व भी गौर-भक्त के रूप में है। गौडीय वैष्णवों का कथन है कि देश की दुर्गति और दुराचार को देख कर अद्वैत आचार्य दुःखी होकर हुंकार भरते थे और ईश्वर को पुकारते थे, उसी के फलस्वरूप चैतन्य आए।[1] अद्वैत आचार्य का महत्व इसी में है। इसी महत्व के अनुरूप उनकी प्रशस्तियां हैं।

नित्यानंद प्रभु को बलराम का अवतार बताया गया है इसलिए उनकी प्रशस्तियां भी उसी के अनुरूप हैं। भक्तों ने उनका गुण गान किया है, साथ ही उनकी कृपा, शक्ति, दयालुता, भक्तवत्सलता संबंधी महत्ता का वर्णन किया है। उनके रूप-सौंदर्य का भी वर्णन किया गया है। चैतन्यदेव के रूप वर्णन के समान इस वर्णन में भी वात्सल्य भाव और शृंगार भाव दोनों प्रकार की आनविनयां पाई जाती हैं। भक्त-गण अपनी दीनता का स्मरण करके उनसे उद्धार की याचना करते हैं, फिर मन को आश्वासन भी देते हैं। इन सब भावों से संबंधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[2]

---

१. (क) अद्वैत हुंकारे, सुरधुनी तीरे, आइला नागरराज।
ताहार पिरीते, आइला तुरिते, उदय नदीया माझ॥
(वृन्दावनदास, गौ प त, ६।२।१)

(ख) जय जय अद्वैत आचार्य दयामय।
जार हुहुंकारे गौर अवतार हय॥ (लोचनदास, गौ प त, ६।२।२)

२ (क) जय जगतारण-कारण-धाम।
आनन्द-कन्द नित्यानंद नाम॥
जगमग लोचन कमल ढुलायत,
सहजे अथिर गति दिठि मातोयार।
भाइया अभिराम वलि घन घन गरजइ,
गौर प्रेम-भरे चलइ ना पार॥

कलियुग काल, भुजगम दंशल, दगधल थावर जंगम पेखि।
प्रेम सुधारस, जगभरि वरिखल, दास गोविन्द काहे उपेखि॥
(गोविन्ददास, गौ. प. त., ६।१।२)

(ख) जय जय पद्मावती-सुत सुन्दर, नित्यानन्द गुण-भूप।
जग-जन-नयन, ताप भर भजन, जिनि कणा कारुण अपरूप रूप॥
(घनश्याम, गौ प त, ६।१।६)

(ग) जय जय नित्यानन्द राय।
अपराध पाप मोर, ताहार नाहिक ओर।
उद्धारह निज करुणाय॥
आमार असत मति, तोमार नामे नाहि रति,
कहिते ना वासि मुखे लाज।
जनमे जनमे कत, करियाछि आत्मघात,
अतये से मोर एइ काज॥

नित्यानद प्रभु के बाद जिनकी प्रशस्तिया अधिक मात्रा मे मिलती हैं, वे अद्वैत आचार्य है। भक्तो ने उन्हे बार बार गौराग को पृथ्वी पर लाने वाले रूप में स्मरण किया है और इसी रूप मे उनकी महत्ता बताई गई है। इसी रूप मे उनकी प्रशस्तिया भी मिलती है। उनकी वदनाओ मे अलौकिकता की भावना प्राय नही ही है। केवल एक पद में

तुमि ते करुणासिन्धु, पातकी जनार वन्धु,
एवार करह जदि त्याग ॥
पतित-पावन नाम, निर्मल ये अनुपाम,
ताहाते लागये वड़ दाग ॥
पुरुवे यवन आदि कत शत अपराधी,
ताराय्याछ शुनियाछि काणे ।
कृष्णदास अनुमानि, ठेलिते नारिवे तुमि,
जदि घृणा ना करह मने ॥ (कृष्णदास, प. क त., पद ३००६)

(घ) कीर्तन-रसमय, आगम-अगोचर, केवल आनन्द-कन्द ।
अखिल लोक-गति, भकत प्राणपति, जय जय नित्यानन्द चन्द ॥
हेरि पतित गण, करुणावलोकन, जगभरि करल अपार ।
भव-भयभजन, दुरति-निवारण, धन्य धन्य अवतार ॥
हरि संकीर्तने, साजल जगजने, सुर नर नाग पशु पाखी ।
सकल वेद सार, प्रेम सुधा रस, देयल काहु न उपेखि ॥
त्रिभुवन-मगल-नाम-प्रेम-वले, दूरे गेल कलि आंधियार ।
शमन-भवन पथ, सवे एक रोधल, वचित राम दुराचार ॥
(रामराय, गौ. प त, ६।१।१८)

(ङ) जय जय नित्यानन्द राम ।
कनक-चपक पाति, अगुले चादेर पाति, रूपे जितल कोटि काम ।
ओ मुख-मंडल देखि, पूर्णचंद्र किसे लेखि, दीघल नयान भाउ धनु ।
आजानुलंबित भुजतल थल-पकज, कोटि क्षीण करि अरि जनु ॥
(कृष्णदास, गौ प त., ६।१।८)

(च) दया कर मोरे निताइ दया कर मोरे ।
अगतिर गति निताइ साधु लोके वले ॥
जय प्रेम-भक्तिदाता पताका तोमार ।
उत्तम अधम किछु ना कर विचार ॥
प्रेमदान जगज्जनेर मन कैला सुखी ।
तुमि दयार ठाकुर आमि केन दुखी ॥
कानुराम दास वले कि वलिब आमि ।
ए वड भरसा मोर कुलेर ठाकुर तुमि ॥
(कानुरामदास, गौ. प त, ६।१।५७)

नरहरि दास उन्हें देव देव महेश्वर रूप करके स्मरण करते हैं (गौ प त, ६।२।१७)। अन्य प्राप्त पदों में उनकी महत्ता केवल गौरांग का अवतार कराने वाले भक्त-साधक के रूप में ही है। वे गौरांग को भी किसी अन्य स्वार्थ-वश नहीं लाए। संसार के पाप-ताप को देख कर वे विचलित हुए थे और रक्षा के लिए कृष्ण-चैतन्य को लाए। इन सब भावनाओं से संबंधित प्रशस्तियां नीचे दी जा रही हैं। उनमें उनका रूप वर्णन भी है।[1] यह रूप वर्णन शास्त्रानुकूल आलंकारिक भावनायुक्त है। उनका वर्ण स्वर्ण चम्पक जैसा है, प्रति अंग अनंग को लज्जित

---

१. (क) जय जय अद्वैत आचार्य दयामय।
जार हुहुंकारे गौर अवतार हय॥
प्रेमदाता सीतानाथ करुणा-सागर।
जार प्रेमरसे आइला गौरांग-नागर॥
जाहारे करुणा करि कृपादृष्टे चाय।
प्रेमवशे जेजन चैतन्य-गुण गाय॥
ताहार पदेते जेवा लइला शरण।
सेजन पाइला गौर प्रेम-महाधन॥
एमन दयार निधि केन ना भजिनु।
लोचन बले निजमाथे वजर पाडिनु॥ (लोचनदास, गौ प त, ६।२।३१)

(ख) सीतानाथ मोर अद्वैतचांद।
प्रेममय महा मोहनफांद॥
जाहार हुंकारे प्रकट गोरा।
नित्यानंद सह आनन्दे भोरा॥
अनुपम गुण करुणा-सिन्धु।
पतित अधम जनार बन्धु॥
(नरहरिदास, गौ प त, ६।२।२१)

(ग) अद्वैत वन्दिब शिरे, जे आनिल धीरे धीरे, महाप्रभु अवनी माझार।
नदेर नन्दन जे, शचीर नन्दन से, नित्यानन्द चांद सखा जार॥
(बलरामदास, गौ प त, ६।२।३५)

(घ) नास्तिकता अपधर्म जुडिल संसार।
कृष्णपूजा कृष्णभक्ति नाहि कोथा आर॥
देखिया अद्वैत प्रभु विषादित हैला।
केमने तरिबे जीव भाविते लागिला॥
नेत्र बुजि तुलसी प्रदानि विष्णुपदे।
हुंकारि दिलेन लम्फ आचार्य आह्लादे॥
जितिलु जितिलु मुखे बले बार बार।
जीव निस्तारिते हबे गौर अवतार॥
(लोचनदास, गौ प त, ६।२।३०)

करता है । मुरग अधर है, विशाल विमल लोचन है । कठ कबु जैसा है । बाहु आजानुलबित है । प्रशस्त वक्ष है, अपरूप नाभि है ।[1]

इन चार महापुरुषो के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियो से सबधित प्रशस्तिया पाई जाती है । ये व्यक्ति या तो पदकर्त्ताओ के गुरु है या वैष्णव मत के व्यवस्थाकार है या गुरुओ के शिष्य या पुत्र है । उन व्यक्तियो के नाम यहा दिए जा रहे है ।

नाम	प्राप्त प्रशस्तिया (प्रथम पक्तिया)	पदकर्त्ता
अभिराम	पुरुवे श्रीदाम, एवे भेल अभिराम, महा तेज पुज राशि ।	उद्धवदास गौ प. त, ६।३।१८
आचार्य बलराम	धनि धनि गोवर्धन दास धनि चादपुर ग्राम, धनि गोवर्धन को पुरोहित आचार्य बलराम ॥	राधावल्लभ गौ प त, ६।३।३७
गदाधर दास	(क) जय जय पडित गोसाई । जार कृपा बले से चैतन्य गुण गाइ ।	शिवानंद गौ. प त ६।३।३
	(ख) जय जय श्रील गदाधर पंडित, मडित भाव भूषण अनुपाम । श्री चैतन्य अभिन्न शक्ति गुणनाम, धन्य सुदुर्गम जहु रस धाम ।	शिवाई, गौ. प. त ६।३।५
श्रीगगानारायण चक्रवर्ती	जय जय श्री गगानारायण चक्रवर्ती अति धीर गभीर । धैरजहरण वरण वर माधुरी, निरुपम मृदुतर रुचिर शरीर ।	नरहरि, गौ प त, ६।३।७१
गोपाल भट्ट	दक्षिण देशेते भ्रमिते भ्रमिते गौराग जखन गेला । . . . परम पंडित, अति सुचरित, भट्ट-पुत्र श्री गोपाल । राखिया प्रभुरे, आपनार घरे, सेवा करे सदा काल ॥	वल्लभदास, गौ प. त, ६।३।४०
गोविंददास	श्री गोविंद कविराज वदित कवि समाज, काव्य-रस अमृतेर खनि । वाग्देवी जाहार द्वारे दासी भावे सदा फिरे, अलौकिक कवि शिरोमणि ।	वल्लभ, गौ प त, ६।३।७०

१. गौ प. त, ६।२।८ (घनश्यामदास)

गौरीदास	श्री वृन्दावन नाम, रत्न चितामणि धाम	कृष्णदास,
	ताहे हरि बलराम पाश।	गौ प त,
	सुबल चन्द्र नाम छिल, एवे गौरीदास हैल,	६।३।१९
	अम्बिका नगरे जार वास।	
जीव गोस्वामी	अनुप तनय, सदय हृदय, श्री जीव गोसाजि पहु।	उद्धवदास,
	वितर प्रसाद, कर आशीर्व्वाद, तव पदे मति	गौ प त,
	रहु॥	६।३।३८
दु खी कृष्णदास	जय श्रील दु:खी कृष्णदास	नरहरि,
	गुण कहिते शकति कार।	गौ प त,
	हृदयचैतन्य पदाम्बुजे	६।३।४३
	सदाचित-मधुकर जार॥	
नरहरिदास	भूखड मडल माझे, ताहाते श्रीखड साजे,	शेखरराय,
	मधुमती जाहे परकाश	गौ प त,
	ठाकुर गौराग सने, विलसये रात्रि दिने,	६।३।१२
	नाम धरे नरहरि दास	
नरोत्तमदास	(क) जय रे जय रे जय, ठाकुर नरोत्तम,	गोविंददास,
	प्रेम भकति महाराज।	गौ प त,
	जाको मत्री, अभिन्न कलेवर,	६।३।६०
	रामचन्द्र कविराज॥	
	(ख) जय जय श्री नरोत्तम परम उदार।	नरहरि,
	जग जन रजन, कनक कज रुचि,	गौ प त,
	जनु मकरद बरिषे अनिवार।	६।३।६१
	(ग) ओ मोर करुणामय, श्री ठाकुर	नरहरि,
	महाशय, नरोत्तम प्रेमेर मूरति।	गौ प त,
		६।३।६२
	(घ) जय शुभ मडित, सुपडित, नरोत्तम	घनश्यामदास
	महाशय, मनोज्ञ सब रीतवर	गौ प त,
	गौरव गभीर अति धीर गुणधाम॥	६।३।६३
परमानदसेन	जय सेन परमानद, कर्णपुर कविचन्द्र,	उद्धवदास,
	प्रभु जारे कहे पुरिदास	गौ.प त,
		६।३।४७
मुरारि	जय जय रसिक सुरसिक मुरारि।	घनश्याम,
		गौ प त,
		६।३।४८
रघुनदन	श्री नरहरि सुचतुर कुलराज।	घनश्याम,
	माधव तनयक, नियडे विराजत,	गौ प त,

	भगी सुसदृश अदृश जगमाझ ।	६।३।१५
रघुनाथदास स्वामी	जय भट्ट रघुनाथ गोसाञी ।	राधावल्लभ,
	राधाकृष्ण लीला शुणे, दिवा निशि	गौ प त,
	नाहि जाने, तुलना दिवार नाहि ठाञी ।	६।३।३५
रामानंद राय	१. विद्यानगराधिप, अपार सपदशाली,	कानुदास,
	रामराय पुरुष प्रधान ।	गौ प त,
		६।३।९
	२. गूढ रूपे राम, पूरे निज काम, अनग-	वृ दावनदास,
	मजरी हैया ।	गौ प त,
		६।३।१०
रामचन्द्र कविराज	जय जय रामचन्द्र कविराज ।	नरहरि
	सुललित रीत, नामरत निरवधि,	
	मगन आनद महोदधि माझ ।।	
रामकृष्ण आचार्य	जय जय रामकृष्ण आचार्य सुवीर	नरहरि,
	महाशय सुखद उदार ।	गौ प त,
	भावावेषे निरंतर कीर्त्तन लम्पट,	६।३।७२
	अतिशय सुघड प्रचार ।	
रूप गोस्वामी	आरे मोर श्री रूप गोसाञी ।	राधावल्लभ,
	गौरागचादेर भाव, प्रचार करिया सब	गौ प त,
		६।३।२८
वृंदावनदास	धन्य धन्य वृंदावनदास ।	
	चैतन्यमंगले जार कवित्व प्रकाश ।	उद्धवदास,
	महाप्रभु लीलारसामृत ।	गौ प त,
	जार गुणे जगते विदित ।।	६।३।२१
श्यामानंद	जय जय सुखमय श्यामानद ।	घनश्यामदास
	अविरत गौर-प्रेमरसे निमगन,	गौ प त,
	झलकत तनु नव पुलक आनद ।।	६।३।४१
श्रीनिवास	१. अनुक्षण गौर प्रेमेरसे गरगर,	यदुनदनदास,
	ढर ढर लोचने लोर ।	गौ प त,
	गदगद भाष हास क्षणे रोयत	६।३।५०
	आनदे, मगन घन हरिबोल ।।	
	पहुं मोर श्री-श्रीनिवास ।।	
	२ आरे मोर आचार्य ठाकुर ।	राधाव[illegible]भ-
	दयार सागर, वड़ जगभर	दास गौ प
	वियारल-राधाकृष्ण-लीला रसपूर	त, ६।३।५१
	३ जय प्रेम भक्ति दाता सदय हृदय ।	राधावल्लभ-

	जय श्री आचार्य प्रभु जय दयामय ॥	दास, गौ प त, ६।३।५२
४	जय जय गुणमणि श्रीश्रीनिवास । घनि घनि अवनीभाग किये अपरूप, गौर प्रेममय मूरति प्रकाश ।	घनश्यामदास गौ प त ६।३।५४
५	जय जय श्रीनिवास आचार्य, जगतजन-जीवन, परम रसिक गुणधाम	नरहरिदास, गौ प त, ६।३।५५
६	जय जय श्रीनिवास गुणधाम । दीन हीन तारण, प्रेम रसायन, जैछन मधुरिम नाम ।	गोविंददास, गौ प त, ६।३।५७

हिन्दी पदावली साहित्य मे प्राप्त प्रशस्तिया

गोकुलनाथ	जयति धन्य विट्ठल सुवन प्रकट वल्लभ वली प्रवल पन करि तिलक माल राखी ॥ खड पाखड दडी विमुख दूर कर हन्यो कलिकाल तम नियम साखी ॥	वल्लभ, की स, भाग वीजो, पृ. १६९
घनश्याम	जयति पद्मावती सुवन विठ्ठल तनय नाम घनश्याम मुख चन्द्र सरखो ॥ रुचिर अग अग वहु सजे भूषण वसन । दरस करि ध्यान निज रूप परखो ॥	रसिक, की स, भाग वीजो, पृ १७६
घनश्याम	जयति घनश्याम रस रूप निज देह धरि प्रकट भये आप श्री वल्लभ कुमार घर ॥	रसिक, की स, भाग वीजो, पृ. १७७
हरिराय	रास रसिक भाव रूपस्वामिनी स्वरूप रूप प्रकट भये अति अनूप श्री हरिराय ॥	रसिकदास, की र, पृ. १३१
हरिदास	हो हरिदास वर्य पें वारी । शीतल झरना झरत निरतर पवन सुगध परम सुखकारी ॥	रसिकदास, की. र, पृ ३८७

हिन्दी पदावली साहित्य में कम ही प्रशस्तिया पाई जाती हैं । ऊपर दी हुई प्रशस्तियो के अतिरिक्त वगाली पद साहित्य में कुछ थोडे से पद[1] ऐसे हैं जिनमें कई कई नाम दिए हुए

---

१ गौ प त, पृ ४८२, ४८३, ४८९, पद कर्त्ता, वल्लभदास, दुखिया शेखर, नरोत्तमदास, उद्धवदास ।

है और उन सब को आदर से स्मरण किया गया है। उन पदो मे प्राप्त नामो की सूची यहा दी जा रही है—

अद्वैत, उद्धवदास, कर्णपूर, काशीश्वर, गदाधर, गीत गोविंद, गगानारायण चक्रवर्ती, गोपीरमण, गोकुलानद, गोविंददास, गोपीनाथ, गौरीदास, गौराग प्रिया, चैतन्य, चाद राम, चौधरी जगदानद, दामोदर, द्रौपदी, नरहरि, नदाई, नित्यानद, नरोत्तम, नृसिह, परमानद पुरी, भूगर्भ, मुकुद, मुरारि, माधव, माधो, रघुनाथ, रूप गोस्वामी, रघुनदन, रामानद, रामचन्द्र, राम चरण, राम, रामकृष्ण, रामकृष्ण आचार्य, राधावल्लभ, रूप, लोकनाथ, लोचन, वनमाली, वक्रेश्वर, व्यास, वल्लभीदास, वीर हाम्बीर, श्री निवास, शुभानद, श्री सुन्दर, श्री धर, शिखाई, श्रीवास, श्यामदास चक्रवर्ती, श्री जीव, सनातन, स्वरूप, हरिदास, हेमलता।

लीला गान

जन्म-लीला

१ जन्म-लीला—(राम-कृष्ण सबधी) बगला पद साहित्य मे कृष्ण जन्म-लीला सम्बन्धी पद अल्पसख्यक ही है। हिन्दी पद साहित्य मे राम-कृष्ण जन्म-लीला सबधी पदो की अपेक्षाकृत बहुलता है।

श्री कृष्ण का जन्म तो मथुरा मे हुआ था। जन्म हो जाने के अनन्तर वसुदेव उन्हे यशोदा के पास उनकी बेसुधी मे पहुचा गए थे। इस कथा का उल्लेख सूरदास ने किया है।[1] बगाली पद कर्त्ताओ ने इस समस्त कथा का उल्लेख नही किया है। वैसे सूर के समान वे भी कहते है कि व्रजेश्वरी ने जग कर पुत्र का मुह देखा और प्रसन्नता से भर कर नद को बुलाया और दिखाया।[2] राम-जन्म तो अयोध्या मे ही हुआ था और उनकी माता कौशल्या ही थी।

जन्म चाहे जहा हुआ हो परन्तु कृष्ण के जन्म का समाचार मिलते ही और राम का जन्म होते ही समस्त नगर मे उत्साह भर गया। नद के गोप-ग्वाल और दशरथ की प्रजा गाती नाचती हुई उन दोनो के निवास-स्थान की ओर चली।[3] झुड की झुड स्त्रिया स्वर्ण

---

१ सू सा, १०।४—१२

२. (क) जागी महरि, पुत्र-मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर मैं न समाइ।
गदगद कठ, बोल नहिं आवै, हरषवत ह्वै नद बुलाइ।
आवहु कत, देव परसन भए, पुत्र भयौ मुख देखौ धाइ।
(सूरदास, सू सा १०।१३, . २६१)

(ख) निशि अवशेषे जागि बरजेश्वरी,
हेरइ बालक मुख चादे।
कतहु उल्लास कहइ ना पारिये,
तयलइ हिया नाहि बाधे।
आनद को करू और।
सुनि धनि नद गोपेश्वर आयल,
शिशु मुख हेरिया विभोर॥
(शिवरामदास, प क त, ११२८)

३ (क) नद सुनद जशोमति रोहिणि आनद करत बधाइ।
गोकुल नगर-लोक सब हरषित, नद-महल चलु धाइ॥
(शिवराम, प क त, पद ११२९)

(ख) ढोटा है रे भयौ महर कै कहत सुनाइ-सुनाइ।
सबहि घोष मैं भयौ कुलाहल, आनद उर न समाइ॥
कत हौ गहर करत बिन काजै, बेगि चलौ उठि धाइ।
(सूरदास, सू. सा १०।२०, . २६३)

के थालो में सामग्री भर कर गाती हुई चली ।[1] यह उत्साह समस्त नगर मे तो फैला ही है, देवताओ तक जाकर पहुचा है । नर-नारी गाते-नाचते है, अप्सराये भी नाचती है और देवता बाजा बजाते है, यहा तक कि प्रसन्नता मे भर कर नद भी नाचते हैं । गौडीय वैष्णव पदो मे तो नद की मा भी नाचती हुई बताई गई है । दशरथ को नाचते हुए नही बताया गया है । नद और उनके भाइयो का हाथ फैला कर नृत्य करना चैतन्य देव का पार्षदो सहित नृत्य करने जैसा ही ज्ञात होता है । कृष्ण जन्म पर गोपी-ग्वाल दूध और दही लुढकाते और छिडकते है । इन सब से सबधित कुछ पद यहा दिए जा रहे है ।[2] जन्म समय के सस्कार करने का उल्लेख भी सब में मिलता है । तुलसीदास ने श्री राम के जन्म समय के जात-

(ग) लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले,
भाति भाति भरि भार ।
करहि गान करि आन राय की,
नाचहि राज दुवार ॥ (तुलसीदास, गी. व, बा २, पृ २७१)

१ (क) नंद गृह बाजत कहा बधाइ ।
जुरि आई सब भीर आगन में जन्मे कुवर कन्हाइ ।
सुनत चली सबे व्रजसुन्दरि कर लिये कचन थाल ॥
(परमानद दास, की र, पृ ८१)

(ख) दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लए ।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बदिन्ह बाकुरे बिरद बए ।
(तुलसीदास, गी. व, बा ३, पृ २७३)

२. (क) सजि आरती विचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि ।
गावत चलीं बधावन लैलै निज निज कुल अनुहारि ॥
(तुलसीदास, गी. व, बा २, पृ २७०)

(ख) सहेली सुनु सोहिलो रे ।

. . .

नृत्य करहि नट नटी, नारि नर अपने अपने रग ।
मनहुं मदनरति विविध वेष धरि नटत सुदेस सुढग ॥
(तुलसीदास, गी व, बा २, पृ. २७१)

(ग) राम जन्म आनंद बधाई ।

. . . . .

अन्तरिक्ष जन फिरत अवनी पर
मेलत परस्पर दूब बधाई ।
भीर गंभीर नाचे नर नारी
बाजे बहुत गिने नहीं जाई ॥ (अग्रदास, की स., भाग चौथो, पृ १९५)

(घ) आज नदराय के पूत भयो ।
करो बधायो मन को भायो उर को शूल गयो ॥

. . . . . .

मंगल चार करत भवनन में आइ सकल व्रजबाल ।
गावत आइ गीत गोपी सब नाचत आये ग्वाल ॥
(विठ्ठल गिरिधर, की र, पृ ९७)

कर्म, छठी इत्यादि सबधी उत्साह और सजावट इत्यादि का अपेक्षाकृत अधिक वर्णन

(ड) आज ब्रज भयो सकल आनद ।

नाचत तरुनी और गोप सब प्रगटे गोकुल चद ।
विविध भात बाजे बाजत हैं निगम पढत द्विज छद ।
छिरकत दूध दहीं माखन प्रफुलित मुख अरविंद ॥ (गोविंद, की र, पृ ६७)

(च) गावत गीत पुनीत करत जग जसुमति मदिर आई ।
वदन विलोकि वलैया ले ले देत असीस सुहाई ॥

तापाछें जन गोप ओप सो आये अतिसें सोहें । (नददास, की र, पृ ७३)

(छ) आज नदराय के आनद भयो ।
नाचत गोपी करत कुलाहल मगल चार ठयो । (परमानद दास, की र, पृ ७९)

(ज) सजि सजि जान अमर किन्नर
मुनि जानि समय सम गान ठए ।
नार्चाहि नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि
वरर्षाहि सुमन चए । (तुलसीदास, गी व, बा ३, पृ २७२)

(झ) आज सखी रघुनदन जाये ।

ब्रह्म घोष मिल करत वेद ध्वनि
जय जय दुदुभी देव वजाये ।
गुणि गधर्व चारण यश बोले भुवन
चर्तुदश आनद पाये ॥ (परमानद, की स, भाग बीजो, पृ १९७)

(ञ) आनदे आनद बढ्यौ अति ।
देवनि दिवि दुदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादवपति ।
विद्याधर-किन्नर कलोल मन, उपजावत मिलि कठ अमित गति ।
गावत गुन गधर्व पुलकि तन, नार्चात सब सुर-नारि रसिक अति ॥
(सूरदास, सू सा, १०१६, पृ २५९)

(ट) स्वर्गे दुदभी बाजे नाचे देवगण ।
हरि हरि हरि ध्वनि भरिल भुवने ॥
ब्रह्मा नाचे शिव नाचे और नाचे इन्द्र ।
गोकुले गोयाला नाचे पाइया गोविंद ॥
नदेर म दिरे गोयाला आइल धाइजा ।
हाते लडि काधे भार नाचे थैया थैया ।
दधि दुग्ध घृत घोल अगने ढालिया ।
नाचे रे नाचे रे नद गोविंद पाइया ॥ (शिवाई, प क त, पद ११२३)

किया है। वैदिक रीति की गई एवं लोक रीति की गई, यह कहा है।[1] राम और कृष्ण के जात-कर्म संस्कार का उल्लेख भी मिलता है।[2]

जन्म-लीला सम्बन्धी पदों की संख्या हिन्दी वैष्णव साहित्य में अपेक्षाकृत अधिक है। बंगाल में तो गिनती के कुछ थोड़े ही से पद प्राप्त हैं जो प्राय सब ही शिवराम दास या शिवाई रचित हैं। हिन्दी में प्राय सब बड़े बड़े पदकर्ताओं के इस संबंध में बनाए हुए पद प्राप्त हैं। सूर, नंददास, परमानंद, गोविंद, विट्ठल, गिरिधरन, माधोदास, रसिक, रामराय, भगवानदास इत्यादि नाम से कीर्त्तन-संग्रह में कई सौ पद प्राप्त हैं परंतु पदकल्पतरु में केवल छ पद ही संगृहीत हैं।

२ जन्म-लीला (चैतन्य, विट्ठल और वल्लभ सम्बन्धी)—चैतन्य, वल्लभ और विट्ठल जन्म संबंधी पदों में भाव-साम्य बहुत है। इन पदों में उसी प्रकार के उत्साह और उत्सवों का वर्णन है जैसा राम-कृष्ण के जन्मों का है। इनके जन्म होने पर देवता फूल बरसाते हैं, दुंदुभी बजाते हैं, विमान पर चढ़ कर दर्शन करते हैं। नारियों के साथ धरती पर और मनुष्यों में मिलकर देवगण इन लोगों के बाल रूप का दर्शन करते हैं। जन्म होने पर इन लोगों के नगरवासी उत्साह मनाते हैं। घर घर बंदनवारें बंधती हैं, बाजे बजते हैं और स्त्रियां गाती-बजाती हुई मंगल द्रव्य ले कर चलती हैं। इन के पिता दान देते हैं, ब्राह्मण आशीष देते हैं। यह समस्त भावनायें राम-कृष्ण जन्म-लीला संबंधी पदों में पाई जाती हैं। ये पद भी उन समस्त अलौकिक भावनाओं से युक्त हैं जो रामकृष्ण जन्म-लीला पदों में पाई जाती

(ठ) जय जय ध्वनि व्रज भरिया रे।
उपनंद अभिनंद, सनन्द नंदन नंद।
पंच भाइ नाचे बाहु तुलिया रे।
यशोधर यशोदेव सुदेवादि गोप सब
नाचे नाचे आनंदे भुलिया रे।
नाचे रे नाचे रे नंद, संगे लैया गोप-वृंद।
हाते लाठि कांधे भार करिया रे॥
नंदेर जननी नाचे वरीयसी बुढ़िया रे॥ (शिवाई प क त, पद ११३२)

१ गीतावली, पद, बा २, ३, ४, ५ तथा ६

२. (क) जात कर्म करि, पूजि पितर सुर दिये महिदेवन दान।
(तुलसीदास, गी. व, बा २, पृ. २७०)

(ख) जात करम करि कनक बसन, मनि भूषित सुरभि समूह दए।
(तुलसीदास, गी व, बा ३, पृ २७२)

(ग) व्रज में घर घर बजत बधाइ।
. . . . .
ज्ञातिकर्म करि रीति जुगति सों नालछेदन बनाइ॥
(माधोदास, की सं., भाग १ पृ ५)

(घ) आयल वंदिगण ब्राह्मण सज्जन।
करतहि जात वैदिके॥ (शिवरामदास, प क त, पद ११२८)

है, जैसे देवताओ का उत्साह और उत्सव मनाना। पिताओ के दान देने का अत्युक्ति पूर्ण वर्णन भी है। राम के पिता राजा थे। तुलसी ने उनसे जिस प्रकार मुक्त-हस्त होकर दान दिलवाया है, वह सभव है। परतु पुरन्दर मिश्र, लक्ष्मण और वल्लभ ने भी उसी प्रकार दान दिए है। इन सब भावनाओ के कुछ पद दिए जा रहे है।[1]

बाल-लीला

हिन्दी वैष्णव पदावली साहित्य मे कृष्ण की बाल-लीला मे सबधित पदो की सख्या

---

१ (क) अम्बरे अमर सबे भेल उनमुख।
लभिवे जनम गोरा जावे सब दुख।
शख दुदुभि वाजे परम हरिषे।
जय ध्वनि सुरकुल कुसुम वरिषे॥ (जगनाथदास, गौ प त, २।१।१)

(ख) श्री विट्ठल नाथ प्रगटे आय।

विविध वाजे वाजत चहू दिश आनद उर न समाय।
कुसुम वरखत नभ सुरनते जय जय शब्द सुहाय॥
(चतुर्भुज, की स, भाग बीजो, पृ १५३)

(ग) आज जगती पर जय-जयकार।
प्रकट भये श्री वल्लभ पुरुषोत्तम वदन अग्नि अवतार।

दुदुभी देव बजावत गावत सुरवधु मगल चार॥
(गिरिधर, की स, भाग बीजो, पृ २०२)

(घ) ग्रहणेर अधकारे, केह ना चिह्ने कारे, देव-नरे हैल मिशामिशि।
नदीया-नागरी सगे, देवनारी आसि रगे, हेरिछे गौराग-रूपराशि॥
(वासुदेव, गौ प त, २।१।३)

(ङ) नदीया पुरनारी, आइसे सारि सारि, लइया थारि भरि द्रव्य बहु।
सुसज्जे सुर प्रिया, मानुषे मिशाइया, बालके निरखिया थिर नहु॥
(नरहरि, गौ. प त., २।१।२४)

(च) श्री वल्लभ गृह आज बधाई।
जय जय शब्द होत व्रज बीथन घर घर आनन्द माई।
मगल कलश चली ले भामिनि मोतिन माग भराई।
हरद दूध अक्षत रोरी जहा तहा तें ले धाई॥
(केशवदास, की. स, भाग बीजो, पृ. १२३)

(छ) झुण्डन गावत हैं व्रजनारी।
नवसत साज श्रृगार कनक तन पहेरें झूमक सारी।
कचन थार लियें जु कमल कर, मगल साज सवारी॥
(रसिकदास, की. स, भाग बीजो, पृ २१९)

अपेक्षाकृत अधिक है। गौडीय वैष्णव पदावली मे बाल-लीला का वर्णन करने वाले पद अपेक्षाकृत अल्पसख्यक है। प्राप्त पदो मे सोलहवी शती के कवियो की रचनाएँ भी है और सत्रहवी-अठारहवी शती के कवियो की भी। सत्रहवी-अठारहवी शती के कवियो के पद सख्या मे सोलहवी शती के कवियो के पदो से अधिक है। उनमें कृष्ण की बाल-लीलाओ का जो वर्णन है, वह सोलहवी शती के बाल-लीला सबधी हिन्दी पदो से अधिक साम्य रखते है। हिन्दी के वैष्णव भक्तो ने कृष्ण की बहुत सी बाल-लीलाओ का वर्णन बडी तन्मयता से किया है। सूरदास के उन पदो मे जिनमे बाल कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है, वात्सल्य-भाव रस की सीमा तक पहुँच गया है। उनका यह वर्णन अत्यत स्वाभाविक है और बच्चो की क्रीडाओ और कार्यों के अत्यत सूक्ष्म निरीक्षण से युक्त है। हिन्दी के कवियो ने राम-कृष्ण का पालना झूलना, घुटनो चलना, पैरो चलना, आगन मे खेलना इन सबका वर्णन किया है। बाल कृष्ण की इन लीलाओ का वर्णन गौडीय वैष्णव पदावली में नही है। बाल कृष्ण की नित्य लीला को दर्शाने वाले दो-तीन पद बगाली मे भी उपलब्ध है।[1] ऊपर बताई अन्य बाल-क्रीडाओ से सबधित कुछ हिन्दी पद भी आगे दिए जा

---

१. (क) नाचत मोहन नददुलाल ।
बकिम चरणे, मजिर घन बाजत, किकिणी ताहि रसाल ।

.. .. .

मा मा मा बलि, चाद-वदन तुलि, नवीन कोकिला जेन बोले।
शुनि जशोमति माइ, आहा मरि मरि जाइ, बाहु पसारिया निल कोले।
मुखानि मुछिया राणी, चुम्ब देइ मुखखानि, वशी भासे आनन्द हिलोले॥
(वशीवदन, फी प, पृ २२२)

(ख) धातु प्रवाल-दल, नव गुजा फल, व्रज-बालक सगे साजे।
कुटिल कुन्तल वेढ़ि, मणि मुकुता शरि, कटितटे घुंगुर बाजे॥
नाचत मोहन बाल गोपाल ।
बरज बधू मेलि, देओइ करतालि, बोलइ भालि रे भाल।
नंद सुनन्द, यशोमति रोहिणि, आनन्दे सुत-मुख चाय।
अरुण दृगंचल, काजरे रंजित, हासि हासि दशन देखाय॥
वंशि कहइ सब, व्रज रमणीगण, आनन्द-सायरे भास।
हेरइते परशिते, लालन करइते, स्तन-गिरे भीगल बास॥
(वंशीवदन, प क. त, पद ११५४)

(ग) भाल नाचे रे नाचे रे नन्द-दुलाल।
व्रज-रमणीगण, चौदिगे बेढल, यशोमति देइ करताल॥..
हेरइते अखिल, नयन मन भूलये, इह नव-नीरद-कान्ति।
फरे फरि माखन, देह रमणिगण, खाओइ नाचइ रगे॥
(वंशीवदन, प क त, पद ११५६)

रहे है ।[1]

चलना—कृष्ण ऊधम करते है । मा उन्हे चुप कराने के यत्न करती है । उन्हे गोद में लेकर चन्द्रमा दिखाती है । बालक कृष्ण चद्रमा मागने लगते है । उन्हे थाली में पानी भर कर

---

१. (क) जसोदा हरि पालनै झुलावै ।
हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ-सोइ कछु गावै ॥
मेरे लाल कौं आउ निदरिया, काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे नहि वेगिहि आवै, तोकौं कान्ह बुलावै ॥
कबहुँ पलक हरि मूदि लेत है, कबहु अघर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि, करि सैन बतावै ॥
इहि अतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मघुरै गावै ।
जो सुख सूर अमर-मुनि दुरलभ, सो नद-भामिनि पावै ॥
(सूरदास, सू. सा, १०।४३ पृ २७६)

(ख) अपने बाल गोपाल रानी जू पालने झुलावै ।
वारम्वार निहारि कमल मुख, प्रमुदित मगल गावे ॥
लटकन भाल, भृकुटि मसि विदुका, कठुला कठ बनावे ।
सद माखन मघु सानि अघिक रुचि अगुरिन करके चटावे ॥
कबहुक सुरग खिलोना ले ले नाना भाति खिलावे ।
देखि देखि मुसिकाय सावरो, द्वै दतिया दरसावे ॥
(चतुर्भुजदास, की र, पृ ९५)

(ग) पौढिये लालन, पालने हौं झुलावौं ।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भवर भुलावौं ॥
बाल-विनोद-मोद-मजुल मनि किलकनि खानि खुलावौं ॥
(तुलसीदास, गी व, बा १५, पृ २८२)

(घ) घुटुरुनि चलत स्याम मनि-आगन मातु-पिता दोउ देखत री ।
कबहुक किलकि तात-मुख हेरत, कबहु मातु-मुख पेखत री ॥
(सूरदास, सू सा, १०।९८, पृ २९४)

(ङ) दोउ भैया घुटुरुवन चलत ।
हरत दुख ब्रज भूमि को दे मोद दैत्यन दलत ॥
अलक बिथुरे वदन मृगमद तिलक सोहे भाल ।
दृगन अजन भौह विदुका अघर रसत रसाल ॥
(रसिकदास, की स, भाग १, पृ १५५)

(च) आंगन फिरत घुटुरुवनि धाए ।
नील-जलद-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए ॥
बघुक-सुमन-अरुन पद-पकज अकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए ।
(तुलसीदास, गी व, बा पृ. २८७)

चन्द्रमा का प्रतिविम्व दिखाती है और उनको वहलाया जाता है। वाल कृष्ण की छोटी-सी-छोटी क्रीडा और लीला को देख कर यशोदा विभोर हो जाती है, नद को वुलाकर

(छ) चलन चहत पाइनि गोपाल।
लए लाइ अँगुरी नँद रानी, सुन्दर स्याम तमाल।
डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नँदलाल॥
(सूरदास, सू सा., १०।११४, पृ. ३००)

(ज) सिखवति चलनि जसोदा मैया।
अरवराइ कर पानि गहावत, डगमगाइ धरनी धरें पैया॥
(सूरदास, सू. सा, १०।११५, पृ. ३००)

(झ) मनिमय आगन नन्द कं, खेलत दोउ भैया।
गौर-स्याम जोरी वनी, वलराम कन्हैया॥

.. .. ..

नील-पीत पट ओढनी देखत जिय भावै।
वाल विनोद अनन्द सौं सूरज जन गावै॥
(सूरदास, सू सा., १०।११६, पृ. ३००)

(ञ) आगन खेलें नन्द के नन्दा।
जदुकुल-कुमुद-सुखद-चारु-चन्दा॥
संग-संग वल-मोहन सोहें।
सिसु-भूषन भुव कों मन मोहें॥ (सूरदास, सू. सा, १०।११७, पृ. ३०१)

(ट) आगन खेलत आनंद-कन्द।
रघुकुल कुमुद सुखद चारु चंद॥
सानुज भरत लपन संग सोहें।
सिसु-भूषन भूपित मन मोहें॥
(तुलसीदास, गी व, वा. २८, पृ. २९०)

(ठ) आगन स्याम नचावहीं, जसुमति नन्दरानी।
तारी दै-दै गावहीं, मधुर मदु वानी॥
पाइनि नूपुर वाजई, कटि किंकिनि कूजै।
नान्हीं एडियनि अरुनता, फल-विम्व न पूजै॥
(सूरदास, सू सा, १०।१३४, पृ ३०६)

(ड) ह्वै हो लाल कवहिं वड़े वलि मैया।
राम लपन भावते भरत रिपुदवन चारु चार्‌यो भैया।
(तुलसीदास, गी. व, वा ८, पृ. २७८)

(ढ) पगनि कव चलिहौ चारौ भैया?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सव कहनि सुमित्रा मैया॥
(तुलसीदास, गी. व, वा. ९, पृ २७८)

दिखाती है।[1] इन सबसे संबंधित पद हिन्दी में उपलब्ध हैं पर बंगला में नहीं हैं। कृष्ण की इस प्रकार की लीलाओं का वर्णन तो नहीं है परन्तु "गौरांग चैतन्य देव" की इस प्रकार की बाल-लीलाओं में संयुक्त पद मिलते हैं। बालक गौरांग चलना सीखते हैं, उसी प्रकार मा

(ण) छगन-मगन अगना खेलिहौ मिलि ठुमुक ठुमुक कब धैहौ।
फलबल बचन तोतरे मंजुल कहि 'मा' मोहि बुलैहौ॥
(तुलसीदास, गी. ब, बा ८, पृ २७८)

(त) जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै, कब धरनी पग द्वैक धरै॥
कब द्वै दांत दूध के देखौं, कब तोतरे मुख बचन झरै॥
कब नदहि बाबा कहि बोलै, कब जननी कहि मोहि ररै॥
कब मेरो अंचरा गहि मोहन, जोइ-सोइ कहि मोसौं झगरै॥
कब धौं तनक-तनक कछु खैहै, अपने कर सौं मुखहि भरै।
कब हंसि बात कहैगो मोसौं, जा छवि तै दुख दूरि हरै॥
(सूरदास, सू सा, १०।७६, पृ २८६)

१. (क) ठाढी अजिर जसोदा अपनै,
हरिहि लिए चन्दा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउ तुम्हारी,
देखौं धौं भरि नैन जुडावत॥

• ••

मन हीं मन हरि बुद्धि करत है,
माता सौं कहि ताहि मगावत।
लागी भूख, चन्द मैं खैहौं,
देहि देहि रिस करि विरुझावत॥ (सूरदास, सू सा, १०।१८८, पृ. ३२५)

(ख) बार-बार जसुमति सुत बोधति,
आउ चन्द तोहि लाल बुलावै।

•

जल-पुट आनि धरनि पर राख्यौ,
गहि आन्यो वह चन्द दिखावै।
सूरदास प्रभु हंसि मुसुक्याने,
बार-बार दोऊ कर नावै॥ (सूरदास, सू. सा, १०।१९१, पृ ३२६)

(ग) मैया री मैं चन्द लहौंगो।
कहा करौं जलपुट भीतर को,
बाहर ब्योंकि गहौंगो॥
यह तौ झलमलात झकझोरत,
कैसै कै जु लहौंगो॥ (सूरदास, सू सा, १०।१९४, पृ ३२७)

की अँगुली पकड कर चलते हैं जैसे सूर के बाल-कृष्ण। वे नाचते हैं और उस समय उनकी किंकणी बजती है। आगन मे क्रीडा करते है। सूर के यशोदा के समान ही शची गौराग को दूसरे के घर जाकर खेलने से मना करती है। बालक गौराग चन्द्रमा मागते हैं और मक्खन मागते है। मा उन्हे प्रात काल जगाती हैं और वे दिन भर ऊधम करते है। व्रज की नारियो के समान ही नदिया की वृद्धायें और वृद्ध पुरुष बालक गौराग को देख कर सिहाते हैं। इन सब भावनाओ से सबधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे है।[1]

---

१. (क) मायेर अंगुलि धरि शिशु गौरहरि।
हाटि हाटि पाय पाय जाय गुडि गुडि॥
टानि लैञा मार हात चले क्षणे जोरे।
पद आध जाइते ठेकाड करि पडे॥
शचीमाता कोले लैते जाय धूलि झारि।
आखुटि करिया गोरा भूमे देय गडि॥
आहा आहा बलि माता मुछाय अंचले।
कोले करि चूमा देय वदने कमले॥
(वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।२।६)

(ख) शची ठकुराणी चारु छादे।
हाटन शिखाय गौराचादे॥
मृदु मृदु कहेन हासिया।
घर मोर अगुलि आसिया॥
शुनि सुखे नदीयार शशी।
मायेर अगुलि धरे हासि॥
धीरे धीरे उठिया दाडाय।
दुइ चारि पद चलि जाय॥
छाडिया अंगुलि पडे भूमे।
शची कोले लैञा मुख चूमे॥ (नरहरि, गौ प. त, २।२।१२)

(ग) गोरा नाचे शचीर दुलालिया।
चौदिके बालक मिलि, देइ घन करतालि,
हरि बोल हरि बोल बलिया। (वासुदेव घोष, गौ प त, २।२।३)

(घ) शचीर आंगिनाय नाचे विश्वम्भर राय।
हासि हासि फिरि फिरि मायेरे लुकाय॥
बयाने बसन दिया बले लुकाइनु।
शची बले विश्वम्भर आमि ना देखिनु॥
(वासुदेव घोष, की. प, पृ. २२३)

(ङ) वयस्य बालक सगे करि एक मेला।
पतियाछे गोराचांद संकीर्तन-खेला॥

मिट्टी खाना—बालक कृष्ण के नहाने, उस समय मचलने, रूठने इत्यादि और मक्खन चुराने की लीलाओ का सुन्दर वर्णन हिन्दी पदावली साहित्य मे मिलता है परन्तु बगाली पदावली मे प्राय नही ही है। कृष्ण के मिट्टी खाने और मुख खोल कर ब्रह्माड दिखाने का विवरण दोनो ही साहित्यो में मिलता है। बलराम अथवा बालकृष्ण के साथीगण कृष्ण को मिट्टी खाते देख कर यशोदा मा मे इस बात की शिकायत कर देते है कि हमारे सामने ही

चौदिके बालक बेडि हरि हरि बोले ।
आनन्दे विह्वल गोरा भूमे पडि बुले ॥
(लोचनदास, गौ प त, २।२।९)

(च) निमाइ चचल खेपा किछुक ना मानेगो
शुन एक दिवसेर कथा ।
मायेर अचले धरि फिरये अगने
गो आपनार छाया देखि तथा ॥
छाडिया अचल छाया-सहित खेलाय गो ।
ताहाते आछिल एक फणि । (नरहरि, गौ प त, २।२।३३)

(छ) शचीर दुलाल मनोरगे । खेले समवय शिशु सगे ॥
माझे गोरा शिशु चारि पाशे । नाचे आर मृदु मृदु हासे ॥
हाते हाते करे धराधरि । ताले ताले नाचे घुरि घुरि ॥
क्षणे घन देय करतालि । (मुरारि, गौ प त, २।२।४८)

(ज) आरे मोर सोणार निमाइ ।
आपनार घर छाडि, ना जावे परेर बाडी,
वसिया खेलावे एइ ठाइं ।
शिशुगण खेलाइते, आसिवे तोमार साते,
एथाइ राखिवे ता सवारे ॥
जखन जे चाओ तुमि, ताहा आनि दिव आमि,
किसेर अभाव मोर घरे ॥ (नरहरि, गौ प त, २।२।४४)

(झ) खेलन दूरि जात कत कान्हा ?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहि जानत नान्हा ॥
(सूरदास, सू सा, १०।२२०, पृ ३३५)

(ट) पूर्णिमा रजनी चाद गगने उदय ।
चाद हेरि गोरा चांदेर हरिष हृदय ॥
चाद दे मां बलि शिशु कांदे उमराय ।
हात तुलि शची डाके आय चांद आय ॥
ना आसे निठुर चाद निमाइ व्याकुल ।
कादिया धूलाय पडे हाते छिडे चुल ॥
(वासुदेव घोष, गौ प त, २।२।७)

अभी कृष्ण ने मिट्टी खाई है। इतना सुनते ही यशोदा जल्दी से माटी लेकर आती है। कृष्ण उन्हें देख कर मिट्टी फेंक देते है और मा के सामने झूठ कह देते है कि मैंने मिट्टी नही खाई। माता यशोदा कृष्ण की बात नही मानती। अत कृष्ण उन्हे मुह खोल कर दिखाते हैं। उस मुख के अन्दर उन्होने अपने विराट रूप का प्रदर्शन किया है। यशोदा ने उनके खुले मुख में अनन्त ब्रह्माड, रवि, शशि, सागर, पर्वत, नदी, नद, शेष, महेश सब देखे। यह देख कर यशोदा व्याकुल हो जाती है। जहा कृष्ण के मिट्टी खाने पर वे क्रुद्ध होकर कह रही थी कि घर में दूध मक्खन नही है क्या जो तुम मिट्टी खाते हो, वहा वे सब क्रोध भूल कर आश्चर्य चकित रह जाती है, और कुछ भयभीत भी हो जाती है। कृष्ण के हाथ जोड कर वे व्याकुल होकर "यह क्या", "यह क्या" चिल्ला उठती है और उन्हे गोद मे उठा लेती है। उनकी समझ मे नही आता कि क्या हो गया। कृष्ण के मिट्टी खाने की लीला से सबधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे है।[1]

---

१. (क) तेजिया माखन सरे, तुलिया कमल करे, मृत्तिका मनेर सुखे खाय।
वलराम ता देखिया, जशोदा निकटे जाय्या, कहिला भाइयेर एइ कथा।
शुनि तवे जशोमती, आइला तुरित गति, गोपाल खाइछे माटि जथा॥
माय देखि माटि फेले, ना खाइ ना खाइ वोले, आघ आघ वदन दुलाय।
मुख निरखये राणी, धरिया युगल पाणि, मन-दुखे करे हाय हाय॥
ए खिर नवनी सर, किवा नाहि मोर घर, मृत्तिका खाइछ किवा सुखे॥
(उद्धवदास, प. क. त, पद ११४३)

(ख) वदन मेलिया गोपाल राणी पाने चाय।
मुख माझे अपरूप देखिवारे पाय॥
ए भूमि आकाश आदि चौद्द भुवन।
सुरलोक, नागलोक, नरलोकगण॥
अनंत ब्रह्माड गोलोक आदि जत धाम।
मुखेर भितर सब देखे निरमाण॥
शेष महेश ब्रह्मा आदि स्तुति करे।
नद जशोमती आर मुखेर भितरे॥
देखि नन्द ब्रजेश्वरी वचन ना स्फुरे।
स्वप्नप्राय कि देखिलुं हेन मने करे॥ (उद्धवदास, प क त, पद ११४४)

(ग) कोलेते करिया राणी निरखये मुख।
सुखेर सायरे डुवे पासरे सब दुख॥
मायेर कोलेते गोपाल मुख पसारिल।
ए भव-संसार सब ताहाते देखिल॥
इ कि इ कि वलि राणी हियार लइल।
स्वपन देखिल किवा वुझिते नारिल॥
(घनश्यामदास, प क त, पद ११४५)

फलवाली लीला—बालक कृष्ण भी अन्य समस्त बालकों के समान मा के दिए, घर में प्राप्य, भोज्य पदार्थों से सतुष्ट न रह कर अन्य वस्तुएँ बेचने वालों को बुलाते हैं। ब्रज में कोई फल बेचने वाली आई है। बालक कृष्ण के घर के पास आकर उसने "फल लो" "फल लो" कह कर टेर लगाई। कृष्ण उससे फल लेने दौडते हैं। बदले में उसे देने के लिए

(घ) माटी लै मुख मेलि दई हरि, तबहिं जसोदा जानी।
साटी लिए दौरि भुज पकर्‌यो, स्याम लगरई ठानी॥
लरिकन कौं तुम सब दिन झुठवत, मोसौं कहा कहौगे।
मैया मैं माटी नहिं खाई, मुख देखें निबहौगे॥
वदन उघारि दिखायौ त्रिभुवन, बनघन नदी-सुमेर।
नभ-ससि-रवि मुख भीतर हीं सब, सागर धरनी फेर॥
यह देखत जननी मन व्याकुल, बालक-मुख कहा आहि।

(सूरदास, सू सा, १०।२५३, पृ ३४६)

(ङ) मो देखत जसुमति तेरैं ढोटा,
अबहीं माटी खाई।
यह सुनि कै रिस करि उठि धाई,
बाहँ पकरि लै आई॥
इक कर सौं भुज गहि गाढ़ै करि,
इक कर लीन्हीं साटी।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया,
बेगि न उगिलै माटी॥
ब्रज-लरिका सब तेरे आगैं,
झूठी कहत बनाइ।
मेरे कहें नहीं तू मानति,
दिखरावौं मुख बाइ॥
अखिल ब्रह्मांड खंड की महिमा,
दिखराई मुख माहि।
सिन्धु-सुमेर-नदी-बन-पर्वत,
चकित भई मन चाहि॥
कर तै साटि गिरत नहिं जानी,
भुजा छाडि अकुलानी।
सूर कहै जसुमति मुख मूदौ,
बलि गई सारग पानी।

(सूरदास, सू सा, १०।२२५,३४६)

हाथो की अजुलि में भर कर अन्न ले आते हैं। वह अन्न फलवाली के पात्र में जाकर रत्नो में परिवर्तित हो जाता है। कृष्ण जैसे बालक को देखकर फलवाली मुग्ध हो जाती है। कृष्ण आनन्दपूर्वक फल खाते हुए चले जाते हैं। थोडे बहुत अन्तर से यह कथा दोनो ही पदावली साहित्यो मे प्राप्त हैं। इस सबध के पद तीन-चार ही हैं, अधिक नही।[1]

(च) देखो गोपाल जू की लीलाठाटी।

.. .. ..

ये सब ग्वाल प्रकट कहत हैं, श्याम मनोहर खाई माटी।
बदन उघार भीतर देख्यो, त्रिभुवन रूप बैराटी॥

(परमानन्द, की. सं., भाग १, पृ १४७)

(छ) गोपाल राइ चरनन हौं काटी।

.. .. ..

मधु मेवा पकवान छाडि कै,
काहे खात हौ माटी।
सिगरोइ दूध पियो मोरे मोहन,
बलहि न देहौं बाटी॥ (सूरदास, सू सा., १०।२५९)

१. (क) एक दिन मथुरा हैते, फल लैया आचम्बिते,
आइला से फल बेचिवारे॥
फल लेह फल लेह, डाके पुन पुन सेह,
नामाइला नन्देर दुयारे॥
ब्रज-शिशु शुनि ताय, फल किनिवारे धाय,
वेतन लइया परतेके॥
किनि किनि फल खाय, आनन्दित हियाय,
पसारि बेडिया एके एके॥
शुनि कृष्ण कुतूहली, धान्य लइया एकाजलि,
कर हैते पडिते पडिते॥
पसारि निकटे आसि, फल देओ बले हासि,
धान्य दिल फलाहारी हाते॥
धान्य लैया फलाहारी, पुन पुन मुख हेरि,
निमिष तेजिल पसारिणी॥
ए दास उद्धव कय, कहिले कहिल नय,
भुवनमोहन रूप खानि॥ (उद्धवदास, प क त, पद ११४८)

(ख) डाला हैल रतने पूरित।
फलाहारी सविस्मय-चित॥
आपना आपनि करे खेद।
मने मने भावे निरखेद॥ (प क त, पद ११४९)

गोष्ठ अर्थात् गोदोहन और गोचारण लीला—कृष्ण की गोदोहन और गोचारण लीला को गौडीय वैष्णव साहित्य में गोष्ठ का नाम दिया गया है। इस शीर्षक के अन्तर्गत 'पद-कल्पतरु' में कृष्ण की गोदोहन और गोचारण लीला सम्बन्धी पद सगृहीत हैं। हिन्दी और वगाली दोनो ही पदावली साहित्य में कृष्ण की इन लीलाओ मे सम्बन्धित पद मिलते हैं।

वगाली पदावली में कृष्ण के प्रथम गोदोहन पर वडा उत्साह दिखाया गया है। व्रजराज नद ने अपनी प्रजा को आदेश दिया कि गोष्ठ अर्थात् गोदोहन का साज करो। गोपिया सुनते ही उपहार इत्यादि लेकर नद के घर आईं। निमत्रण दे कर ब्राह्मण बुलाए गए। उनका सत्कार किया गया। उनकी आज्ञा पाकर राम-कृष्ण के हाथो में गोदोहन भाड दिए गए। उनके गोदोहन के लिए गोष्ठ में जाते समय बाजे बजे और यशोदा, रोहिणी, गोपिया इत्यादि मगल द्रव्यो सहित वहा गईं। राम-कृष्ण रत्न-जटित स्वर्ण पात्र लेकर स्वर्ण पीठ पर बैठे। नद धावली सावली दो गायें लाए। उन्हें दोनो भाइयो ने दुहा। तब बहुत उत्सव हुआ। फिर ब्राह्मण पूजे गए और सब को भोजन कराया गया।[1] हिन्दी पदावली में कृष्ण स्वय गोदोहन के लिए उत्सुक हैं और मा की विनती करके गाय दुहते हैं।

(ग) पक्व खजूर जम्बू वदरी फल लेहो काछन टेरो द्वार।
लरका यूथ सग वल मोहन, चोके करत विहार॥
सुन्दर कर जननी कीनो दोनों ले धाये तव नन्द कुमार।
हीरा रतनन पूरित भाजन ऐसे परम उदार॥
(गोविन्द, की. स, भाग ३, पृ ८५)

(घ) व्रज में काछनी बेचन आई।
आन उतारी नद गृह आगन ओडी फलन सुहाई॥
ले दौरे हरि फेट अजुली शुभ कर कुवर कन्हाई॥
डारत ही मुक्ता फल व्हे गये यशुमति मन मुसकाई॥
(परमानद, की स, भाग ३, पृ. ८५)

(ङ) कोऊ भाई आव बेचन आई।
टेर सुनत मोहन उठ दोरे भीतर भवन बुलाई
मैया मोहि आव ले देरी सग सखा बलभाई (परमानद, की स, भाग ३, पृ. ८५)

१. (क) डाकिया तखन, निज प्रजागण, आज्ञा दिल ब्रजराज।
वस्त्र अलकार, नाना उपहार, करह गोष्ठेर साज॥
शुनि गोपी जत, आनदित-चित, जौतुक थालीते भरि।
नदेर भवने, दिला दरशने, दिव्य वास भूषा परि॥
(चैतन्यदास, प क. त, पद ११७१)

(ख) नदेर मदिरे आजु बडई आनद।
राम-कृष्ण-हाते दिव गोदोहन-भाड॥
प्रभाते उठिया नद लैया गोपगण।
पात्र मित्र सहिते वसिला सभा-जन॥

टेढी-मेढी धार निकालते हैं जिसे देख कर नद प्रसन्न होते हैं। उत्सव इत्यादि कुछ नही होता।[1]

यत्न करि जतेक ब्राह्मण मुनि गणे।
आनाइला नंदघोष करि निमंत्रणे॥
... ...
मुनिगणे कहे शुन नद महामति।
आजि शुभ दिन हय शुक्लाष्टमी तिथि॥
पुत्र-हस्ते-देह गोदोहन-भाड आज। ..
(चैतन्यदास, प. क. त, पद ११७०)

(ग) परिया वसन, मणि अभरण,
गोष्ठेते चलिला हरि॥
नंद महामति, मुनिर संहति,
सभासद गणे लैया।
नाना वाद्य वाजे, मंगल सुसाजे,
गोष्ठे प्रवेशिला जाना॥
यशोदा रोहिणी, गोपिनी संगिनी,
मंगल-द्रव्य सहिते।
नाना उपहारे, वस्त्र अलकारे,
गोष्ठे हैला उपनीते॥
... ...
रत्न-पीठोपरि, वैसे राम हरि,
हैल महा कोलाहल।
स्वर्ण सूत्रे करि, छादनेर डुरि,
रत्नेर दोहन भांड। (चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७१)

(घ) तबे नंद शीघ्र आनाइला दुइ गाइ।
धवली गाउ वत्स सहित तयाइ।
.. . ..
दुइ गाई दुइ भाइ छांदने छादिया।
दोइन करिला गावी आनदित हैया॥ (चैतन्यदास, प. क. त., पद ११७२)

(ङ) आइला सकले, नदेर महले, नंद आनंदित-मन।
प्रथमे पूजिल, ब्राह्मण सकल, दिलेन अनेक धन॥
.. .. ..
नाना मिष्ट-अन्न, कराइ भोजन, विदाय करिला तवे॥
(चैतन्यदास, प. क. त, पद ११७३)

१. (क) धेनु दुहत हरि देखत ग्वालनि।
आपुन बैठि गए तिनकै संग,
सिखवहु मोहि कहत गोपालनि। (सूरदास, सू. सा, १०।४००, पृ. ३९६)

गोचारण के लिए सखाओ के सग वन जाने को कृष्ण अत्यन्त उत्सुक है। वे मा से जिद करते है कि मै गाय चराने जाऊगा।[1] मा उन्हे मना करती है कि तुम चलोगे कैसे! धूप में घूमने मे तुम कुम्हला जाओगे। तुम्हे डर लगेगा। परन्तु कृष्ण कहते है कि मुझे धूप नही लगती और न मै डरूगा।[2] मै अपनी गाय चराऊगा, प्रात काल होते ही मैं बलराम के सग चला जाऊगा और तेरे कहने से रुकूगा नही। और सब ग्वाल तो गाय चरायेंगे परन्तु मै बैठा रहूगा।[3] अत में यशोदा ने उन्हे अनुमति दे दी। प्रथम गोचारण दिवस पर यशोदा

(ख) मैं दुहिहौं मोहि दुहन सिखावहु।
फैसे गहत दोहनी घुटुवनि फैसे बछरा थन लै लावहु।
(सूरदास, सू सा, १०।४०१, पृ, ३९६)

(ग) तनक कनक की दोहनी दै-दै री मैया।
तात दुहन सीखन कह्यौ मोहि धौरी गैया॥
अटपटे आसन बैठि कै गोथन कर लीन्हौ।
धार अनतहीं देखि कै, ब्रजपति हसि दीन्हौ॥ (सूरदास, सू सा १०।४०९, पृ ३९८)

१. (क) गोठे आमि जाव मा गोठे आमि जाव।
श्री दाम सुदाम सगे बाछुरि चराव॥ (बलरामदास, प क त, पद १२१७)

(ख) आजु मै गाइ चरावन जैहौं।
वृदावन के भाति-भाति फल अपने कर मै खैहौ॥
(सूरदास, सू सा, १०।४११, पृ ३९९)

(ग) मैया री मैं गाय चरावन जैहौं।
तू कहि महरि नद बावा सौं बडो भयो न डरैहौ।
श्री दामा दे आदि सखा सब और हलधर सग लैहौं॥
(परमानददास, की स, भाग बीजो, प ८४)

२ (क) तेरी सौं मोहि घाम न लागत,
भूख नहीं कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत,
पर्यो आपनी टेक॥ (सूरदास, सू. सा १०।४११, पृ ३९९)

(ख) मैया हौं गाय चरावन जैहौं।
तू कहि महर नद बावा सौं,
बडो भयौ न डरैहौं। (सूरदास, सू. सा १०।४१२, पृ ३९९)

३ मै अपनी सब गाइ चरैहौं।
प्रात होत बल कै सग जैहौं,
तेरे कहे न रैहौं।

और ग्वाल सब गाइ चरैहे,
मै घर बैठौ रैहौं? (सूरदास, सू सा १०।४२०, पृ ४०२)

अत्यन्त प्रसन्न हैं। वे कृष्ण को सजाकर आरती उतारती हैं। उन्हें और समस्त व्रजवासियों को बड़ा उत्साह है। उनकी मंगलकामना के लिए ब्राह्मण बुलाए जाते हैं और मोतियों से चौक पूरा जाता है।[1] उनकी चिंता तो बलराम के आश्वासन से दूर हो गई है।[2] बंगाली पदावली में यशोदा कृष्ण की गोचारण की उत्सुकता को सुन कर बड़ी व्याकुल हो जाती है। सजल नेत्रों से कृष्ण की गाय चराने की इच्छा को सुनकर यशोदा अचेतन अवस्था में धरती पर

---

१. (क) गाय चरावन को दिन आयो।
फूलि फिरत यशोदा अंग अंग,
लालन उबट न्हवायो।
भूखन वसन विविध पहराये रोरी तिलक बनायो॥
विप्र बुलाय वेद ध्वनि कीनो मोतिन चोक पूरायो॥
(कुंभनदास, की सं, भाग बीजो, पृ ८४)

(ख) प्रथम गोचारन चले गुपाल।
जननी यशोदा करत आरती मोतिन पूरे थाल॥
राई लोंन उतारि यशोदा गोविंद बल बल जाय॥
(गोविंद, की सं, भाग बीजो, पृ ८४)

(ग) व्रजजन फूले अंग न समात॥
आज कहुं गये गौचारन आज्ञा दीनी तात।
मंगल कलश अलकृत गोपी यशोमति गृह उठि आई प्रात।
(परमानंद, की स, भाग बीजो, पृ ८५)

(घ) प्रथम गौचारन को दिन आज।
प्रातकाल उठि यशोदा मैया, कीनो है सब साज॥
विविध भात बाजे बाजत हैं रह्यो घोष सब गाज॥
(गोविंद, की स, भाग बीजो, पृ. ८५)

(ङ) गोविंद चले चरावन गैया।
हरखि हरखि कहे आजु भलो दीन कहत यशोदा मैया॥
उबट न्हवाय वसन भूषण सज विप्रन देत बधैया।
करि शिर तिलक आरती फिर फिर लेत बलैया॥
(चतुर्भुज, की. सं, भाग बीजो, पृ ८४)

२. बोलि लियौ बलरामहिं जसुमति।
लाल सुनौ हरि के गुन, काल्हिहिं तें लंगरई करत अति।
स्यामहिं जान देहि मेरैं संग, तू काहैं डर मानति।
मैं अपने ढिग तें नहिं टारौं, जियहिं प्रतीत न आनति।
हँसी महरि बल की बतिया सुनि, बलिहारी या मुख की।
जाहु लिवाइ सूर के प्रभु कौं, कहति बीरके रुख की॥
(सूरदास, सू सा. १०।४२५, पृ. ४०३)

लोट जाती हैं। वे बलराम से कहती हैं कि तुम कृष्ण को मत ले जाओ। वे अभी दूध पीते बालक हैं। वह मेरा वस्त्र पकड़ कर साथ-साथ घूमते रहते हैं। दिन भर में दस बार खाते हैं। न जाने कितने जन्मों के कर्म से और हर-गौरी पूजन से ये कृष्ण मिले हैं। अब यह दुधमुहा कुंवर वन जायगा तो मैं कैसे धीरज रखूंगी? वह तो घर से बाहर जाने पर राह भूल जाता है। यशोदा मुह ढाक कर रोती हैं। वे दुःख करती हैं कि विधाता ने गोप जाति में जन्म दिया है और गोधन पालन की वृत्ति दी है अत कृष्ण को वन भेजना पड़ रहा है। वे रो कर और कातर हो कर कृष्ण को सजाती हैं और उनकी रक्षा के लिए सब देवताओं से प्रार्थना करके उन्हें बलराम को सौंपती हैं। उन्हें कृष्ण की देखभाल करने को बार-बार कहती हैं। इन भावनाओं से सबधित कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं।[1] यह सब सुन कर बलराम यशोदा को आश्वासन देते हैं और कहते हैं कि मेरे हाथ में उन्हें सौंप दो, मैं उन्हें

---

१. (क) गोपालेर कथा शुनि, सजल नयने राणी,
अचेतने धरणी लोटाय ॥
चचल बाछुरि सने, कैमने धाइबा वने,
कोमल दुखानि रागा पाय।
विप्रदास घोषे बले, ए वयसे गोठे गेले,
प्राण कि धरिते माय ॥ (विप्रदास, प क त, पद ११७५)

(ख) बलराम तुमि नाकि आमार प्राण लैया, वने जाइछ।
जारे चियाइया, दुग्ध पियाइते नारि,
तारे तुमि गोठेरे साजाइछ ॥
वसन धरिया हाथे, फिरे गोपाल साथे साथे,
दडे दडे दश बार खाय।
ए हेन दुधेर छाओयाल, वनेर विदाय दिया,
दैवे मरिबे बुझि माय ॥
कत जन्म भाग्य करि, आराधिया हर गौरी,
ताहे पाइलाम ए दुःख-पासरा।
कैमने धैरज धरे, माय कि बलिते पारे,
वने जाउक ए दुग्ध-कोङरा।
छाओयाले छाओयाले खेले, घर जाइते पथ भुले,
दुटि हात मुखे दिया कादे ॥ (वंशीदास, प क त, पद ११७७)

(ग) निकटे गोधन राख्य, मां बल्या शिगाय डाक्य,
घरे थाकि शुनि जेन रव।
विहि कैले गोप-जाति, गोधन-पालन वृत्ति,
तेञि वने पाठाइ जादव (बलरामदास, प क त, पद १२१८)

(घ) विपिन गमन देखि, हैया सकरुण आखि,
कांदिते कांदिते नवराणी।

सध्या समय वापस ले आऊगा । मै उन्हे गोचारण सिखाऊगा। इनका गोप कुल मे जन्म है, अत ये घर नही बैठ सकते । परतु यशोदा को प्रबोध नही होता ।[1]

गोपालेरे कोले लैया, प्रति-अंगे हात दिया,
रक्षा-मत्र पड़ये आपनि ॥
ए दुखानि रागा पाय, ब्रह्मा राखिबेन ताय,
जानु रक्षा करु देवगण ।
कटि तट सुजठर, रक्षा करु यज्ञेश्वर,
हृदय राखुन नारायण ॥
भुज जुग नखागुलि, रक्षा करु वनमाली,
कठा मुख राखु दिनमणि ।
मस्तक राखुन शिव, पृष्ठ देश हय ग्रीव,
अध ऊर्ध्वं राखु चक्रपाणि ॥
जले स्थले गिरि वने, राखिबेन जनार्दने,
दश दिगे दश दिकपाल । (माधवदास, प. क. त, पद ११८२)

(ड) श्रीदाम सुदाम दाम, शुन ओरे बलराम,
मिनति करिये तो सभारे ।
वन कति अति दूर, नव तृण कुशांकुर,
गोपाल लैया ना जाइह दूरे ॥
सखागण आगे पाछे, गोपाल करिया माझे,
धीरे धीरे करिह गमन ।
नव तृणाकुर आगे, रागा पाय जानि लागे,
प्रबोध ना माने मोर मन ॥ (बलरामदास, प. क त, पद १२१८)

१. नंदराणि गो मने ना भाविह किछु भय ।
बेलि-अवसान काले, गोपाल आनिया दिब,
तोर आगे कहिलु निश्चय ।
सोंपि देह मोर हाते, आमि लैया जाब साथे,
जाचिया खाओयाब खीर ननी ।
आमरा जीवन हैते अधिक जानिये गो,
जीवनेर जीवन नीलमणि ॥
सकाले आनिब धेनु, बाजाइब शिगा वेणु,
गोचारण शिखाइब भाइयेरे ।
गोप कुले उतपति, गोधन-चारण वृत्ति,
बासिया थाकिते नाइ घरे ॥
शुनिया बलाहर कथा, मरमे पाइया बेथा,
धारा बहे अरुण नयाने ॥ (शिवानंद, प क त., पद ११७८)

यशोदा का चाहे कुछ हाल रहा हो, कृष्ण तो ग्वाल-बाल के साथ बड़े उत्साह से गोचारण के लिए वन गए। वहां जाकर वे सब गउओं को चरने के लिए छोड़ कर खेल-कूद में लग गए। सन्ध्या होने पर चारों ओर छिटकी हुई गउओं को कृष्ण वंशी द्वारा जमा कर लेते हैं और वे सब ग्वाल बालों सहित घर लौट आते हैं। घर आने पर यशोदा उन्हें देख कर आदर और लाड प्यार करके भोजन कराती हैं।[1] वन-गोचारण और वन-

---

१. (क) प्रणति करिया माय, चलिला जादव राय,
आगे पाछे धाय शिशु गण।
घन बाजे शिगा वेणु, गगने गोखुर-रेणु,
शुनि सभार हरषित मन॥
नवीन राखाल सब, आवा आवा कलरव,
शिरे चूडा नटवर-वेश।
आसिया जमुना-तीरे, नाना रगे खेला करे,
कत कत कौतुक विशेष॥
केहो जाय वृष-छादे, केहो कारो चडे कांधे,
केहो नाचे केहो गान गाय। (माधवदास, प क त, पद ११८३)
ए दास माधव बले, कि शोभा जमुना-कूले,
राम कानाइ आनन्दे खेलाय॥

(ख) आजि बड गोकुलेर रग राजपथे।
गोधन चालाआ सभे चलिला एक साथे॥
चारि दिके सब शिशु मध्ये राम कानु।
काचनी पाचनी कारु हाते शिगावेणु॥ (ज्ञानदास, प क त, पद ११९०)

(ग) गोपाल माई कानन चले सवारे।
छीके कांध बांध दधि ओदन गोधन के रखवारे॥
प्रात समय गोरभन सून कें गोपन पूरे शृग।
बजावत पत्र कमल दल लोचन जानो उठ चले भृग॥
(परमानद, की स, भाग बीजो, पृ ८४)

(घ) प्रथम गौ चारन को दिन आज।
विविध भांत बाजे बाजत हैं रह्यो घोष सब गाज।
गावत गीत मनोहर बानी तज गुरु जन की लाज॥
लरिका सकल सग सकर्षण वेणु बजाय रसाल।
(गोविंद, की. स, भाग बीजो, पृ ८५)

(ङ) सब सहचर सने वेणु बाजाओये।
प्रेमहि कोइ कानु-गुण गाओये।
कोइ कोइ निरखये कानुक मुख।
खेलइ कोइ ततहु मन सुख॥
कोइ चक्रावत लगुड फिराय।
काहुक कांधे कोइ चढि जाय॥ (मोहन, प क त, पद १२०२)

विहार लीला के साथ ही "यज्ञ-पत्नी भोजन" लीला भी दोनो साहित्यो में मिलती है। याज्ञिक ब्राह्मणो से कृष्ण ने भोजन मगाया परतु उन्होने दिया नही। कृष्ण ने फिर उनकी पत्नियो के पास सदेश भेजा। उन्होने भोजन भेजा और स्वय भी लेकर आई।[1] कुछ पद नीचे दिए जा रहे है।

गोवर्धन लीला—कृष्ण के गोवर्धन धारण करने की कथा भी दोनो पदावली-साहित्यो में प्राप्त है। कृष्ण ने नद को और व्रजवासियो को इन्द्र पूजा की तैयारी करते देखा परतु उन्होने यह पूजा न करने की राय दी। इन्द्र-पूजा के स्थान पर गोवर्धन पूजा करने को कहा। नद इत्यादि ने उनकी बात मान ली और वे सब नाना प्रकार के व्यजन बना कर गोवर्धन पर्वत पर गाते बजाते पहुचे। सब ने भोग अर्पण किया। कृष्ण ने अपना एक स्वरूप गोवर्धन पर प्रकट किया और सब का भोग खाया। व्रजवासी साक्षात् गोवर्धन देव का दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए। गोवर्धन देव ने उन्हें आशीर्वाद भी दिया। सब लोग प्रसन्न होकर लौट आए। देवराज इन्द्र को जब यह समाचार मिला कि व्रज मे उनकी पूजा नही हुई, तब वे बडे क्रुद्ध हुए। उन्होने बादलो को वर्षा करके व्रज को बहा देने के लिए भेजा। मेघ आए, कुछ देर के लिए व्रज में कुहराम मच गया। कृष्ण ने गोवर्धन को उठा कर हाथ पर रख लिया और व्रज की रक्षा की। बादल हार कर चले गए, तब इन्द्र ने आकर क्षमा याचना

(ट) चरावत वृंदावन हरि धेनु।
ग्वाल सखा सब संग लगाए, खेलत है करि चैनु॥
कोउ गावत, कोउ मुरलि बजावत, कोउ विषान, कोउ बेनु।
कोउ निरतत कोउ उघटि तार दै, जुरी व्रज-बालक सेनु॥
(सूरदास, सू. सा, १०।४४८, पृ ४१५)

(ठ) गोरज रंजित बदन देखीयत।
.. ..
मात यशोदा करत आरती अचलवार फेरि पुलकीत तन।
वन सिंगार बड़ो करि हितसों करत प्यार बेठे गोद।
बिंदु परत तब पोछत जशोमती कर मनुहार लीवावत मोद॥
(द्वारकेश, की सं, भाग बीजो, पृ ८७)

(ड) नंद-दुलाल बाछा यशोदा-दुलाल।
.. ..
रतन प्रदीप लैया आइला नदराणी।
एकदिठे देखे रागा चरण दुखानि॥
नेतेर आंचले राणी मोछे हात पा।
तोमार मुखेर निछनि लैया मरि जाउक मा॥
(बलरामदास, प. क त, पद १२१०)

१. (क) अथ यज्ञपत्नी भोजन (प. क. त, पद १२३२, ११३३, ११३४)
(ख) सू सा, पृ. ५३८—५४२

की। कृष्ण ने गोवर्धन उतार कर रख दिया और सब ने कृष्ण की प्रशंसा की। माता यशोदा कृष्ण को पर्वत उठाए देख व्याकुल हो रही थी, अब उन्होंने आश्वस्त होकर आदर प्यार किया।[1] इतनी कथा हिन्दी पदावली में अत्यन्त विस्तार से दी है। परन्तु बंगला पदावली

---

१. (क) गाओ रे गाओ रे सुखे कृष्णेर चरित।

एक दिन ब्रजे, इन्द्र-पूजा काजे, साजे गोप गोपी जत।
जानिया कारण, नंदेर नंदन, कहेन आपन मत॥
शुन ब्रजराज, गोपेर समाज, ना पूज देवेर राजा।
मोर लय मने, गिरि गोवर्धने, सावधाने कर पूजा॥

(कृष्णदास, प क. त, पद १२४३)

(ख) हमारी बात सुनो ब्रजराज।
सुरपति को बलि भाग न दीजे पूजे यह गिरिराज।

(सूरदास, की स, भाग बीजो, पृ ६८)

(ग) बार बार हरि सिखवन लागे बोलत अमृत बानी।
सुनहो एक उपदेश हमारो चार पदारथ दानी॥
मेरो कह्यो बेग अब कीजे दूध भात घृत सानी।
गोवर्धन की पूजा कीजे गोधन के सुखदानी॥

(परमानंद, की स, भाग बीजो, पृ ५६)

(घ) कृष्णेर आदेश पाञा, इन्द्र यज्ञ निवारिया, नंद आदि जत गोपगण।
नाना उपहार लैया, सकले एकत्र हैया, आइलेन जथा गोवर्धन।
सहस्र सहस्र जन, राधे अन्न व्यंजन, एक ठाञि लैया करे राशि॥
दधि-दुग्ध-सरोवर, रोटी-राशि थरे थर, हरिषे साजाय ब्रजवासी॥
श्रीकृष्णेर अभिमत, पाक कैल बहुमत, सूपात पायस शिखरिणी॥

. ..

नाना वाद्य बाजे कत, नर्तकी नाचये शत, सहस्र-सहस्र लोके गाया।

(माधवदास, प क त, पद १२४९)

(ङ) हमारो कान्ह कहे सो कीजे।
आवो सिमिट सकल ब्रजवासी पर्वत को बलि दीजे॥
मधु मेवा पकवान मिठाइ षड्रस व्यंजन लीजे।

(आसकरन, की स, भाग बीजो, पृ ५७)

(च) ब्रज घर घर सब भोजन साजत।
सब के द्वार बधाई बाजत॥

.. ..

दधि लोंनी मधु साज मिठाई।
कहां लग कहों सबे बहुताई (सूरदास, की. स, भाग बीजो, पृ ३९)

में यह अत्यन्त संक्षिप्त रूप से है। हिन्दी के पदो में गोवर्धन पूजा के लिए बनाई गई भोजन-सामग्री की लम्बी सूची है। मेघो के गर्जन-तर्जन, और वर्षा का भी विशद वर्णन है परतु बगला पदावली में ऐसा नही है। उसमे गोवर्धन लीला सम्बन्धी पद बहुत कम है।

बाल-कृष्ण की इतनी ही लीलाये बगला पदावली में मिलती हैं। हिन्दी पदावली में जो 'माखन चोरी लीला', 'चीर हरण लीला' और 'असुर नाश' की लीलायें पाई जाती हैं इनका बगला पदावली में अभाव है। गौडीय वैष्णव समाज कृष्ण के शक्ति रूप का उपासक नही है, कदाचित् इसी कारण उनके असुर-निकदन रूप से की गई तृणासुर, अघासुर, बकासुर, पूतना इत्यादि के वध की लीलाओ का गान भी वैष्णव कवियो ने नही किया। बाल कृष्ण की जिन लीलाओ का वर्णन बगाली पदो में है, उन सब के समानातर चैतन्य-लीलाओं का वर्णन अवश्य पाया जाता है। इन पदो मे चैतन्यदेव भी गोचारण, गोदोहन,

---

(छ) इक आवत घरतें चल धाई।

.. ..

कोऊ गावत, कोऊ नृत्यत आवें।
स्याम सखन सग खेलत भावें॥ (सूरदास, की सं, भाग बीजो, प. ३९)

(ज) कि आनद आजु वृंदावने।
गिरि-गोवर्धन-पूजा ना जाय कहने॥
नंद आदि गोप गोपी एकत्र हइया।
गिरि-गोवर्धन पूजे निकटे जाइया।

. . ..

हेनइ समये कृष्ण देव-माया मते।
आरोहण एक रूपे करिला पर्व्वते॥
देखि गोप गोपीगणे प्रणाम करिला।
सभे कहे गोवर्धन मूर्तिमत हैला॥

.. .. ..

जत व्रज-वासी सभे पाइया आह्लाद।
पर्व्वतेर स्थाने मागि निल आशीर्व्वाद॥ (कृष्णदास, प क त, पद १२४४)

(झ) गिरि तन सोभा स्याम विराजै।
स्यामहिं छवि गिरिवर की छाजै।
गिरिवर उर पीतांबर डारे।
मोतिनि की माला उर भारे॥ (सूरदास, सू. सा, १०।९१३, पृ ५७५)

(ञ) जत गोपगण, पूजे गोवर्धन, ना कैल इन्द्रेर पूजा।
पाइ अपमान, कोपे कम्पमान, साजिला देवेर राजा॥
महा अहकारे, कृष्ण-निंदा करे, अज्ञाने मोहित हैया।
कहे गोप-पुरी, महावृष्टि करि, आजि डुबाइब जाआ॥
(चैतन्यदास, प. क त, पद १२४५)

गोवर्द्धन धारण इत्यादि लीलायें करते दिखाए गए हैं। वे भावावेश में आकर "मैं गो-दोहन करूंगा, गोचारण के लिए जाऊंगा" इत्यादि बातें करते हैं।[1]

गोवर्द्धन लीला में भक्ति, कलि इत्यादि को लेकर रूपक बांधा गया है।[2]

---

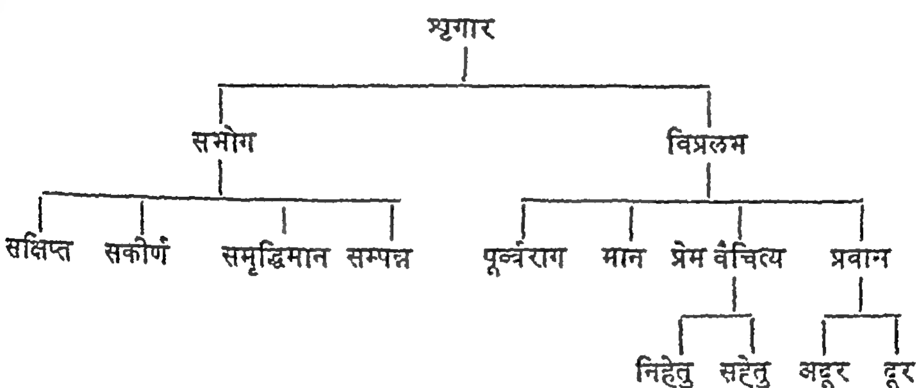
१. (क) गौरांग चांदेर मने कि भाव उठिल।
पुरुव-चरित्र बुझि मनेते पड़िल॥
गौरीदास-मुख हेरि उलसित हिया।
आनह छादन डुरि बोले डाक दिया॥
आजि शुभ दिन चल गोठेर जाइव।
आजि हैते गोदोहन आरंभ करिव॥
(चैतन्यदास, प. क. त., पद ११६९)

(ख) आजु रे गौरांगेर मने कि भाव उठिल।
धवली साङली वलि सघने डाकिल॥
शिंगा वेणु मुरली करिया जय-ध्वनि।
है है वलिया गोरा फिराया पाचनी॥
(वासुदेव घोष, प. क. त., पद ११८६)

२ देख देख अपरूप गौरांग-विलास।
पुन गिरिधारण, पुरव लीला-क्रम, नवद्वीपे करिला प्रकाश।
शुद्ध भक्ति गोवर्धन, पूजा कर जग-जन, एइ विधि दिला कलि माझे।
.. .. ..
देखिया लोकेर गति, कलिजुग-सुरपति, कोपे तनु कंपित हइल।
(चैतन्यदास, प. क. त., पद १२४२)

राधा-कृष्ण लीला

रस-मीमांसा—राधा-कृष्ण लीला का गान वडे विशद रूप से किया गया है। किशोर कृष्ण और किशोरी राधिका के परस्पर आकर्षण, प्रेम, मिलन, विरह, मान इत्यादि का वर्णन करने वाले पदो की सख्या वहुत अधिक हैं। गौडीय वैष्णव पदावली में पाई जाने वाली राधाकृष्ण लीला वैष्णव रस-शास्त्र पर आधारित हैं। गौडीय वैष्णव धर्म के अन्तर्गत जिस रस को मान्यता प्राप्त है, वह प्राचीन सस्कृत रस-शास्त्र पर आधारित है। गौडीय वैष्णव मत में मधुर अर्थात् शृगार रस को ही प्रधानता दी गई है, अत राधा-कृष्ण लीला में इस शृगार रस की ही प्रधानता हैं। वैष्णव रस-शास्त्र के अनुकूल शृंगार रस का सक्षिप्त वर्णन यहा दिया जा रहा है।



शृगार के यह दो प्रकार और उनके अग है। इन दोनो का उनके अगो सहित सक्षिप्त परिचय निम्न है :—

सभोग शृंगार—इस अवस्था में प्रेमी-युगल का सयोग रहता है। उनका मिलन होता रहता है। इसके चार प्रकार है :—

१. सक्षिप्त— सक्षिप्त सभोग में पूर्व्वराग के वाद प्रेमी-युगल का प्रथम मिलन होता है। उनमें लज्जा अधिक होती है, अत यह मिलन सक्षिप्त ही होता है। इस मिलन के अवसर और स्थान वाल-क्रीडा, गायो दोहन, गोष्ठ इत्यादि है।

२. सकीर्ण— सकीर्ण सभोग में मान के वाद मिलन होता है। मान के कारण उद्भूत दुःख की स्मृति शेष रह जाती है, अत मिलन का आनन्द पूर्ण नहीं होने पाता। इन सकीर्ण सभोग के अवसर और स्थान रास, जल क्रीडा, कुंज, दान, वशी चोरी, नौका विहार, इत्यादि है।

३ समृद्धिमान— प्रवास के अनन्तर जो मिलन होता है, वह यदि यों ही अचानक हो हो जाता है, तब अत्यंत आनन्ददायी होता है। इसलिए यह समृद्धिमान है। यह मिलन स्वप्न में या कुरुक्षेत्र मे होता है। जल्पना करते-करते राधा व्रज लौट जाती है और स्वाधीना होकर अपनी दिनचर्या बनाती है।

४ सम्पन्न— प्रेम-वैचित्य की दशा में पड़ने के बाद जो मिलन होता है, वह आनन्द से पूर्ण होता है। अत सम्पन्न भोग कहलाता है। इस मिलन के अवसर सुदूरात् दर्शन, डोल, होली, वसंत, द्यूत-क्रीडा, झूलन इत्यादि मे प्राप्त होते है।

विप्रलम्भ शृंगार—इस अवस्था मे प्रेमी-युगल का वियोग रहता है। इस वियोग की दशा के भी चार रूप है —

१ पूर्व्वराग— विप्रलभ शृंगार की इस दशा मे प्रेम का प्रस्फुटन होता है परन्तु साक्षात् मिलने से नही। यह पूर्व्वराग दर्शन से अथवा श्रवण से होता है। दर्शन साक्षात् हो सकता है, चित्र-पट द्वारा हो सकता है और स्वप्न में भी हो सकता है। श्रवण (रूप और गुण का) सखी या दूती द्वारा हो सकता है। प्रेमिका मुरली श्रवण से भी पूर्व्वराग की दशा प्राप्त कर सकती है।

२ मान— विप्रलभ शृंगार की मान दशा कभी कारण से होती है और कभी अकारण भी होती है। इसलिए मान सहेतु और निर्हेतु दो प्रकार का होता है। सहेतु मान के कारण दृष्ट हो सकते है, श्रुत हो सकते है और अनुमित भी हो सकते है। निर्हेतु मान तो अकारण ही होता है, अथवा कारणाभास से होता है।

३ प्रेम-वैचित्य— प्रेम के कारण चित्त की दशा जब अनुरागमयी हो जाती है तब विप्रलम्भ शृंगार का रूप प्रेम-वैचित्य कहा जाता है। यह अनुराग-दशा तीन प्रकार की होती है—

(क) रूपानुराग—अर्थात् प्रेमी के रूप में अनुराग।

(ख) आक्षेपानुराग—अर्थात् कृष्ण को, मुरली को, दूत को या अपने को अनुराग के कारण दोष देना।

(ग) रसोद्गार—पिछली क्रीडाओ और पिछले आनन्द की स्मृतिया।

४ प्रवास— नायक जब नायिका के पास नही रह जाता, तब विप्रलभ शृंगार की प्रवास दशा होती है। प्रवास भी दो प्रकार का है—

(क) अदूर—जैसे कालीयदमन में, गोचारण में, नंद मोक्ष मे, और रास के समय अन्तर्ध्यान हो जाने में।

(ख) दूर—यह प्रवास भूत (व्यतीत हो गया हुआ), भवन (वर्तमान) और भाविन (आगे आने वाला), तीन प्रकार का होता है।

विप्रलभ शृगार के चारो भाव सभोग शृगार के चारो भावो के साथ-साथ ही रहते है।

नायिका

शृगार रस की आधार नायिका के भी कई भेद बताए गए है। वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार ये आठ प्रकार की है —

१ **अभिसारिका**—पूर्ण प्रसाधनो से युक्त वह नायिका जो प्रेमी से मिलने जा रही है, अभिसारिका कहलाती है।

२. **वासकसज्जा**—नायिका सपूर्ण प्रसाधनो से युक्त हो मिलन स्थान में न जाकर घर पर ही प्रेमी की राह देखती है। तब वह वासकसज्जा कहलाती है।

३ **उत्कठिता**—प्रेमी से निराश होने पर नायिका को उत्कठिता की सज्ञा मिलती है।

४ **विप्रलब्धा**—प्रेमी से धोखा मिलने पर वह विप्रलब्धा कहलाती है।

५ **खडिता**—समस्त रात्रि प्रतीक्षा में निरत उस नायिका की सज्ञा खडिता होती है, जिसका प्रेमी उसके पास न आकर दूसरी प्रेमिका के पास रात्रि बिता देता है।

६ **कलहांतरिता**—कलह के कारण वियुक्त हुई नायिका "कलहातरिता" कहलाती है।

७ **प्रोषितभर्तृका**—नायक के प्रवास मे चले जाने पर नायिका की सज्ञा प्रोषितभर्तृका हो जाती है।

८ **स्वाधीनभर्तृका**—वह नायिका, जिसका प्रेमी सपूर्ण रूप से उसका अनुगत है, स्वाधीनभर्तृका कहलाती है।

गौडीय वैष्णव पदकर्ताओ ने प्राय इन्ही भावो के अनुरूप पदावली साहित्य की रचना की है। शृगार के प्रत्येक विभागो और उपविभागो के अनुरूप पद तो नही बनाए गए है क्योकि पदकर्ताओ का उद्देश्य रसशास्त्र का प्रणयन न होकर राधा-कृष्ण की लीला का गान करना है। ऐसा ज्ञात होता है कि मधुर रस के जिन मधुरतम प्रसगो ने उन्हे अधिक आकर्षित किया है, उन्ही प्रसगो पर उन्होने रचनायें की है। रचना भी पदो मे है इसलिए तारतम्ययुक्त क्रमवार शृगार रस का विवेचन नही पाया जाता है। स्फुट रूप से उनमें से कुछ प्रसगो के अन्तर्गत पद रचे गए थे। "पदकल्पतरु" में सग्रहकार "वैष्णवदास" ने जो स्वय भी पद कर्ता थे, शीर्षक देकर जो पदो का सकलन प्रस्तुत किया है, उसमें शृगार रस-भेद और नायिका भेद, दोनो ही प्रकार के प्रकरण है। यह कह सकना तो कठिन है कि यह शीर्षक उनके अपने दिए हुए है या उन पदकर्ताओ के जिनके पद उसमे सगृहीत है। परन्तु प्रत्येक शीर्षक के अन्तर्गत सगृहीत पद अपने मे रसशास्त्र के अनुरूप ही भावनाए लिए है, इसमें सदेह नही है।

हिन्दी पद-साहित्य मे इस प्रकार के विभाजनो के अनुरूप विभिन्न शीर्षको के अन्तर्गत पद सगृहीत नही है। इस प्रकार का रस-शास्त्र उतो वैष्णव धर्म ग्रंथो मे नही है, अत उनकी अनुरूपता में रचनायें भी नही है। परन्तु दोनो ही स्थानो के ये पद जो नाना-

कृष्ण लीला सबधी है, भावो में समानता रखते है। आधुनिक सग्रह ग्रथ "कीर्तन-सग्रह" या "रागकल्पद्रुम" के सग्रहकारो ने कुछ शीर्षक देकर पद सग्रह किए है। वे शीर्षक उनके अपने दिए है। ऐसा कदाचित् कीर्तन आदि की सुविधा के लिए किया होगा। "पदकल्पतरु" के सग्रहकार ने जो शीर्षक दिए है, उनके अनुरूप पद तो उन्होने ही उन शीर्षको के अनुरूप रक्खे है, परन्तु शृगार रस के विभागो के बताने वाले ये शीर्षक उनके अपने बनाए हुए नही है। यह विभाजन तो रूप-गोस्वामी के है। उनकी "उज्ज्वल नीलमणि" को आदर्श मान कर पदकर्ताओ ने राधाकृष्ण की मधुर लीला सबधी पदो की रचना की है। पदकर्ताओ ने शीर्षक स्वय दिए या नही दिए, यह बात अधिक महत्त्वपूर्ण नही है। इसमें सदेह नही कि वैष्णव-रस-शास्त्र के अनुरूप भाव प्रदर्शित करने वाले लीला पद गौडीय पदावली साहित्य में प्रचुर मात्रा मे पाए जाते है। शृगार रस के सपूर्ण विभाजनो के अनुकूल पद तो नही बनाए गए है पर अधिकाश स्थान के लिए गए है। वे स्थल निम्न है —

१ पूर्व्वराग
२ सक्षिप्त सभोग
३ मान
४ सकीर्ण सभोग
५ सपन्न सभोग
६ प्रेम-वैचित्य
७ प्रवास
८ समृद्धमान सभोग
९ नायिका भेद

१ पूर्व्वराग—पूर्व्वराग का अर्थ वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार राधा और कृष्ण के मनो में प्रेम के उदय से है। राधा और कृष्ण के मनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम का उदय कई प्रकार से होता है। गौडीय वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार इस प्रेमोदय की कई सीढ़िया है। नायक और नायिका जो कृष्ण और राधा है एक दूसरे की ओर दर्शन से और श्रवण से आकृष्ट होते है। राधा और कृष्ण एक दूसरे के रूप का प्रत्यक्ष दर्शन करके मुग्ध होते हैं। यह कथा गौडीय वैष्णव लीला पदावली और हिन्दी लीला पदावली दोनो में विद्यमान है[1]।

---

१. (क) मेरे हिय लागे नन मोहन, लै गए री चित चोरि।
अवहीं इहि मारग ह्वै निकसे, छवि निरखत तृन तोरि॥
मोर-मुकुट स्रवननि मनि-कुडल, उर वनमाल पिछोरि।
दसन चमक, अधरनि अरुनाई, देखत परी ठगोरि॥
ब्रज-लरिकन सग खेलत डोलत हाथ लिए चकडोरि।
सूर स्याम चितवत गए मो तन, तन मन लियौ अजोरि॥
(सूरदास, सू सा, १०।६७०, पृ. ४९६)

(ख) तव तें मेरौ ज्यौ न रहि सकत।
जित देखौं तितहीं मृदु मूरत, नैननि मे नित लागि रहत॥
. .
अव मै कहा करौ री सजनी, सुरति होति तव मदन दहत॥
सूर स्याम मेरौ मन हर लियौ, सकुच छाडि मै तोहि कहत॥
(सूरदास, सू सा, १०।६७१, पृ. ४९६)

नायक का चित्रपट दर्शन और नायक के रूप का स्वप्न में दर्शन भी नायिका को मुग्ध करता है। राधा कृष्ण-चित्रपट दर्शन और स्वप्न दर्शन इन दोनों से भी कृष्ण के प्रति आकर्षित होती है, यह कथा केवल गौडीय वैष्णव पदावली साहित्य में है, हिन्दी में नही[1] एक दूसरे के गुण और एक दूसरे के प्रति प्रेम-भावना का श्रवण करके भी राधा और कृष्ण परस्पर आकर्षित होते है। यह काम राधा की सखिया करती है, यह वर्णन गौडीय पदावली में विस्तारपूर्वक है। परन्तु हिन्दी में इस प्रकार का दूतीकार्य नही है[2]। हा,

---

(ग) कि पेखुलु जमुनार तीरे।
कालिया-वरण एक, मानुष आकार गो,
विकाइलुं तार आंखि-ठारे॥
... ...
कामेर कामान जिनि, भुरुर भंगिमा गो,
हिंगुले वेड़िया दुटि आंखि।
कालियार नयान वाण, मरमे हानिल गो,
कालामय आमि सव देखि॥
चिकण कालार रूपे, आकुल करिल गो,
धरणे ना जाय मोर हिया॥ (यदु, प क त, पद १४७)

(घ) ए सखि विहरये को पुन एह।
पीत-वसन जनु, विजुरि विराजित,
सजल-जलद-रुचि देह॥
मृदु मृदु भाषि, हासि उपजायल,
दारुण मनसिज-आगि। (घनश्याम दास, प. क. त, पद १५०)

१. (क) आनि चित्रपट, राइयेर निकट, समुखे राखिला सखी।
से रूप देखिया, मूरछित हैया, पडिला कमल-मुखी॥
मंदाकिनी धारा, कत शत धारा, ओ दुटि नयाने वहे।
करह चेतन, पावे दरशन, दास उद्धवे कहे॥ (उद्धवदास, प. क त, पद ३५)

(ख) मनेर मरम कथा, तोमारे कहिये एथा, शुन शुन परानेर सइ।
स्वपने देखिलुं जे, श्यामल वरण दे, ताहा बिनु आर कारो नइ॥
(ज्ञानदास, प क त., पद १८८)

२. (क) शुन माधव अव हाम कि बोलव तोय।
सो वृषभानु-कुमारि वर सुंदरि,
अहनिशि तुया लागि रोय॥
तुया अनुरूप, एक पट लेखिया,
देयल ताकर आगे।
सो रूप हेरि, मुरछि पड़इ भूतले,
मानये करम अभागे॥ (यदुनंदन, प क, त, पद २७)

कृष्ण की मुरली के स्वर द्वारा मोहित राधा और गोपियों के दर्शन दोनों भाषाओं के पद साहित्य में होते हैं।[1] राधा-कृष्ण एक दूसरे के प्रति प्रेमोदय के फल-स्वरूप प्रबल रूप से आकर्षित हो जाते हैं। उनमें मिलन की तीव्र उत्कंठा है। यह प्रसंग गौड़ीय पदावली में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार में दिया गया है। वे दोनों इतने विरहाकुल हैं कि उनकी मरण दशा तक आ गई है। हिन्दी पदावली में उन दोनों की मिलन-इच्छा दिखाई तो गई है परन्तु तीव्र विरह दशा का प्रसंग नहीं पाया जाता।[2] बंगला पदावली का पूर्वराग प्रकरण क्योंकि रस-शास्त्र की अनुकूलता में है, हिन्दी पदों में प्राप्त राधा के प्रेम प्रकरण

(ख) चम्पक दाम हेरि, चित अति कंपित, लोचने बहे अनुराग।
तुया रूप अंतरे, जागये निरंतर, धनि धनि तोहारि सोहाग॥
वृषभानु-नन्दिनि, जपये राति दिनि, भरमे ना बोलये आन।
(गोविंददास, प क त, पद ८९)

१ (क) सुनत बन मुरली-धुनि की बाजन।
पपिहा गुंज, कोकिल बन कूजत, अरु मोरनि कियौ गाजन॥
यहै शब्द सुनियत गोकुल मैं, मोहन-रूप विराजन।
सूरदास प्रभु मिलौ राधिका, अंग अंग करि साजन॥
(सूरदास, सू सा, १०।६२२, पृ ४८१)

(ख) मंद मंद मधुर तान, श्यामेर मुरली कुंजे बाजिल रे।
नव नागरी श्री राधे धनि, अनंग-रंगे मातिल रे॥
उठत बसत गलत स्वेद, मुरली शबदे श्रवण भेद।
पुलके पूरल सबहु अंग, प्रेम-तरंगे भासिल रे॥
भुवन मोहन-मोहिनी वेश, रूपे उजोरल सबहु देश।
संगे बरज-रंगिनीगण, श्याम दरशने साजिल रे॥ (परमानंद, की प, पृ. ८२)

२ (क) मंजुल वंजुल-निकुंज मंदिरे, सोइरि सो गुणगाम।
हिम हिमकर, सलिल शीकर, निदहइ कालिंदी-तीर॥
सरस चंदन परशे मुरछइ, सजल जलत चीर।
कबहु उठत, कबहु बैठत, पर्थे हेरत तोर। (गोविंददास, प क त, पद २१७)

(ख) लुठइ धरणि धरि सोय।
श्वास-विहिन हेरि सहचरि रोय॥
मुरछलि कंठे पराण।
इह पर की गति दैवे से जान॥
ए हरि पेखलु सो मुख चाइ।
बिनहि परशे तुया न जीवइ राइ॥ (गोपाल, प क त, पद १८०)

(ग) हरि देखें बिनु कल न परै।
जा दिन तैं वे दृष्टि परे हैं, क्यौं हू चित उनतें न टरै।
नंद कुमार मनमोहन, ललना-प्रान-जिवनधन क्यौं बिसरै॥
(सूरदास, सू सा, १०।१६६६, पृ ८३६)

से अपेक्षाकृत कम स्वाभाविक है। राधा कृष्ण को देखती है, मुग्ध होती है, परन्तु पूर्व्वराग की व्याख्या के अनुसार उन्हे चित्र भी दिखाया गया है,[१] स्वप्न भी दिखाया गया है तब जाकर उनका आकर्षण सम्पूर्ण होता है। हिन्दी पदो की राधा कृष्ण के रूप को देख कर, उनके साथ खेल कूद कर उनके प्रति आकृष्ट होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि वैष्णव रस-शास्त्र के अनुरूप विषय प्रतिपादन करने की गौडीय पदावली मे चेष्टा की गई है। हिन्दी में क्योकि ऐसा रस-शास्त्र है ही नही अत ऐसा विषय-प्रतिपादन भी नही है, भाव-साम्य अवश्य पाए जाते हैं।

(२) **सक्षिप्त संभोग**—वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसार सक्षिप्त सभोग का अर्थ राधा कृष्ण का अल्पकालिक मिलन और क्षणिक क्रीडा ही है। इन दोनो के मिलन कभी गोचारण के लिए जाने पर वन में, कभी गोदोहन में, और कभी बाल-क्रीडा में होते है। गोचारण अथवा 'गोष्ठ' प्रकरण में बगाली पद साहित्य मे[२], और गोदोहन अथवा 'खरिक' प्रकरण मे हिन्दी पद साहित्य में इस सक्षिप्त-मिलन सम्बन्धी पद मिलते है। बाल-क्रीडा करते समय कृष्ण की भेंट राधा से हो जाती है, इसका उल्लेख हिन्दी पदो में पाया जाता है[३]। राधा कृष्ण के विरह में रोगी हो जाती है, सर्प काटने का बहाना करती है, और कृष्ण उन्हे अच्छा करने आते है।[४] इस प्रकार भी मिलन होता है। इस प्रकरण के मिलन सबधी पदो

१. प क त., पद ३५ और १४४

२. तपनक तापे, तपत भेल महितल,
अतल वालुक दहन समान ।
चढल मनोरथे, भाविनि चलु पथे,
ताप तपन नाहि जान ।
प्रेमक गति दुरवार ।
नविन-जौवनि धनि, चरण कमल जिनि,
तवहि कयल अभिसार ॥
(कवि शेखर, प क. त, पद १३१०)

३ (क) कुवंरि कह्यौ मै जाति महरि, घर।
प्रातहि आई खरिक दुहावन, कहत दोहनी लैकर ॥
तव खरिकहि कोउ ग्वाल गए नहि, तिन कारन ब्रज आई।
जौं देखौ तौ अजिरहि बैठे, गैया दुहत कन्हाई ॥
(सूरदास, सू सा, १०।७२६, पृ. ५१३)

(ख) सैन दै प्यारी लई बुलाइ।
खेलन कौ मिल करि कै निकसैं खरिकहि गए कन्हाइ ॥
जसुमति कौं कहि प्यारी निकसी, घर कौ नाउं सुनाइ।
कर दोहनी लिए तहं आई, जहं हलधर के भाइ ॥
(सूरदास, सू. सा., १०।७२८, पृ. ५१४)

४ (क) हामारि वयुर रिति, हेरि जनु आनमति, कहि निज मंदिरे नेल।
देव देयासिनी कान ॥
जटिला-वचने, सुधा मुखि नियड़हि, एक दिठे नेहारे वयान ॥

में मुख्यतया काम-क्रीडाओं का ही वर्णन है। हिन्दी और बगाली दोनों के पदसग्रही साहित्य-कर्त्ता अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में खुले रूप से राधा-कृष्ण की काम-केलि का वर्णन करते हैं। गौडीय वैष्णव पदकर्त्ताओं ने इस प्रकार के वर्णनों में अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्रता ली है।[1]

(३) मान—राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला में मान सबधी पद अच्छी मात्रा में प्राप्त हैं। यह मान मुख्यतया राधा ही करती है, कृष्ण मान नहीं करते। गौडीय पदावली में जो मान सबधी पद प्राप्त हैं उनमें एक स्थल पर दोनों को मान करते बताया गया है।[2] परन्तु साधारण रूप से प्राय समस्त पद राधा के मान के ही हैं। राधा का यह मान सहेतु भी है और निर्हेतु भी है। वे सखी से सुनकर अथवा शरीर में चिह्न देखकर कृष्ण का अपने से भिन्न अन्य गोपी से विहार करना जान क्रुद्ध होती हैं और मान करके बैठ जाती हैं। कृष्ण मान छुडाने के लिए दूती की शरण लेते हैं। दूती राधा को कृष्ण का स्नेह और व्याकुलता सुनाकर मान त्यागने को कहती है। परन्तु राधा नहीं मानती और कृष्ण क्यों नहीं आते, यह कह उसे भगा देती हैं। कृष्ण स्वय आते हैं और हाथ पैर जोडते हैं, कुछ इससे और कुछ दूती की वकालत से राधा का मान छूट जाता है। कृष्ण कभी वेश परिवर्तन करके आते हैं, कभी वैसे ही। वेश परिवर्तन करके वे स्त्री का रूप धारण करते हैं और राधा के पास जाते हैं। राधा उन्हें सखी बनाने के लिए नाम धाम पूछती हैं। भेद खुलने पर वे हस कर मान त्याग देती हैं।

कह तव अतनु, देव हये पाओल, हृदि माह पैठल काल।
निरजने सोइ, मत्रे जव झारिये, तव इह होयव भाल।
एत शुन जटिला, घरहु दोहें लेयल, निरजने दुहु एक ठाम।
सव जन निकसल, बाहिरे वैठल, पूरल कानु मन-काम॥

(शेखर, प क त, पद २४०)

(ख) डसी री स्याम भुअगम कारे।
मोहन-मुख-मुसुक्यानि मनहु, विष जात मेर सों मारे।
फुरै न मत्र, जत्र, गद नाहीं, चले गुनी गुन डारे।

(सूरदास, सू सा, १०।७४७, पृ ५१९)

(ग) हरि गारुडी तहा तव आए।
यह बानी वृषभानुसुता सुनि, मन-मन हरष वढाए॥
धन्य-धन्य आपुन कों कीन्हों अतिहिं गई मुरझाइ॥

(सूरदास, सू सा., १०।७५८, पृ ५२२)

१ (क) सूरसागर, दशम स्कध, पद ६८२, ६८६ से ६९१, १६७८, १६७९ इत्यादि।
(ख) पदकल्पतरु, पद ६३, १००, १०१, ११४, १३०, १८९, २३५, २५६, २६१

२ रसवति राधा रसमय कान।
को जाने काहे कयल दुहु मान॥
दुहु अति रोखे विमुख भइ बैठ।
दुहुं चलली जमुना-जले पैठ॥

(गोविंददास, प क त, पद ५९९)

यह समस्त प्रकरण 'सहेतु' मान का है। 'निर्हेतु" मान का वर्णन भी वैष्णव पदावली मे है। राधा कृष्ण के हार मे लगी मरकत मणि में अपना प्रतिबिम्ब देखकर उसे अन्य स्त्री समझ लेती हैं और क्रुद्ध हो बैठती है। सखियो द्वारा अपनी इस मूर्खता को जान कर वे लज्जित होती हैं और मान त्याग देती हैं। राधा का मान छुटाने में दूती और ललिता सखी का सबसे बडा हाथ है। कुछ पद यहा दिए जा रहे है।[1]

---

१. (क) प्रियसखि निकटे, जाइ कहे द्रुत-गति,
शुन धनि चतुरिणि राधे।
चद्रावलि सजे, कानु रजनि आजु,
कामे पुरायल साधे॥
ऐछन शुनइते बात।
अरुणित लोचन, गरगर अंतर,
रोखे पुरल सब गात। (उद्धवदास, प. क. त, पद ५२६)

(ख) सुन्दर सिंदुर, नयनक अजन, सचरु दश नख-रेखा।
कुंकुम चन्दन, अंगे विलेपन, प्रात समये दिठ देखा॥
दशगुण अधिक, अनले तनु दाहिल, रति चिह्न देखि प्रति अगे।
चम्पति पेंड़ कपूर जब ना मिलब, तब मीलब हरि सगे॥
(चम्पति, प. क. त, पद ४८१)

(ग) लालन अनत रतिमान आये हो जु मेरे गेह रसीले नयन बेन तुतरात।
अजन अधर धरें पीक लीक सोहें लोहे काहे को दुरात झूठी सोहैं खात॥
बातेहु बनावत बातहु न आवत एते पर रति के चिह्न दुरात तिरछी चितवन गात।
नंददास प्रभु प्यारी के वचन सुन भुले नाम वही को निसर जात॥
(नंददास, की सं, भाग २, उत्तरार्द्ध, पृ.२९)

(घ) लाडिली न माने हो लाल आपहीं पाऊ धारो।
जैसे हठ त्यजे प्यारी सोई यतन विचारो॥
बातें तो बनाय कहीं जेती मति मेरी।
एक हु न माने हो लाल ऐसी त्रिया तेरी॥
अपनी चोंप के काजें सखी भेष कीनो।
भूषण वसन साजें वीना कर लीनो॥
उततें आवत देखी चकत निहारी।
कौन गाम बसत हो रूप की उजियारी॥
गाम तो है नंदगाम तहा की हो प्यारी॥
नाम है सांवल सखी तेरे हितकारी॥
कर सो कर जोरें स्याना निकट बैठाई।
सप्त स्वरन साज मिल स्वल्प बजाई॥

(४) सकीर्ण सभोग—राधा-कृष्ण की इस प्रकार की प्रेम-लीला के अन्तर्गत कई

रीझ मोतीहार चारु उर ले पहिरावें ।
ऐसे हीं हमारा भटू सावरो बजावें ॥
जोइ जोइ इच्छा होय सोई माग लीजे ।
ऐसी वातें सावरे सो कवहु मान न कीजे ॥
मुख सो मुख जोरें स्यामा दरपन दिखावें ।
निरख छवीली छवि प्रतिविंव लजावें ॥
छल तोऊ घर आयो हस पीठ दीनी ।
नददास वल प्यारी आको भर लीनी ॥ (नददास, की स, भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ ६८)

(ङ) वर नागर साजइ नागरि वेशा ।

. .

करे धरि यत्र तत्र सङारत, को इह लखइ ना पारि ।
राइक निकटे, वाजाओत, सुदरि, शुनइते भेगेल साधा ।
ए नवयौवनि, नविन विदेशिनि, आओ फुकारइ राधा ॥
शुनइते श्याम, हरखि चिते आओल, उठि धनि आदर केल ।
वाहु पाकडि निज, आसने वैसायल, कत कत हरषित भेल ॥
ताहि वाजाओत, वीणा सुमाधुरि, रिझि देयल मणिमाल ।
जैछे वाजाओत, हामरि जत्रिया, मोहन जत्र रसाल ॥

नाम गाम कह, कुल-अवलम्बन, व्रजे आगमन किये काजा ।
सुखमयि नाम, मथुरा पुर यदुकुल, गुणि-जने पीडइ राजा ॥
धनि कहे तुया गुणे, रिझि परसन्न भेल, मागह मानस जोय ।
मनरथ-कर्म्म, जाचलि जदि सुदरि, मान-रतन देह मोय ॥
हासि मुख मोडि, पीठ देइ वैठल, कानुकयल धनि कोर
(भूपति, प क त, पद ४८३)

(च) रसवति जाइ रसिक-वर ठाम ।
श्याम-तनु-मुकुरे हेरइ अनुपाम ॥
निज प्रतिविम्व श्याम-अगे हेरि ।
रोखि कहत धनि आनन फेरि ॥
नागर एत किये चचल भेलि ।
हामारि समुखे करु आन सजे केलि ॥ (उद्धवदास, प क त, प ५८७)

(छ) पियहिं निरखि प्यारी हस दीन्हौ ।
रीझे स्याम अग-अग निरखत, हसि नागरि उर लीन्हौ ॥
आलिंगन दै अधर दसन खडि, कर गहि चिवुक उठावत ।
नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत ॥
इहि अतर प्यारी उर निरख्यौ, झझकि भई तव न्यारी ।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ॥
(सूरदास, सू सा १०।२४१२, पृ १०५९)

एक लीलाए है जिनमे उन दोनो का मिलन होता है जैसा कि शृगार के इस विभाजन के परिचय मे दिया जा चुका है। इस प्रकार की लीलाओ मे राधा-कृष्ण का परस्पर मिलन और क्रीडा मे पूर्णानन्द नही होता क्योकि मान और छेड-छाड के कारण राधा के मन मे कुछ दुख और क्रोध बना रहता है।

ये प्रेम लीलाए निम्न है —

१ रास-लीला
२ दान-लीला
३ नौका-विहार-लीला
४ जल-क्रीडा और स्नान-लीला
५ कुज-विहार-लीला

(१) रास-लीला—रास-लीला पर अपेक्षाकृत अधिक पद मिलते है। कृष्ण वशी बजाकर गोपियो को बुलाते है। वे गृह कार्य त्याग कर उलटा-सीधा शृगार करके वशीवट की ओर भागती है।[1] वहा पर कृष्ण हसी मे उनसे वहा आने का कारण पूछते है और उपदेश

---

१. (क) सरद-निसि देखि हरि हरप पायौ।

... ...

राधिका रमन बन-भवन-सुख देखि कै,
अधर धरि बेनु सु ललित बजाई।
नाम लैलै सकल गोप-कन्यानि के, सबनि कै
स्रवन वह धुनि सुनाई ॥

(सूरदास, सू सा १०।९८८ पृ. ६०२)

(ख) १. शरद चद पवन मद
विपिने भरल कुसुम-गध
फुल्ल मल्लिका मालति जुथि
मत्त-मधुकर-भोरणि।

२. हेरत रानि ऐछन भाति
श्याम मोहन मदने माति
मुरलि गान पचम तान
कुलवति चित चोरणि ॥

३ शुनत गोपि प्रेम रोपि
मनहि मनहि आपन सोपि
ताहि चलत जाहि बोलत
मुरलिक कल लोलनि।

४. बिसरि गेह निजहु देह
एक नयने काजर-रेह
बाहे रंजित कंकण एकु
एकु कुडल डोलनि।

(गोविंददास, प प त, पद १९५५).

(ग) करत शृगार जुवती भुलाहीं।
अग-सुधि नहीं, उलटे बसन धारहीं, एक एरहिं कछु सुरति नाहीं।
नैन अजन अधर आजहीं हरष सौं स्रवन ताटक उलटे संवारै।
सूर-प्रभु-मुरा-ललित, बेनु-धुनि बन सुनत, चलीं बेहाल अचरा न धारै ॥

(सूरदास, सू. सा १०।९९८, पृ ६०६)

देते हैं।[1] गोपिया व्याकुल होकर प्रत्युत्तर देती हैं।[2] तब कृष्ण राग प्रारम्भ करते हैं। इस

---

१ (क) हेरि ऐछन रजनि घोर, तेजि तरुणि पनिक फोर,
कैछे पाओलि फानन ओर, योर नहत काहिनि।
गलित-ललित-कवरि बंध, काहे धाओत जुवतिवृंद,
मदिरे फिये पडल दद, वेढ़ल विपय चाहिनि।
(गोविंददास, प क त, पद १२५६)

(ख) निसि फाहें वन फों उठि धाईं।
हसि-हसि स्याम फहत हैं सुन्दरि, फी तुम व्रज-मारगहिं भुलाईं॥
(सूरदास, सू. सा १०।१०११, पृ ६०९)

२ (क) ऐछन वचन फहल जब फान।
व्रज-रमणीगण सजल-नयान॥
टूटल सवहुं मनोरथ-करणि॥
अवनत-आनने नखे लिखु धरणि॥ (गोविंददास, प क त, पद १२५७)

(ख) आकुल अतर गदगद कहइ।
अकरुण-वचन-विशिख नाहि सहइ॥
शुन शुन सुकपट श्यामर-चद।
कैछे कहसि तुहु इह अनुबंध॥
भागलि फुल-शिल मुरलिक साने।
किंकरिगण जनु केश धरि आने॥
अब कह कपटे धरमजुत बोल।
धार्मिक हरये कुमारि-निचोल॥
तोहे सोंपित जिउतुया रस पाव॥
तुया पद छोडि अब को काहा जाव॥
एतहु कहल व्रज-जीवत भेल॥
शुनि नन्द-नन्दन हरषित भेल॥
करि परसाद तहिं करये विलास।
आनदे निरखये गोविंददास॥
(गोविंददास, प क त, पद १२५७)

(ग) आस जनि तोरहु स्याम हमारी।
वेनु-नाद-धुनि सुनि उठि धाईं प्रगटत नाम मुरारी।
क्यों तुम निठुर नाम प्रगटायो काहें विरद भुलाने?
. . .
प्रीति वचन नौका करि राखौ, अकम भरि बैठावहु।
सूर स्याम तुम बिनु गति नाहीं, जुवतिनि पार लगावहु॥
(सूरदास, सू सा १०।१०२९, पृ ६१५)

सम्बन्ध मे रास नृत्य का वर्णन करने वाले और उस समय की चर-अचर प्रकृति का वर्णन करने वाले पद अत्यन्त सुन्दर हैं।[1] बीच बीच में शृंगारिक पद भी है।

(२) दान-लीला—दान लीला सबधी पद भी अपेक्षाकृत अधिक पाए जाते हैं। दधि बेचने जाती हुई गोपियो को और राधा को घेर कर कृष्ण दान (कर) मागते है। उन लोगो को बहुत तग करते है। इस सम्बन्ध के पद अत्यन्त शृंगारिक हैं।

(३) नौका-विहार—यमुना पार जाने वाली गोपियो और राधा को नाव मे बैठा कर पार करने के लिए कृष्ण केवट का रूप रखते हैं। राधा उनको केवट समझकर उनके

---

१. (क) कालिन्दि-तीर, सुधीर समीरण, कुंद कुमुद अरविन्द विकाश।
नाचत मोर भोर मत्त मधुकर, शुक सारिक पिकु-पंचम भाष॥
मधुवने निधुवन-मुगध मुरारि॥
(गोविंददास, प. क. त , पद १२६८)

(ख) मंद पवन, कुज भवन, कुसुम-गंध-माधुरी।
मदन-राज, नव समाज, भ्रमरा भ्रमरि-चातुरी॥
तरल ताल, गति दुलाल, नाचे नटिनि नटन-शूर. . . . . .
(ज्ञानदास, प. क. त , पद १०६६)

(ग) आज मोहन रची रासरस मडली।
उदित पूरण निशानाथ निरमल दिशा देख
दिनकर सुता सुभग पुलिन स्थली॥
बीच हरि बीच हरिणा क्षना लाखो,
तरुलता पिच्छ मानो कनक कदली रली॥
पवन वश चपल द्रुम डुलन सी देखियत,
चारु हस्तक भेद भात भारी भली।
चरण विन्यास कर्पूर कुकुम घूरि पूर रही
दिश विदिश कुज बन की गली॥
कुंद मंदार अरविंद मकरद मिले,
कुंज पुंजन मिले मजु गुजत अली॥ . .
(गदाधर, की. स , भाग १, पृ. ३२४)

(घ) सरद-निसि देखि हरि हरष पायौ।
विपिन वृंदा रमन, सुभग फूले सुमन,
रास रुचि स्याम के मनहि आयौ॥
परम उज्वल रैनि, छिटकि रही भूमि पर,
सद्य फल तरुनि प्रति लटकि लागे॥
तैसोई परम रमनीक जमुना-पुलिन,
त्रिविध बहै पवन आनंद जागे॥ (सूरदास, सू सा १०१९८८, पृ. ६०२)

स्पर्श से दु खी होती है। भेद खुलने पर प्रसन्न हो जाती है।[1] हिन्दी पदों में ऐसी कथा नहीं है। कुल दो तीन पद हैं जिनमें राधा-कृष्ण का नौका-विहार-मात्र वर्णित है। इस सबंध में प्राय शृंगारिक पद ही अधिक है।

(४) जल-क्रीडा और स्नान-यात्रा —इस लीला में राधा-कृष्ण की परस्पर जल क्रीडा और कृष्ण का अधिवास के समय का स्नान वर्णित है। जल-क्रीडा के पद अधिकतर शृंगारिक ही है। कृष्ण राधा इत्यादि के साथ जमुना में या राधा-कुड में स्नान करते हैं।[2]

---

१ (क) यमुनार दुकुल आला कैल नाय्यार रूपे।
जगजन-मन भुले देखिया स्वरूपे॥
गले वनमाला दोले शिरे शिखि-पाखा।
देखि मेन जाति कुल नाहि जाय राखा॥
मुचकि हासिया नाय्या जार पाने चाय।
जाचिया जौवन दिते सेइ जन धाय॥ (वशीवदन, प क त, पद १४१९)

(ख) बैठे घनश्याम सुन्दर खेवत हे नाव।
आज सखी मोहन सग खेलवे को दाव।
यमुना गभीर नीर अति तरग लोले।
गोपिन प्रति कहन लागे मीठे मृदु बोले।
पथिक हम खेवट तुम लीजिये उतराइ। (परमानन्द की र, पृ ४२)

१. (क) श्यामा श्याम सुखद जमुना जल निर्भय करत विहार।
श्वेत कमल इदीवर पर मानो भोरही भई हे निहार॥
श्री राधा कर अबुज भर भर छिरकत वारवार।
(सूरदास, की स, भाग बीजो, पृ २६०)

(ख) पैठल सवहु जमुना जल माह।
पानि-समरे दुहु करु अवगाह॥
नाभि-मगन जले मडलि केल।
बुहु दुहु मेलि करइ जलखेल॥ (अनन्तदास, प क त, पद १२७३)

(ग) गिरिष-समय गृह माह।
जशोमति हरिष वाडाह॥
कहि सब गोकुल-लोके।
निज सुते करु अभिषेके॥
गिरिषि-तपन भय लागि।
वासइ कुसुम-परागि॥
सुशितल वारि मधुर।
कलस कलस भरि पूर॥

रतन वेदि निरमाण।
ताहि आनाओल कान॥ (माधव घोष, प क त, पद १५३९)

(५) कुंज-विहार-लीला—प्राय राधा कृष्ण का मिलन कुजो ही मे हुआ करता था। इस लीला से सबधित पदो में कुजो का वर्णन तो उतना नही है, राधा-कृष्ण-मिलन सम्बन्धी शृगारिक पद ही अधिक हैं।[1]

इन सब लीलाओं मे सबधित पद अधिकतर तो शृगारिक भावना से ओत-प्रोत है। कुछ पदो में ही प्रकृति-वर्णन अथवा नख-शिख वर्णन हैं। दान-लीला मे तो नख-शिख वर्णन अत्यन्त शृगारिक है।

(६) सपन्न सभोग—नायक और नायिका में अनुराग जब अत्यन्त गाढा हो जाता है तब जो मिलन होता है वह दु ख और क्रोध सबसे रहित होता है। अत इस समय जो मिलन

(घ) चौदिके व्रज-वधु देइ जयकार ।
घट भरि शिर पय देइ जल-धार ॥
अपरूप कानुक इह अभिषेक ।
चौदिशे व्रज-रमणीगण देख ॥
कुसुम गोलाव कपुरजुत वारि ।
घट भरि देओल शिर भर ढारि ॥ (माधव, प क. त, पद १५४०.)

(ङ) फूली फिरत यशोदा रोहिनी उर आनंद न समायो ।
गाम गाम ते जाति बुलाई मोतिन चोक पुरायो ॥
व्रज वनिता सब मंगल गावत बाजत घोष बजायो ।
प्रथम रात्रि यमुनाजल घट भरि अधिवासन करवायो ॥
उठि प्रभात कचन चोकी धरि तापर लाल बेठायो ॥
(द्वारकेश, की. सं., भाग बीजो, पृ. २५९)

१ (क) राधा माधव, कुजहि पैठल, रति-रण-रग रसाला ।
रण-बाजन घन, कोकिल-कलरव, झंकरु मधुकर- माला ॥
(गोविंददास, प क त, पद १४८७)

(ख) आज नव कुजन की अति शोभा ।
करत विहार तहां पिय प्यारी निरख नयन मन लोभा ॥
रूपवार सींचत निज जन को उठत प्रेम की गोभा ।
परमानन्द प्रभु की चितवनी लागत चित को चोभा ॥
(परमानद, की स, भाग ३, पूर्वार्द्ध, पृ. १२१)

(ग) आज की बानिक कही न जाय बैठे निकस कुज द्वार ।
लटपटी पाग सिर सिथिल चिहुर चारु रसित कहा कहा रस भरे व्रज राज कुमार ॥
श्रम जल बिन्दु कपोल बिराजत मानों ओसकण नील कमल पर ।
गोविंद प्रभु लाडिलो लाल वर कहा कहो अंग अंग सुन्दर वर ॥
(गोविंद, की स, भाग ३, पूर्वार्द्ध, पृ १२०)

सुख होता है वह आनन्द से पूर्ण होता है। सपन्न सभोग मे सवधित लीलाये निम्न है—

(१) वसत लीला
(२) होली लीला
(३) डोल लीला
(४) झूलन लीला
(५) निद्रा
(६) धूर्त्तता

(१) वसत लीला—वसत लीला में राधा-कृष्ण होली के समान ही वसत खेलते है। चारो ओर वसत की शोभा छाई है। राधा और सखिया शृगार करके वन मे जाती है, और कृष्ण से वसत खेलती है। वे सब मिल कर नृत्य भी करते है।[1] हिन्दी में कुछ पद मदन-पूजा सबधी भी है। इस प्रकरण के अन्तर्गत पदो में सुन्दर प्रकृति वर्णन है।[2]

---

१ (क) वृन्दा-विपिने विहरइ माधवि माधव सगिया।
दुहु-गुण दुहु जन, गाओत सुललित, चलत नर्त्तन-गति-भातिया॥
श्रवण-जुगले, कुडल शोहइ, नव किशलय तोडिया।
दुहु काधे दुहु, भुज शोहइ, चुम्बइ मुख-शशि मोडिया॥
मत्त कोकिल, मुरलि ताहे बाये, नाचत शिखिगण मातिया॥
(गोविददास, प क त, पद १४९९)

(ख) आओत रे ऋतुराज वसन्त।
खेलत राइ कानु गुणवत।
तरुकुल मुकुलित अलिकुल धाव।
मदन-महोत्सव पिकुकुल राव। (ज्ञानदास, प क त, पद १४२९)

(ग) नव वसन्त आगमन नवनागरी नवनागर गिरिधिर सग खेलत।
चोवा चदन अगर कुकुमा ताकि ताकि पिय सन्मुख मेलत।
पोहोपाजुलि जब भरत मनोहर वदन ढापि अचल गति पेलत।
चतुर्भुज प्रभु रसरास रसिक को रीझि-रीझि सुखसागर झेलत॥
(चतुर्भुज, व घ, पृ. ११)

(घ) खेलत मदन गोपाल वसन्त।
नागर नवल रसिक चूडामणि सब विधि राधिकाकत॥
नैन नैन प्रति चारु विलोकन वदन वदन प्रति सुन्दर हास।
अग अग प्रति प्रीति निरन्तर रति आगमनि सजाइ विलास॥
बाजत ताल मृदग अघोटी डफ बासुरी कुलाहल केलि।
परमानन्द स्वामी के सग मिलि नाचत गावत रगरेलि।
(परमानन्ददास, व ध, पृ १२)

२ (क) ऋतु वसन्त मुकलित वन सजनी सुवन जूयिका फूलीरी।
गुनन गुनन गुजत दुहुदिश मधुप मडली झूली॥
गोवर्धन तट कोकिला कूजत वचन निकर समूली।
(कृष्णदास, व घ, पृ १८)

(२) होली लीला—कृष्ण और राधा की होली लीला का वर्णन करने वाले पदो की सख्या हिन्दी मे अपेक्षाकृत अधिक है। वैसे तो दोनो साहित्यो मे वर्णन और भावो की समानता पाई ही जाती है। राधा और उसकी सखियाँ कृष्ण और उनके सखाओ के साथ धूमधाम से होली खेलती है। दोनो मडलियाँ एक दूसरे को हरा देने की प्रबल चेष्टा करती है। गान-वाद्य और रग से वायु मडल पूरित है। होली का उत्सव और आनन्द पदो में सम्पूर्ण रूप से निहित है। इस सबध कुछ पद यहा दिए जा रहे है।[1]

(ख) तरु तरु नव किशलय वन लागि।
कुसुम-भरे कत अवनत शाखि॥
तहि शुक शारिनि कोकिल बोल॥
कुज निकुज भ्रमर करु रोल॥
अपरुप श्रीवृन्दावन माझ।
षड ऋतु संगे वसन्त ऋतु-राज॥
विकसित कुवलय कमल कदंब।
माधवि मालति मिलित कलंब॥ (गोविंददास, प.क.त, पद १४८९)

१. (क) खेलत राधा, श्याम रग भरि, वृन्दा-विपिन समाज।
चुया चंदन, वंदन कुकम, रग मुटकि भरि साज॥
बैठल श्याम, संगे मधुमंगल, सुबल सखादिक साथे।
राधा ललिता, विशाखा आदि सहचरि, पिचकारि करि निज हाते।
कानुक पिचकारि, जबहि बरिखत, एकहि शत शत धारे।
सहचरि मेलि, राइ जब डारत, कह कत शत एक बारे॥
(उद्धवदास, प क त., पद १४३६)

(ख) खेलत फागु वृन्दावन-चाद।
ऋतुपति मनमथ-मनमथ छाद॥
सुन्दरिगण कर मडलि माझि।
रगिणि प्रेम तरगिणि साज॥ . .
चकित चंद्रमुखि सहचरि-गहने।
धाइ धरल गिरिधारिक वसने॥
तरल-नयानि तुरिते एक जाइ।
कर सजे काढि मुरलि लेइ धाइ॥
घन करतालि भालि भालि बोल।
हो हो होरि तुमुल उतरोल॥
अरुण तरुण तरु अरुणहि धरणी।
स्थल जलचर भेल सभे एक-वरणी॥
अरुणहि नीरे अरुण अरविंद।
अरुण-हृदय भेल दास गोविंद॥ (गोविंददास, प. क. त, पद १४३६)

(३) डोल लीला—डोल लीला से सबंधित पद सख्या में बहुत कम हैं। राधा-कृष्ण को बैठा कर सखियाँ झुलाती हैं और डोल मारती हैं। सब अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कुछ पद यहा दिए जा रहे हैं।[1] यह लीला एक तरह से झूले पर बैठ कर होली खेलना ही है।

(ग) राधा मोहन रग भरे हैं, खेल मच्यौ व्रज-खोरि।
नागरि सग नारि गन सोहैं, स्याम ग्वाल सग जोरि॥
हरि लिये हाथ कनक-पिचकारी सुरग कुकुमा घोरि।
उतहिं माट कचन रग भरि-भरि, लै आईं तिय जोरि॥

कोउ मुरली लै लगी वजावन मन भावन-मुख हेरि।
किनहू लियौ छोरि पट-कटि तें वारत तन पर फेरि॥
(सूरदास, सू सा, १०।२८९८, पृ ३३९)

(घ) हो हो होरी खेलैं नन्द को नवरगी लाला।
अबीर भरि भरि झोरी, हाथन पिचकारी
रगन वोरी, तैसिय रगीली व्रज की वाला।
मूरति धरे अनग, गावत तान-तरग,
ताल मृदग मिलि वजावें वीन-वेनु रसाला॥
नन्ददास प्रभु-प्यारी के खेलत रग रह्यौ,
छवि वाढी, छूटी हैं अलक, टूटी है माला॥ (नददास, पदावली, पृ ३३९)

(ङ) ढोटा दोउ राय के खेलत डोलत फाग हो।
लाले जो देखे सो मोहियो ओर प्रतिछिन नव अनुराग हो॥
सखा सग सव वोलके घर घर तें दे तव गारि।
सुनत कुवर कोलाहला निकसी घोप कुमारि॥
भूषण वसन जो साजियो उर गज मोतिन हार।
झूमक चेत व गावही घोष राय दरवार॥
वाजे वहुत वजावही डफ दुदुभी कठताल।
वल मोहन मध्य नायका चहुदिश नाचत ग्वाल॥ (गोविंद, व घ, पृ १६७)

(च) ऋतु-राज, व्रज समाज, होरि रगे रगिया।
नागरीवर होरि रगे, उनमत-चित श्याम सगे, नाचत कत भगिया।
गाओत कत रस प्रसग, वाओत कत वीण मोचग, थैया थैया मृदगिया॥
चचल गति अति सुरग, निरखि भुले कत अनग, सगीत रसतरगिया॥
(उद्धवदास, की प., पृ ३५७)

१ (क) दोलत राधा माधव सगे। दोलायत सव सखिगण वहु रगे॥
डारत फागु दुहु-जन-अगे। हेरइते दुहु-रूप मुरछे अनगे॥
वाओत कत कत जत्र सुतान। कत कत राग-माल करु गान॥
चदन कुकुम भरि पिचकारि। दुहु अगे कोइ कोइ देओत डारि॥
विगलित अरुण वसन दुहु गाय। (ज्ञानदास, प. क. त, पद १४५२)

(४) झूलन—झूलन लीला सम्बन्धी पदो में राधा और कृष्ण का झूला झूलना वर्णित है। वे दोनों झूलते है और सखियां झुलाती है। प्रकृति की सुन्दर पृष्ठभूमि में यह लीला बड़े उल्लास से होती है। झूलन लीला के वर्णन के साथ साथ ही सुन्दर प्रकृति वर्णन भी पाया जाता है।[1]

(५) निद्रा अथवा रसालय—राधा और कृष्ण के विश्राम मे नवविन इस लीला

(ख) झूलत डोल नंदकुमार।
चहुं ओर झुलावत ब्रज सुंदरी गावत सरस धमार।
वाम भाग वृषभान-नंदिनी साजे सकल सिंगार।
छिरकत चोवा चंदन कुंकुमा करन कनक पिचकार।
उडत गुलाल दुहु दिश बाढ़्यो रंग अपार॥
आसकरण प्रभु मोहन झूलत ब्रज के प्राण अधार॥ (आसकरण, व घ., पृ. २४२)

१. (क) देख सखि झूलत राधा श्याम।
विविध जंत्र सुमेलि सुस्वर, तान मान सुठाम॥
आषाढ गत पुन, माह शाङन, सुखद यमुना तीर।
चांदिनि रजनी, सुखमय सुखदय, मद मलय समीर।
परिपूर्ण सरोवर प्रफुल्लित तरुवर गगने गरजे गभीर।
घोर घटा घन दामिनि दमकत विदु बरिखत नीर॥
(तहि) कलपद्रुम-तल, छाह शीतल, रचित-रतन-हिंडोर।
(उद्धवदास, प क त., पद १५६१)

(ख) माह शाङन, बरिखे घन घन, दुहुं झुले कुजक माझ।
बनि फूल-माला, रचित दोला, दुहु विच नटवर राज॥
गगने गरजनि, दमके दामिनि, दुहु गाओये बहुविध तान॥
रबाव वीणा, कच्छपीना दुहु, करहि कर धरमान॥
(शिवराम, प क. त, पद ११५६)

(ग) झुलत अति आनंद भरे।
इत श्यामा उत लाल लाडिलो बैयांकंठ धरे॥
बोलत मोर कोकिला अलिकुल गरजत हैं घन घोर।
गावत राग मल्हार भामिनी दामिनि की झकझोर॥
नेन्हीं नेन्हीं बूंद परत हैं ऊपर मंद मंद समीर॥
फूलन फूल रह्यो कानन सब सुंदर यमुना तीर॥
(सूरदास, की मं, भाग चौथो, पृ ३२५)

(घ) हरि संग झूलत है ब्रजनारी।
सावन मास कुही थोरी थोरी तैसीये भूमि हरियारी॥
नवघन नवघन नव चातक पिक नवल कुनुनी मारी॥
नवल किशोर वाम अंग शोभित नव वृषभानु दुलारी॥. . . . .
(कुंभनदास, की. मं, भाग चौथो, पृ ३०१)

का वर्णन करने वाले पद बहुत थोड़े ही हैं। राधा और कृष्ण सो रहे हैं, उस अवस्था की शोभा का वर्णन कवि करते हैं। पदों में शृंगारिकता की पुट है।[1]

(६) धूर्त्तता अथवा छल से मिलन—राधा और कृष्ण एक दूसरे से मिलने की सतत चेष्टा करते थे। व्रज के लोगों और अपने स्वजनों से छिपाकर एक दूसरे से मिलने के लिए उन्हें धूर्त्तता का सहारा लेना पड़ता था। उस छल से संबंधित पद गौड़ीय वैष्णव पदावली में 'स्वयं दौत्य' प्रकरण में पाए जाते हैं। सूरदास ने भी कुछ ऐसे प्रसंग उपस्थित किए हैं। वे प्रसंग राधा की माला खोना और यमुना-गमन हैं। 'स्वयं दौत्य' प्रकरण की राधा शिव पूजा के बहाने से वन की ओर जाती हैं। वहां चतुराई से राह भूलने का बहाना करके कृष्ण को संकेत-पूर्वक एकांत में जाने को कहती हैं। इसी प्रकार भ्रमर को भगाने के बहाने कृष्ण को संकेत कर देती हैं। कृष्ण जादूगर के रूप में राधा के आंगन में आते हैं। सूरदास की राधा माला खो जाने का बहाना करके उसे ढूंढने के मिस कृष्ण के पास जाती हैं। यमुना से आते समय कृष्ण को संकेत करके कुंज में बुलाती हैं।[2]

---

१ (क) देखि सखि गोरि शुतल श्याम-कोर।
नागल नील, रतन किये कांचन, कुवल चम्पक जोर॥
गोरि सुनागरि, अधरे अधर धरि, घुमायल विदगध चोर॥
(गोविंददास, प. क. त., पद १५१०)

(ख) तडित-जडित जलद भाति, दुहे सुखे शुति रहल माति,
जिनि भादर रस-बादर, परमादर शेजे॥
बरज-कुलज जलज-नयनि, घुमल विमल-कमल-वयनि, कृति नालिश भुज वालिश
आलिस नाहि तेजे॥ (जगदानंद, प. क. त., पद ६५७)

(ग) दोउ मिल पोढे सजनी देख अकासी।
पटतर कहा दीजे गोपी जन नेनन को सुखरासी॥
स्यामा स्याम संग यों राजत हैं मानो चन्द्रकला सी।
(परमानंद, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ८२)

(घ) पोढे श्याम जू सुख सेज।
संगे श्री वृषभानु तनया रंग रस को हेज॥
तरणी-तनया विलुलित कनक मालती को तेज।
शोभा की सीमा हैं दंपति गोविंददास गनेज॥
(गोविंददास, की. सं., भाग ३, उत्तरार्द्ध, पृ. ८३)

२. (क) देव-आराधन-छले चलु गोरी।
संगहि समवय नविन किशोरी॥
चंदन कुंकुम आर फुल-माल।
लेयल बहु उपहार रसाल॥
चलु वर-नागरि संगब मांह।
सचकित नयने दीग दश चाह॥

६. प्रवास—'प्रवास' प्रकरण में जो पद प्राप्त हैं वे मुख्यतया राधा-गोपी-विरह सबधी हैं। कृष्ण के प्रवास में जाने की कथा है और कृष्ण के चले जाने से वियोगिनी

ऐछन समये निविड वन माझ।
मीलल एकले विदगध राज॥
हेरि सुवदनि अति हरषित भेलि॥
कह कवि शेखर दुहु जन केलि॥ (कवि शेखर, प क त, पद ६२८)

(ख) ए हरि अतये देखायवि पंथ।
पूजव पशुपति गोरि एकंत॥
सहजे वधू-जन गति-मति-हीन।
घर सजें वाहिर पथ ना चीन॥ (गोविंददास, प क. त, पद ६४६)

(ग) एतहु तियासे होत जव आकुल, की फल मदिरे गुज॥
ताहि चलह जाहां कुसुम वियारल, मंजुल माधवि-कुज॥
एतहु सकेत कयल जव कामिनि, कानु चलल सोइ ठाम॥ . . .
(गोविंददास, प. क. त., पद ६४६)

(घ) रसिक नागर, साजि वाजिकर, संगेत सुवल सजा।
ढोलक वाजाइया, दडि दडा लैजा, भानुपुरे दिला देखा॥. . . .
(उद्धवदास, प. क त., पद ६४५)

(ङ.) जननी अतिहीं भई रिसहाई।
वार-वार कहैं कुवरि राधिका, मोतिमरि कहा गंवाई॥
बूझे तैं तोहि ज्वाव न आवैं, कहा रही अरगाई॥. . . .
(सूरदास, सू. सा, १०।१९६९, पृ. ९२८)

(च) सुनि री मैया कालिह हौं, मोतिसरी गंवाई।
सखिनि मिलैं जमुना गई, धौं उनहि चुराई॥
कीधौं जलही मे गई यह सुधि नहि मेरै।
तव तैं मैं पछितातिं हौं कहति न डर तेरैं॥ . . .
(सूरदास, सू. सा, १०।१९७०, पृ. ९२८)

(छ) जैहै कहा मोतिसरि मोरी।
अव सुधि भई लई वाही नैं, हंसति चली वृषभानु-किसोरी॥
अवहीं मैं लीन्हैं आवति हौं मेरैं संग आवैं जनि कोरी॥

. . . . .

मोकौं आजु अवेर लागि है, ढूंढौंगी घर-घर व्रज-खोरी॥
(सूरदास, सू. सा, १०।१९७७. पृ. ९३१)

(ज) सैन दै नागरी गई वन कौं।
तवहि कर-कौर दियौ डारि, नहि रहि सके,
ग्वाल जेंवत तजे मोहयौ उनकौं॥
चले अकुलाइ वन धाइ, व्याइ गाइ देखिहौं जाइ,
मन हरष कीन्हौं॥ (सूरदास, सू. सा. १०।१९८४, पृ ९३३)

राधा और गोपियो को जो विरह-वेदना होती है, उस विरह का वर्णन गौड़ीय वैष्णव पद-कर्त्ता और हिंदी पदकर्त्ता दोनो ने ही किया है। गौड़ीय पदकर्त्ताओ ने वैष्णव रस-शास्त्र के अनुसरण में विरह का समस्त अगो सहित वर्णन किया है। विरहजनित उद्वेग, आशका, व्याकुलता, ऋतु अनुकूल विरह, विरह जनित दश दशाये, इन सब का वर्णन किया गया है परतु हिन्दी पदो में इन समस्त अगो का वर्णन नही है। गोपियो और राधा की व्याकुलता और कृष्णविरहजनित वेदना का वर्णन तो है। कहने का तात्पर्य यह है कि भावनाओ में समानता होते हुए भी वर्णन के ढग अथवा शैली मे अवश्य अतर है। गौड़ीय पदकर्त्ताओ का प्रवासजनित विरहवर्णन शास्त्रोक्त रूप में यथा-व्यवस्था सागोपाग वर्णन है। हिन्दी पदावली का विरह वर्णन अधिक स्वतत्र है। उसमें राधा और गोपियो की विरहवेदना का वर्णन अपेक्षाकृत अधिक मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक सा है। सूरदास के विरह सबधी पदो में अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य है। गोविददास कविराज की विरह-पदावली में भी अपेक्षाकृत अधिक सौन्दर्य है, वैसे वे भी रस शास्त्र के अनुकूल ही है। यहा कुछ पद दिए जा रहे है।[1]

---

१. (क) करि गए थोरे दिन की प्रीति।
कह वह प्रीति कहा यह बिछुरनि, कह मधुवन की रीति॥
अब की बेर मिलौ मनमोहन, बहुत भई बिपरीति।
कैसें प्रान रहत दरसन बिनु, मनहु गए जुग बीति॥
कृपा करहु गिरिधर हम ऊपर, प्रेम रह्यौ तन जीति।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन बिनु, भई भुस पर की भीति॥
(सूरदास, सू सा., १०।३१८४, पृ. १३४६)

(ख) निसिदिन बरषत नैन हमारे।
सदा रहत बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे॥
दृग अजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे।
कचुकि-पट सूखत नहिं कबहू, उर बिच बहत पनारे॥
आसू-सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे।
सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहे बिसारे॥
(सूरदास, सू सा, १०।३२३६, पृ. १३६१)

(ग) हरि दरसन कौ तरसति अखिया।
झाकति झखति झरोखा बैठी, कर मीड़ति ज्यौं मखिया॥
बिछुरीं बदन-सुधा-निधि-रस तें, लगति नहीं पल पँखिया। . . .
(सूरदास, सू सा, १०।३२४०, पृ १३६२)

(घ) इहिं दुख तन तरफत मरि जैहै।
कबहु न सखी स्याम-सुन्दर-घन, मिलिहै आइ अक भरि लैहै ?
कबहुँ न बेनु अधर धरि मोहन, यह मति लै लै नाम बुलैहै ?. . . . .
(सूरदास, सू सा, १०।३४०७, पृ १४१०)

वैष्णव रस-शास्त्र मे प्रवास के दो प्रकार बताए है, 'अदूर' और 'सुदूर'। कृष्ण का अदूर प्रवास कालीय-दमन, नंद-मोक्षण-कार्यानुरोध-गमन और रास मे अंतर्धान हो जाने के समयो में होता है। उनकी इस प्रकार की अनुपस्थिति से समस्त ब्रजवासियो को, विशेष-कर राधा को, अत्यत क्लेश होता है। यह क्लेश वैष्णवो ने विरह के रूप में दिखाया है। अदूर प्रवास का विरह काल क्योकि दीर्घ नही है, विरह भी उतना दीर्घ और तीव्र नही है। सुदूर प्रवास-जनित-विरह अत्यत दीर्घकालिक होने के कारण बहुत दु खदायक है। इस विरह मे राधा, गोपिया, और यशोदा दु ख की तीव्रता से मृतप्राय हो जाते है। ब्रजवास लीला के इन पदो में करुणा अपेक्षाकृत अधिक है।

अदूर प्रवास—अदूर प्रवास लीला सबधी गौडीय वैष्णव पदावली में इस प्रवास के ऊपर दिए समस्त अवसरो का वर्णन है, और इन सब समयो के अनुकूल राधा का विरह भी वर्णित है।[1] कालीय दमन और नंद-मोक्षण में यशोदा और अन्य ब्रजवासी भी विलाप

(ङ) पराण-पिय सखि हामारि पिया।
अबहुं ना आओल कुलिश-हिया॥
नखर खोयायलु दिवस लिखि लिखि।
नयन आधायलु पिया-पथ देखि॥ (गोविंददास, प क त, पद १६७१.)

(च) पुन नाहि हेरब सो चांद-बयान।
दिने दिने क्षीण तनु ना रहे पराण॥
आर कत पिया-गुण, कहिब कांदिया।
जीवन सशय हैल पिया ना देखिया॥
उठिते बसिते आर नाहिक शकति।
(ज्ञानदास, प. क त., पद १६४७)

(छ) चिर दिवस भेल हरि, रहल मथुरापुरि,
अतये सखि बुझह अनुमाने।
मधु-नगर-जोषिता, सबहु तारा पंडिता,
बांधल मन सुरत-रति-दाने॥
ग्राम्य गोप बालिका, सहजे पशुपालिका,
हाम किये श्याम-उपभोग्या। (शशि शेखर, की प, पृ ३१२.)

(ज) सखी री हरि आवहि किंहि हेत।
वै राजा तुम ग्वारि बुलावत, यहै परेखौ लेत। (सूरदास, सू सा, १०।३२७८, पृ. १३७३)

(झ) परेखौ कौन बोल कौ कीजै।
ना हरि जाति न पाति हमारी, कहा मानि दुख लीजै॥
(सूरदास, सू सा, १०।३११२ पृ. १३४८)

१. (क) सहचरि सगे राइ निति लूटइ, खणहि खणहि मुरछाय।
कुंतल तोड़ि सघन शिर हानइ, को परबोधब ताय॥

करते और दु खी होते है ।[1] हिन्दी पदावली में इन अवसरो पर केवल यशोदा और अन्य व्रजवासी ही व्याकुल होते हैं । राधा का उल्लेख नही है । केवल रास के समय अतर्धान हो जाने पर राधा और सखिया दोनो व्याकुल हो जाती है ।[2] अर्थात्, राधा का विरह रासातर्धान मे ही वर्णित है, कालीय दमन, गोचारण, नद-मोक्षण आदि में नही ।

हरि हरि कि भेल वजर निपात ।
काहे लागि कालिन्दि-विष-जले पैठल, सो मझु जीवन-नाथ ॥
(माधवदास, प क त, पद १५९०)

(ख) एकादशी करि, निशि अवशेषे, स्नाने गेला व्रजपति ।
जलेर माझारे, वरुणेर चरे, नदेरे हरिल तथि ॥
ए बोल शुनिया, नदेरे नदन, पिताग उद्देश लागि ।
जले झाप दिया, वरुण नियडे, गेला मने दुख जागि ॥
ताहा शुनि धनी, राइ सुवदनी, मरमे पाइया दुख ।
हा नाथ वलिया, कादे फुकरिया, ना देखिया चाद-मुख ॥
(उद्धवदास, प क त, पद १५९५)

१ (क) कादे व्रजेश्वरी, उच्च स्वर करि, कोथा रे गोकुल-चद ।
भुलि कार बोले, झाप दिया जले, भुजगे हइला वध ॥
अपुत्रक हैया, मदिर लइया, आछिनु परम सुखे ।
पुत्र हैया तुमि, जठरे जनमि, शेल दिया गेला बुके ॥
(माधव, प क त पद १५८९)

(ख) ताहार उपरे चडि, घन मालशाट मारि,
झाप दिला कालीदह-जले ।
देखिया राखालगण, कादिया आकुल-मन,
पडे सभे मुरछित हैया ।
फुकरि श्रीदाम कादे, केहो थिर नाहि बाधे ,
क्षणेके चेतन सभे पाला ॥ (माधव, प क त, पद १५८७)

(ग) इहि अतर सब सखा जाइ ब्रज नद सुनायौ ।
हम सग खेलत स्याम जाइ जल माझ धसायौ ॥
बूडि गयौ, उचक्यौ नहीं, ता बातहिं भई बेर ।
कूदि पर्यौ चढि कदम तें खबरि न करी सबेर ।
त्राहि-त्राहि करि नद, तुरत दौरे जमुना-तट,
जसुमति सुन यह बात, चली रोवति तोरति लट ।
ब्रजवासी नर-नारि सब, गिरत परत चले धाइ ।
(सूरदास, सू सा, १०।५८९, पृ ४६४)

२ (क) कहि धौं री बन बेलि कहू तें देखे है नद-नदन ।
बझहु धौं मालती कहू तें, पाए हैं तन-चदन ॥

सुदूर प्रवास—सुदूर प्रवास में कृष्ण मथुरा जाते हैं। सुदूर प्रवास जनित विरहवर्णन गौडीय वैष्णव पदावली मे रस-शास्त्र के अनुकूल है। रूप गोस्वामी ने विरह की जो दश दशायें बताई हैं, उन सब पर पद रचे गए हैं। ये विरह दशायें निम्न है —

१	चिंता दशा	पदकल्पतरु,	पद १८८६
२	जागरण दशा	„ „	पद १८९०
३	उद्वेग दशा	„ „	पद १८९३, १८९४, १८९५
४	तानव दशा	„ „	पद १९०१
५.	मलिनागता दशा	„ „	पद १९०४
६	प्रलाप दशा	„ „	पद १६५५, १६५६
७	व्याधि दशा	„ „	पद १९१०
८	उन्माद दशा	„ „	पद १९१९, १९२०, १९२१
९	मोह दशा	„ „	पद १९२८, १९२९
१०	मृत्यु दशा (दशमी दशा)	„ „	पद १९३६, १९३७

हिन्दी पदो मे इन सब दशाओ का दिग्दर्शन नही है। कुछ दशाओ के समान-भाव प्रदर्शन करने वाले पद पाए जाते हैं। समान-भाव-प्रदर्शक कुछ पद यहा दिए जा रहे हैं।

चिन्ता दशा

बगला पद	हिन्दी पद
कांचा काचन-काति कमल-मुखि	कर कपोल भुज धरि जंघा पर,
कुसुमित कानन जोइ।	लेखति माइ नखनि की रेखनि ॥
कुज-कुटीरे कलावति कातर।	सोच-विचार करति वह कामिनि,
कानु कानु करि रोइ।	धरति जु ध्यान मदन-मुख भेषनि ॥

कहि धौं कुंद, कदंब बकुल, बट, चंपक, ताल तमाल।
कहि धौं कमल कहा कमलापति, सुंदर नैन विसाल ॥
कहि धौं री कुमुदिनि, कदली कछु, कहि बदरी कर बीर।
कहि तुलसी तुम सब जानति हौ, कह घनस्याम सरीर ॥

(सूरदास, सू सा, १०।१०९१, पृ ६३७)

(ख) पियाल चूतवर पनस चंपक अशोक बकुल बक नीप।
एके एके पूछियो तर ना पइया आओल तुलसिसमीप ॥
जाति यूथि नव मल्लिक मालति, पूछल सजल नयाने।

(उद्धवदास, प क त, १९६०)

(ग) बाएं कर द्रुम टेके ठाढ़ी।
बिछुरे मदन गोपाल रसिक मोहिं बिरह-व्यथा तनु बाढ़ी।
लोचन सजल, बचन नहिं आवै स्याम लेति अति गाढ़ी ॥
नद लाल हम सौं ऐसी करी, जल तैं मीन धरि काढ़ी ॥

(सूरदास, सू सा, १०।११०३, पृ. ६४१)

कि कहब कितव कतये कुल-कामिनि
कठिन कुसुम-शर सहइ ।
करहिं कपोल कठ करि कुचित
कालिन्दि-कूल में रहइ ॥ ..
केवल कात-कथा कहि कादये
काम-कलंकिनि गोरि ।
किंचित काल कलप करि मानये
गोविंद दास पहु छोडि ॥
(गोविंददास, प क. त., पद १८८६)

नैन नीर भरि-भरि जु लेति ह,
धिक-धिक जे दिन जात अलेखनि
कमल-नयन मधुपुरी सिधारे,
जाने गुन न सहमभुख सेषनि ॥
अवधि झुठाई कान्ह सुनु री सखि,
क्यों जीवे निसि दामिनि देखनि ॥
सूरदास-प्रभु चेटक नट करि गए,
नाना विधि नाचति नट-पेषनि ॥
(सूरदास. सू. सा, १०।३४०५,
पृ १४१०)

जागरण दशा

बगला पद
के मोरे मिलाआ दिवे सो चाद-चयान ।
आखि तिरपित हवे जुडावे पराण ॥
काल-राति ना पोहाय कत जागिव वसिया ।
गण शुनि प्राण कादे ना जाय पातिया ॥
उठि वसि करि कत पोहाइव राति ।
ना जाय कठिन प्राण छार नारी जाति ॥
धन जन जौवन दोसर बधुजन ।
पिया विनु शून्य भेल ए तिन भुवन ॥ (वलरामदास, प क त, पद १६४५)

हिन्दी पद
हम कौं जागत रैनि विहानी ।
कमल नैन जग जीवन की सखि, गावत अकथ कहानी ।
विरह अथाह होत निसि हमकौं, विनु हरि समुद समानी ।
क्यौं करि पावहि विरहिनि पारहिं, विनु केवट अगवानी ॥
(सूरदास, सू सा, १०।३२७१, पृ १३१७)

उद्वेग दशा

बगला पद
कुज कुवर भेल कोकिल शोकिल, वृन्दावन वन-दाव ।
चन्द मद भेल चदन कंदन, मारुत मारत धाव ॥
कतये आराधव माधव ।
तोहे विनु बाधामयि भेल राधा ॥
ककण झकन किंकिणि शकिनि कुडल कुडलि-भान ।
जावक पावक काजर जागर मृगमद मद-करि मान ॥ (गोविंददास, प.क. त, पद १८९३)

हिन्दी पद
अव वै बातैं उलटि गईं ।

जिन बातनि लागत सुख आली, तेऊ दुसह भईं।
रजनी स्याम स्याम सुन्दर सग, अरु पावस की गरजनि।
सुख समूह की अवधि माधुरी, पिय रस-बस की तरजनि॥
मोर पुकार गुहार कोकिला, अलि गुंजार सुहाई।
अब लागति पुकार दादुर सम, बिनही कुंवर कन्हाई॥
चंदन चंद समीर अगिन सम, तनहिं देत दव लाईं।
कालिंदी अरु कमल कुसुम सब दरसन ही दुखदाई॥
सरद बसंत सिसिर अरु ग्रीषम, हिम-रितु की अधिकाई।
पावस जरें सूर के प्रभु बिनु, तरफत रैन बिहाई॥ (सूरदास, सू. सा., १०।३११९८, पृ. १३५०)

तानव दशा

बंगला पद
पुन नाहि हेरब सो चाद-बयान।
दिने दिने क्षीण तनु ना रहे पराण॥
आर कत पिया-गुण कहिब कांदिया।
जीवन संशय हैल पिया ना देखिया॥
उठिते बसिते आर नाहिक शकति।
जागिया जागिया कत पोहाइब राति॥
सो सुख-संपद मोर कोयाकारे गेल।
पराण-पुतली मोर के हरिया निल॥
आर ना जाइब सोइ जमुनार जले।
आर ना हेरब श्याम कदम्बेर तले॥
निलज पराण मोर रहे कि लागिया।
ज्ञानदास कहे मोर फाटि जाय हिया॥ (ज्ञानदास, प. क. त., पद १६४७)

हिन्दी पद
बहुरि न कबहू सखी मिलें हरि।
कमल-नैंन के दरसन कारन, अपनी सो जतन रही बहुतें करि।
जेइ जेइ पथिक जात मधुबन तन, तिन सौं बिथा कहति पाइन परि।
काहु न प्रगट करी जदुपति सौं, दुसह दुरासा गई अवधि टरि॥
धीर न धरत प्रेम व्याकुल चित, लेत उसास नीर लोचन भरि।
सूरदास तन थकित भई अब, इहिं बियोग-सागर न सकति तरि॥
(सूरदास, सू. सा, १०। ३२९५, पृ. १३३८)

मलिन दशा

बंगला पद
कि कहब माधव गहक गेद।
कहइते हृदय होयत मम भेद॥

अति दुरवल तनु धरइ ना पार ।
कोकिल-शबदे वहये जल-धार ॥
इहि मधु-समय पुरवे रस-खेल ।
सोडरि सोडरि धनि झामरि भेल ॥
विरह-आनले दहि विवरण अग ।
विषम वसत ताहे मदन तरग ॥
रोइ रोइ कि कहये कछु नाहि जान ।
जनु परलाप कवि शेखर भाण ॥

(शखर, प क त, पद १७१९)

हिन्दी पद

सखी री काहे रहत मलीन ।
तन सिंगार कछू देखत नहिं, वुधि वल आनंद हीन ॥
मुख तमोर, नैन नहिं अजन, तिलक ललाट न दीन ।
कुविल वस्त्र, अलकें अति रूखी, दिखियत हैं तन छीन ॥
प्रेम-तृषा तीनों जन जानें, विरही, चातक, मीन ।
सूरदास वीतति जु हृदय में, जिन जिय परवस कीन ॥

(सूरदास, सू सा १०।३२६७, पृ १३७०)

प्रलाप दशा

बगला पद

पिया परदेश वेश गेल दूर ।
हास रभस सवहु भेल चूर ।
मृगमद चदन लेपन वीख ।
मद पवन जनु आनल-शीख ॥
ए सखि ए सखि दुरदिन लागि ।
हात-रतन खसे कोन अभागि ॥
हिमकर उगइते दिनकर-तेज
नलिनि विछायत कटक-शेज ॥
सब विपरित एह समय वसत ।
मनमथ पिशुन कयल जिउ अत ॥
रतन-हार भेल गुरुतर भार ।
दिने दिने वेह नेह अनुसार ॥
विहि से कयल मोहे हाहा सार ।
ज्ञानदास कह अति अविचार ॥
(ज्ञानदास, प क त, पद १८५७)

हिन्दी पद

अव कछु औरहि चाल चली ।
मदन गुपाल विना या व्रज की, सबै वात वदली ।
गह कदरा समान सेज भई, सिहहु चाहि वली ॥
सीतल चद सुतो सखि कहियत, तातैं अधिक जली ।
मगमद मलय कपूर कुकुमा, सींचति आनि अली ।
एक न फुरत विरह जर तैं कछु, लागत नाहिं भली ।
अमृत वेलि सूर के प्रभु विनु, अब विष फलनि फली ।
हरि विधु बिमुख नाहिनै विगसति, मनसा कुमद कली ॥
(सूरदास, सू सा, १०।३१९७, पृ १३४९)

व्याधि दशा

बंगला पद

जोयत पथ नयने झरु नीर।
जैछन भीत - पुतलि रहु थीर॥
जामिनि-जाम-जाम जुग मनइ।
जागरे जागि भरममय भणइ॥
जानिल जदुपति जलधर - श्याम।
जिवइते जुवति जपइ तुया नाम॥
जव केहु लेपये मलयज-पंक।
ज्वलतहि शतगुण मदन - आतंक॥
जतने शुतायल जलरुह पात।
जरि जरि ततहि भसम भइ जात॥
(गोविंददास, प. क त, पद १९१२)

हिन्दी पद

फिरि ब्रज बसौ नंदकुमार।
हरि तिहारे विरह राधा, भई तन जरि छार॥
विन अभूषन मैं जु देखी, परी है विकरार।
एकई रट रटत भामिनि, पीव पीव पुकार॥
सजल लोचन चुअत उनके, वहति जमना धार।
विरह अगिनि प्रचंड उनकैं, जरे हाथ लुहार॥
दूसरी गति और नाहीं, रटति बारबार।
सूर प्रभु कौ नाम उनकें, लकुट अंध अधार॥
(सूरदास, सू सा, १०।४१०८, पृ १६२९)

उन्माद दशा

बंगला पद

नीरस - सरसिज श्यामर - वयना।
तुया गुण गणइते चमकित-नयना॥
खेणे मुख गोइ रोइ खेणे हसइ।
हिय-अभिलाषे चलत महि खसइ॥
ऐ हरि पेखलुं सो गज - गमनि।
जिवइते संशय कुल-वर-रमणि॥
अनुखण मनसिज मन माहा हनइ।
हिमकर किरणहि थिर नाहि मनइ॥
खेणे उठे खेणे बैसे शुति रहु धरणी॥
विष-शराघाते जैछे कातर हरिणी॥
पात ये विथायत कमल-दल-सेज।
छटफटि शयने जीउ नाहि तेज॥
गोविन्ददास कह श्यामरचन्द।
तुरिते मिलइ धनि टूटउ द्वन्द्व॥
(गोविंददास, प क त, पद १९२१)

हिन्दी पद

सुनहु स्याम वै सब ब्रज-बनिता, बिरह तुम्हारैं भईं बावरी।
नाहीं बात और कहि आवत, छाँडि जहाँ लगि कथा रावरी॥
कबहुँ कहतिं हरि माखन खायौ, कौन बसै या कठिन गाँव री।
कबहुँ कहति हरि ऊखल बाँधे, घर-घर तें लै चलीं दावरी॥

कबहु कहति व्रजनाथ वन गए, जोवत-मग भई दृष्टि झावरी ॥
कबहु कहति वा मुरली महिया, लै-लै बोलत हमरो नाव री ॥
कबहु कहति व्रज नाथ साथ तें, चद उग्रो है इहै ठाव री ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु, अब वह मूरति भई सावरी ॥

(सूरदास, सू सा, १०।४१०३, पृ १६२७)

सुदूर प्रवासजनित विरह का वर्णन ऋतुओं के अनुकूल भी किया गया है। गौडीय वैष्णव पदकर्त्ताओं ने षट्-ऋतूचित विरह वर्णन किया है और बारह मासे के रूप में द्वादश मासिक विरह वर्णन भी किया है।[1] हिन्दी पदावली मे वर्षाकालोचित विरह का ही वर्णन

---

१ ग्रीष्म---एके विरहानल दहइ कलेवर, ताहे पुन तपनक ताप ॥
घामि गलये तनु नुनिक पुतलि जनु, हेरि सखि करु परलाप ॥ इत्यादि

(गोविंददास, प क त, पद १७२४)

वसत--- शिशिरक शीत, समापलि सुदरि, शोहन सुरत-सदेशे।
स्मर-शर-सम शर, शशि-कर-शीकर, सहइ सुतनु-तनु शेषे ॥
शुन शुन श्याम सकल गुणवत ।

(गोविंददास, प क त, पद १७१७)

शरद--- आओल शरद निशाकर निरमल परिमल कमल विकाश ।
हेरि हेरि वरज रमणि गण मुरछइ सोड रिया रास विलास ॥

(ज्ञानदास, प क त, पद १७४४)

शिशिर--- हिम ऋतु हिमकर हिममय वात ।
ताहे विरह - जरे थर थर गात ॥
ए हरि कत सहु अबला नारि ।
विरहक वेदन सहइ ना पारि ॥
दीघल रजनि तुरिते ना पोहाय ।
छट फट करि करि निशि जागिया गोडाय ॥

(उद्धवदास, प. क त, पद १७४७)

वर्षा--- उयल नव नव मेह । दुरे रहु श्यामर देह ।
तहिं घन बिजुरि उजोर। हरि रहु नागरि-कोर ॥
चातक पिउ पिउ बोल । शुनइते जिउ उतरोल ॥
दादुरि उनमत भाष । विरहिणि जिवन नैराश ॥
दारुण पाउख काल। जीवन भेल जनजाल ॥

(गोविंददास, प क त, पद १७३१)

बारहमासा---१ गावइ सब मधुमास । तनु दह विरह हुताश ॥
२ मोहइ माधवि-मास । चौदिशे कुसुम विकास ॥
३ वचित रह निशि वास । भेगेल जेठहि मास ॥
४ अतरे आओये आषाढ । विरहिणि वेदन बाढ़ ॥

है, अन्य ऋतुओं का कदाचित् ही कहीं हो[1]। ये पद भी गौडीय पदों से अपेक्षाकृत अधिक हैं और वर्णन भी अधिक सुंदर है।

सुदूर प्रवासजनित यशोदा विरह और कौशल्याविरह—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा भी अत्यंत व्याकुल होती हैं। वे कृष्ण का स्मरण करके अतीव दुःखी होती हैं[2]

---

५. पापी शाओन मास। विरहिणि जीवन नैराश ॥
६ राति दिवसे रहु धन्द। भादरे बादर मन्द ॥
७. निन्दु आउन परभास। भैगेल आशिन मास ॥
८. पानिय शमनक लइ। आओल कातिक धाइ ॥
९ कि रिति करब अब हामे। आओल आघण नामे ॥
१०. कोइ करये जनि रोखे। आओल दारुण पोखे ॥
११ खोइ कलावति-माने। आओल माघ निदाने ॥
१२. उइ देखइ अनुरागे। आओल फागुन आगे ॥

(श्यामदास, प क त, पद १८०२ से १८१४ तक)

१. (क) बरु ए बदरी बरसन आए।
अपनी अवधि जानि नंदनंदन, गरजि गगन घन छाए ॥
कहियत हैं सुरलोक बसत सखि, सेवक सदा पराए ॥
चातक पिक की पीर जानि कै, तेउ तहा तें धाए ॥
द्रुम किए हरित हरषि बेली मिलीं, दादुर मृतक जिवाए।

(सूरदास, सू. सा, १०।३३०८, पृ. १३८२)

(ख) देखौ माई स्याम सुरति अब आवै।
दादुर मोर कोकिला बोलैं, पावस अगम जनावै ॥
देखि घटा घन चाप दामिनी, मदन सिंगार बनावै।

(सूरदास, सू. सा, १०।३३१२, पृ. १३८३)

२ (क) कहां रह्यौ मेरौ मन-मोहन।
वह मूरति जिय तें नहिं बिसरति, अंग अंग सब मोहन ॥
कान्ह बिना गौवें सब व्याकुल, को ल्यावै भरि दोहन।
माखन खात खवावत ग्वालनि, सखा लिए सब गोहन ॥
जब वै लीला सुरति करति हौं, चित चाहत उठि जोहन।
सूरदास-प्रभु के बिछुरें तें, मरियत है अति छोहन ॥

(सूरदास, सू. सा, १०।३१३७, पृ. १३३२)

(ख) गोकुल नगरे, भ्रमये जनु बाउरि, उदसल कुंतल-भार।
काहा मझु प्राण-तनय ब्रज-नंदन, कहइते बहे जल-धार ॥
माधव मो जननी नंदराणी।
पुत्र बिरहानले, उमति पागल जनु, काहारे कि पुछये बाणी ॥
अब काहे बेणु-शबद नाहि शुनिये, कोन कानन माहा गेल ॥

(पुरुषोत्तमदास, प. क. त, पद १७५६)

और उन्हे वापस बुलाना चाहती है। रामवनगमन पर कौशल्या की व्याकुलता और दुःख का वर्णन भी मिलता है।[1]

कृष्ण का द्वादश मासिक विरह—सुदूर प्रवास मे स्थित कृष्ण को भी विरह सताता है। उनके इस विरह का वर्णन बारह मासे के रूप मे 'पदकल्पतरु' में सगृहीत है।[2] हिन्दी

---

१ हाय मीँजिवो हाथ रह्यो।
लगी न सग चित्रकूटहु तें ह्या कहा जात बह्यो॥
पति सुरपुर, सिय राम लखन वन, मुनिव्रत भरत गह्यो॥
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यो मरिवोइ मृतक दह्यो॥

(तुलसीदास, गी व, अ ८४, पृ ३६५)

२ आघण मास नाह-हिय दाहइ, शुनइते हिम-ऋतु नाम।
अगन गहन दहन भेल मदिर, सुन्दरि तुहु भेलि वाम॥
पौष तुषार तुषानले डारल जीवन नागरि नाह -

. .. .

माघहि दिन निशि शिशिरक शीकर-निकरहु अवनि आगोर।
उलटि पालटि अनुखण छट-फटि तनु दहे सहचरि फोर॥

. .. ..

फागुने मधुपुर नागरि नागर विलसइ फागुक रगे।
विरहक आगुनि जरि जरि गुणमणि, क्षामर श्यामर अगे॥

... .

सो मधुमास विलासत जने जने आओल काल वसत।
एत दिन कतहि जतने जिउ राखल अब कि जियब तुया कात॥

.. / .. .

माधवि-मासे आशे जिउ ना रह, अब कि सहब दुख आर।

.. ..

जैठहि पैठल हियें बडवानल किये दुरविहि भेल वका॥

.. ..

फोन आषाढे शेल हिये गाढल, वादल, गाढ फलेश।

.. ..

ए दुख-सायर-निमगन नायर तहि हत-वादुरि-राव।
शाडण गहन दहन दह जीवन किये जानि हरि-वध पाव॥

.. .. ..

उव भादर दिन निरखिते तनु खिण दारुण दुरदिन मान
विरह-हिलोलहि दर दर अन्तर दोलत चपल पराण॥

में कृष्ण के विरह का इस प्रकार वर्णन नहीं है। वे उद्धव के सम्मुख अपने व्रजवास का स्मरण तो करते हैं।[1] इसी प्रकार व्रजवास की याद करते हुए कृष्ण के सखी के सामने उद्गार सम्बन्धी दो तीन पद 'पदकल्पतरु' में प्राप्त हैं।[2]

समृद्धिमान संभोग—सुदूर प्रवास के बाद जो मिलन होता है, वह होता तो अल्पकालिक ही है परन्तु इसमें जो आनंद होता है वह विघ्न-बाधा रहित होने के कारण सर्वश्रेष्ठ होता है। राधा-कृष्ण का यह मिलन दो रूपों में वर्णित है। एक तो रसोद्गार[3] के रूप में

आशिन शारद हस-शबद शुनि पिया-जिउ अति उतरोल।

. . . .

जगजन-लोचन तनु-मन-मोहन आओल कातिक मास।

अबहु अनंग-भुजंग गरासल अब नाहि जिबनक आश॥

(बलरामदास, प. क. त, पद १८३५ से १८४६ तक)

१ ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजनि की छांहीं।
वै सुरभी वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं॥
(सूरदास, सू. सा., १०।४१५७, पृ. १६४४)

२ आरे सखि कबे हाम सो ब्रजे जायब।
कबे पिता नंद, यशोदा मायेर स्याने, क्षीर सर माखन खायब॥
कबे प्रिय धबली, शाङली सुरभि लेइ, सखा सबे दोहि दोहायब॥
(कवि रजन, प क. त, पद १७६०)

३. (क) रजनिक आनंद कि कहब तोय।
चिरदिने माधव मीलल मोय॥
हियाय हइते मोरे ना करे बाहिर।
हेरइते बदन नयने बहे नीर॥
दारिद हेम जनु तिलेक ना छोड़।
एछने हाम रहलुं पिया-कोर॥ (अनंत, प. क त, पद २०२०)

(ख) नहिं बिसरति वह रति ब्रजनाथ।
हौं जु रही हठि रूठि मौन धरि, सुख ही में खेलत इक साथ॥
पचिहारे मैं तऊ न मान्यौ, आपुन चरन छुए हसि हाथ।
तब रिस धरि सोई उत मुख करि, झुकि ढांप्यौ उपरैना माथ॥
रह्यौ न परं प्रेम आतुर अति, जानी रजनी जात अकाथ।
सूरस्याम हौं ठगी महानिसि, कहति सुनाइ प्रीति की गाथ॥
(सूरदास, सू सा., १०।३२०३, पृ. १३५१)

और दूसरा स्वप्न में मिलन[1] और कुरुक्षेत्र में मिलन। कुरुक्षेत्र में मिलन[2] सम्बन्धी पद गौडीय पदावली में नहीं है। मथुरा प्रवास के बाद कृष्ण के राधा से मिलन-संबंधी कुछ पद गौडीय पदावली में है, हिन्दी में नहीं ज्ञात होते।[3]

६ प्रेम-वैचित्य—विप्रलम्भ शृंगार की यह स्थिति प्रेमाधिक्य के कारण होती है। स्नेह जब सम्पूर्ण मन और प्राण को ढक लेता है, तब प्रेमिका को इतना भावावेश हो जाता है कि कुछ सूझ नहीं पड़ता। अनन्य प्रेमिका राधा और गोपिया प्रेमावेश में उन्मत्त सी हो उठती हैं और उन्हें कृष्ण के मधुर रूप में प्रबल आकर्षण जान पड़ता है। वे उनके रूप दर्शन की सर्वदा इच्छुक बनी रहती हैं और उस रूप के प्रति प्रबल अनुराग उनके मन में जागृत हो जाता है। कृष्ण के मुख, वर्ण, शृंगार सब उन्हें आकर्षित करते हैं। इस प्रकार के अनुराग को वैष्णव रस-शास्त्र में रूपानुराग कहा गया है। प्रेमावेश जब और बढ़ जाता है तब चित्त की अन्यमनस्कता के कारण राधा और गोपिया कभी तो अपने को, कभी मुरली को और कभी

---

१ (क) स्वपने देखिलु सोइ मोर प्राणनाथ। समुखे दाडाञा आछे जोड करि हाथ ॥
पुन ना देखिया प्राण धरिते ना पारि। कि करिब कोथा जाब कि उपाय करि ॥
पाइया पराण-नाथ पुन हाराइलु ॥ आपन करम-दोषे आपनि मरिलु ॥
(ज्ञानदास, प क त, पद १७१०)

(ख) सुपनें हरि आए हौं किलकी।
नींद जु सौति भई रिपु हमकौं, सहि न सकी रति तिलकी।
जौ जागौं तौ कोऊ नाहीं, रोके रहति न हिलकी।
तन फिरि जरनि भई नख सिख तें, दिया बाति जनु मिलकी ॥
पहिली दसा पलटि लीन्ही है त्वचा तचकि तनु पिलकी।
अब कैसें सहि जाति हमारी, भई सूर गति सिलकी ॥
(सूरदास, सू सा, १०।३२६१, पृ १३६८)

२ राधा माधव भेंट भई।
राधा माधव, माधव राधा, कीट भृंग गति ह्वै जु गई ॥
माधव राधा के रंग राचे, राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई ॥
बिहँसि कह्यौ हम तुम नहिं अंतर, यह कहिकैं उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज-बिहार नित नई-नई ॥
(सूरदास, सू सा, १०।४२९२, पृ १७०७)

३. देखि सखि राधा माधव प्रेम।
दुलह रतन जनु, दरशन मानइ, परशन गाठिक हेम ॥
आनन्द-नीरे, नयन जब झापये, तबहि पसारिते बाह।
कापये घन घन कंठे करब पुन सुरत जलधि अवगाह ॥
(गोविंददास, प क त, पद १९८८)

कभी कृष्ण को दोष देने लगती है। चित्त की यह दशा वैष्णव रस-शास्त्र में आक्षेपानुराग कही गई है। वियोगिनी राधा और गोपिया पिछली सुख-भरी लीलाओ का स्मरण करती है। यह स्मरण रस-शास्त्र में रसोद्गार कहलाता है। रूपानुराग, आक्षेपानुराग, और रसोद्गार इन सबसे सबधित पद दोनो पदावली-साहित्यो में मिलते है। हिन्दी पदावली में प्राप्त पद इस प्रकार के प्रकरणो में विभाजित तो नही है, परतु गौडीय पदावली में इन प्रकरणो में प्राप्त पदो के समान भाव-प्रदर्शक पद हिन्दी में भी पाए जाते है। कुछ पद यहा दि जा रहे है।

प्रेम वैचित्य

बगला पद

रसवति बैठि रसिकवर पाश।
रोइ कहइ बनि विरह-हुताश॥
आर कि मिलब मोहे रसमय श्याम।
विरह-जलधि कत पउरब हाम॥
निकटहि नाह ना हेरइ राइ।
सहचरि कत परबोधइ ताइ॥
कानु चमकि तब राइ करु कोर॥
गोविंददास हेरि भेल भोर॥ (गोविंददास, प. क त., पद ७६७)

हिन्दी पद

कहा कहति तू मोहिं री माई।
नद-नदन मन हरि लियौ मेरो, तब तैं मोकौं कछु न सुहाई॥
अबलौं नहिं जानति मैं, को हौ, कब तैं तू मेरैं ढिग आई।
कहां गेह, कहं मातु पिता, हैं कहा सजन, गुरुजन कहं भाई॥
कैसी लाजि, कानि है कैसी, कहा कहति ह्वै ह्वै रिसहाई?
अब तौ सूर भजी नंद-लालहिं, की लघुता की होइ बडाई॥

(सूरदास, सू सा., १०।१६५१, पृ. ८३१)

रूपानुराग

बगला पद

मरि मरि ना लो श्याम-रूपेर बालाइ लैया।
कोन विधि निरमिल कत सुधा दिया॥
शारद-विधुवर, फुल्ल पुष्कर, सुंदरानन मंडले।
रत्न मणिमय, रवि मनोदित, गण्डे नृत्यति कुंडले॥
चारु-चन्द्रिम, चूडा चिक्कण, चंचरीगण आवृते।
चमकित हिया मोर ओ रूप देखिने॥
सजल जलधर, तिमिर पुंजर, इन्द्रनील मनोरमे।
मधुरगयर, रंग सिंदुर, निन्दि बिम्बुक विभ्रमे॥

लोचनाचल, विमल चचल, विषम-बाण-सहोदरे ।
श्याम-रूप निरखिते हृदय विदरे ॥
प्रबल भुजवर, निन्दि करिकर, कफणागद शोभने ।
नखर तोखन रुचि विलक्षण, गोपि-चित्त-प्रलोभने ॥ (मधुरादास, प क त, पद ७८९)

हिन्दी पद

मैं बलि जाउँ स्याम मुख-छवि पर ।
बलि बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरे, बलि भृकुटी ललाट पर ॥
बलि बलि जाउँ चारु अवलोकनि, बलि बलि कुडल रवि की ।
बलि बलि जाउँ नासिका सुललित, बलिहारी वा छवि की ॥
बलि बलि जाउँ अरुन अधरनि की, विद्रु-मबिंब लजावन ।
मैं बलि जाउँ दसन चमकनि की, वारौं तडितनि सावन ॥
मैं बलि जाउँ ललित ठोडी पर, बलि मोतिनि की माल ।
सूर निरखि तन-मन बलिहारौं, बलि बलि जसुमति लाल ॥
(सूरदास, सू सा, १०।६६४, पृ ४८४)

आक्षेपानुराग

बगला पद

शुन तोरे कि बलिव वाशी । सतीकुल सकलि विनाशि ॥
गोविंद-अधर-सुधा रस । पिया पिया मातालि साहस ॥
जगत मोहसि मद्रु स्वरे । रमसि शबदे जारे तारे ॥
अथवा कि तुमि अति दोषी । वाशिनी-वाशेर जाते वाशी ॥
दारुते गढ़ल तुया देह । केवल दारुमयी सेह ॥
ए यदुनदनदास भणे । कि करुणा सुकठिन जने ॥
(यदुनदन, प क. त, पद ८२२)

हिन्दी पद

बिधना मुरली सौति बनाई ।
कुटिल बास की, बस-बिनासिनि आस निरास कराई ॥
जौ यह ठाट ठाटिबोहि राख्यौ, कुल की होती कोऊ ।
तौ इतनौ दुख हमहिं न होतौ, औगुन-आगर दोऊ ॥
ये निरदई, निठुर वह बन की, घर अब भयौ प्रकास ।
सूरदास ब्रजनाथ हमारे, जे, से भए उदास ॥
(सूरदास, सू सा १०।१२८६, पृ. ७१२)

नायिका

जैसा पहले लिखा जा चुका है, नायिकाओ के आठ भेद किए गए हैं । परन्तु पदावली-

साहित्य में इन सब भेदो के अनुरूप नायिकाओ का चित्रण नही किया गया है। गौडीय वैष्णव पदावली में अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कठिता, विप्रलब्धा, खडिता और कलहांतरिता नायिकाओ की दशा वर्णन करने वाले पद ही मुख्य रूप से पाए जाते हैं। हिन्दी का पदावली साहित्य इस प्रकार के सब प्रकरणो में बाट कर इसका वर्णन नही करता। केवल खडिता नायिका से सबधित पद तो खडिता सज्ञा देकर सूर सागर में दिए गए है[1] और 'खडिता' प्रकरण में कीर्त्तन-सग्रह में सगृहीत भी है।[2] अन्य कुछ नायिकाओ का वर्णन करने वाले कुछ पद सूर ने भी बनाए हैं। दोनो साहित्यो में प्राप्त सम-भाव सूचक कुछ पद यहा दिए जा रहे हैं।

वासकसज्जा

बगला पद

अपरूप राइक चरीत।
निभृत निकुज, माझे धनि साजये, पुन पुन उठये चकीत॥
किशलय-शेज, बिछायइ पुन पुन, जारत रतन-प्रदीप।
ताम्बुल कपुर, खपुरे पुन राखये, वासित वारि समीप॥
मलयज चदन, मृगमद कुकम, लेह पुन तेजत ताइ।
सचकित-नयने, नेहारइ दश दिश, कातरे सखि-मुख चाइ॥
(ज्ञानदास, प. क. त, पद २८१)

हिन्दी पद

लाखहि तें हरि पथ निहारै।
ललिता रुचि करि धाम आपनें, सुमन सुगधनि सेज संवारै॥
कबहुक होति बारनें ठाढी, कबहुक गनति गगन के तारे।
कबहुक आइ गली मग जोवति, अजहुं न आए स्याम पियारे॥
वै बहुनायक अनत लुभाने, और बाम कै धाम सिधारे।
सूरस्याम बिनु बिलपति बाला, तमचुर जहँ तहँ सब्द उचारे॥
(सूरदास, सू सा., १०।२४७९, पृ १०८१)

उत्कठिता

बगला पद

सजनि की फल पाप पराण।
जामिनि आध-अधिक बहि जाओत
अबहुं ना मीलल कान॥
जतये मनोरथ, सब भेल अनरथ,
कानु-पिरिति अभिलाये।

---

1. खडिता बचन छिन यह उपाई।
कबहु कहुं जात, कहुं नहि कन्हाई॥ (सू सा १०।२४९५, पृ १०८५)
2. की. स. भाग १, पृ. ३५

ना जानिये कोन, कलावति वायल
झाड्-भुजगिनि-पाशे ॥
दारुण फुलशर, फुजे बियारल
मंदिरे गुरुजन-गारि ।

(गोविंददास, प क त, पद २४६)

हिन्दी पद

नव सुवन वहुनायकी, अनतहिं रहे जाई ।
वह अभिलाष करति रहीं, ताको बिसराई ॥
वासर ऐसों ही गयो, निसि जाम तुलानी ।
नारि परी अति सोच में विरहा अकुलानी ॥
आवन कहि गए साझ हीं, अजहुँ नहिं आए ।
कीधौं कतहू रमि रहे, कग परे पराए ॥
वेई है वहुनायकी, लायक गुन भारे ।
सूरस्याम कुमुदा-भवन, सुधि करि पगु धारे ॥

(सूरदास, सू सा, १०।२७०९, पृ. ११५०)

विप्रलब्धा

वगला पद

पथ नेहारि, वारि झरु लोचने
अधर निरस घन श्वास ।
करतले वदन, सघने अवलवइ
गुणि गुणि जिवन नैराश ॥
माधव काहे आशोयासलि रामा ।
सगरिहु जामिनि, जागि पोहायल
कामिनि संकेत ठामा ।
हरि हरि वोलि, धरणि धरि उठइ
वोलत गदगद भाख ।

(गोविंददास, प. क त, पद ३६६)

हिन्दी पद

ललिता तमचुर-टेर सुन्यो ।
वै वहुनायक अनत लुभाने, नहिं आए जिय कहा गुन्यो ।
बिन् कारन वै आस गए पिया, वार-वार तिय सीस धुन्यो ॥
सेज सवारि पथ निसि जोवति, अस्त आनि भयो चंद पुन्यो ।
तव वैठी मन मारि आपनो, कछु रिस कछु मन सोच पर्यो
सूरस्याम यातें नहि आए, मातु-पिता को त्रास धर्यो ॥

(सूरदास, सू. सा., १०।२४८०, पृ १०८१)

खडिता

बंगला पद

शुन माधव कोन कलावति सोइ ।
प्रेम-हेम गहि, आपन रंग देइ, एहेन साजायलि तोइ ॥
नयनक अंजन, अधरे भेल रजित, नयनहि तावुल दाग ।
सिंदुर-बिंदु, चन्दन-इंदु झापल, उर पर जावक राग ॥
मदन-सोनार, भोरि रूप-लालसे, ताहे देयल नख-रेह ।
कोन गोङारि, तोहे अब परशव, हेरि तुया झामर देह ॥
(गोविंददास, प क. त, पद ३७१)

हिन्दी पद

ऐसी कहाँ रंगीले लाल ।
जावक सौं कहं पाग रंगाई, रगरेजिनी मिली कोउ बाल ।
बदन रंग कपोलनि दीन्हौ, अरु अधर भए स्याम रसाल ।
जिनि तुम्हारी मन-इच्छा पुरई, धनि-धनि पिय धनि-धनि वह बाल ।
माला कहा मिली विनु गुन की, उर छत देखि भई बेहाल ॥
सूर स्याम छबि सबै विराजी, यहै देखि मोकौ जंजाल ॥
(सूरदास, सू सा, १०।२४८५, पृ. १०८२)

षष्ठ अध्याय

चरित साहित्य

चरित साहित्य में ऐतिहासिक उपादान

प्रारम्भ—चैतन्यदेव से पहले बगाली साहित्य में जीवनी सबधी रचनायें नही पाई जाती थी। पाल राजाओ की प्रशसा में लिखे गीत इत्यादि सुदूर भूतकाल में रचे गए थे अत वे ऐतिहासिकता से बहुत दूर हैं और प्रामाणिक भी नही है। चैतन्यदेव के भक्तो ने बगाली वैष्णव-जीवनी-साहित्य की रचना की। ऐसा उन्होंने अपने इष्टदेव चैतन्य और अपने गुरुओ की भक्ति-निष्ठा के कारण किया। गौडीय वैष्णव-जीवनी-साहित्य विभिन्न प्रकार का भी है और प्रचुर मात्रा में भी है। हिन्दी वैष्णव-साहित्य में जो कुछ पाया जाता है, उसमें न तो इतनी विभिन्नता है और न वह मात्रा में प्रचुर है।

प्राप्त जीवनी-साहित्य की कुछ सामग्री लम्बे आख्यानक काव्यो[1] के रूप में है, कुछ खड काव्यो के रूप में[2] और कुछ पदों के रूप में।[3] लम्बे आख्यानक काव्य केवल बगला साहित्य में प्राप्त हैं, हिन्दी में नही। इनमें केवल चैतन्यदेव की जीवनी का विशद रूप से वर्णन है। प्रसग रूप से कुछ भक्तो और पार्षदो का भी उल्लेख है। प्रमुख उद्देश्य तो चैतन्य का जीवन-चरित लिखना है। ये आख्यानक काव्य आकार में भी बहुत बडे है। खड काव्यो में वर्णित जीवनिया हिन्दी मे तुलसीदास[4] की और बगला में अद्वैत आचार्य, नित्यानद, चैतन्य, सीता देवी इत्यादि की है। पदो में चैतन्यदेव, विट्ठल और वल्लभ की जीवनी प्राप्त है। चैतन्यदेव के जीवन-चरित का बहुत बडा अश पदो मे मिलता है परन्तु वल्लभ और विट्ठल के जीवन का सुव्यवस्थित और सिलसिलेवार वर्णन हिन्दी पदो में नही मिलता। चैतन्यदेव के जन्म-समय, जन्म-उत्सव, बालपन, विद्याभ्यास, विवाह, सन्यास, भक्ति आदि सब का विवरण केवल पदो से मिल सकता है, परन्तु वल्लभ और विट्ठल की जीवनी का सकेत मात्र ही मिलता है।

कुछ जीवनी ग्रथो में जैसे चैतन्यचरितामृत, चैतन्यभागवत और चैतन्यमगल इत्यादि में, व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन प्रमुख घटनाओ सहित दिया गया है। कुछ रचनाओ में आशिक रूप में ही व्यक्ति की कथा वर्णित है। इसमें कडचा, अद्वैतमगल इत्यादि आते है। कुछ जीवनी-साहित्य इस प्रकार का भी है जिसमें कही तो थोडा सा विवरण है और कही नामो का उल्लेख-मात्र है। इनमें भक्तमाल, वार्ताएँ और वैष्णव-वंदनाएँ आती हैं।

लम्बे आख्यानक काव्यो और खड काव्यो का कुछ विवरण पीछे दिया जा चुका है। उन ग्रथो का कुछ और विवरण यहां दिया जा रहा है।

सोलहवी शती का प्राप्त जीवनी-साहित्य केवल ऐतिहासिकता की दृष्टि से

---

१. चैतन्य-चरितामृत, चैतन्य-भागवत, चैतन्य-मगल।

२. गोसाई-चरित, कडचा, अद्वैत-मंगल, वैष्णव-वदना इत्यादि।

३. गौर-पद-तरगिणी में संगृहीत पद, कीर्तन-संग्रहों में संगृहीत वल्लभ और बिट्ठल सम्बन्धी पद।

४. अब इन्हें अप्रामाणिक माना जाता है।

रचा हुआ नही जान पडता है। जिन व्यक्तियो का चरित उनमें वर्णित है वे सब महापुरुष और भक्तगण हैं। चरितकार का उद्देश्य जितना उनकी लीला-गुण-गान करके अपनी भक्तिनिष्ठा को सार्थक करना है उतना चरितनायक का ऐतिहासिक दृष्टि से परिचय देना नही है। वैष्णव जीवनियो मे जहा उन व्यक्तियो की जन्म मृत्यु-तिथियो का उल्लेख है और उनके जीवन में घटी घटनाओ का वर्णन है वहा उनके सबध की अलौकिक घटनाओ का भी वर्णन है। अलौकिकता का वर्णन सापेक्षत कुछ अधिक ही है। इससे यही ज्ञात होता है कि चरितसाहित्य का निर्माण व्यक्तियो की लौकिक जीवनी का ऐतिहासिक दृष्टि से सच्चा वर्णन करने के लिए नही हुआ है। उस युग के भक्त कृष्ण की दो प्रकार की लीलाओ में विश्वास करते थे। एक तो प्रकट लीला जो उन्होंने द्वापर युग में की थी और दूसरी नित्य लीला जो भक्तो के अन्त करण मे नित्य ही हुआ करती है। कृष्ण के भक्तो ने, जो अपने गुरुओ और आचार्यों के भी भक्त थे, उन लौकिक पुरुषो को भी दोनो लीलाओ मे युक्त कर दिया है, ऐसा ज्ञात होता है। श्री विमान-विहारी मजूमदार का चैतन्य-जीवनी सबधित एक कथन इस सबध में उल्लेखनीय है। वे कहते है कि भक्तो ने चैतन्य को भगवान करके माना था परन्तु इसी कारण यह कहना कि उनकी जीवनी मे आरोपित समस्त अलौकिक घटनायें ऐतिहासिक सत्य है उचित नही। भक्तो के हृदय में उनकी जो लीला जब स्फुरित हो जाती थी, वह सत्य ही है। इस सत्य को पारमार्थिक सत्य का नाम देते है। ऐतिहासिक का अधिकार तो प्रकट लीला मात्र पर है, नित्य लीला उसके विषय के बाहर की वस्तु है। पारमार्थिक सत्य नित्यलीला से सबधित है।[1] एक अन्य स्थान पर ये फिर कहते है कि ये सब लेखक प्रधानत भक्त है, उनका प्रधान उद्देश्य तो लीला-माधुर्य का आस्वादन कराना है। उनके इस आस्वादन म नित्य लीला और प्रकट लीला एव ऐतिहासिक और पारमार्थिक सत्य सब बिना किसी विचार के समान स्थान प्राप्त करते है।[2]

यहा यह कहना कुछ असगत न होगा कि जो व्यक्ति भक्तो मे जितना ही अधिक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय माना गया, उसका उतने ही अधिक विस्तार से इस साहित्य में वर्णन किया गया है और उसकी ख्याति के अनुरूप उतने ही अधिक वैष्णव भक्तो ने उस पर रचनायें की है। सर्वाधिक रचनाओ का चैतन्यदेव सबधी होना स्वाभाविक ही है। कई वैष्णव लेखको ने उनकी आद्यत जीवनी प्रस्तुत की है।[3] इन में चैतन्यदेव की लौकिक जीवनी के साथ-साथ उनके आध्यात्मिक जीवन का भी परिचय मिलता है। प्रसगानुसार उनके धर्म और भक्ति सबधी विचारो का भी उल्लेख है। कृष्णदास कविराज की रचना चैतन्यचरितामृत में इन दोनो का विवरण मिलता है।

प्राप्त जीवनी-साहित्य यद्यपि ऐतिहासिकता की दृष्टि से नही लिखा गया है फिर भी उसमें ऐतिहासिक महत्त्व के विवरणो की कमी नही है, जैसे चैतन्यदेव के जीवन से सबधित बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओ के विवरण। ये विवरण न तो अत्युक्तिपूर्ण है और न

---

१ श्री चैतन्यचरितेर उपादान, पृ १२

२ श्री चैतन्यचरितेर उपादान, पृ १३

३ कृष्णदास कविराज, वृदावनदास, जयानद, लोचनदास इत्यादि।

अविश्वसनीय। उनके संपर्क मे आए हुए कुछ अन्य प्रमुख व्यक्तियो की आंशिक जीवनी का विवरण भी प्राप्त होता है। इस जीवनी साहित्य में प्राप्त ऐतिहासिकता निम्न प्रकार की है।

१ जन्म तिथि, एवं मृत्यु तिथि[1] संबंधी सामग्री।

---

१ (क) चौद्द शत सात शके जन्मेर प्रमाण।
चौद्दशत पचान्ने हइला अतर्धान ॥

... ...

फाल्गुन पूर्णिमा संध्याय प्रभु जन्मोदय।
सेइ काले दैवयोगे चन्द्रग्रहण हय ॥

(चै. च, आदिलीला, परि. १३, पृ. ६६-६७)

(ख) शची गर्भे वसे सर्व्व भुवनेर वास।
फाल्गुनी पूर्णिमा आसि हइल प्रकाश ॥

. .. ..

ईश्वरेर कर्म्म वुझिवार शक्ति काय।
चन्द्र आच्छादिल राहु ईश्वर-इच्छाय ॥
सर्व्व नवद्वीपे देखे हइल ग्रहण।
उठिल मगल-ध्वनि श्रीहरि कीर्त्तन ॥

. ... ..

हेनइ समये सर्व्व जगत-जीवन।
अवतीर्ण हइलेन श्री शचीनंदन ॥

(चै. च, आदिखंड, अ २, प. १८)

(ग) जय जय फलरव नदीया नगरे।
जन्म लभिला गोरा शचीर उदरे।।
फाल्गुन-पूर्णिमा तिथि नक्षत्र फल्गुनी।
शुभक्षणे जनमिला गोरा द्विजमणि ॥ (वासुदेव घोष, गौ. प. त., २।१।२)

(घ) प्रगट भये श्रीवल्लभ प्रभु आनद बढ़्यो है अपार।

.. .. ..

धन्य सवत पन्द्रहा पेंतीस माघोमास।
कृष्णपक्ष एकादशी नक्षत्र कर सुप्रकाश।

(गोविंद, की. स, भाग बीजो, पृ. २४१)

(ङ) माघोमास एकादशी लगन धरावही।
नमे घरी उपरांत पत्रिका लज्ञावही ॥
कृष्ण पक्ष गुरुवार घटी शुभ जोग है।
प्रगटे है अवतार लीलारस भोग है ॥

(कृष्णदास, की सं, भाग बीजो, पृ. २३३)

२. जन्म स्थान या निवास स्थान का उल्लेख—जन्म स्थान या निवास स्थान का उल्लेख प्राय परिचय को स्पष्ट करने के लिए अथवा प्रसगवशात् ही मिलते हैं । कुछ उदाहरण पाद-टिप्पणी में दिए जा रहे हैं ।[1]

३. भक्तों, पार्षदों, शिष्यों, और लेखकों के नामोल्लेखन—भक्तों, पार्षदों और शिष्यों की सूची बहुत लम्बी है । चैतन्यचरितामृत, वैष्णववदना, भक्तमाल, वैष्णवन की

(च) ईश्वर आज्ञाय आगे श्रीअनत नाम ।
राढे अवतीर्ण हैला नित्यानद राम ॥
माघ मासे शुक्ल त्रयोदशी शुभदिने ।
(चै भा, आदिखड, अ २, पृ १७)

(छ) वधावो श्रीवल्लभराय के गृह प्रगटे श्री विट्ठलनाय ।
पौष मास शुभ नौमी भृगु दिन हस्त नक्षत्र है सार ।
वृषभ लग्न शुभ योग करण है धन्य शिशु निरधार ।
(गोविंद, की स, भाग बीजो, पृ १४५-४६)

१. (क) नवद्वीप हेन ग्राम त्रिभुवने नाइ ।
जथा अवतीर्ण हैला चैतन्य गोसाञि ॥
(चै भा, आदिखड, अ २ पृ १४)

(ख) राढ माझे एक चाका नामे आछे ग्राम ।
जहि अवतीर्ण नित्यानद भगवान ॥
(चै च, आदि खड, अ, २ पृ १४)

(ग) श्रीवास पडित आर श्रीराम पडित । श्री चन्द्रशेखर देव त्रैलोक्य पूजित ॥
भवरोग नाशे वैद्य मुरारि नाम जार । श्री हट्टे ए सव वैष्णवेर अवतार ॥
(चै भा आदिखड, अ २, . १४)

(घ) सेइ नवद्वीपे वैसे वैष्णवाग्रगण्य । अद्वैत आचार्य नाम सर्वलोक धन्य ॥
(चै. भा आदि खड, अ २, पृ, १५)

(ङ) रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ श्री गोविंद ॥
तेलियाबुधरि ग्रामे, जन्मिलेन शुभक्षणे, महाशाक्तवशे दुइ भाइ ।
(नरहरि, गौ प त, ६।३।६८)

सो वे कुभनदास जी श्रीगोवर्धन पर्वत के पास जमुनावतो गाव है तामें रहते ।
सो जमुनावतो नाम वा गाव को काहे ते है जो जमुना जी को प्रवाह सारस्वत कल्प में याके निकट हुती ताते जमुनावती नाम का गाव को है ।
(अष्टछाप धी. व, पृ ७०)

सो गऊ घाट ऊपर सूरदास जी को स्थल हुतो ।
(अष्टछाप, धी व., पृ. १)

वार्तायें, इन सब में बहुत से नाम प्राप्त हैं। कुछ अंश उदाहरण-स्वरूप पाद-टिप्पणी में दिए जा रहे हैं।[१]

४. विशेष परिचय—इस प्रकार के परिचयों में संक्षेप में इस बात का उल्लेख मात्र मिलता है कि कुछ व्यक्ति विशेष कवि थे, अथवा संगीतज्ञ थे, अथवा धर्म-प्रचारक या अन्य इसी प्रकार से कुछ थे।[२]

---

१. हरिदास ठाकुरे हैल परम आनंद।
वासुदेव दत्त गुप्त मुरारि शिवानद॥
आचार्यरत्न आर पंडित वक्रेश्वर।
आचार्य निधि आर पडित गदाधर॥
श्रीराम पडित ओ पडित दामोदर।
श्रीमान् पंडित आर विजय श्रीधर॥
राघव पडित आर आचार्य्य नदन।
कतेक कहिव आर जत भक्तगण॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. १०, पृ १७२)

गोविंद माधव वासुदेव तिन भाइ।
जा सवार कीर्त्तन नाचे चैतन्य निताई॥
(चै च, आदिलीला, परि. १०, पृ. ६०)

गोविंद आचार्य वदो सर्व्वगुण शाली।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली॥

हिन्दी के कवि-वदो विष्णु स्वामी गोसाञि वृंदावने वास।
विश्वेश्वर वरनो हित हरिवंश दास॥
वदों सूरदास सूर मदन मोहन।
मुकुंद गुदुरिया वदों हइया एक मन॥
(चै. च, देवकीनदन कृत, ५९ पयार)

हरि सुजस प्रचुर कर जगत में ये कविजन अनिमय उदार।
विद्यापति ब्रह्मदास वहोरन चतुर विहारी।
गोविंद गंगा रामलाल वरसानियां मंगलकारी॥
(भ. हिन्दी, पृ ६५७)

गौड़ीय आचार्य : ससार स्वाद सुख वात ज्यों दृढ़ रूप सनातन त्यागि दियो।
गौड़ देश बगाल हुते सब ही अधिकारी।
हय गय भवन भंडार विभौ भू भुज उनहारी॥
यह सुख अनित्य विचारि वास वृंदावन कीन्हो।
(भ. हिन्दी, पृ ५९७)

२. (क) श्रीमाधव घोष मुख्य कीर्तनीया गणे।
नित्यानंद प्रभु नृत्य करे जार गाने॥
(चै. च, आदिलीला, परि. ११, पृ ६२)

५ तत्कालीन प्रमुख व्यक्तियो के परस्पर मिलने का उल्लेख—उदाहरणार्थ चैतन्य-वल्लभ-मिलन, चैतन्य-रामानद-मिलन, केशव का भार्गवो से मिलन, सूर-वल्लभ-मिलन इत्यादि।[1] चैतन्य से जिन वल्लभ का मिलन हुआ था, उनका नाम सभवत वल्लभ भट्ट

(ख) वासुदेव गीत करेन प्रभुर वर्णने।
फाष्ठ पाषाणादि द्रवे जाहार श्रवणे ॥
(चै च, आदिलीला, परि ११, पृ ६२)

(ग) श्री विजय दास नाम प्रभुर आखरिया।
प्रभु के अनेक ग्रथ दियाछे लिखिया।
(चै च, आदिलीला, परि १०, पृ ५८)

(घ) गोविंद आचार्य वदो सर्व्वगुण शाली।
जे करिल राधाकृष्णेर विचित्र धामाली ॥
(देवकीनदन कृत वैष्णव-वदना)

(ङ) पाछे सूरदास जी ने बहुत पद कीये। पाछे श्रीआचार्यजी महाप्रभून ने सूरदास जी को पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायो तब सूरदास जी को सम्पूरण भागवत स्फुर्नना भई। पाछें जो पद कीयें सो श्री भागवत प्रथम स्कधते द्वादश स्कधताई कीये।
(अष्टछाप, धी व, पृ ५)

(च) नददास आनद निधि, रसिक सु प्रभुहित रग मगे।
लीला पद रस रीति ग्रथ रचना में नागर।
सरस उक्तिजुत जुक्ति भक्ति रस गान उजागर ॥
(भ हिन्दी, पृ ७०२)

१ (क) वर्षान्तरे जत गौडेर भक्तगण आइला।
पूर्व्ववत् महाप्रभु सवारे मिलिला ॥
एमत विलास प्रभुर भक्तगण लञा।
हेन काले वल्लभ भट्ट मिलिला आसिया।
(चै च, अन्त्यलीला, परि. ७, पृ ३७०)

(ख) हेन काले दोलाय चढि रामानद राय।
स्नान करिवारे आइला वाजना वाजाय ॥
प्रभु तारे देखि जानिल रामराय।
ताहारे मिलिते प्रभु मन उठि धाय।
तथापि धैर्य करि प्रभु रहिला वसिया।
रामानद राय आइला सन्यासी देखिया
सूर्य्य शत सम काति अरुण वसन।
सुवलित प्रकाढ देह पद्म लोचन ॥

करके दिया गया है। विमानविहारी मजुमदार उन्हें पुष्टिमार्ग-प्रवर्तक वल्लभाचार्य मानते हैं, और यह सिद्ध करते हैं कि कवि कर्णपूर रचित और गणोद्देशदीपिका मे शुकदेव कह कर वदित, श्री जीव गोस्वामी रचित वैष्णव वदना और देवकी नदन कृत बृहद-वैष्णव-वदना मे उल्लिखित वल्लभाचार्य और चैतन्यचरितामृत में उल्लिखित वल्लभ भट्ट एक ही हैं।[1] परन्तु उपेन्द्रनारायण सिंह चैतन्यचरितामृत के वल्लभ भट्ट को पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता वल्लभाचार्य नही मानते।[2] सभव हो सकता है कि कवि कर्णपूर, देवकीनदन और श्री जीव-वदित वल्लभाचार्य पुष्टिमार्गी वल्लभाचार्य हो और चैतन्यचरितामृत में उल्लिखित वल्लभ भट्ट दूसरे हो, यद्यपि ये वल्लभ भट्ट भागवत के टीकाकार बताए गए हैं। उनकी टीका को देख कर उसको यह कह कर अमान्य बताया गया है कि वह श्रीधर स्वामी की टीका से भिन्न है। कृष्णदास कविराज ने इन वल्लभ भट्ट का जो चित्रण उपस्थित किया है वह कुछ अधिक सहानुभूति-पूर्ण भी नही है। वे चैतन्य से मिलने गए थे, उन्होने उन्हे भक्त समझ कर उनका आलिगन तो किया परन्तु उन्होने और उनके परिवारो ने उनका अनादर ना ही किया।[3] कवि कर्णपूर जिसकी वदना शुकदेव कहकर करें, चैतन्य के परिवार उसका अनादर करे, यह कुछ असगत सा ही ज्ञात होता है। हिन्दी भक्त-

देखिया ताहार मने हैल चमत्कार।
आसिया करिल दंडवत् नमस्कार॥
(चै च, मध्यलीला, परि ८, पृ १४३)

(ग) गंगाय हइया पार श्रीगौराग सुन्दर।
सेइ दिन आइलेन कटक नगर॥
.. .. ..
आइलेन प्रभु जथा केशव भारती।
मत्तसिंह प्राय प्रियवर्गेर सहति॥
अद्भुत देहेर ज्योति देखिया ताहान।
उठिलेन केशव भारती पुण्यवान॥
(चै भा, मध्यखड, अ २५, पृ. २५३)

(घ) तब सूरदास जो अपने स्थलते आयके श्री आचार्यजी महाप्रभुन के दर्शन कों आये। तब श्री आचार्यजी महाप्रभुन ने कह्यो जो सूर आयों बैठो। तब सूरदास जो श्री आचार्य जी महाप्रभुन को दर्शन करि कें आगे आय बैठे। (अष्टछाप, धी च., पृ २)

(ङ) "सो आपन मीराबाई के गांव आयो। सो ये कृष्णदास मीराबाई के घर गये।
(अष्टछाप, पी. च, पृ १९)

1. चैतन्य चरितेर उपादान, पृ २९१-२९३, परि (क), पृ. ७४
2. विष्णु प्रिया गौरांग पत्रिका, ५।७।२५७
3 (क) आसिया वदिल भट्ट प्रभुर चरण।
प्रभु भागवत-बुद्ध्ये कैल आलिगन॥
(चै च. आदिलीला, परि ७, पृ २७०)

माल में एक वल्लभनारायण भट्ट का उल्लेख है।[1] हो सकता है, ये ही वे वल्लभ भट्ट हो।

६ कुछ घटनाओ का उल्लेख—चरित ग्रथो मे कई प्रकार की घटनाओ का उल्लेख मिलता है। कुछ घटनाये जो मनोरजक है, यहा दी जा रही है। उन्हें सुविधा और सम्पूर्ण घटना की दृष्टि मे जो नाम दिए जा रहे है, वे उस नाम मे मूल चरित ग्रथ मे नही है, परन्तु घटनाओ का वर्णन है।

चैतन्य का विद्रोह—चैतन्यदेव और उनके परिकर नदीया नगर में सकीर्त्तन किया करते थे। कुछ यवनो ने और कुछ अन्य विरोधी जनो ने नगर के "काजी" (न्यायाधिकारी) से इसके विरुद्ध शिकायत की और कहा कि ये लोग हिन्दुयानी फैलाते है। एक दिन काजी उसी राह मे जा रहा था जिस राह पर चैतन्य के कुछ भक्त बडे समारोह से सकीर्त्तन करते जा रहे थे।[2] काजी ने उन्हें पकडने की आज्ञा दी[3] और कहा कि नदीया

(ख) फल्गुर बखान प्राय भट्टेर सज व्याख्या।
सर्व्वज्ञ प्रभु जानिया करेन उपेक्षा॥
(चै च, अत्यलीला, परि ७, पृ ३७३)

(ग) वैष्णवेर तेज देखि भट्टे चमत्कार।
ता सवार आगे भट्ट खद्योत-आकार॥
(चै च, अत्यलीला, परि ७, पृ ३७२)

(घ) प्रभुर उपेक्षाय सव नीलाचलेर जन।
भट्टेर व्याख्या किछु ना करे श्रवण॥
(चै च, अत्यलीला, परि ७, पृ ३७३)

(ङ) आचार्यादि आगे भट्ट जवे जवे जाय।
राजहस मध्ये जेन रहे वक प्राय॥
(चै च, अत्यलीला, परि ७, पृ ३७३)

१ ब्रज वल्लभ "वल्लभ" परम दुर्लभ सुख नैननि दिये॥
नृत्य गान गुण निपुन रास में रस वरषावत।
अव लीला ललितादि वलित दम्पतिहिं रिझावत॥
अति उदार निस्तार, सुजस ब्रजमडल राजत॥
महामहोत्सव करत, बहुत सब ही सुख साजत॥
श्री नारायण भट्ट, प्रभु परम प्रीति रस बस किये।
ब्रज वल्लभ "वल्लभ" परम दुर्लभ सुख नैननि दिये॥ (भ हिन्दी, पृ ५९६)

२ एक दिन दैवे काजी सेइ पथे जाय।
मृदग मन्दिरा शख शुनिवारे पाय॥
हरिनाम कोलाहल चतुर्द्दिके मात्र।
शुनि सभये काजी आपनार शास्त्र॥ (चै भा, मध्यखड, अ २३, पृ. २२५)

३ काजी वले धर धर आजि करों कार्य।
आजि वा कि करे तोर निमाइ आचार्य॥ (चै भा, मध्यखड, अ. २३, पृ २२५)

'हिन्दुयानी' हो रहा है, मै इसकी शास्ति का उपाय करूगा।[१] डर के मारे वे लोग भागे। काज़ी ने जिसे पाया उसे पीटा और मृदग फोड दिए।[२] आज सध्या हो गई है अत अब क्षमा करके जाता हू, अब देखूगा तो जाति ले लूगा, यह कह कर उस दिन से काज़ी प्रतिदिन कीर्त्तन हो रहा है या नही यह देखने के लिए भ्रमण करता था।[3] चैतन्य विरोधी अन्य लोग इन सकीर्त्तनकारो को व्यग्य वचन भी सुनाते थे।[४] वे बेचारे डर के मारे चुप रहते गए। अत में उन्होने चैतन्यदेव से जाकर निवेदन किया कि अब हम काज़ी के भय से कीर्त्तन नही कर पाते अत हम नदीया छोड कर जाते हैं। यह सुन कर चैतन्यदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने नित्यानद से कहा, "सावधान हो जाओ, इसी समय सब वैष्णवो के घर चलो। मैं आज समस्त नदीया मे कीर्त्तन करूगा। देखू, मेरा कौन क्या कर लेता है! मैं आज काज़ी का

---

१. काज़ी बले हिन्दुयानी हइल नदीया।
फरिब इहार शास्ति लागालि पाइया॥
(चै. भा, मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

२ आथेव्यये पलाइल नगरियागण।
महात्रासे केश केह ना फरे बधन॥
जाहारे पाइल काजी मारिल ताहारे।
भागिल मृदग अनाचार कैल द्वारे॥
(चै भा, मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२५)

३. क्षमा करि जाड आजि दैवे हैले राति।
आर दिन लागालि पाइले लइब जाति॥
एइमते प्रतिदिन दुष्टगण लैया।
नगर भ्रमये काज़ी कीर्त्तन चाहिया॥
(चै. भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२६)

४. निमाई पंडित जे कहेन अहंकारे।
सबे चूर्ण हइबेक काजीर दुयारे॥
नगरे नगरे जे बुलेन नित्यानंद।
देख तार कौन दिन बाहिराय रग॥
उचित बलिते हइ आमरा पापट।
धन्य नदीयाय एत उपजिल भंड॥
(चै भा, मध्यखंड, अ. २३, प. २२६)

५. भये केह किछु नाहि करे प्रत्युत्तर।
प्रभुस्थाने गिया सबे करेन गोचर॥
काजीर भयेते आर ना करि कीर्त्तन।
प्रतिदिन बुले सेइ सहस्रेक जन॥
नवद्वीप छाडिया जाइब अन्य स्थाने।
गोचरिणु एइ दुइ तोमार चरणे॥ (चै. भा, मध्यखंड, अ २३, पृ २२६)

घर द्वार खोद डालूंगा। देखूं, उसका राजा मेरा क्या कर लेता है! मैं आज प्रेम-भक्ति की विशाल वृष्टि करूंगा और पाखंडियों का काल हो जाऊंगा।"[1] नदीया के समस्त भक्तगण समाचार पाकर तैयार हुए। उन्होंने अपने साथ बड़े-बड़े पात्रों में तेल लिया और बड़े दिये लिए। वे सब चैतन्यदेव के पास आए।[2] यह सुन कर सब वैष्णव आए।[3] चैतन्यदेव ने

---

१ कीर्त्तनेर वाध शुनि प्रभु विश्वम्भर।
क्रोधे हइलेन प्रभु रुद्र-मूर्त्तिधर ॥
....
प्रभु बले नित्यानंद हओ सावधान।
एइक्षण चल सबे वैष्णवेर स्थान ॥
सर्व्व-नवद्वीपे आजि करिब कीर्त्तन।
देखि मोरे कोन कर्म्म करे कोन जन ॥
देख आजि काजीर पोडाइ घर-द्वार।
कोन कर्म्म करे देखि राजा वा ताहार ॥
प्रेम-भक्ति वृष्टि आजि करिब विशाल।
पाखंडीगणेर से हइब आजि काल ॥

(चै. भा, मध्यखंड, अ २३, पृ २२६)

२ तार बड तार बड सबेइ बाधेन।
बड बड भाडे तैल करिया लयेन ॥
अनंत अर्बुद लक्ष लोक नदीयार।
ए देउटि सख्या करिवार शक्ति कार ॥
इतिमध्ये जे जे व्यवहारे बड हय।
सहस्रेक साजाइया कोन जने लय ॥
हइल देउटी-मय नवद्वीप-पुर।
स्त्री-बाल-वृद्धेर रंग बाडिल प्रचुर ॥

(चै. भा, मध्यखंड, अ २३, पृ २२६)

३. ईषत आज्ञाय मात्र सर्व्व-नवद्वीप।
चलिल देउटी लइ प्रभुर समीप ॥
शुनि सर्व्व-वैष्णव आइला ततक्षण।
सबारे करेन आज्ञा शचीर नंदन ॥
आगे नृत्य करिबेन आचार्य गोसाञि।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान ठाञि ॥
मध्ये नृत्य करि जाइबेन हरिदास।
एक सम्प्रदाय गाइबेन तान पाश ॥
तबे नृत्य करिबेन श्रीवास पंडित।
एक सम्प्रदाय गाइबेक तान भित ॥
... .. .

(चै भा., मध्यखंड, अ २३, पृ २२६)

लोगो के अलग-अलग दल बनाए और कहा कि सबसे आगे अद्वैत आचार्य नृत्य करेंगे और उनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। बीच मे हरिदास नृत्य करेंगे और उनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। उनके पीछे श्रीवास पंडित नाचेंगे औरउनके साथ एक सम्प्रदाय गायेगा। सबसे पीछे नित्यानद सहित चैतन्य रहे।[१] गदाधर, वक्रेश्वर, मुरारि, श्रीवास, गोपीनाथ, जगदीश, गगादास, विप्र, रामाइ, गोविंदानन्द, श्री चन्द्रशेखर, वासुदेव, श्री गर्भ, मुकुंद, श्रीधर, गोविंद, जगदानद, नंदन आचार्य, शुक्लाबर, इत्यादि जिनका कार्य ही संकीर्तन करना था उनके आसपास नाचते रहे।[२] चैतन्य ने हरि की ध्वनि उठाकर सबको पुकारा। सब वैष्णव उनके पास आए। सबको मिलाकर उन्होंने संकीर्त्तन प्रारंभ किया और बाहर आए।[३] वे नाचते हुए भागीरथी की ओर चले और उनके आगे-पीछे सब लोग चले।[४] असंख्य दीपक जल गए और असंख्य लोग हरि बोलने लगे।[५] अन्य आचार्यों को जिस प्रकार चलने की उन्होंने आज्ञा दी थी वे उसी प्रकार चले। इस प्रकार उन्होंने प्रत्येक नगर मे कीर्त्तन किया।[६]

---

१. नित्यानंद-धारा देखि नित्यानद-अगे।
आलिंगन करि राखिलेन निज संगे॥....
(चै भा, मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

२. गदाधर वक्रेश्वर मुरारि श्रीवास।
गोपीनाथ जगदीश विप्र गंगादास॥
रामाइ गोविंदानंद श्री चन्द्रशेखर।
वासुदेव श्रीगर्भ मुकुंद श्रीधर॥
गोविंद जगदानद नन्दन आचार्य।
शुक्लाबर आदि जे जे जाने एइ कार्य॥
(चै भा, मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

३. हरि बलि डाकिलेन गौरांग-सुन्दर।
सकल वैष्णवगण आइला सत्वर॥
करिते लागिल प्रभु बेड़िया कीर्त्तन।
सबार अगेते माला श्रीफागु चंदन॥ ....
चतुर्द्दिके आपन विग्रह भक्तगण।
बाहिर हइला प्रभु श्रीशचीनंदन॥ (चै भा, मध्यखंड, अ. २३, पृ. २२७)

४ भागीरथी-तीरे प्रभु नृत्य करि जाय।
आगे पाछे हरि बलि सर्व्वलोके धाय॥......
(चै. भा, मध्यखंड, अ २३, पृ. २२८)

५. लक्षकोटि महादीप चतुर्द्दिके ज्वले।
लक्षकोटि लोक चतुर्द्दिके हरि बले॥ (चै. भा, मध्यखंड, अ २३, पृ २२९)

६ हेन महारंगे प्रति नगरे नगर।
कीर्त्तन करेन सर्व्वलोकेर ईश्वर॥
(चै भा, मध्यखंड, अ २३, पृ २३१)

साथ की भीड उत्तेजित होने लगी और कोई-कोई चिल्लाने लगे "काज़ी कहा है, पा जाय तो अभी उसका मस्तक चूर्ण कर दें।"[१] कोई कोई पेड पर चढ कर डाल तोडने लगे और 'हम पाखडियो के काल हैं' ऐसा कहने लगे। कुछ लोग चिल्लाने लगे—"काज़ी कहा है, उसे पकडो।"[२] सब लोग काज़ी के घर की ओर चले। कोलाहल सुन कर काज़ी नाराज हुआ और उसने अपने नौकर भेजे। उन्हें देख कर मामूली भीड समझ कर वे अपना धर्मशास्त्र गाने लगे। भीड चिल्ला उठी, 'काज़ी को मारो।' तब नौकर भाग कर मालिक के पास गए और समाचार दिया।[3] पहले तो काजी अपनी आज्ञा उल्लघन होते देख क्रोधित हुआ, फिर भीड देख कर सब भाग गए। जिसकी दाढी थी उसने मुह नीचा कर लिया, डर के मारे उसकी छाती धडकने लगी।[४] काज़ी के द्वार पर आकर चैतन्यदेव ने क्रुद्ध होकर

---

१ केह बले एबे काजी बेटा गेल कोथा।
लागालि पाइले आजि चूर्ण करों माथा॥
. . . .
वृक्षेर उपरे गिया केह केह चडे।
सुखे पुन पुन गिया लाफ दिया पडे॥
पाखडीर क्रोध करि केह भागे डाल।
केह बले एइ मुञि पाखडीर काल॥ (चै भा, मध्यखड, अ २३, पृ २३२)

२ आर जन दश विशे नड दिया जाय।
घर घर कोथा काजी भाडिया पलाय॥
(चै भा, मध्यखड, अ २३, पृ २३२)

३. काजीर बाडीर पथ धरिल ठाकुर। वाद्य-कोलाहल काजी शुनये प्रचुर॥
काजी बले शुन भाइ कि गीत-वादन। किबा कार विभा किबा भूतेर कीर्त्तन॥
. . . . .
काजीर आदेशे सब अनुचर धाय। समृद्धि देखिया आपनार शास्त्र गाय॥
अनत अर्बुद लोके बले काजी मार। भये पलाइल तबे काजीर किंकर॥
नड दिया काजीरे कहिल झाट गिया। कि कर चलह झाट जाइ पलाइया॥
कोटि कोटि लोक सगे निमाइ आचार्य। साजिया आइसे आजि किबा करे कार्य॥
लाखे लाखे महाताप देउटी सब ज्वले। लक्ष कोटी लोक मेलि हिन्दुयानी बले॥
(चै भा, मध्यखड, अ २३, पृ २३३)

४ काजी बले हेन बुझि निमाइ पडित।
विवाह करिते वा चलिल कोन भित॥
एबा नहे मोरे लघि हिंदुयानी करे।
तबे जाति निमु आजि सबार नगरे॥
. . . .
पूरिल सकल स्थान विश्वम्भरगणे।
भये पलाइते केह दिक नाहि जाने॥

कहा, "काजी कहा है, पकड कर लाओ। मैं उसका मस्तक छेदन करूंगा। मैं आज समस्त भुवन को निर्यवन करूंगा।"[1] काजी द्वार बंद करके न जाने कहा चला गया, यह सुनकर उन्होंने उसका घर तोडने की आज्ञा दी। लोगो ने उसका घर तोडना प्रारंभ कर दिया। घर के पास लगा उद्यान भी नष्ट कर दिया। जब बाहर का घर तोड दिया गया, तब चैतन्यदेव ने घर के अन्दर आग लगाने की आज्ञा दी। लोगो ने आग लगा दी।[2] काजी को दड देकर सब नाचते-गाते लौट आए।[3]

कृष्णदास अधिकारी का विद्रोह—वल्लभाचार्य जी ने गोवर्धन स्थित विग्रह की सेवा बंगालियो को सौंपी थी। वे जो कुछ भेंट आती थी, वह सब खर्च कर डालते थे।[4]

जार दाड़ि आछे सेइ हञा अधोमुख।
लाजे माथा नाहि तोले भये हाले बुक॥
(चै. भा, मध्यखड, अ २३, पृ. २३४)

१ आलिया काजीर द्वारे प्रभु विश्वम्भर।
क्रोधावेशे हुंकार करये बहुतर॥
क्रोधे बले प्रभु आरे काजी बेटा कोथा।
झाट आन धरिया काटिया फेल माथा॥
निर्यवन करि आजि सकल भुवन।
पूर्व्वे जेन वधियाछि से काल यवन॥ (चै भा., मध्यखंड, अ. २३, पृ. २३४)

२ प्राण लञा कोथा काजी गेल दिया द्वार।
घर भाग भाग प्रभु बले बार बार॥
....
केह घर भागे केह भागये दुयार।
केह लाथि मारे केह करये हुंकार॥
आम्र-पनसेर डाल भागि केह फेले।
केह कदलीर वन भागि हरि बले॥
पुष्पेर उद्याने लक्ष लक्ष लोक गिया।
उपाडिया फेले सब हुंकार करिया॥
....
भागिलेक जत सब बाहिरेर घर।
प्रभु बले अग्नि देह बाडीर भितर॥
पुडिया मरुक सब गणेर सहिते।
सर्व्ववाडी अग्नि देह चारि भिते॥ (चै भा, मध्यखड, अ २३, पृ २३४)

३. काजीर भागिया घर सर्व्व नगरिया।
महानंदे हरि बलि जायेन नाचिया॥ (चै भा, मध्यखड, अ. २३, पृ २३५)

४. सो भेंट आवती सो खरच होती, कछू संग्रह न राखते, सब खर्च होय जातो, और बंगाली सेवा करते। (अष्टछाप, दो व, पृ २०)

वल्लभाचार्य ने वहा का प्रबंध कृष्णदास को सौंपा और वह अधिकारी कहलाए। कुछ दिन बाद कृष्णदास मथुरा जाने लगे। राह मे उन्हे एक महात्मा अवधूतदास मिले। उन्होने कृष्णदास से बताया कि बगाली पुजारी अपनी चोटी में देवी का छोटा सा स्वरूप छिपा कर रखते है और श्रीनाथ जी का भोग लगाते समय उसे सामने रख कर भोग लगाते है, फिर उसे चुटिया में रख लेते है। अत तुम बगालियों को दूर करो।[1] कृष्णदास ने उत्तर दिया कि गोसाईं जी की आज्ञा के बिना उन्हें कैसे निकाले। अवधूतदास के राय देने पर, कि तुम जाकर उनसे आज्ञा माग लो, कृष्णदास अडैल गए। वहा जाकर उन्होने विट्ठल नाथ गुसाईं को समाचार दिया कि बगाली जो कुछ भेंट आती है ले जाकर अपने गुरु को दे देते है।[2] गुसाईं जी ने भी कहा कि बगालियो ने वर्ष भर में श्रीनाथ जी की भेंट में चढे आभूषण, स्वर्ण पात्र आदि सब अपने गुरु को दे दिए।[3] परन्तु वे आचार्य महाप्रभु के रक्खे हुए है अत कैसे निकाले जाय। कृष्णदास बोले 'आप मुझे आज्ञा भर दे दे, मै जैसे वे निकलेंगे, निकालूगा।'[4] गुसाईं जी ने आज्ञा दे दी। कृष्णदास ने राजा बीरबल और टोडरमल के नाम दो पत्र लिखवाए और चले गए। व पत्र उन लोगो को दिखाकर वे मथुरा गए। बगाली रुद्रकुड पर रहते थे, कृष्णदास ने उनकी झोपडियो मे आग लगा दी। शोर मचा और बगाली नीचे उतरे। कृष्णदास ने तुरन्त अपने आदमी ऊपर भेज दिए। यह जान कर कि आग कृष्णदास ने लगाई है, बगाली उनसे लडने लगे। कृष्णदास ने उन सबको दो-दो चार-चार लाठी मारी।[5] तब वेसे बगाली भाग कर मथुरा गए और रूप सनातन से शिकायत की।

---

१ सो तब बगाली श्रीनाथ जी को भोग धरते सो उनकी चुटि में छोटो सो स्वरूप हुतौ देवी को सो सामने बैठावतें जब भोग सरावते। वा देवी कौ अपनी चुटिया में धर लेते ऐसे सदा करते। सो बात अवधूतदास को श्रीनाथ जी ने जताई ताते अवधूतदास ने कृष्णदास सें कह्यौ जो तुम बगालीन को दूर करो।

(अष्टछाप, धी व, पृ २१)

२ बगालीन ने बहुत मायौ उठायौ है जो भेट आवत है सो ले जात है सो सब अपने गुरुन को देत है। (अष्टछाप, धी व, पृ २१)

३ तब श्री गोपीनाथ जी ने दर्शन कीयो। पाछें जो लाये हुते सो सब भेट कियौ। आभूखन सब जडाव के समराये। थार कटोरा डबरा चमचा तष्ठी प्रभृत सब सोना रूपा के कियें। ता पाछें बगाली बरस एक कें भीतर सब ले गयें। अपने गुरु के यहा जाय के दीयौ। (अष्टछाप, धी व, पृ २२)

४. मोकों आप आज्ञा करौ तौ अपनो आप कर लेउगो। जैसे बगाली निकसेंगे तैसे काढूगो। (अष्टछाप, धी व, पृ २२)

५. सो वे बगाली सब रुद्रकुड ऊपर रहते सो उहा उनकी झोंपरी हुती। सो कृष्णदास ने जराय दीनी। तब सोर भयौ। तब बगाली सेवा छोड कै पर्वत के नीचे आयें। तब कृष्णदास ने पर्वत ऊपर अपने मनुष्य पठाय दियें। तब बगाली देखें तौ कृष्णदास ने झोंपरी में आग लगाय दीनी है। तब सब बगाली कृष्णदास सो लरन लागें। तब कृष्णदास ने द्वै द्वै चार चार लाठी सबन में दीनी।

(अष्टछाप, धी व, पृ २३)

कृष्णदास भी वहा जा पहुचे। रूप सनातन ने कृष्णदास से कहा "क्यो रे! तू कौन है जो इन ब्राह्मणो को मारता है!" कृष्णदास बोले "मै तो शूद्र हू पर तुम भी तो अग्निहोत्री नही हो, कायस्थ हो।" रूप सनातन के पूछने पर कि 'पातसाह' के सुनने पर तुम क्या जवाब दोगे। कृष्णदास ने उत्तर दिया कि मैं तो जवाब दे लूगा पर तुम न दे पाओगे। कायस्थ हो कर ब्राह्मणो से पैर पुजवाते हो। रूप सनातन बगालियो मे यह कह कर चुप हो गए कि तुम जानो ये जाने, वे बगाली मथुरा के हाकिम के पास गए। कृष्णदास भी पहुचे। हाकिम ने कहा, जो हुआ सो हुआ, अब इन्हें रख लो। कृष्णदास कहने लगे, "जो अब तो इनका न राखेंगे। ये तो हमारे चाकर हुते सो हमने इनको सेवा सोंपी हुती सो ये सेवा छोड के क्यो आये। जो इनकी झोपरी जर गई हुती तो हम नई छवाय देते ताते अब हम तो न राखेंगे।" बगालियो ने गुसाईं जी केमथुरा आने पर उनसे भी कहा, पर वही उत्तर पाया।[1]

यह समस्त घटना 'चैतन्यचरितामृत' में तो नही है। इतना अवश्य दिया है कि रूप सनातन बहुत से लोगो को लेकर गोपाल के दर्शन करने मथुरा गए। विमानबिहारी मजुमदार का अनुमान है कि वे लम्बी चौडी भीड़ लेकर दर्शन करने तो नही, हाकिम से कृष्णदास के विरुद्ध फरियाद करने ही गए होंगे।[2] बगालियो और अन्य भक्तो मे कुछ मनो-मालिन्य था, इसकी झलक इन कथन में मिलती है कि रूप सनातन दर्शन के लिए गोवर्धन पर नही चढे।[3] म्लेच्छ के भय से गोपाल मथुरा विट्ठलेश्वर के घर थे, वहा जा कर रूप सनातन ने परिकर सहित एक मास तक दर्शन किया। हो सकता है, कि झगडे के ही कारण रूप सनातन पर्वत पर नही चढे और विट्ठलेश्वर बगालियो से बचाने के लिए गोपाल विग्रह मथुरा ले गए।

७ **रचनाओं के नाम**—चरित साहित्य मे कुछ रचनाओ के नाम मिलते है। ये नाम प्रसगवशात् ही आए है। कुछ बडे आचार्यों अथवा भक्तो का विवरण देते देते लेखक ने उनकी कुछ रचनाओ के नाम भी परिचय के लिए दे दिए है। चैतन्यदेव दक्षिण भ्रमण

---

१. अष्टछाप, घो. व, पृ. २४-२५

२. चैतन्य चरितेर उपादान, पृ. २३८

३ पर्व्वते ना चड़े वृद्ध रूप सनातन। एइ रूपे ता सबारे दियाछे दर्शन॥
वृद्धकाले रूप गोसाञि ना पारे जाइते। वांछा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते॥
म्लेच्छ भये एला गोपाल मथुरा नगरे। एक मास रहिल विठ्ठलेश्वर घरे॥
तबे रूप गोसाञि सब निजगण लञा। एक मास दर्शन कैल मथुराय रञा।
सगे गोपाल भट्ट दास रघुनाथ। रघुनाथ भट्ट गोसाञि आर लोकनाथ॥
भूगर्भ गोसाञि आर श्री जीव गोसाञि। श्री जादव आचार्य आर गोविंद गोसाञि॥
श्री उद्धवदास आर माधव वृद्ध जन। श्री गोपाल दास आर दास नारायण॥
गोविंद भक्त आर वाणी कृष्णदास। पुंडरीकाक्ष ईशान आर लघु हरिदास॥
एइ सब मुख्य भक्त लञा निज संगे। श्री गोपाल दरशन कैल बहुरंगे॥
(चै. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २३९)

से दो पुस्तके लाए थे। उनके नाम 'ब्रह्म सहिता' और 'कर्णानद' कृष्णदास कविराज ने दिए हैं।[१] यहा पर तालिका के रूप में कुछ रचनाओ के नाम दिए जा रहे है।

लेखक	रचनायें
सनातन	हरिभक्ति विलास आर भागवतामृत। दशम टिप्पणी आर दशम चरित ॥ एइ सव ग्रथ कैल गोसाञि सनातन। (चै च, मध्यलीला, परि. १, पृ. ९२)
रूप	रूप गोसाञि कैल कत के करु गणन ॥ .. . ... रसामृतसिधु आर विदग्धमाधव। उज्ज्वल नीलमणि ओ ललितमाधव ॥ दानकेली कौमुदी ओ बहु स्तवावली। अष्टादश-लीला छद आर पदावली ॥ गोविंद-विरुदावली ताहार लक्षण। मथुरा-माहात्म्य आर नाटक वर्णन ॥ लघुभागवतामृतादि के करु गणन। (चै च, मध्यलीला, परि १, पृ. ९२)
जीव	तार भ्रातुष्पुत्र नाम श्री जीवगोसाञि। जत भक्ति ग्रथ कैल तार अत नाञि ॥ भागवत सदर्भ नाम ग्रथ विस्तार। भक्ति ओ सिद्धान्त ताते लिखिछेन सार ॥ श्री गोपाल चम्पू नामे ग्रथ महाशूर। नित्यलीला स्थापन जाहे ब्रजरस पूर ॥ (चै च, मध्यलीला, परि १, पृ ९२)
नरोत्तमदास	नरे नरोत्तम धन्य, ग्रथकार अग्रगण्य, अगण्य पुण्येर एकाधार। . चन्द्रिका पचम सार, तिन मणि सारात्सार, गुरु शिष्य सवाद पटल ॥ त्रिभुवने अनुपाम, "प्रार्थना" ग्रथेर नाम, हाटपत्तन मधुर केवल ॥ (गौ प त ६।३।६७)

१. ब्रह्मसहिता कर्णामृत दुइ पुथि पाञा। दुइ पुस्तक लञा एल उत्तम जानिञा ॥
(चै. च, मध्यलीला, परि. १, पृ ९५)

वृन्दावनदास	वृंदावनदास कैल चैतन्यमंगल ।[1] . . . ताहाते चैतन्य लीला वर्णिल सकल ॥ सूत्र करि सब लीला करिल ग्रथन । पाछे विस्तारिया ताहा कैल विवरण ॥ (चै च, आदिलीला, परि. ८, पृ ५३)
कृष्णदास कविराज	चैतन्यचरितामृत, शास्त्र सिंघु मथि कृत, लिखे कविराज कृष्णदास ॥ (उद्धवदास, गौ. प. त. ६।३।४६)
ईश्वरपुरी	गदाधर पंडितेर आपनार कृत । पुथि पडायेन नाम कृष्णलीलामृत ॥ (चै. भा., आदिखंड, अ. ९, पृ. ५९)
माधव आचार्य	माधव आचार्य वर्दों कवित्वशीतल । जाहार रचित गीत श्रीकृष्ण मंगल ॥ वैष्णव वंदना (देवकी नंदन कृत)
तुलसीदास	जो जैसे तुलसीदास जी नें रामायण भाषा करी हैं सो हमहूं श्रीमद्‌भागवत भाषा करें । (अष्टछाप, धी व., पृ. ९९)
विल्व मंगल	कृष्ण कृपा को पर प्रगट 'विल्व मंगल' मंगल स्वरूप । "करुणामय" सुकवित्त युक्ति .. (भ. हिन्दी, पृ. ३७३)

८. आत्मीयों एवं गुरुओं के उल्लेख—इस प्रकार के उल्लेखों में व्यक्तियों के माता-पिता, भाई, पत्नी, पुत्र, गुरु इत्यादि के नाम लिखे जाते हैं। सर्वाधिक उल्लेख चैतन्य-देव से ही संबंधित हैं। उनके संबंधियों के उल्लेखों को छोड कर अन्य व्यक्तियों के जो उल्लेख मिलते हैं, वे कुछ नीचे दिए जा रहे हैं।

(१) माता-पिता (क) प्रकट भये तैलग कुल दीप ।
श्री लक्ष्मण भट्ट अति आनंदित सुत मुख निरखत आय समीप ॥
मात इलम्मा कूख उदय भयो ज्यों उपजत मुक्ताफल सीप ।
सगुणदास मुख कहत न आवे यश प्रसर्यो नवखंड सप्तद्वीप ॥
(सगुणदास, की. र., पृ. २७५)

(ख) पलने झूलत वल्लभराई ।
प्रेम विवश गावत हूलरावत मुदित इलम्मा माई ॥
. .
श्री वल्लभ चरनारविंद पर दास रसिक बल जाई ॥
(रसिक, की. र., पृ. २८८)

---

१. यह ग्रंथ नाम बदल कर "चैतन्य-भागवत" कहलाया। लोचनदास और जयानंद दोनों के ग्रंथ इसी नाम के थे।

(ग) चिरजीव-सेन सुत, "कविराज" नाम ख्यात

(गौ प त ६।३।६८)

भाई रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ श्रीगोविंद।

. .

कहे दीन नरहरि, ताइ धन्य धन्य करि, गाय गुण पडित समाज॥

(नरहरि, गौ प त ६।३।६८)

नददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते।

(अष्टछाप, धी व, पृ ९४)

पत्नी नित्यानद घरणी, जाह्नवा ठाकुरानी, त्रिभुवने पूजित चरण।
जाहार कीर्त्तन काले, रुधिर पुलक मले, देखि कैल चैतन्य स्मरण॥

(वल्लभ, गौ प त ६।३।६४)

जयति रुक्मिनीनाथ, पद्मावतिपति, विप्र-कुल-छत्र, आनदकारी।
दीप-वल्लभ-वस, जगत निस्तम करन, कोटि उडराज सम तापहारी॥

(नददास, द्वितीय भाग, पृ ३४२)

पुत्र प्रकट भये सदन दुख दवन विट्ठलेश के
सातमे सुवन घनश्याम अभिराम।

.

कहा कहों सुयश मुख एक रसना करी
रसिक को दास नित्य करत परणाम॥

(की स, भाग बीजो, पृ १७६)

चैतन्यदास, रामदास, आर कर्णपुर।
तिन पुत्र शिवानद प्रभुर भक्तशूर॥

(चै च, आदिलीला, परि १०, पृ ५८)

गुरु मोर ठाकुर महाशय, नरोत्तम दयामय, दते तृण करों निवेदन॥
वल्लभ छाडिया पाके, आकुल हइया डाके, अहे नाथ लहनु शरण॥

(वल्लभ, गौ प त ६।३।६५)

रामचन्द्र कविराज, विख्यात धरणी माझ, ताहार कनिष्ठ श्री गोविन्द॥
चिरजीवसेन-सुत, "कविराज" नामे ख्यात, श्री निवास शिष्य कविचद।

(गौ प त ६।३।६८)

९ **भ्रमण एव गुरुओं के उल्लेख**—चरित साहित्य में इस बात के बहुत से प्रमाण पाए जाते हैं कि चैतन्यदेव के काल में प्राय भक्तगण बहुत यात्रायें किया करते थे। ये यात्रायें केवल घूमने फिरने के लिए नही होती थी। आचार्यगण तो प्राय धर्म प्रचार के लिए अथवा तीर्थ यात्रा के लिए जाया करते थे। अन्य व्यक्ति या तो गुरु के दर्शन करने या तीर्थ करने जाते थे। चैतन्यदेव ने धर्म प्रचार करने और तीर्थ करने दोनो के ही लिए बडी लम्बी

लम्बी यात्रायें की थीं। वे पिता का श्राद्ध करने गया गए।[१] सन्यास ग्रहण करने के बाद उन्होंने गौड देश का भ्रमण किया।[२] तीर्थ यात्रा करने और धर्म प्रचार करने वे दक्षिण भारत गए।[३] यहा से वापिस आकर वे तीर्थ भ्रमण करने के लिए वृंदावन, प्रयाग और काशी गए।[४] इस यात्रा में भी उन्होंने अपनी सकीर्त्तन-भक्ति का प्रचार किया था। उनकी इन यात्राओ का विस्तृत विवरण चैतन्य-चरितामृत में मिलता है। प्रयाग मे उन्होंने त्रिवेणी स्नान किया, उस समय माघ मास था।[५] वृंदावन में गोवर्धन स्थित गोपाल के दर्शन किए, और यमुना में स्नान किया।[६] काशी में गगा मे स्नान किया। दक्षिण मे उन्होने सेतुवध और कुमारी अतरीप तक यात्रा की।[७] इस सबका विवरण चैतन्यचरितामृत मे मिलता है। वल्लभाचार्य ने भी भ्रमण किया था, इसका निर्देश मात्र मिलता है।[८] इसी

---

१. चैं. च, आदिलीला, परि १७

२. (क) चैं. भा, शेपखड, अ. ३, ४ ५.
   (ख) चैं. च, मध्यलीला, परि. १६

३. चैं च, मध्यलीला, परि. ७, ८, ९

४. चैं च, मध्यलीला, परि. १६-२५

५. एइमत चलि प्रभु प्रयाग आइला।
   दश दिन त्रिवेणीते मकर स्नान कैला॥
   (चैं. च, मध्यलीला, परि १८, पृ २४४)

६. (क) आर दिन एला प्रभु देखिते वृदावन।
   कालीय ह्रदे स्नान कैल आर प्रस्कन्दन॥
   (चैं च, मध्यलीला, परि १८, पृ २३९)
   (ख) गोवर्धन देखि फभु प्रेमाविष्ट हुआ।
   नाचिते नाचिते चलिला श्लोक पड़िया॥
   एइ मत तिन दिन गोपाल देखिला।
   चतुर्थ दिवसे गोपाल स्वमन्दिरे गेला॥
   (चैं. च., मध्यलीला, परि. १८, पृ. २३८)

७. (क) सेतुवध आसि कैल धनुतीर्थे स्नान।
   रमेश्वर देखि तांहा करिल विश्राम॥
   (चैं च, मध्यलीला, परि ९, पृ. १६३)
   (ख) मलय पर्व्वते कैल अगस्त्य वदन।
   कन्या-कुमारी तांहा कैल दरशन।
   (चैं च., मध्यलीला, परि. ९, पृ. १६४)

८. (क) सो एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभू पृथिवी परिक्रमा करत झारखंड में पधारे॥ (अष्टछाप, धो. व, पृ. ७०)
   (ख) आज श्री आचार्यजी महाप्रभु आय पधारे हैं जिनने दक्षिण में दिग्विजय कीयो है... (अष्टछाप, धो. व., पृ. २)

प्रकार तुलसीदास के वृंदावन आने,[१] कृष्णदास के द्वारिका जाने,[२] और परमानंददास के प्रयाग जाने का उल्लेख मिलता है[३] परन्तु उनकी किसी भी यात्रा का विशद वर्णन प्राप्त नही है।

---

१ सो नंददासजी के बडे भाई तुलसीदास हते। सो काशीजी ते नंददासजी कूं मिलिये के लिये व्रज में आये।

(अष्टछाप धी व, पृ. १००)

२ सो वे कृष्णदास शूद्र एक वेर द्वारिका गये हुते।

(अष्टछाप, धी व, पृ. १९)

३ सो भगवद इच्छा ते एक समय परमानंददासजी कन्नौज ते आय प्रयागकों आये सो प्रयाग में उतरे

(अष्टछाप, धी व, पृ ४५)

सप्तम अध्याय

भाषा

भाषा

प्रयुक्त भाषाएं—हिन्दी प्रदेश की पश्चिमान्त सीमा से लेकर बंगीय प्रदेश की पूर्वान्त सीमा तक भाषा और बोलियों की रूप-रेखा का एक सा प्रवाह मिलता है। इनमें से जो भाषायें साहित्य का माध्यम बन सकीं, उनमें से प्रधान ब्रज भाषा, अवधी, मैथिल, बंगला और ब्रजबुलि हैं। गौडीय वैष्णव पदावली का एक बहुत बड़ा भाग जिस भाषा में रचा गया है, वह भाषा 'ब्रजबुलि' है।

पारस्परिक प्रभाव—सोलहवीं शती के प्राप्त वैष्णव साहित्य की भाषा में हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव है। परन्तु ऐसा अकारण ही नहीं हुआ। उस समय मथुरा और वृन्दावन वैष्णवों का सब-प्रधान केन्द्र था। उस समय के गौडीय वैष्णव धर्म के व्यवस्थापक, रूप और सनातन ब्रज मण्डल में ही निवास करते थे। भक्तों और आचार्यों का आना जाना तीर्थ यात्रा के लिए और व्यवस्थाओं के लिए लगा ही रहता था। ब्रज क्षेत्र में प्रचलित पदों और गीतों को वे लोग सुनते रहे होंगे। विद्यापति के पद भी उन दिनों गौड में अत्यन्त प्रिय थे। गौडीय धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए हिन्दी को अपनाने की चेष्टा की रही होगी क्योंकि उन दिनों में मुगल शासन में हिन्दी का सर्वत्र प्रचार था। इन सब कारणों से गौडीय वैष्णव साहित्य की भाषा हिन्दी की छाप से प्रभावित हो गई जान पड़ती है। सोलहवीं शती की बंगाली भाषा पर हिन्दी का प्रभाव निम्न प्रकार से दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव पदावली साहित्य में अधिक स्पष्ट है।

१ गौडीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्द।
२ गौडीय वैष्णव पदावली में हिन्दी वाक्य विन्यास।
३ गौडीय वैष्णव पद-संग्रहों में हिन्दी भाषा के पद।
४ मिश्रित भाषा ब्रजबुलि।

१—गौडीय वैष्णव पदावली में हिन्दी शब्द

यहां कुछ ऐसे हिन्दी शब्दों की सूची दी जा रही है जो गौडीय वैष्णव पदों में प्राप्त हैं। इन्हें पदकल्पतरु के संकलनकर्ता ने भी हिन्दी के शब्द कह कर स्वीकार किया है। हिन्दी के मूल रूप में कहीं कहीं कुछ परिवर्तन आ गए हैं परन्तु ये परिवर्तन मुख्यतया हिन्दी और बंगाली भाषा के उच्चारण भेद के कारण ही हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी का 'ऐंसन' 'ऐछन' में, 'वारो' 'ओआरो' में, नवल 'नओल' में और 'नूतन' 'नौतुन' में परिवर्तित हो गए हैं। अर्थ-भेद प्रायः नहीं है। इसी प्रकार बनवारी (बनओआरि), खावत (खाओत), ज्यो (जेछ), सावन (शाउन), बांसुरी (वाशीर) आदि के बंगाली रूप उच्चारण-भेद के कारण हैं।

बंगाली पदों में हिन्दी शब्द

शब्द	अर्थ	प्रयोग और प्रकरण
अओघ	औंधा	अओघ आनन, हठ न मानये (भूपति, प क त, पद १६९८)

अचाहे	अनिच्छा से	ब श्यामर-काय अचाहे हिलायत (कृष्णकांत, प क त, पद २८८६) हि हरि पद विमुख परम गति चाहा · (तुलसी, रा च. मा, बा २६७, पृ १३२)
अछु	अस	ब को अछु वेदन सहइ . (गोविंददास, प क त, पद १७४) हि अस विचारि जिअँ जागहु ताता (तुलसी,रा च मा ,ल ६१, पृ ४३८)
अनत	अन्यत्र	ब से तुमि अनत गिया (चैतन्यदास, प क त., पद १६६०) हि मेरौ मन अनत कहा सुख पावै । (सूरदास, सू सा, ११६८)
अब	अब	ब अब बिहि नो सब,बेकत कयल सखि" (ज्ञानदास, प क त, पद २३०) हि अब कैसे ब्रज जात बस्यौ · (सूरदास, सू सा, १०।३८५०)
अहेरा	शिकार	ब माधव मनमथ फिरत अहेरा (गोविंददास, प क त, पद ३१८) हि फिरत अहेरें परेउ भुलाई (तुलसी,रा च मा , बा १५९,पृ ८१)
आये	आये	ब निके बनि आये हो नंद-दुलाल (गोविंददास, प क त, पद २४२५) हि आनद सहित सबै ब्रज आये · (सूरदास, सू सा, १५०८)
आसू	आसू	ब जटिला सासु आसु भरि रोयइ (बलराम, प क त, पद २४८९) हि मुख आसू अरु माखन-कनुका निरखि नैन छवि देत ॥ (सूरदास, सू सा, १०।३८९)
उरझाई	उलझाकर	ब चलइत राजपथे दुहु उरझाइ (शेखर, प. क. त., पद २५५५) हि छूट न अधिक अधिक अरुझाई · (तुलसी,रा च मा ,उ ११७,पृ. ५५७)
एतीन	एतना इतना	ब नाह आओल एतनि मागन (जगदानंद, प क त, पद १९७५)

		हि नन्दनन्दन सों इतनी कहियो (सूरदास, सू सा, १०।८०६६)
एह	यह	ब ए सखि निरखये को पुन एह (घनश्याम, प क त, पद १५०) हि सुनु अजहुँ सिखावन एह (तुलसी, वि प, पद १९०)
ओयारो	वारो	ब मदन कोटि ओयारों (सूर, प क त, पद १०८६) हि वारौं हौं, वे कर जिन (सूरदास, सू सा, १०।३६२)
कउन	कौन	ब माथे निदाघ कउन पातियायत (गोविंददास, प क त, पद १८१४) हि कौन सुनै यह बात हमारी ? (सूरदास, सू सा, पद १।१६०) कहहु कवन सिधि सा सवादा (तुलसी, रा च मा, उ ५५,पृ ५१८)
कछु	कछु	ब कछुइ नाहि अवधाय (भूपति, प क त, पद ११४) हि नाथ न कछू मोरि प्रभुताई (तुलसी, रा च मा, सु ३३,पृ ३८८)
कतये	कितना	ब तोहारि निदान हाम कतये शुनायलु (परमानद, प क त, पद १८३) हि येह लघु जलधि तरत कति वारा (तुलसी, रा च मा, ल १,पृ ४०३)
कतहु	कही	ब कतहु प्रेम-धन हिय माहा साचि (गोविंददास, प क त, पद ३६२) हि मूंदे आखि कतहु कोउ नाही (तुलसी, रा च मा, बा २८०,पृ १३८)
का	क्या	ब का देइ कहइ सम्वाद (गोविंददास, प क त, पद १७४) हि का छति लाभु जून धनु तोरें (तुलसी, रा च मा, बा २७२,पृ १३४)
काहा	कहा	ब सो हेन रसिक पिया काहां रहु (गोविंददास, प क त, पद ४५३) हि कहु कह तात कहा सब माता (तुलसी, रा च मा, अ १५९,पृ २४६)

काहा	क्या	व. से हेन रसिक पिया काहा रहु काहा करु . (गोविंददास, प क त., पद ४५३) हि. जाइ उतरु अब देहहौं काहा . (तुलसी, रा. च मा, वा. ५४, पृ. ३२)
किये	करने से	व. मिटत तलप जम कालकि । आरति किये मदन गोपालकि ॥ (रघुनाथदास, प क त, पद २८६९) हि. अतर-दाह जु मिट्यौ व्यास कौ, इक चित ह्वै भागवत किये .. (सूरदास, सू. सा, ११८९)
कीजे	करो	वं ए दुहुँ मगल आरति कीजे . (रामराय, प क त, पद २८४४) हि. अति व्याकुल अकुलाति बिरहिनी सुरति हमारी कीजे. . (सूरदास, सू सा., १०।४०६४)
को	कौन	व रूप शिल गुण ताहे सुदर कोहे . (गोपालदास, प क त, पद २९६६) हि तुमहि अछत को बरनै पारा. (तुलसी, रा च मा, वा २७४, पृ १३५)
कौन	कौन	व कौन विहि मझु नाह ले गेओ (गोविंददास, प. क त, पद १८१०) हि कौन बात यह कहत कन्हाई . (सूरदास, सू सा., १०।१५३९)
खुनि	खान	व. उयलिल आगुनेर खुन . (ज्ञानदास, प. क त, पद ९६०) हि उघरि आए कान्ह कपट की खानि (सूरदास, सू सा, १०।३८५७)
घुगुरओआलि	घुघराली	व. घुंगुरओआलि अलके झलके . (कृष्णदास, प क त, पद २८६०) हि घुघुराली लटैं लटकैं मुख ऊपर (तुलसी, क. व वा ५)
घोरि	घोल कर	व कुकुम घोरि चीन भेल लागु . (गोविंददास, प क त, पद २५३८) हि देउ आपनें हाथ जल मीनहि माहुर घोरि (तुलसी, दो ३१७)

चौडक	चौक	व धरल कुल कामिनि, चौदिक पड़ल जग भरिया (बलरामदास, प क त, पद १०६८) हि चौंकि निरखि गारि नहिन (न द, बा ११) चौंकि परी सब गोकुल नारी (सूरदास, सू सा १०।८१३)
चोलि	चोली स्त्रियों का वस्त्र	व गगन वसन रंगन चोलि (गोविंददास, प क त, पद १२५५) हि नील लहगा लाल चोली तनि (सूरदास, सू सा, १०।२८३२)
छबीले	सुंदर	व छयल छबीले रस बरसीले (गोपालदास, प क त, पद २९६६) हि छबीले मुरली नैकु बजाउ (सूरदास, सू सा, १०।१२१६)
छलिया	प्रवचक	व कि पेखनु सइ छलिया नागर कान (गोविंददास, प क त, पद १८९) हि छली मलीन हीन सब ही अग (तुलसी, वि प, पद ९९)
छाति	छाती	व तुया मुख हेरि ज्वलत मझु छाति (घनश्यामदास, प क त, पद ५५) हि कुलिस कठोर निठुर सोई छाती (तुलसी, रा च. मा, बा ११३, पृ ६१)
छिरकत	छिडकती है	व (कोइ) मसृण घुसृण सुगंधि छिरकत . (उद्धवदास, प क त, पद १५६१) हि छिरकति जल अपनें अपनें रंग (सूरदास, सू सा, १०।१७५३)
छैल	छैल	व छैल कानु तुहु सहजइ भोरि (गोविंददास, प क त, पद १९११) हि छैल छबीलो मोहना (सूरदास, सू सा, १०।२८८०)
जनि, जनु	न	व चुम्बन वेरि जनि मुख मोडवि (गोविंददास, प क त, पद २३६) हि जनि तेहि लागि विदूषहि केहू (तुलसी, वि प, पद १२६)
जेछ	जैसे	व मेहते जेछ बिजुरि गोप्यो (गोपाल भट्ट, प क त, पद २८३३)

		हि ज्यों करि कृपा पाउँ धारत हो
		(सूरदास, सू सा, १०।४०५१)
झकोरे	झोंके	व दुइ दिगे दुइ सखि देइ झकोरे
		(यदुनदन दास, प क त, पद १५२९)
		हि आवैं सौवे की झकोरें
		(सूरदास, सू सा, १०।२८३९)
झगड़त	झगडा करता है	व झगडत गोविन्ददास
		(गोविंददास, प क त, पद १७४१)
		हि वग उलूक झगरत गये
		(तुलसी, रा प्र, ६।६।२)
झाई	द्युति	व पहिर भूखण झलके झाइरि झलमलम्
		(शिवराम, प क त, पद १५५७)
		हि ससि महु प्रगट भूमि कै झाई
		(तुलसी, रा च मा, ल १२, पृ ४०९)
झाकत	प्रलाप करना	व झाकत झीकये झर झर लोचने
		(गोविंददास, प क त, पद १८८७)
		हि एहि विधि राउ मनहिं मन झांखा
		(तुलसी, रा च मा, अ ३०, पृ १९१)
टारल	विताया, टारा	व टारल है मन शिशिरक अत
		(गोविंददास, प क त, पद १७१८)
		हि नभु मरासन काहु न टारा .
		(तुलसी, रा च मा, बा २९२, पृ १४३)
ठाडई	खडे होकर	व ठाडई थरहरि कापि
		(उद्धवदास, प. क त, पद २०३६)
		हि मुनि सुर विनय ठाढ़ि पछताती
		(तुलसी, रा च. मा, अ १२, पृ. १८४)
ठाडि	खडी	व दूरहि एकलि ठाड़ि ..
		(भूपति, प क त, पद ४८३)
		हि ठाढो अजिर जसोदा अपने
		(सूरदास, सू सा, १०।१८८)
ठोर	स्थान	ब तुलना दिवाए नाहि ठोर .
		(जगदानंद, प क. त, पद १०३२)
		हि. बडे ठेकाने ठौर को हौं .
		(तुलसी, वि प, पद २२९)
ढरत	बहना	ब. ढरकत लोचन लोर

		(माधव घोष, प क त, पद ६६०) हि ढीठो पाग ढरक रही (नंददास, परिशिष्ट, पृ ४०१)
ढारइ	ढालती है	व गुरुयुनि वारि झारि गरि ढारइ (गोविंददास, प क त, पद १५७९) हि नारि नगिन गरि ढारइ अंसू (तुलसी, रा च मा, अ १३, पृ १८४)
ढीट	ढीठ	व ढीट कानाइ वनये भगि जानत (गोविंददास, प क त, पद ५३६) हि मैं जानति हौं ढीठ कन्हाई (सूरदास, सू सा, १०।१४७४)
ढेरि	ढेरि	व दास उद्धव, करत कुसुमक ढेरि (उद्धवदास, प क त, पद १५६१) हि नेकु धका देहैं ढेहैं ढेलन की ढेरी सी (तुलसी, कविता, लंका १०)
तन	शरीर	व वाला धन तन वसन निभाइन (गोपालदास, प क त, पद २९६६) हि दुसह सासति कीजे आगे दै या तन की (तुलसी, वि प, पद ७५)
तनि	अल्प, थोडा	व खेले तनि गदगद भाष . (ज्ञानदास, प क त, पद १६९७) हि तनक वदन बोलै तनक सो बोल (सूरदास, सू सा, १०।१५२)
तलपइ	तडपते हैं	व एछन दुहु-मन तलपइ पुन पुन (शेखर, प क त, पद २७२२) हि तलफत विषम मोह मन माया। (तुलसी, रा च मा, अ १५३, पृ २४४)
ताहा	तहा	व जाहा नाहि ऐछन रस निरबहइ ताहा परिवाद . (गोविंददास, प क त, पद २३५) हि नाथ तहा कछु चारो (तुलसी, वि प, पद ९४)
तु	तेरे	व तु विनु सुखमय शेज तेजल (गोविंददास, प क त, पद ५३१) हि हो तो तुव निदेस तें न्यारो. (तुलसी, वि प, पद ९४)

तुहु	तुम भी	व सुन्दरि तुहुं वडि हृदय पाषाण. (वल्लभदास, प क त, पद ९७) हि तुहुं सराहसि करसि सनेहू (तुलसी, रा च मा, अ ३२, पृ १९३)
तेरा	तेरा	वं. पथ नेहारत तेरा . (गोविंददास, प क. त, पद ३१८) हि. तुलसी पर तेरी कृपा . (तुलसी, वि प, पद ३४)
तो	तुम्हारे	व तो विनु आकुल कानाई .. (ज्ञानदास, प क त, पद ९५) हि मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों (तुलसी, वि प, पद ९७)
थारि	खडी, ठाढी	वं कानु द्वार माहा थारि . (शेखर, प क त, पद २४०) हि ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने . (सूरदास, सू. सा, १०।१८८)
थिर	स्थिर	वं सखिर वचने धनि थिर कर चीत.... (यदुनदनदास, प क त, पद २२१) हि लपन कह्यौ थिर होहु घरनि (तुलसी, गी व, १।८८।४)
दीजै	दीजिये	व. तनु मन धनहु निछायरि दीजे (उद्धवदास, प क त, पद २८५८) हि दीजै कान्ह कांचे को कंवर . (सूरदास, सू. सा, १०।१९९१)
दुहु	दोनो	व दुहु रूप निति निति दुहुँ हिये जाग (गोविंददास, प क त, पद २८७) हि वेद विहित कुलरीति कीन्हि दुहुं कुलगुर (तुलसी, जा म, छंद १४२)
दे	देह	व. स्वपन देखिलु जे, श्यामल वरण दे.... (ज्ञानदास, प क त, पद १४४) हि सेदय सहित सनेह देह भरि (तुलसी, वि प, पद २२)
न	बहु वचन की विभक्ति	वं. तेज मन हरि-विमुखन के संग . (माधो, प क त, पद ३०३५) हि तजो मन हरि विमुखनि को संग

		(सूरदास, सू सा, १।३३२)
नदहि	नाद करते हैं	ब नदहि विहग-गानिया (बलराम, प क त, पद २८९७) हि बधाये ब्रज नित नए, नादत बाढ़त सब (तुलसी, कृ गी, पद १६)
नयना	नैन, नेत्र	ब. अजने रजलु ए दुइ नयना (गोविंददास, प क त, पद २७३८) हि प्रभु सोभा सुख जानहि नयना (तुलसी, रा च मा, उ ८८, पृ ५३७)
नओल	नवल	ब नओल नओल नओ रगमे (शिवराम, प क त, पद १५५७) हि नवल नेह-नव पिया नयो-नयो. . . (सूरदास, सू सा, १०।६९१)
नहि	नन्ही, छोटी	ब सुद सुदर नहि नहि (शिवराम, प क त, पद १५५७) हि ठाढे हरि हसत नान्हि दँतियनि छवि छाजै (सूरदास, सू सा, १०।१४६)
निचोरि	निचोड कर	ब को रस नेल निचोरि (रायशेखर, प क त, पद २५१५) हि बरनहु रघुवर विसद जसु श्रुति सिद्धात निचोरि (तुलसी, रा च मा, बा १०९, पृ. ५९)
निपट	नितात	ब माधव निपट कठिन मन तोर (भूपति, प क त, पद ४७८) हि विवरन भएउ निपट नरपालू (तुलसी, रा च मा, अ २९, पृ १९१)
नौतुन	नूतन	ब नितुइ नौतुन रग (ज्ञानदास, प क त, पद ९१९) हि जिमि नूतन पट पहिरइ नर (तुलसी, रा च मा, उ १०९, पृ ५५१)
पियारि	प्रिया	ब प्राण-पियारि पदवि परिपालइ (गोविंददास, प क त, पद ५५३) हि ससुरारि पिआरि लगी जबतें

		(तुलसी, रा च मा, उ १०१, ८ ५४४)
पेडा	मिठाई विशेष	व पुरि पुया खाजा, पेड़ा सरभाजा (शंखर, प क त, पद २५९५)
वनओआरि	वनवारी	व चीर हरण नागर वनओआरि (गोपालदास, प क त, पद २९६६)
		हि मथुरा जन्म लियो बनवारी. (गोविंद, की र, भाग बीजो, पृ. ८९)
भरोसा (भरसा)	विश्वास	व दास मनोहर करत भरोसा . (मनोहरदास, प क त, पद २८७०)
		हि नाथ दैव कर कवन भरोसा .. (तुलसी, रा च. मा, सु ५१, पृ .३९६)
मनहि मन	मन ही मन	व भाविनि-भाव, मनहि मन गणइते... (गौरसुन्दरदास, प क त, पद १८८)
		हि मनहि मन अक्रूर सोच भारी . सूरदास, सू सा, १०।३०१२)
मोतियन	मोती	व. उरे मोतियनकि माल... (कृष्णदास, प क त, पद २८६०)
		हि. मोतिनि सहित नासिका.. (सूरदास, सू. सा. १०।१०५)
रगीले	रसिक	व रग रंगिले रग विहरे.. (राय वसत, प क त, पद २९२१)
		हि. तिहू काल तिनको भलो जे राम रंगीले.. (तुलमी, वि प, पद ३२)
सत	सज्जन	व. संत वसत पुजायल घरे घरे.. (ज्ञानदास, प. क. त, पद १४९२)
		हि. संत समाज पयोधि रमासी.. (तुलसी, रा च मा, वा ३१, पृ २०)
हो	प्रत्यय विशेप	व. निके वनि आये हो नद-दुलाल (गोविददाम, प. क त., पद २४२५)
		हि. प्यारे नदलाल हो (सूरदास, सू मा, १०।१८२४)

२. गौडीय वैष्णव पदावली मे हिन्दी वाक्य विन्यास

ए धनि मानिनि मान निवारो.. द्विज हरिदास, प क त, पद १४६९

राधा प्यारि सह खेलन नददुलाल.. उद्धव, प. क. त, पद १४७१

जय जय राधे जि शरण तोहारि	मनोहरदास, प क त, पद २८७०
एछन आरति जाउ वलिहारि	मनोहरदास, प क त, पद २८७०
खोजति फिरति जननि यशोमति.	बलरामदास, प क त, पद २८८७
जय जय मगल आरति दुहुकि .	बलदेवदास, प क त, पद २८८२
श्याम-गोरि छवि उठत झलकि. .	बलदेवदास, प क त, पद २८८२
नागर नाचत नागरि सग .	राय बसत, प क त, पद २९२९
देख सखि झुलत राधा श्याम .	उद्धव, प क त, पद १५६१
दुहु लोचन भरि जो हरि हेरइ .	गोविन्ददास, प क त, पद २३४
माधव मनमथ फिरत अहेरा. .	गोविन्ददास, प क त, पद ३१८
पथ नेहारत तेरा. .	गोविन्ददास, प क त, पद ३१८
खेलत नओल किशोरी. .	शिवरामदास, प क त, पद १४४१

३. बंगाली पद संग्रहों में हिन्दी मिश्रित पद

(१)

धनि धनि गोवर्धन दास, धनि चादपुर ग्राम ।
धनि गोवर्धन को पुरोहित आचार्य बलराम ।।
जछ्‌ गृह् कयल धनि साधुत हरिदास ।
साधन भजन कयल बहु रघु जछुक पाश ।।
गोवर्धनक नंदन रघुनाथ अतहु महत्‌ ।
हरिदास नियडे पडल भागवत ।।
साधन भजनक भेद बताओये भवाम्बुधिक भेला ।
जेछा गुरु हरिदास जीउ तेछा रघुनाथ चेला ।।
धन दौलत कोठा एमारत सबहु सम्पद छोडि ।
भरा जौवन में रघुनाथ दास भैगेल भिखारी ।।
देश देशांतर घुमि घुमि वृंदावन चले शेष ।
कठोर साधन कयल कत अस्थिचर्म शेष ।
राधाकृष्ण भजि भजि देह कयल पात ।
राधावल्लभ सो पदपल्लव सदाइ धरत माथ ।।

(राधावल्लभदास, गौ. प. त., ६।२।३७)

(२)

देख देख प्रीतम प्यारिक सोहागे ।
स्वहस्ते बीड श्याम देत,
खंडित आध आप लेत .
पोंछत पट पीत पीक
अतिशय अनुरागे ।।
काचन के गडत काण
भांति भांति राखत मान
निरखत बदनारविंद
पलकन नाहि लागे ।।
कुंज में रस-पुंज केलि
याण पाओये चछकि झोलि
दुहुं श्रीमुख ताम्बुल पाइ
आगरओआली भागे ।। (आगरओ आली प. क. त, पद २८३४)

(३)

जय राधे श्री राधे कृष्ण श्री राधे जय राधे ।
नंदनदन वृष-भानु-दुलारि सकल-गुण-अगाधे ।।

नव-घन-सुदर नओल किशोरि निज-गुण हीतम साचे।
चाचर केशे मउर शिखडक कुचित केशिनि जादे ॥
पीताम्बर-घर ओढ नील शाडि घन सौदामिनि राजे।
कानु-गले वनमाला विराजित राइ-गले मोति साजे ॥
अरुणित चरणे मजिर रजित खजन-गजन लाजे।
कृष्णदास भणे श्री वृदावने युगल-किशोर विराजे ॥

(कृष्णदास, प क त, पद २८५९)

(४)

सोडरो नव गोरचन्द्र
नागर बनयारि।
नवद्वीप इन्दु करुणासिधु
भक्त-वत्सलकारी ॥
वदन-चन्द अधर रग
नयने गलत प्रेम तरग
चन्द्र कोटि भानु कोटि
शोभा निछयारि।
कुसुम-शोभित चाचर चिकुर
ललाटे तिलक नासिका उजोर
दशन मोतिम आमिया हास
दामिनी घनयारि ॥
मकर-कुडल झलके गड
मणि-कौस्तुभ दीप्त कठ
अरुण वसन करुण वचन
शोभा अति भारि।
माल्य-चन्दन-चर्चित अग
लाजे लज्जित कोटि अनग
अगद वलया रतन नूपुर
यज्ञ सूत्रधारि ॥
छत्र धरत धरणि-धरेन्द्र
गाओत यश भकत वृद
कमला सेवित पाद द्वन्द्व
वलिये वलिहारि।
कहत दीन कृष्णदास
गौर-चरणे करत आश
पतित-पावन निताइ चाव
प्रेम दानकारी ॥

(कृष्णदास, प क त, पद १०८५)

(५)

जय राधे कृष्ण गोविंद गोपाल ।
गिरिवर-धारी, कुंज विहारी, व्रज-जीवन नंदलाल ॥
सुरंग पाग शिरे टेढ़ि शोभे बांके नयन विशाल ।
ता पर मयूर-चन्द्रिका विराजे रतनकि पेच रसाल ॥
घुंगुरओआलि अलके झलके उरे मोतियनकि माल ।
मुरलि वाजाओये रीझ रिझाओये शुनि धनि रहत साभाल ॥
नासाय मुकुता वेशर झलके मद-गज-मधुरिम चाल ।
कृष्णदास प्रभु एइ कृपा किजे भेट मोहे मदन गोपाल ॥ (कृष्णदास, प. क. त., पद २८६०)

(६)

जय राधा गिरिवर धारि ।
नदनदन वृषभानु-दुलारि ॥
मोर-मुकुट मुख मुरली जोरि ।
वेणि विराजे मुखे हासि थोरि ॥
उनकि शोहे गले वन-माला ।
इन कि मोतिम-माल उजाला ॥
पीताम्बर जग जन-मन-मोहे ।
नील उढ़नि वनि उनकि शोहे ॥
अरुण-चरणे मणिमजिर वाओये ।
श्रीकृष्णदास तंहि मन भाओये ॥ (कृष्णदास, प क. त., पद २८६१)

(७)

श्री राधे कृष्ण गोविंद हरे ।
गोपीनाथ मदन-मोहन-वर
युगल-किशोर रसिक मुरलीधर
राधा-वल्लभ प्रेम-सुधाकर
छयल छबीले रस वरसीले
रूपे मदन-मन मोहे ।
श्री व्रज-विनोद माधव गिरि-धारि
चीर-हरण नागर वनओआरि
ललित त्रिभंगी कुंज विहारि
रूप उजागर रति-सुख-सागर
ललित विभूषण शोहे ॥
पोक-विलासी गोकुल-वासी
अभरण अंग-अग परकाशी
त्रिभुवन-तिलक कला-मृदुराशी
लाला लाडलि रूप-रसायन
सब सखिगण-मन मोहे ।

बाला घन तन वसन निभाइन
भामा निजपति-मोद बाढायन
चपक-वरणी रिझाओन
विमल-जोति अपरश मन मोहे ।
व्रजपति-वाल लाल मद-नायक
परम प्रवीण प्रेम-सुखदायक
पूरल मनकि भई विघायक
रूप शिल गुण ताहे सुदर कोहे ।
राधा रमणी प्यारिक मोहन
श्यामा श्याम रहत निति गोहन
अलक लडा जब वेणी शोहन
श्रीगोपाल दास प्रभु जोहन जोहे ॥
(गोपालदास, प क. त, पद २९६६)

(८)

देख रि सखि फडल नयन कुंज में विराज हें ?
बामेते किशोरि गोरि, अलस-अग अति विमोरि
हेरि श्याम-वयन-चद मद, हास हें ।
अगे अगे बाहे भीड, पुछत बात अति निबीड
प्रेम-तरगे ढरकि पडत, फडल मधुप सग हें ।
शारि शुक, पिकु करत गान भमरा भमरि घरत तान
शुनि घनि घनि उठि बैठत, चोर चपल जात हें ।
'श्रीगोपाल भटट आश, वृदावन कुजे वास
शयन सपन नयन हेरि, भूलल मन आप हें ॥
(गोपाल भटट, प क त, पद १०८८)

(९)

वृषभानु-नन्दिनिते, मन-मोहन, केमन लागि वसि ।
पाण खाओत पिक, गीमते ढरकत, झलक जेड जावक-सिसि ॥
मधुरिम हास, वसनते झापि शोहत, मेहते जेड बिजुरि गोप्यो ।
कठहि लोलत, मोतिम हार, कनक मुकुरे जेड तारक रोप्यो ॥
शाङ्कर-चीत, उनते नागिओ, पलकन नारे आखि ।
यूथ यूथ, मनमय झूलत, गोपालभट्ट इये साखि ॥
(गोपाल भट्ट, प. क त., पद २८३२)

(१०)

आजु बनि नव अभिषेक गोविंद कि ।
परमानन्द प्रेम-सुख-कन्दकि ॥

झलकत नील-नलिनि मुख-शोहा ।
हेरइते अखिल भुवन-मन-मोहा ॥
गोरस दधि घृत हलदिक नीरे ।
गागरि भरि भरि ढारइ शिरे ॥
बाजत घंटा ताल मृदंग ।
जय देइ सुर नारीगण रंग ॥
वलि वलि जातहि चरणारविंद ।
परमानदके पहु श्री गोविंद ॥

(परमानंद, प. क. त., पद १५८५)

(११)

आरति युगल किशोरि कि कीजे ।
तन मन धनहुं निछावरि दीजे ॥
पहिला नील पिताम्बर शाहि ।
कुंज विहारिनि कुंज विहारि ॥
रवि शशि कोटि वदन अछु शोभा ।
जो निरखिते मन भेओ अति लोभा ॥
रतने जड़ित मणि माणिक मोति ।
डगमग दुहु तनु झलकत जोति ॥
नंद नंदन वृषभानु किशोरि ।
परमानंद पहु जाउ वलिहारि ॥ (परमानंद, प. क. त., पद २८५८)

(१२)

आरति जय वृषभानु-कुमारि ।
झलकत मुख-शोभा उजियारि ॥
कपुरक वाती रतनके थारि ।
करे लइ ललिता प्राण-पियारि ॥
वदन कमल सजे करु निछयारि ।
सहचरिगण करु जय-जय-कारि ॥
मंगल गाओत देइ करतारि ।
वरिखे कुसुम सब नविन-कुमारि ॥
चरण-कमल नख-चांद नेहारि ।
परमानद जिवन वलिहारि ॥

(परमानंद, प. क. त., पद २८७१)

(१३)

तेज मन हरि-विमुखन के संग ।
जाको सगहि कुमति उपजतहि भजनहि पड़त विभंग ॥

सतत असत-पथ लेइ जो जामत उपजत कामिनि गग ।
शमन-दूत परमायु परीखत दूरहि नेहारत रग ॥
अतये से हरि-नाम सार परम मधु पान करह छोडि ढग ॥
कह माधो हरि-चरण-सरोरुहे माति रहु जनु भृग ॥

(माधो, प क त, पद ३०३५)

(१४)

जय जय रूप महारस-सागर ।
दरशन परशन वचन रसायन आनदहुके गागर ॥
अति गभीर धीर करुणामय प्रेम-भकतिक आगर ।
उज्जल-प्रेम-महामणि प्रकटित देश गौड वैरागर ॥
शतगुण-मडित पडित-रजन वृदावन-निज-नागर ।
किरिति विमल यश शुनतहि माधो सतत रहल हिये जागर ॥

(माधो, प क त, पद २३६५)

(१५)

जड कलि रूप शरीर ना धारत ।
तऊ व्रज-भूतल प्रेम-महानिधि कोडन कपाट उघाडत ॥
निर खिर हसन पान विधायन कोडन पृथक करि पारत ।
को सब तेजि भजि वृदावन को सब ग्रथ विचारत ॥
जदपिओ वनफुल फलत नानाविध मन-राजी-अरविंद ।
सो मधुकर विने पान को जानत विद्यमान मकरद ॥
को जानत मथुरा वृदावन को जानत व्रज-नीत ।
को जानत राधा-माधव-रति को जानत सोइ प्रीत ॥
जाक चरण परसादे सकल जन गाइ गाओयाइ सुख पाओत ।
चरण कडले शरणागत माधो तव महिमा उर लागत ॥

(माधो, प क त, पद २३६४)

(१६)

धन्य गोकुल धन्य मथुरा धन्य यदुकुल-अवतरी ।
धन्य यमुना-नीर शीतल गोयाल-बाल सखा बली ॥
मथुरामे केशो राय विराजे गोकुले बालमुकुद जी ।
श्री वृदावनमे मदनमोहन गोपीनाथ गोविंद जी ॥
नद-नदन जगत-वदन श्रीवृषभानु-नन्दिनी ।
आगम जाको पार ना पाओये सुर-मुनि-गण वन्दिनी ॥
नओल युगल-किशोर मोहन दुलइ दुलहिनि भाइनी ।
भक्त-जन-मन-हारि लावणि तिन लोके यश गाओनि ॥
राम कृष्ण गोविंद माधव वासुदेव सुलोचन ।
भक्ति आपना देहि माधो लेहि ए भव-तारणं ॥

(माधो, प क. त, पद २९६८)

(१७)

हरत सकल सताप जनम को, मिटत तलप यम कालकि ।
आरति किये मदनगोपालकि ॥
गोघृत रचित कपूरकि वाति झलकत काचन थारकि ।
घंटा ताल मृदग झाझरि बाजत वेणु विषाणकि ॥
चन्द्र-कोटि ज्योति भानु-कोटि-छवि मुख-शोभा नदलालकि ।
मयुर-मकुट पिताम्बर शोहे उरे वैजयति-मालकि ॥
चरण-कमल पर नपुर बाजे आज रि कुसुम गुलाबकि ।
सुन्दर लोल कपोलक छविसो निरखत मदनगोपालकि ॥
सुर-नर-मुनिगण करतहि आरति भक्त-वत्सल-प्रतिपालकि ।
हु वलि बलि रघुनाथ दास प्रभु मोहन गोकुल-बालकि ॥
(रघुनाथ दास, प क. त, पद २८६९)

(१८)

जय जय श्री जयदेव दयामय पद्मावति-रति-कात ।
राधा-माधव-प्रेम-भकति-रस उज्जल मुरति-नितात ॥
श्रीगीतगोविंद ग्रथ सुधामय विरचित मनहर छद ।
राधा गोविंद-निगुढ-लीला-गुण-पद्मावलि-पद-वृन्द ॥
केन्दुविल्व वर धाम मनोहर अनुखन करये विलास ।
रसिक-भकतगण जो सरवस-धन अहनिशि रहु तछु पाश ॥
युगल-विलास-गुण करु आस्वादन अविरत भावे विभोर ।
दास रघुनाथ इह तछु गुण वर्णन कीये करव लव ओर ॥
(रघुनाथ दास, प क त, पद २३८७)

(१९)

ए दुहुं मगल-आरति कीजे । मगल नयने निरखि सुख लीजे ॥
मगल-आरति मगल-थाल । मगल राधा मदन गोपाल ॥
श्याम गोरि दुहु मगल-राशि । मगल-जोति मगल परकाशि ॥
मगल-शखहि मगल-निसान । सहचरिगण करु मगल-गान ॥
मंगल-चामर मगल उदगार । मगल-शबदे करये जयकार ॥
मगल-सुखे केहु काहु बाखान । यह रामराय तहि भगवान ॥
(रामराय, प क त, पद २८८८)

(२०)

नओल नओल नओ रगमे
सुख शोहानि नव सगमे ॥
रस-माधुरि धर अंग में ।
दउ नृत्यत प्रेम तरग में ॥
उर मगे भामिनि दमके दामिनि
नपुर घमिनि अनि धनि

सुभग शाटन वरिगे भाटन
वुद मुदर नह्‌नि नह्‌नि
वदत मोर चकोर चातक
कीर कोयिल अनगणि ।
रटत दरदर तोये दादुर
अम्बुदाम्बरे गन्जनि ॥
गाओये सगि रि जोरि जोरि ।
रस हेरि हासइ थोरि थोरि ॥
थ रि थोरि चग उपाग आओज
वाजे पाखायज झि झि झिना ।
झनन झन नन झाग ना झागर्‌ नन
नागर्धि नागर्धि दिमि दिना ॥
उह दृष्टि ठेरण पहिर भूप
झलके झाइरि झलमल ।
उघट घट घट थो दिग्‌ दिग्‌
थो दिग्‌ दिग्‌ दिग्‌
थुग थुग रि धि धि धि न ॥
वाजे धू धू धीना ।
स्वर-मण्डल वाशरि वीणा ॥
वर वीण ताल प्रवीण पूरल
प्रेम-भरे हिया हरखनि ।
मणि-विन्दु शरद-इन्दु
करत अमृत वरखनि ॥
हस सारस वदत पावस
चारु चातक रस-घनि ।
विहरे जे जन शिवराम के प्रभु
परम सुघड शिरोमणि ॥ (शिवराम, प क त, पद १५५७)

(२१)

गोविन्द मुखारविंद निरखि मन विचारो ।
चन्द्र कोटि भानु कोटि मदन कोटि ओयारों ॥
सुन्दर कपोल लोल पकज दल-नयना ।
अधरविम्ब मधुर हास कुदकलिक-दशना ॥
मणि-कुडल मकराकृत अलक-भृगपुजा ।
केशरको तिलक वैनो सोणे भहि गुजा ॥
नव जलधर तडिदम्बर गले वनमाला शोहे ॥
लीला-नट सूर के प्रभु रूपे जग-मन-मोहे ॥ (सूर, प क. त, पद १०८६)

मिश्रित भाषा ब्रजबुलि

ब्रजबुलि को बंगाल की एक साहित्यिक बोली मानना अधिक उचित होगा। यद्यपि यह गौडीय वैष्णव पदावली के एक बहुत बडे भाग की प्रयुक्त भाषा है, फिर भी यह बंगाली भाषा नही है। यह सोलहवी शती में प्रचलित एक कृत्रिम साहित्यिक भाषा है। इस भाषा का जन्म बंगाल में ही हुआ और गौडीय पदकर्त्ताओ ने उसे विकसित भी किया। इस भाषा का जन्म विद्यापति की भाषा के अनुकरण में हुआ, यह कहना अनुचित न होगा। बंगाली विद्वत् समाज मे और प्रधानतया वैष्णव भक्तो मे ये पद अत्यन्त लोकप्रिय थे। इन पदो मे राधा-कृष्ण-लीला वर्णित थी अत गौडीय भक्तो ने इन भावो के साथ-साथ भाषा को भी अपने ढंग से अपनाया। मैथिली इस ब्रजबुलि की आधारभूत भाषा है, हिन्दी और ब्रजभाषा का मिश्रण लिए हुए तत्कालीन बंगला भाषा ने उसका ऊपरी विन्यास प्रस्तुत किया।[1] ब्रजबुलि बंगला भाषा का हिन्दी से युक्त अथवा मिश्रित स्वरूप है।[2] फिर भी ब्रजबुलि को ब्रजभाषा से मिलाना उचित नही है। ब्रजबुलि के इस नामकरण का कारण साधारण रूप से यही है कि इस भाषा में रचित साहित्य प्राय सब का सब राधा-कृष्ण लीला से सम्बन्धित है अत इस भाषा को इसी ब्रजधाम से सम्बन्धित नाम दिया गया, जो कृष्ण की लीला-भूमि है।

ऐसा ज्ञात होता है कि ब्रजबुलि का प्रारम्भ पन्द्रहवी शती के उत्तरार्ध अथवा सोलहवी शती में हुआ है। ब्रजबुलि का जो सर्वप्रथम पद प्राप्त है, वह यशोराज खान द्वारा रचित है और हुसेन शाह को समर्पित है। हुसेन शाह गौड के अधिपति थे और ईसवी सन् १४९३ से १५१९ तक शासक थे। यशोराज खान का पद इसी बीच में लिखा गया रहा होगा। प्रारम्भिक अवस्था मे यह भाषा मैथिली और बंगाली का एक विचित्र सा मिश्रण रही परन्तु आगे चल कर इसका रूप स्थिर हुआ और यह अत्यन्त विकसित हुई और इसमें प्रचुर साहित्य रचा गया।

ब्रजबुलि का रूप अथवा संक्षिप्त व्याकरण

ब्रजबुलि का विस्तृत व्याकरण प्रस्तुत करना अप्रासंगिक है। केवल संक्षिप्त रूप-रेखा-मात्र यहा दी जा रही है। इससे इस पर का हिन्दी प्रभाव कुछ अधिक स्पष्ट हो सकेगा।

उच्चारण

स्वरो का—दीर्घ स्वर जैसे आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ का सर्वदा दीर्घ उच्चारण नही होता। इसी प्रकार संयुक्ताक्षर के पूर्ववर्ती अक्षर का भी कभी-कभी दीर्घ उच्चारण नही होता। ऐसा हिन्दी में भी होता है।

उदाहरण—ब्र० बु० सहजे तनिक पुतलि गोरि जारल विरह-आनले सोरि।

(प [illegible], [illegible])

---

1. "Maithili is the basic part, while Bengali, with oddments of Hindi and Brajabhaka forms the superstructure."
Sukumar Sen, A History of Brajabuli Literature, p. 1.

2. "Brajabuli which is a thoroughly Hindi-ized form of Bengali."
D. C. Sen, Bengali Language and Literature, p. [illegible].

अवधी—भारी भुजा भरी भारी शरीर...(तुलसी, क व., ल ३३)
ब्र. भा.—स्यामा स्याम खेलत दोउ होरी . (सूरदास, स. सा., १०।२९१०)

वचन

द्विवचन— मैथिली, हिन्दी, बगला इत्यादि अपभ्रंश से बनी भाषाओं के समान ही ब्रजवुलि में द्विवचन का कोई चिह्न विशेष नही है। दुइ या 'दोन' शब्द का प्रयोग करके द्विवचन का बोध कर लिया जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु.— दुहु लोचन भरि जो हरि हेरइ
(गोविन्ददास, प. क त, २३४)
अवधी— दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भईं सुमगल-खानी
(तुलसी, गी व, बा, पद ४)
ब्र० भा०— धर्म-अकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू-ताटक
(सूरदास, सू सा, ११९०)

बहुवचन— हिन्दी के समान ब्रजवुलि मे भी बहुवचन का कोई चिह्न नही है। 'सब' या 'गण' आदि लगा कर बहुवचन का बोध कर लिया जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु— सखीगण तथि करिया जुगति
(प क त, पद २८०१)
अवधी— आरत लोगु राम सब जाना
(तुलसी, रा च मा, अ २४४, पृ० २८३)
ब्र भा— नाचत बाबा नदजू सग लिये सब ग्वाल
(की र, भाग १, पृ ८३)

कारक

कर्ता कारक— ब्रजवुलि में कर्ता कारक के एक वचन में प्राय कोई कारक चिह्न प्रयोग नही किया जाता। कही कही 'ए' विभक्ति देखी जाती है। हिन्दी में भी ऐसा देखा जाता है।

उदाहरण— ब्र. बु— निरमल गोर तनु, कपिल काचन जनु,
हेरइते भे गेलु भोर
(प क त, पद २८)
ब्र भा— ऊँचौ गोकुल नगर, जहा हरि खेलत होरी
(सूरदास, सू सा, १०।२८७०)
अ०— बोली चतुर सखी मृदु बानी।
(तुलसी, रा च मा बा २५६, पृ १२६)

कर्मकारक— कर्मकारक के लिए भी ब्रजवुलि मे प्राय कोई विभक्ति चिह्न प्रयोग नही किया जाता है। बहुधा अर्थ द्वारा ही कर्ता से कर्म की पहिचान की जाती है। हिन्दी में भी ऐसा है।

उदाहरण— व्र. बु — शची बोले विश्वम्भर आमि ना देखिलुं

(वासुदेव घोष, प. क त., पद ११५१)

व्र० भा०— देखि-देखि राधा सी बाम

(सूरदास, सू सा, १०।२१३५)

अ०— चले रामु त्यागा वन सोऊ।

(तुलसी, रा च मा, अर ३७, पृ ३८६)

करणकारक— करण कारक मे 'ए', 'हि' 'हिं' विभक्ति चिह्नों का प्रयोग व्रजबुलि मे मिलता है। हिन्दी मे प्राय 'पै', 'तैं' इत्यादि विभक्ति चिह्न मिलते हैं। कही कही 'हीं' भी आया है।

उदाहरण— व्र बु — कँछे चरणे कर पल्लव ठेलालि।

(प. क त, पद ४६८)

झर झर लोरहि लोलित काजर

(गोविन्ददास, प क त, पद ४०)

व्र० भा०— राधा तैं उपकार भयौ यह दुर्लभ दरसन भयौ तुम्हारौ

(सूरदास, सू सा, १०।२१६६)

अ०— तेहि तें उबर सुभट मोद भारी

(तुलसी, रा. च. मा., अर ३८, पृ. ३४७)

एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं।

(तुलसी, रा. च. मा, ल. ९०, पृ. ४६०)

अपादान कारक—अपादान कारक में 'से' और 'मझे' विभक्ति चिह्नों का प्रयोग व्रजबुलि में मिलता है। हिन्दी मे 'तैं' विभक्ति चिह्न मिलता है।

उदाहरण— व्र बु — वन सझे आओत नन्ददुलाल।

(मोहनदास, प क त, पद १२०९)

व्र भा — मुरली लई कर तैं छीनि

(सूरदास, सू सा, १०।२१८४)

अ — सुमन वृष्टि अकास तें होई।

(तुलसी, रा च मा, बा १०८, पृ ९८)

सबंध कारक— संबंध कारक के लिए व्रजबुलि मे प्राय 'क' 'का' 'कि' 'को' अथवा 'के' विभक्ति-चिह्न प्रयोग किए जाते हैं। परन्तु [illegible] राग होना लिंग भेद पर निर्भर नहीं करता। हिन्दी में 'का' 'की' 'के' इत्यादि संबंध कारक के चिह्न आगामी [illegible] के अनुसार होते हैं। मैथिली मे व्रजबुलि [illegible] प्रयोग है।

उदाहरण— व्र बु — दश दिन दुर्जन [illegible] दिन सुजनक

([illegible], प क त, पद [illegible])

[illegible] गोवर्द्धन [illegible] धरो [illegible]।

([illegible], [illegible])

जाके मन्त्री अभिन्न कलेवर रामानन्द कविराज।
(गोविन्ददास, प क त, पद ११)

ब्र. भा — लोचन नहि ठहरात स्याम के कबहूँ बनिता के उर अग।
(सूरदास, सू. सा, १०।२१३६)

अ — जिन्ह कें जग प्रताप के आगे।
(तुलसी, रा च.मा, बा २९२, पृ १८३)

अधिकरण कारक—ब्रजबुलि में 'ए' 'हि' 'हि' प्राय अधिकरण कारक के विभक्ति चिह्न रूप में प्रयोग किए जाते हैं। अनेक स्थलो पर 'मध्य' शब्द का तद्भव रूप 'माहा' 'माह' और 'माझे' चिह्न भी मिलते हैं।
कही कही विभक्ति चिह्न नही भी प्रयोग होता।[1] ऐसा हिन्दी में भी पाया जाता है।

उदाहरण— ब्र बु — भूमे पडि कहे काहा मुरली
(भ र, अ १२)

मरमहि दयामर, परिजन पामर।
(गोविन्ददास, प क त, पद ४०)

सो रस-जलधि माझे मणि-गेह।
(गोविन्ददास, प क त, पद २७)

अ — पहुँचा ऐसि छन माझ निकेता।
(तुलसी, रा च मा, बा १७१, पृ ८६)

ब्र भा — समुझि मनहिं मुसुकाही।
(सूरदास, सू सा, १०।२१३८)

सर्वनाम

समस्त भाषाओ के सर्वनामो के रूपो में उन भाषाओ की विशेषता व्यक्त होती है। सोलहवी शती के ब्रजबुलि पद-साहित्य मे प्रयुक्त सर्वनामो मे और उसी शती के ब्रज और अवधी सर्वनामो में प्रचुर साम्य पाया जाता है। सतीशचन्द्र राय ने इस सबध में ठीक ही कहा है कि ब्रजबुलि सर्वनामो की विशेषता हिन्दी, मैथिल और बगाली तीनो से प्रभावित है।[2] अपने अध्ययन के परिणाम-स्वरूप इन साम्यो के कुछ उदाहरण यहा प्रस्तुत किए जा रहे हैं। ब्रजबुलि के सर्वनाम सोलहवी शती के अनेक पद-कर्ताओ की रचनाओ से लिए गए हैं और उनका साम्य प्रतीक-रूप से सूरदास एव तुलसीदास की रचनाओ से प्रदर्शित किया गया है। इन उदाहरणो से यह भी स्पष्ट होगा कि सूर की ब्रजभाषा की अपेक्षा तुलसी की अवधी से इनमें अधिक साम्य है।

---

१. कविगण चमकये चीत
सो धरि अधर सुनाऊँ (सूरदास, सू सा, पद १०।२१४१)

२ "एइ विशेषत्व किछु बागला, किछु मैथिल ओ किछु ब्रजभाषाय प्रभाव जात"—प क त, परिशिष्ट पृ २४०.

अस्मद् सर्वनाम

यद्यपि सोलहवी शती के ब्रजबुलि साहित्य मे ठेठ बगाली सर्वनाम जैसे 'आमार' 'आमि' आदि का भी प्रयोग है, परन्तु यहा केवल वे ही अस्मद् सर्वनाम दिए जा रहे है, जिनका साम्य हिन्दी अस्मद् सर्वनामो से है।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— हम, हाम, हम सब, हमे, हामे, हमें, हमने, हमा सबे, हामक, मुझे, मोर, मझु, मो।

अवधी के सर्वनाम— हम, हमरे, हमार, हमरें, हमारा, हमारि, मोर, मैं मोहि, मोहू, मो, मोरा, मोरी।

ब्रजभाषा के सर्वनाम— हम, हमरी, हमहि, हमारे, हमकों, हमतें, हम सो, हमरि, हमरे, हमरै, म, मैंने, मोहि, मोय, मोको, मेरो, मोसों, मोतें, मोमें, मोपै।

उदाहरण

हम

१ ब्र बु — अब तोहे चीनलु हाम—प क त, ८५८
अ — बिनु पखन्ह हम चहहि उडाना—रा च मा, बा. ७८, पृ० ४३.
ब्र भा — हम तुम एकै ज्ञाति—सू सा, १०।३६
२ ब्र बु — हठ यदि करह हामाय—हि ब्र बु., पृ. २०९
अ. — हम मन सत्य मरमु सब कहहू—रा. च. मा., बा ७८, पृ ४३
३ ब्र बु — हामारि ओरे नाहि चाह—प क त, पद ४६८
अ. — हमरि बेर कस भयो कृपनितर—वि प, पद ७
ब्र भा — तुम्हे हमारी लाज-बडाई—सू. सा, ११।७०
४ ब्र बु — आपन तन काचलि हामे देयऽ—क्ष गी चि ६
अ — अब तो दादुर बोलिहे, हमें पूछिहे कौन—दो, ५६४
ब्र. भा — हम नन्दनन्दन मोल, लिये—सू सा, ११।७१

मैं

१ ब्र बु — मो बड अधम दुराचार—प. क. त, पद ३०२०
अ. — मो पर कीबे तोहि जो—वि. प्र, पद ३३.
ब्र. भा — मो अनाथ के नाथ हरी—सू सा १।२४९
२ ब्र बु. — मुझि तो अति अधम—गी प त, १।२।२७
अ — तौ मैं जाउँ कृपायतन—रा. च. मा, बा ६६, पृ ३५
ब्र. भा.— मै ब्रजबासिनि की बलिहारी—सू. सा., १०।८०५३
३ ब्र. बु — चलब मोहे छोड—प. क. त, पद २६०२
अ. — जौं महेनु मोहि आयसु देहा।—रा. च मा., बा ६७, पृ. ३५
ब्र. भा.— गरि दै मोहि [illegible]—सू. सा. १०।२६
४. ब्र. बु. — हिया मोर कादे—प. क. त, पद ३८८
अ. — तन मन वचन मोर पनु साचा—रा. च. मा., [illegible]

ब्र भा — आमति कान्ह जु मोर—सू सा, १०।३२०
५ ब्र बु — मझु लागि करबि उपाय—प क त., पद २८
अ — बार बार मोहि लागि बोलाया—रा. च सा., बा २०५, पृ. १३५
६ ब्र. बु — गरबन लेयलि मोरि—प क. त., पद १९९
अ. — तिन्ह महँ प्रथम रेख जग मोरी—रा च मा, बा १२, पृ ९
ब्र भा — गेल्न अब मेरी (मोरि) जाउ बलैया—सू सा, १०।२१७
७ ब्र बु — कि जान बल मोके—प. क. त, पद ८८५
अ — मोको और ठौर न—वि प, पद १८१
ब्र भा — मोसों कहत मोल को लीन्हो—सू सा, १०।२२५

युष्मद् सर्वनाम

ब्रजबुलि साहित्य में 'तुमि' 'तोमार' जैसे बगला के ठेठ युष्मद् सर्वनाम भी पाए जाते हैं। यहा पर वे युष्मद् सर्वनाम दिए जा रहे है जिनका हिन्दी युष्मद् सर्वनामो मे साम्य है।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— तुहु, तोहे, तोमो, तो मजे, तुहुँ मझे, तुया, तोर, तोहर, तोहे, तोहारि।

अवधी के सर्वनाम— तुम, तुमहि, तुम्ह, तुम्हरे, तुम्हार, तुम्हरी, तुम्हरो, तुम्हारे, तुम्हारा, तुम्हारो, तो, तोकहँ, तोको, तोहि, तोहि, तोही, तो ही, तै, तोर, तोहार, तोहारे, तोरा, तोरी, तोरे, तोरे, तोरि, तोहारा, तुव।

ब्रजभाषा के सर्वनाम— तू, तैं, तूने, तैने, तोहि, तोय, तोको, तेरो, तिहारो, तुम्हारो, तोसो, तोते, तोहि तें, तोहिमे, तोमें, तोपै, तोहि, तुव।

उदाहरण

१ ब्र बु — तुहूँ भेल दोती—हि ब्र बु, पृ १
अ — तुहूँ सराहसि करसि सनेहू—रा च मा, पृ १९३
ब्र भा — तुहीं पिय भावति नाहिन आन—सू सा १०।२५७८
२ ब्र बु — एकलि तोहारि नाम—प क त, पद २१७
अ — परसु सहित बढ नाम तोहारा (तुम्हारा?)—रा च मा, बा २८२, पृ १३९
ब्र भा — कहा गुन बरनौं स्याम तिहारे—सू सा, ११२५
३ ब्र बु — रहत तोहारि आशोयासे—प क त पद ९७
ब्र भा — समुझि न परत तिहारी ऊधौ—सू सा, १०।३५२९
४ ब्र बु — फूल माला दिव तव गले—हि ब्र बु, पृ ९९
अ — तुव निदेस तें न्यारो—वि प, पद ९४
ब्र भा — कैसें तुव गुन गावें—सू सा, ११४२
५ ब्र बु — सुदरि तैखने कहलम तोय—प क त, पद ४३५
ब्र भा — क्यो कहि आवत तोइ—सू सा, पद १४५७

६ ब्र बु — पथ नेहारत तेरा—प क त, पद ३१८
अ — तुलसी पर तेरी कृपा—वि प., पद ३४
ब्र भा — तेरी लीला गावै—सू सा, १०।२५७९
७ ब्र.बु. — श्रवणे निवारलु तोर—प क त., पद ४३५
अ — प्रनतपाल प्रन तोर—वि. प, पद ११३

तद् सर्वनाम

ब्रजबुलि साहित्य मे तद् सर्वनाम का प्रथम एकवचन 'सो' ब्रजभाषा से प्रभावित है। 'ताहा' इत्यादि बंगला तद् सर्वनामो का भी प्रयोग मिलता है। 'ओ' का प्रयोग एकवचन में तुलसीदास ने किया है। साम्य प्रदर्शक ये सर्वनाम यहा दिए जा रहे है।

ब्रजबुलि के सर्वनाम— सो, ताहे, ता सत्रे, तपु, ताक, ताकर, ताहे, तापर।

अवधी के सर्वनाम— ऊ, वै, ओ, ओहू, ओहि, ओकर, ओहि कर, सो, सोइ, सोऊ, ते, तापर, ताके, ताकी।

ब्रजभाषा के सर्वनाम— वह, वो, वाने, वाहि, वाय, ताहि, ताय, ताकौं, वाको, ताको, तासु, वासों, तासों, वाते, ताते, तापै, वापै, तापै। वापै

उदाहरण

१ ब्र बु — ओ अति विदगध—प क. त, पद १००
अ — मोहि नहि पूजहि ओऊ—वि प, पद ९२
२ ब्र.बु — ना सो रमण ना हाम रमणी—प क त, पद ५७६
अ — सो तेहि मिलै न कछु सदेहू—रा च मा, बा २५९, पृ १२८
ब्र भा — सूर ब्रजहि सो जाइ—सू सा, १०।६०
३ ब्र बु — सोइ इह रस जान—हि ब्र बु, पृ १
अ. — सोइ करिहि कल्यान—रा च मा, बाल. ७१, पृ ४०
ब्र भा — दीजै मोहि कृपा करि सोई—सू सा, १०।३५
४ ब्र.बु — ताहा बुझि जाय देखि—हि ब्र बु, पृ २४०
अ — ते [illegible] होन ठाढ़—वि. प., पद ८३
ब्र भा — ते पहिरे कनन-मनि-भूषन—सू सा., १०।३५
५ ब्र बु — ता पर [illegible]-माला—प क त, पद १९६
अ — तापर सानुकूल गिरिजा हर—वि प, पद ३०
ब्र भा. — तापर [illegible], [illegible] विन विद्रुम—सू सा, [illegible]
६ ब्र बु. — तापर [illegible]—हि. ब्र. बु., पृ [illegible]
अ — तापर [illegible]—रा. च. मा., बा. [illegible], पृ [illegible]
७ ब्र बु. — तसु पद [illegible]—प. क. त. पद [illegible]
अ. — उदय तासु त्रिभुवन तम भागा—रा च. मा., बा. [illegible], पृ [illegible]

यद् सर्वनाम

ब्रजबुलि के सर्वनाम—	जो, जे, जेह, जा सबे, जनु, जाको, जाके, जाकर, जार।
अवधी के सर्वनाम—	जो, जे, जौन, जहि, जेहि, जेहिकर, जिन, जिन कर, जाकर।
ब्रजभाषा के सर्वनाम—	जो, जौन, जाने, जाहि, जाय, जाकौं, जाको, जासु, जासों, जातें, जामें, जापें।

उदाहरण

१ ब्र बु — जो मनु चरण परश-रस-लालसे—प क त, पद ८३८
  अ — तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा—रा च मा, बा २६१, पृ १२९
  ब्र भा — जो यह बालकु नेकु उबारैं—सू सा, १०।१०
२ ब्र बु — एत परिहार करये जे—प क त, पद ५९४
  अ — जे कछु समाचार मुनि पावहिं—रा च मा, अ १२२, पृ २३०
  ब्र भा — जे हरि चरन भजे—सू. सा, १०।२४
३ ब्र बु — जाकर चरण नगर रुचि—प क त, पद ४५३
  अ — जाकर चित अहि गति सम भाई—रा च मा, बा ७,

इदम् सर्वनाम

ब्रजबुलि के सर्वनाम—इह, ए, ऐइ, इहको, इह, सजे, इहके, अछु, इहक, इहकर, इह पर

अवधी के सर्वनाम—ई, ए, एह, एहि, एकर, एहिकर, इन, ए, इन, इनकर, इन केर, इहि, अस

ब्रज भाषा के सर्वनाम—यह, याने, याहि, याय, याकौं, याको, यासों यातें, यामें, यापें।

उदाहरण

१ ब्र बु —किये इह जीह अपार प क त, पद ४६८
  अ —कहा प्रीति इहि लेखे गी व, वा, पद ४
  ब्र भा —ईहि पै दुसह जु इतनेहि अतर सू सा १०।२७६८
२ ब्र बु —ए अति गोडारि प क त, पद १००
  अ —एउ देखि है पिनाकु नेकु गीतावली, बा ६६
  ब्र भा —नैसेइ एक री सू सा, १०।३५२६
३ ब्र बु —अछु ह आशिन प क त, पद १७३६
  अ —कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गएऊ रा च मा, बा ७१, पृ ३९
४ ब्र बु —मोहन मुरली-ध्वनि एह प क त, पद १४२
  अ —अब येहु मरनिहार भा साचा रा च मा, बा २७५, पृ १३५
  ब्र भा —एइ दोउ वसुदेव के ढोटा सू सा, १०।३०४३

कौन

ब्र बु —को इह पुन पुन करत हुकार . . . प क त, पद ३५०
को जाने कैछन विरह वियाधि ... प क त, पद ५६
शरण को देयब प क त, पद १०
अ —जीवत हमहिं कुअरि को वरई . रा च मा, वा २६६, पृ १३१
को नहिं जान विदित ससारा रा च मा, वा २७६, पृ १३६
ब्र भा —को जानै हरि कहा कियौ री . सू सा, १०।१८६६
को पतियाइ तुम्हारी सौहनि . सू सा, परि ९०, पृ २८

कोई

ब्र बु —कानने कामिनि कोई न जाय प क त, पद १७२८
कुज कुटिर माहा कादह कोइ प क त, पद १७२८
अ —येहु कुचालि कछु जान न कोई . . रा च मा, अ २३, पृ १८८
ब्र भा —कोउ माई आवत है तनु स्याम . . सू सा, १०।३४६६

क्रिया

सोलहवी शती की ब्रजबुलि और हिन्दी भाषा में प्रयुक्त धातुओ में प्रचुर साम्य पाया जाता है। सतीशचन्द्र राय ने भी इसी प्रकार के विचार प्रस्तुत किए है। उनका कहना है कि ब्रजबुलि के धातु के रूपो मे प्राय सब जगह ही मैथिल और बंगला का प्रभाव है। वे यह भी कहते हैं कि कुछ धातु रूपों में ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। उन्होन 'गए' क्रिया का उदाहरण दिया है कि ब्रजभाषा की यह क्रिया ब्रजबुलि में 'गेओ' हो जाती है[1] परन्तु यह साम्य केवल ब्रजभाषा तक ही सीमित ज्ञात नही होता। ब्रजबुलि के क्रिया रूपो मे अवधी के क्रिया रूपों का अपेक्षाकृत अधिक साम्य ज्ञात होता है। हिन्दी और ब्रजबुलि क्रियाओं का साम्य विशेषतया दो प्रकार का है –

१ धातु रूपों में लिग के अनुसार परिवर्तन
२ धातु रूपों में एक ही प्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग

१. लिग के अनुसार परिवर्तन

क्रियाओं में स्त्रीलिंग और पुल्लिंग का भेद हिन्दी की क्रियाओं की विशेषता है। मैथिली और वगला दोनो भाषाओं में क्रियाओं में लिग भेद नही पाया जाता। ब्रजबुलि

---

१. "ब्रजबुलीर धातु-रूपे प्राय सर्वत्रइ मैथिल ओ वागला-भाषाय प्रभाव देखा जाय, तवे "गेउ" इत्यादि कोन-कोन धातु रूपे ब्रजभाषाय प्रभाव सुस्पष्ट। ब्रजभाषार 'गए' ब्रजबुलीते "गेउ" हइयाछे, दृष्टांत यथा :
दूरे गेओ मुरलि आलापन गीत : प. क. त, पद ५५
(सतीशचन्द्र, राय, प क. त., परिशिष्ट, पृ. २४१)

साहित्य में प्राप्त क्रियायें दोनों प्रकार की हैं। कुछ में लिंग भेद है, यह हिन्दी की अनुरूपता में है। कुछ में लिंग भेद नहीं है, यह बंगला एवं मैथिली की अनुरूपता में है। यहां लिंग भेद प्रदर्शित करने वाली ब्रजबुलि और हिन्दी क्रियाओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं। यह सब 'इ' 'ई' से अन्त होने वाली स्त्री-लिंग क्रियायें हैं।

उदाहरण

ब्रजबुलि

रतन मंदिर माहा बैठलि सुन्दरि
प क त, पद ५८

बाघलि कुच-गिरि माझ
प क त, पद ५८

बरत तुहुँ छोड़लि
प क त, पद ६२

खोजति फिरति जननि यशोमति
प क त, पद २४८०

बैठलि सखिगण संग
प क त, पद २४९१

कानने आनलि
प क त, पद २९५

तुहु जानसि जदि
प क त, पद २८

लहु लहु मुचकि हासि चलि आओलि
प क त, पद २३०

भेटलि कानुक साथ
प क त, पद २३०

तव तुहुँ छापलि काय
प क त, पद २३०

कैछने गोपवि ताय
प क त, पद २३०

झापसि झांपल अंग
प. क त, २२७

हिन्दी

सादर भेटेहि मिली गुरु माता
रा च मा, बा ६३, पृ. ३६

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता
रा च मा, बा २३२, पृ. ११५

सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही
रा च मा, बा २५७, पृ. १२७

हरि कौं टेरत फिरति गुवारि
सू सा, १०।४६१

अति विपति जैसे सहति
गी व, सु, पद १७

सोभा राजति उदय किये
सू सा, १०।१८२१

आभा झलकति गंड
सू सा, १०।१८२१

छाक लिए सिर स्याम बुलावति।
ढूंढत फिरति ग्वारिनी हरि कौं,
कितहूँ भेद न पावनि।।
टेर सुनति काहू की स्रवननि
तहा तुरत उठि धावति।

पावति नहीं स्याम बलरामहिं
व्याकुल ह्वै पछतावति।।
वृंदावन फिरि फिरि देखति है
सू सा, १०।४५९

बनी बात बेगरन चहति
रा च मा, अ २१७, पृ २७२

विविध विलाप करति वैदेही
रा च मा, अ २९, पृ ३४१

२. समान प्रत्ययों का प्रयोग

वर्तमान-कालिक—क्रियाओ मे 'अ' 'अइ' अये' 'असि' 'अत' 'अति' 'इ' 'इये' 'उ' 'ए' 'ओ' इत्यादि प्रत्यय ब्रजबुलि क्रियाओ मे पाए जाते है। ऐसे रूप हिन्दी में भी मिलते है। यहा कुछ उदाहरण दिए जा रहे है।

अइ-प्रत्यय

ब्रजबुलि	हिन्दी
घन घन डाकइ प. क. त., पद ४	सत्यकेतु तह बसइ (हसं ?) नरेसू रा च मा, बा. १५३, पृ ७९
वने धाओइ रे प. क त., पद १३२३	आपुन उठि धावइ रहै न पावइ रा च. मा, बा. १८३, पृ ९२
कतहु अभरण साजइ प. क. त, पद २१	धरि धीरजु तब कहइ निषादू रा च मा, अ १४३, पृ. २३९
एकलि गहन कुज माहा लुठइ प. क. त, पद ३९	दास तुलसी गावई रा च मा, कि ३०, पृ ३७०
झापइ झापल देहा प क. त, पद ५८	सीय सकुच वस पिय तन हेरइ तु ग्र, जा. म, पृ १२१
जीवने ना बांधइ थेहा .... प क. त, पद ५८	
करे कर वारइ ..... प. क. त., पद ५३	
मद मधुर वेनु बाजइ प. क. त, पद १२३३	
गोविद दास कहइ तोहे प. क. त., पद १६८४	
दूरे हेरइ यदुनदन दास प क. त, पद २२१	

अ-प्रत्यय

ब्रजबुलि	हिन्दी
गोविद दास कह रस-मरियाद प. क त., पद ५३	कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा ... रा च मा, अर २८, पृ ३४० देवहूति कह भगति सो कहियै सू. सा ३।१२

अये-प्रत्यय

ब्रजबुलि	हिन्दी
हृदये पनये गत जे मणि मोतिम प क. त., पद ५८	तिनके कपिल देव गुन भाए

जाहा जाहा निकसये तनु तनु
प क त, पद ८६

परम सुभाग्य मानि तिन लागे
सू सा, ३।१३

असि-प्रत्यय

भाव कि गोपसि गुपत न रहइ
प क त, पद ७०

मूढ़ परम सिख देउ न मानसि।
उत्तर प्रतिउत्तर बहु आनसि॥
रा च मा, उ ११२, पृ ५५३

जतने निवारसि नयनक लोर
प क त, पद ७०

गदगद शबदे कहसि आधबोल
प क त, पद ७०

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती
रा च मा, अ ३१, पृ १९२

सघने गतागति करसि एकन्त
प क त, पद ७०

अत, अति-प्रत्यय

वेगे धाओत युवति वृन्द
प क त, पद १२५५

हस्थर चक्र धरे हरि धावत
सू सा, ८।४

निज-रसे नाचत
प क त, पद ३

अलि गन गावत नाचत मोरा
रा च मा, अ २३६, पृ २८०

गायत कत कत भकतहि मेलि
प क त, पद ३

नाचत त्रैलोकनाथ
सू सा, १।७६

गावत गुन सूरदास
सू सा, १०।४६

रोयत करम गेयान
प क त, पद ११

रोवत करहिं प्रताप बखाना
रा च मा, ल १०४, पृ ४७२

प्रेम नाम कहि कहत भागवते .
प क त, पद १०

कहत कान्ह जननी समुझाइ
सू सा १०।७१०

आनदे हेरत गोविंददास
प क त, पद ५२

जिय की जरनि मनहुँ हँसि हेरत
रा च मा, अ २३९, पृ २८१

दोलत मदन-हिलोर
प क त, पद ५८

डोलत धरनि सभासद खसे
रा च मा, ल ३२, पृ ४२१

नद-धाम खेलत हरि डोलत
सू सा, १०।१११

जीउ रहत अब तुया रस-आशे।
प क त, पद ९०

नयनन वारि न रहत एक छन
तुलसी, गी. व, सु १७

नीर भरि आओत

प. क त, पद १३६

अनुदिन करत विचार .

प क त, पद ११

कहत भागवते . .

प क त, पद १०

खोजति फिरति जननि

प क त, पद २४८७

रावन आवत सुनेउ सकोहा .

रा च मा, बा १८२, पृ ९१

आजु हरि धेनु चराए आवत

सू सा, १०।४९३

करत जदुनाथ जलधि-जलकेलि . .

सू सा, १०।२९११

कहति सखिनि सौं .

सू सा, १०।२६५३

हरि कौं टेरत फिरति गुवारि

सू सा, १०।४६१

इ, इ-प्रत्यय

तुया निज नाम गाम धन गावइ

प क त, पद ६२

गोविंददास के काहे उपेखि .

प क त, पद ४

निवसइ गोकुल माह .

प. क त, पद ६४

मरम माहा हानइ .

प क त, पद ७४

गावहिं गीत मनोहर बानी .

रा च मा, बा २२८ पृ. ११३

करहिं आरती पुर नर नारी

रा च मा, बा २६५, पृ १३१

सूरदास बलि जाइ

सू सा, १०।२७

ए, ऐ, इये-प्रत्यय

ब्रजबुलि

कत मदाकिनी नयन झरे .

प क त, पद ३

तोहारि चरणे कहे गोविंददास .

प क त, पद ९०

सुंदरि अतये करिये अनुमान . .

प क त, पद ६२

हिन्दी

कुवरि मुदित मुख मोरे .

सू सा, १०।७३२

हरैं फल न लागत

गी, अ, पद ९

जापर दीनानाथ ढरैं .

सू सा, १।३५

कौन जतन बिनती करिये . . .

वि. प, पद १८६

माता ताकौं कहियै नाम .

सू सा, ३।१२

उ, उ, ऊ-प्रत्यय

ना हेरउ निज नाह

प क त, पद १९८४

मूढ़ परम निज देउँ न नारिनि ।

रा च मा, उ ११०, पृ ५५३

ओ, औ-प्रत्यय

तोहे कहो गुवल गागाति
प क त, पद ५६

कह लगि गहों हीन अगनित .
वि प, पद १६६

तोहे कहो गोपिनि आयानेर गाणि
प क त, पद १३९३

भूतकाल की क्रियायें—व्रजबुलि की भूत काल की क्रियाओं में 'अल' 'अलि' अथवा 'अलु' प्रत्यय पाए जाते हैं। यह प्रत्यय केवल बगला और मैथिली के अपने प्रत्यय हैं। हिन्दी की भूतकाल की क्रियाओं में ये प्रत्यय नहीं हैं।

भविष्य काल की क्रियायें—व्रजबुलि की क्रियाओं में 'अब' प्रत्यय लगाकर भविष्य काल सूचित किया जाता है। मैथिली में भी ऐसा होता है। बगला में 'अब' के स्थान पर 'इब' प्रत्यय पाए जाते हैं। अवधी भाषा में भी भविष्य काल की क्रियाओं में 'अब' प्रत्यय पाए जाते हैं। यहा कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

उदाहरण

व्रजबुलि	अवधी
लीला स्फुरव कि मोय प क त, पद १२	नृप तव तनय होव मैं आई रा च मा, वा १५०, पृ ७७
धरव सुधाकर प क त, पद १२	पुनि आउव एहि बेरिआ काली रा च मा, वा २३४, पृ ११६
दशदिश खोजव प क त, पद १२	हरि आनव मैं करि निज माया रा च मा, वा १६९, पृ ८६
मिलव कलपतरु-निकरे प क त, पद १२	मैं आउव सोइ वेपु धरि रा च मा, वा १६९, पृ ८६
हाम कि ना पायव विंदु प क त, पद १२	अस वरु तुम्हहि मिल उव आनी रा च मा, वा ८०, पृ ४४
कतहु निवेदित गोविंददास प क त, पद ३९	कस न करव हित लागि रा च मा, अ २१, पृ १८८
गोविंददास कतहु आशोयास प क त, पद ४०	मौन मलिन मैं बोलव वाउर रा च मा, अ २९३, पृ ३०४
माधव इथे जनि वोलवि आन प क त, पद २९४०	हमहु कहवि अव ठकुरसोहाती। रा च मा, ५०१६, पृ १८५
पुन कि पामरि पाओवे . प क त, पद १८१३	

परिशिष्ट

छंद

जिस प्रकार वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में अनुष्टुप छंद को प्रधानता दी गई है उसी प्रकार तुलसीदास के महाकाव्य 'रामचरितमानस' में चौपाई को मुख्य स्थान मिला। गौडीय वैष्णव साहित्य के महाकाव्य 'चैतन्यचरितामृत' में कृष्णदास ने 'पयार' नामक चौदह अक्षरों के छोटे से छंद का व्यवहार किया। जिस प्रकार तुलसीदास से पूर्व जायसी ने अपने पद्मावत में चौपाई छंद का बड़ी सफलता से प्रयोग किया, उसी प्रकार चैतन्यचरितामृत के रचयिता से पूर्व कृत्तिवास ने अपनी रामायण में पयार छंद में सफलता प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि लम्बे आख्यानक काव्यों के लिए अनुष्टुप् की तरह 'चौपाई' और 'पयार' छंद बहुत उपयुक्त हैं। तुलसीदास ने अपने मानस में चौपाई के अतिरिक्त दोहा, गीतिका और प्रसंगानुसार त्रिभंगी, तोटक, तोमर आदि छंदों का भी प्रयोग किया है। कवितावली में उन्होंने कवित्तों और सवैयों में भी रचना की। चैतन्यचरितामृत में यत्र-तत्र कुछ त्रिपदियां पाई जाती हैं, जो कृष्णदास रचित गेय पद हैं।

बंगाली पदावली साहित्य में वार्णिक और मात्रिक एवं मिश्रित छंदों का प्रयोग किया गया है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मात्रिक छंदों में मात्राओं की गणना उच्चारण पद्धति पर बहुत कुछ निर्भर है। लिखित अक्षर को देख कर उसकी ह्रस्व या दीर्घ गणना नहीं हो सकती और न सर्वत्र प्रत्येक दीर्घ अक्षर के लिए दो मात्राएं ही गिनी जा सकती हैं। हिन्दी की अपेक्षा बंगाली में मात्राओं के गिनने के नियम अधिक दुरूह हैं। बंगाली पदावलियां छंद की दृष्टि से विद्यापति के पदों का स्मरण दिलाती हैं और उनमें भी छंद शास्त्र के नियमों की उतनी ही अवहेलना की गई है। गौडीय पदावली में प्रयुक्त कुछ मुख्य छंद ये हैं।

मात्रिक छंद

१ चतुष्पदी—आठ, सोलह, बारह और मिश्रित मात्राओं की
२. दीर्घ चतुष्पदी—सैंतालिस, और इक्यावन मात्राओं की
३ त्रिपदी—तेइस, पच्चीस और अट्ठाइस मात्राओं की

वार्णिक छंद (अक्षर वृत्त)

१. चौदह अक्षर का विशेष छन्द
२. एकावली—आठ अक्षर, दस अक्षर और ग्यारह अक्षर की
३. दीर्घ त्रिपदी—छब्बीस अक्षर की
४. लघु त्रिपदी—बीस अक्षर की

इनके अतिरिक्त वार्णिक छन्दों में मालती, मिश्र चतुष्पदी, मिश्र पयार, और मिश्र त्रिपदियों का भी प्रयोग बहुधा किया गया है।

हिन्दी पदावली में छंदों के प्रयोग की शैली अधिक नियमित है। सूर, तुलसी और अन्य अष्टछापीय कवियों ने इन पदों में निश्चित छंद, गति और यति पर ही ध्यान रखा है उन्होंने अधिकांश पदों में अन्तराओं के साथ-साथ एक 'स्थायी' का प्रयोग करके संगीत-सौष्ठव का प्रदर्शन किया है। ये स्थायी हिन्दी पदावली की विशेषता हैं। बंगाली पदकर्ताओं ने भी अपने कुछ पदों में इसी प्रकार के 'स्थायी' को स्थान देकर रागात्मिका प्रवृत्ति का अच्छा परिचय दिया है। पर ये 'स्थायी' बंगाली पदों में अपेक्षाकृत कम हैं। तुलसीदास ने गीतावली में कवित्त, सवैयों आदि छंदों के साथ भी स्थायियों का प्रयोग करके पदों की रचना की है। परन्तु अधिकांशतः इस पद-साहित्य में मात्रिक छंदों का ही व्यवहार हुआ है जिनमें से मुख्य सरसी, सार, वीर और ताटंक हैं, अर्थात् सोलह-ग्यारह, सोलह-बारह, सोलह-चौदह और सोलह-पन्द्रह वाले मात्रिक छंदों का प्रयोग हुआ है।

सहायक ग्रंथों की सूची

अंग्रेजी ग्रंथ

Bengali Ramayanas — ले० दीनेशचन्द्र सेन; प्र० यूनिवर्सिटी आव् कलकत्ता; संस्क० १९२० ई०

Bhakti Cult in Ancient India — ले० भागवत कुमार

Chaitanya and his Companions — ले० दीनेश चन्द्र सेन; प्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय; संस्क० १९१७ ई०

Chaitanya's Pilgrimage and Teachings — ले० जे० एन० सरकार; प्र० एम० सी० सरकार एण्ड सस, ७५, हैरीसन रोड, कलकत्ता; संस्क० १९१३ ई०

Early History of the Vishnava Faith and Movement in Bengal — ले० सुशीलकुमार दे; प्र० जनरल प्रिंटर्स व पब्लिशर्स लि० कलकत्ता; संस्क० १९४२ ई०

Early History of Vaishnavism in South India — ले० एस० कृष्ण स्वामी आयंगर; प्र० ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस; संस्क० १९२९ ई०

Erotic Principles and Unalloyed Devotion — ले० निशिकांत सान्याल; प्र० गौडीय मठ, कलकत्ता; संस्क० १९४१ ई०

History of Bengali Language and Literature. — ले० दीनेशचन्द्र सेन; प्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय; संस्क० १९११ ई०

History of Bengali Literature — ले० के० एन० दास; प्र० दास सदर्न, नवगाव राजशाही; संस्क० १९४६ ई०

History of Brajbuli Literature — ले० सुकुमार सेन; प्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय; संस्क० १९३५ ई०

History of Indian Philosophy (Vol. III) — ले० एस० एन० दासगुप्त

	प्र०	कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस
	सस्क०	१९४० ई०
Materials for the study of Early History of Vaishnava Sects.	ले०	हेमचन्द्र राय चौधरी
	सस्क०	१३३० साल
Obscure Religious Cults as Background of Bengali Literature	ले०	शशिभूषण दास गुप्त
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	सस्क०	१९४६ ई०
Outline of the Religious Literature of India	ले०	जे० एन० फरकुहर
Theism in India	ले०	निकल मैकनिकल
	प्र०	आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
	सस्क०	१९१५ ई०
The Vaishnava Literature of Medieval Bengal	ले०	दीनेशचन्द्र सेन
	प्र०	यूनीवर्सिटी आफ कलकत्ता
	सस्क०	१९१७ ई०
Vaishnavism, Real and Apparent	प्र०	विश्व वैष्णव राजसभा
	सस्क०	१९२६ ई०
Modern Vernacular Literature of Hindustan	ले०	जी० ए० ग्रियर्सन
	प्र०	एशियाटिक सोसायटी ५७, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता
	सस्क०	१८८९ ई०

बगाली ग्रंथ

कीर्तनपदावली	सक०	सुधीरचन्द्र राय और अपर्णा देवी
	प्र०	प्रबोध नान, शशि रजन प्रेस, कलकत्ता
	सस्क०	१३४५ बगाब्द
कृष्णकीर्तन	ले०	चडीदास
	स०	बसतरजन राय
	प्र०	बगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	सस्क०	१३२३ साल
क्षणदागीतचिन्तामणि	ले०	विश्वनाथ चक्रवर्ती, व्याख्याकार, राधिकानाथ गोस्वामी
	प्र०	काशीनाथ राय, वृन्दावन
	सस्क०	१३१५ साल

ग्रन्थ		विवरण
गौडीयवैष्णवसाहित्य	ले०	हरिदास
	प्र०	श्रीधाम, नवद्वीप, हरिबोल कुटीर
	सस्क०	प्रथम ४६२ चैतन्याब्द
गौरपदतरंगिणी	सक०	जगद्बंधु भद्र
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता
	सस्क०	१३१० साल
चैतन्यचरितामृत	ले०	कृष्णदास कविराज गोस्वामी
	स०	क्षीरोद चंद्र गोस्वामी
	प्र०	पूर्णचंद्र शील, कलकत्ता
चैतन्यचरितेर उपादान	ले०	विमानविहारी मजुमदार
	प्र०	कलकत्ता विश्वविद्यालय
	सस्क०	१९३९ ई०
चैतन्यभागवत	ले०	वृन्दावनदास ठाकुर
	स०, प्र०	मृत्युंजय दे, तारकचन्द्र चटर्जी लेन, कलकत्ता
	सस्क०	१३५४ साल
चैतन्यमंगल	ले०	जयानंद
	स०	नगेन्द्रनाथ वसु, कालीदास नाग
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	सस्क०	१९०५ ई०
नरोत्तमविलास (वैष्णव ग्रंथावली, प्रथम भाग के अन्तर्गत)	ले०	नरहरि चक्रवर्ती
	स०	उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
	प्र०	पूर्णचंद्र मुखोपाध्याय
	सस्क०	१३०५ साल
पदकल्पतरु	सक०	वैष्णवदास
	स०	सतीशचन्द्र राय
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	सस्क०	१३३८ साल
प्राचीन बंग साहित्य	ले०	कालिदास राय
	प्र०	जयदेव राय
	सस्क०	द्वितीय संस्करण, १३५४ साल
प्रेम विलास	ले०	नित्यानन्द दास
	प्र०	१ यशोदालाल तालुकदार २ राधारमण प्रेस, बहरमपुर
	सस्क०	१३२० साल
बांग्ला साहित्येर इतिहास (प्रथम खंड)	ले०	सुकुमार सेन

	प्र० उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य, माडन बुक एजेन्सी, कलकत्ता
	सस्क० द्वितीय १९३८ ई०
भक्तमाल	ले० श्री लाल दास बाबा जी
	स० अविनाशचन्द्र मुखोपाध्याय
	प्र० पूर्णचन्द्र शील, कलकत्ता
	सस्क० १३५० साल
भक्तिरत्नाकर	ले० नरहरि चक्रवर्ती
	स० राम नारायण विद्यारत्न
	प्र० वगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, दो और सस्करण
	१ गौडीय वैष्णव मठ से १९४० ई०
	२ राधारमण प्रेस, बरहमपुर से चैतन्याब्द ४२६ में
वगभाषा ओ साहित्य	ले० दीनेशचन्द्र सेन
	प्र० गुरुदास चट्टोपाध्याय एण्ड सस कलकत्ता
वग साहित्य परिचय (दो भाग)	सक० दीनेशचन्द्र सेन
	प्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय
	सस्क० १९१४ ई०
वैष्णव पदावली	स० दीनेशचन्द्र सेन, खगेन्द्रनाथ मित्र
	प्र० कलकत्ता विश्वविद्यालय
	सस्क० तृतीय, १९४६ ई०
वैष्णव पदावली (वासुदेव घोष के पद)	स० मृणालकाति घोष
	प्र० वगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	सस्क० १३१२ साल
वैष्णव महाजन-पदावली	प्र० श्री उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, वसुमती साहित्य मदिर, कलकत्ता
वैष्णव रस साहित्य	ले० खगेन्द्रनाथ मित्र
	प्र० कमला बुक डिपो, कलकत्ता
	सस्क० १३५३ साल
वैष्णव वदना	ले० देवकीनन्दन दास
	स० शिवचन्द्र शील
वैष्णव वन्दना	ले० माधव दास
	स० शिवचन्द्र शील
	सस्क० १३१७ वगाब्द

वैष्णवाचार दर्पण वैष्णव सर्वस्व	स०	नवद्वीप चन्द्र गोस्वामी
	प्र०	शरच्चन्द्र शील प्रेस, कलकत्ता
	सस्क०	१३३६ बगाब्द
सकीर्तनामृत	सक०	दीनबन्धु दास
	स०	अमूल्यचरण विद्याभूषण
	प्र०	बगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
	सस्क०	१३३६ साल
स्मरण दर्पण	ले०	रामचन्द्र दास
	स०	अच्युतचरण
	प्र०	भक्तिप्रभा प्रेस, हुगली

सस्कृत ग्रथ

उज्ज्वलनीलमणि	ले०	रूप गोस्वामी
	टीका०	जीव गोस्वामी
	स०	दुर्गा प्रसाद, वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर
	प्र०	पाडुरग जावजी, निर्णय सागर, बबई
	सस्क०	सन् १९३२ ई०, शक १८५४
पद्यावली	ले०	रूप गोस्वामी
	स०	सुशीलकुमार दे
	प्र०	यूनिवर्सिटी, ढाका
	सस्क०	१९३४ ई०
ब्रह्म सहिता	टीका०	जीव गोस्वामी
	अनु०	(अग्रेजी मे) भक्ति सिद्धात सरस्वती
	प्र०	त्रिदडी स्वामी भक्ति हृदय, गौडीय मठ, मद्रास
	सस्क०	१९३२ ई०
भक्तिरसामृत सिधु	ले०	रूप गोस्वामी
	स०	भक्तिसिद्धात सरस्वती गोस्वामी
	प्र०	नदिया प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स, श्रीधाम, मायापुर, नदिया
	सस्क०	१३३८ साल
ललित माधव	ले०	रूप गोस्वामी
	प्र०	[illegible] कलकत्ता
श्रीमद् भागवत महापुराण, दो भाग	प्र०	गीताप्रेस, गोरखपुर
	सस्क०	द्वितीय [illegible]
		[illegible] २००८ [illegible]

हिन्दी ग्रथ

अष्टछाप	सम्पा० धीरेन्द्र वर्मा
	प्र० रामनरायन लाल, प्रयाग
	संस्क० प्रथम १९२९ ई०
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	ले० दीनदयालु गुप्त
	प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
	संस्क० २००४ वि०
कीर्तन रत्नाकर	सम्पा० त्रिभुवन दास पीताम्बर दास शाह नडियाद
	संस्क० १९[illegible]० वि०
कीर्तन-संग्रह	सम्पा० लल्लु भाई छगन लाल देसाई
	प्र० भक्ति ग्रथ माला, रीची रोड, अहमदाबाद
	संस्क० भाग १, २ (एक जिल्द मे) १९९३ वि०, भाग ३, १९९६
गोस्वामी तुलसीदास	ले० रामचन्द्र शुक्ल
	प्र० इडियन प्रेस, प्रयाग
	संस्क० १९३३ ई०
गोस्वामी तुलसीदास	स० श्यामसुन्दर दास और पीताम्बर दत्त बडथ्वाल
	प्र० इडियन प्रेस, प्रयाग
तुलसी की समन्वय साधना	ले० व्योहार राजेन्द्र सिंह
तुलसी ग्रथावली, द्वितीय खड	स० श्यामसुन्दर दास
	प्र० काशी नागरी प्रचारणी सभा
	संस्क० जयती सस्करण, स० १९८० वि०
तुलसी-दर्शन	ले० बलदेव प्रसाद मिश्र
	प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
	सस्क० १९९५ वि०
तुलसीदास	ले० चन्द्रवली पाडेय
	प्र० शक्ति कार्यालय, प्रयाग
	सस्क० २००५ वि०
तुलसीदास	ले० माताप्रसाद गुप्त
	प्र० प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद्, प्रयाग
	सस्क० द्वितीय १९४६ ई०

तुलसीदास एक अध्ययन	ले० रामरत्न भटनागर
	प्र० किताब महल, प्रयाग
	सस्क० १९४६ ई०
तुलसी शब्द-सागर	सक० हरगोविन्द तिवारी
	स० भोलानाथ तिवारी
	प्र० हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग
	सस्क० १९५४ ई०
नन्ददास : दो भाग	स० उमाशकर शुक्ल
	प्र० प्रयाग विश्वविद्यालय
	सस्क० प्रथम १९४२ ई०
प्राचीन कवियो की काव्य साधना	ले० राजेन्द्रसिह गौड
	प्र० साधना-सदन, प्रयाग
	सस्क० १९४७ ई०
भक्तमाल, प्रियादास की टीका तथा सीता-रामशरण भगवानप्रसाद "रूपकला" की टिप्पणियो सहित	ले० नाभादास
	प्र० नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
	सस्क० द्वितीय, सन् १९२६ ई०
मिश्रबन्धु विनोद (१)	ले० मिश्र बन्धु
	प्र० हिन्दी ग्रथ प्रसारक मडली
	सस्क० प्रथम, सवत १९७०
रामचरितमानस	ले० तुलसीदास
	स० माताप्रसाद गुप्त
	प्र० शालिग्राम गुप्त, साहित्य कुटीर, प्रयाग
	सस्क० प्रथम १९४९
रामचरितमानस की भूमिका	ले० रामचरण दास
	प्र० नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
	सस्क० तृतीय १९[illegible] ई०
रामचरितमानस की भूमिका	ले० रामदास गौड
	प्र० हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता
	सस्क० १९[illegible] ई०
वसन्त, धमार कीर्तन सग्रह	प्र० [illegible] भाई छगन लाल देसाई अहमदाबाद
	सस्क० १९[illegible] वि०
विनयपत्रिका, हरितोषणी टीका सहित	ले० तुलसीदास
	टीकाकार वियोगी हरि
	प्र० साहित्य सेवा सदन, काशी
	सस्क० द्वितीय, १९[illegible] वि०

संगीत राग कल्पद्रुम	संक०	कृष्णानन्द व्यासदेव
	सं०	श्री नगेन्द्र नाथ वसु
	प्र०	वंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता
सूरदास	ले०	ब्रजेश्वर वर्मा
	प्र०	हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय
	संस्क०	द्वितीय १९५० ई०
सूरसागर	सं०	नंददुलारे वाजपेयी
	प्र०	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
	संस्क०	प्रथम खंड सं० २००५ वि०, द्वितीय खंड सं० २००७ वि०
हिन्दी भाषा	ले०	श्यामसुन्दरदास
	प्र०	इंडियन प्रेस, प्रयाग
	संस्क०	१९५१ ई०
हिन्दी व्याकरण	ले०	कामता प्रसाद गुरु
	प्र०	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
	(संशो०) संस्क०	सं० २००९ वि०
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	ले०	रामकुमार वर्मा
	प्र०	रामनरायन लाल, प्रयाग
	संस्क०	प्रथम १९३८ ई०
हिन्दी साहित्य का इतिहास	ले०	रमा शंकर शुक्ल रसाल
	प्र०	राय साहब राम दयाल अग्रवाल, इलाहाबाद
	संस्क०	प्रथम १९३१
हिन्दी साहित्य का इतिहास	ले०	रामचन्द्र शुक्ल
	प्र०	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
	संस्क०	छठा, २००७
हिन्दी साहित्य की भूमिका	ले०	हजारी प्रसाद द्विवेदी
	प्र०	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई
	संस्क०	१९४० ई०